मिलिन्द प्रश्न

MILIND PRASHNA

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप, एम. ए.

सुगत

सुगत प्रकाशन, नागपूर–४४००१७

मिलिन्द प्रश्न

MILIND PRASHNA

सुगत प्रकाशन
७८०, वैशालीनगर, नागपुर-१७.

प्रकाशक
दे. रा. पगारे
मु. पो. निमनी, त. सौंसर
जि. छिंदवाड़ा (म. प्र.)

मुद्रक
निर्मला पगारे
निर्मल मुद्रण, नागपुर-१७

प्रकाशकाधीन

तृतीयावृत्ती

धम्मचक्र प्रवर्तन दिन
१२ अक्तूबर, १९८६

मूल्य :
रुपये पचाहत्तर

प्राप्ती स्थान :-
बौद्ध साहित्यका
सुगत बुक डेपो
डॉ. आंबेडकर रोड, नागपुर-४४००१७
(महाराष्ट्र)

समर्पण

बचपन से ही ज्ञान-वैराग्य की
बातें कहकर जिसने मेरे जीवन
को संन्यास-मार्ग की ओर
झुकाया; उस स्वर्गीय
धर्मशीला माँ की
पुण्य-मृति
में।

प्रकथन

बौद्ध साहित्य में "मिलिन्द प्रश्न" का स्थान बहुत ऊँचा है। यद्यपि यह त्रिपिटिक ग्रन्थों में से एक नहीं है, तो भी इसकी प्रमाणिकता उनसे किसी प्रकार कम नहीं मानी जाती। यहां तक कि अर्थकथाचार्य बुद्धघोष ने भी कई बातों को पुष्ट करने के लिए जगह जगह पर मिलिन्द-प्रश्न का प्रमाण दिया है। बौद्ध जनता इस ग्रन्थ को अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखती है।

उत्तर भारत में शासन करने वाले बैक्ट्रिया के ग्रीक राजाओं में मिनाण्डर (Minander) बड़ा प्रतापी राजा हुआ है। उसने सतलज नदी को पार कर यमुना के आस पास तक अपना राज्य बढ़ा लिया था। सागलपुर (वर्तमान स्यालकोट) उसकी राजधानी थी। इसका वर्णन ग्रन्थ के आरम्भ में आता है।

मिनाण्डर बड़ा विद्या-व्यसनी था। वेद, पुराण, दर्शन इत्यादि सभी विद्याओं का उसने अच्छा अभ्यास किया था। दार्शनिक विवाद करने में वह बड़ा निपुण था। यहाँ तक कि उस समय के बड़े-बड़े दिग्गज पण्डित भी उससे शास्त्रार्थ करने में भय मानते थे। तर्क करने में वह अजेय समझा जाता था। एक बार राजा अर्हत्-पदप्राप्त परम-यशस्वी, स्थविर नागसेन के पास शास्त्रार्थ करने गया। स्थविर ने राजा के तर्कों को काट, उसे बुद्ध-धर्म की शिक्षा दी। इस ग्रन्थ में उन्हीं राजा मिनाण्डर (मिलिन्द) और नागसेन के शास्त्रार्थ का वर्णन है। ग्रन्थ के अन्तिम भाग में आता है कि राजा बुद्ध-धर्म से इतना प्रभावित हुआ कि सारा राज-पाट छोड़ उसने प्रव्रज्या ग्रहण की और अर्हत्-पद को प्राप्त हुआ।

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में सब से बड़ी कठिनाई है तो यह है कि उसके कर्ता का नाम अभी तक ज्ञात नहीं। पण्डितों के बहुत परिश्रम करने पर भी न तो ग्रन्थ के आन्तरिक और न बाहरी प्रमाणों से ही इस बात का निश्चय हो सका कि इसके कर्ता कौन थे। कुछ विद्वानों का मत है कि "मिलिन्द प्रश्न" मूलतः संस्कृत में या किसी दूसरी प्राकृत भाषा में लिखा गया होगा, प्रस्तुत ग्रंथ जिसका पाली में अनुवाद है। उसकी शैली भी सचमुच पाली की अपेक्षा संस्कृत के ही अधिक निकट है।

पाली के अतिरिक्त मिलिन्द प्रश्न का एक दूसरा संस्करण चीनी भाषा में भी मिलता हैं। पिछली बार जब मैं पिनाङ्ग में था तो एक चीनी पण्डित की सहायता से मैंने उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया। पुस्तक का चीनी नाम है "ना-से-पि--क्कु-किन्" जिसका अर्थ है "नागसेन-भिक्षु-सूत्र"। इस पुस्तक में कुल छब्बीस पृष्ठ है। अनुवाद करने से पता चला कि—

१—इसका "पूर्व-योग" पाली मिलिन्द प्रश्न से बिलकुल भिन्न है।

२—यह ग्रन्थ पाली "मिलिन्द-प्रश्न के तीसरे परिच्छेद तक ही है, जो कि इस हिन्दी अनुवाद के केवल ११३ पृष्ठों के बराबर है।

३—इसके प्रश्नोत्तर करीब करीब उतने ही और वे ही है; हाँ, भाषा और प्रकार में कहीं कहीं कुछ साधारण अन्तर है।"

चीनी 'नासे पिक्कु किन्' का पूर्व योग संक्षेप में इस प्रकार है—

एक समय भगवान् बुद्ध "सि य ओ ए–को" (श्रावस्ती) में विहार करते थे। भिक्षु भिक्षुणियों तथा उपासक-उपासिकाओं से दिन-रात घिरे रहने से उनका मन ऊब गया। एकान्त-वास के लिये वे सभी को छोड "कार लो चोङ्ग शू" (पारिलेय्य?) नामक वन में जाकर एक बरगद वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न हो बैठ गये।

उसके पास ही दूसरे जंगल में एक हस्तिराज अपने अनुचर पाँच सौ हाथियों के साथ वास करते थे। हस्तिराज भी समुदाय के जीवन से ऊब कर अपने सभी अनुचरों को छोड़ उसी जंगल में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ भगवान् बुद्ध बैठे थे। भगवान् बुद्ध ने हस्तिराज को प्रेम से अपने निकट बुलाया। बहुत दिनों तक हस्तिराज वहाँ भगवान् की सेवा करते रहे। जब भगवान् ने वहाँ से प्रस्थान किया तो हस्तिराज को बड़ा दुःख हुआ। वे जीवन भर सदा भगवान् का स्मरण करते रहे।

दूसरे जन्म में हस्तिराज एक ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न हुए। बडे होने पर उन्हें वैराग्य हो आया और वे संन्यास ग्रहण कर किसी पहाड़ पर रहने लगे। उसी पहाड़ पर एक दूसरा संन्यासी भी रहता था जिससे उसकी बडी मित्रता हो गई। उन्होंने उससे कहा, "भाई, संसार बड़ा दोष–पूर्ण है, इसमें दुःख है। इसी से निर्वाण पाने के लिये मैं संन्यास ले ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।"

उसने कहा, "नहीं, मैं तो यह जीवन इसलिये व्यतीत कर रहा हूँ जिससे अगले जन्म में इस पुण्य के कारण लोक–विजयी अधिराज हो सकूँ। मेरी यही कामना है।"

अगले जन्म में उनमें से एक समुद्र के किनारे बी 'नन' (मिलिन्द) नाम का राजकुमार हुआ। दूसरा "की पिन'कुन" प्रदेश में उत्पन्न हुआ। पूर्वजन्म में निर्बाण पाने की प्रबल इच्छा होने के कारण 'बच्चा' ऐसा मालूम पड़ता था मानो काषाय पहने हो। उसके उत्पन्न होने के दिन ही उस स्थान पर एक हथनी को एक बच्चा पैदा हुआ था। चूंकि हाथी को 'नाग' कहते है इसलिए उसका नाम इस संयोग से "नागसेन" पड़ा।

नागसेन का एक मामा था जिसका नाम था लोहन। लोहन बड़े सिद्ध भिक्षु थे। बालक नागसेन लोहन के साथ रह कर धर्म का अध्ययन करने लगा। नागसेन की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। उसने अपना अध्ययन शीघ्र समाप्त कर डाला। बीस वर्ष की अवस्था होने पर "हो सेन" नामक विहार में उसकी उपसम्पदा हुई।

भिक्षु नागसेन निर्वाण प्राप्त करने का दृढ़ अधिष्ठान करके निकल पड़े।

शेष "पूर्वयोग" पाली संस्करण के जैसा ही है। सभी प्रश्नोत्तर, उपमायें तथा भाषा भी कुछ हद तक पाली संस्करण के समान ही है।

पाली मिलिन्द प्रश्न के तीसरे परिच्छेद के अन्त में स्पष्ट लिखा है 'मिलिन्द राजा के प्रश्नों का उत्तर देना समाप्त"! चीनी संस्करण 'ना से पिक्कू किन' यही

समाप्त हो जाता है। इस ग्रन्थ का अन्तिम वाक्य है, "तब स्थविर नागसेन पात्र और चीवर लेकर उठे और जाने को उद्यत हुए; राजा भी प्रसाद के द्वार तक आया और उसने उन्हें सम्मान पूर्वक बिदाई दी।" इससे ऐसा जान पड़ता है कि मूल ग्रन्थ यही तक लिखा गया होगा। पाली संस्करण में आगे के तीन परिच्छेद (१) मेण्डक प्रश्न (२) अनुमान प्रश्न; और (३) उपमा-कथा-प्रश्न पीछें से जोड़ दिये गये होंगे। वास्तव में यह तीन परिच्छेद स्थविर नागसेन और राजा मिलिन्द के स्वाभाविक प्रश्नोत्तर नहीं मालूम पड़ते। मेण्डक प्रश्न की दुविधायें और उसका निराकरण, अनुमान प्रश्न के धर्म नगर की कल्पना तथा उपमा-कथा-प्रश्न के मुमुक्षु भिक्षु के ग्राह गुणशान्तचित्त बैठे किसी लेखक की लेखनी से प्रसूत प्रतीत होते है,न कि बातचीत के प्रसंग में।

सम्भव है, कि मूल ग्रन्थ भारतवर्ष में संस्कृत में लिखा गया हो; और यह पाली-संस्करण तथा चीनी-संस्करण उसी के अनुवाद हो या उसी के आधार पर लिखे गये हो!

पाली संस्करण के अन्त में आता है कि मिलिन्द भिक्षु बना और उसने अर्हत्-पद प्राप्त किया। इसमें ऐतिसाहिक सत्य कहाँ तक है, कहा नहीं जा सकता। राजा मिलिन्द के विषय में सब से प्रामाणिक जानकारी जो हमें प्राप्त है वह हैं उसके सिक्कों से।

अभी तक राजा मिलिन्द के लगभग बाईस सुन्दर सिक्के उपलब्ध हैं। अधिक में राजा मिलिन्द का नाम स्पष्टतया पढ़ा जाता है। आठ सिक्कों में राजा को शकल भी हैं। यह सिक्के उत्तर-भारत के सुदूर प्रदेश में प्राप्त हुए हैं—पश्चिम में काबूल तक, पूर्व में मथुरा तक और उत्तर में काश्मीर तक। इससे पता चलता हैं कि मिलिन्द के राज्य का प्रसार बड़ा था। सिक्कों पर राजा की शकल बड़ी सुन्दर आई है; लम्बी नाक के साथ मूर्ति बड़ी ही सजीव मालूम पडती है। कुछ सिक्कों की शकल तरुण अवस्था की है, और कुछ की अत्यन्त वृद्धावस्था की। इससे पता चलता है कि मिलिन्द राजा का राज्य-काल भी बड़ा लम्बा रहा होगा। सिक्कों के एक तरफ ग्रीक भाषा में और दूसरी तरफ उस समय की पाली भाषा में लेख है। इक्कीस सिक्कों पर हैं—

एक तरफ—Basileos Soteros Menrdaou

और दूसरी तरफ—महरजस तद्रतस मेनन्द्रस

कुछ सिक्कों पर दौड़ते घोड़े, ऊँट, हाथी, सूअर, चक्र या ताड़ के पत्ते खुदे हैं। चक्र वाले सिक्के से यह प्रमाणित होता है कि राजा के ऊपर बौद्ध-धर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा, क्योंकि चक्र (=धर्मचक्र) बुद्ध-धर्म का एक प्रधान चिन्ह है। केवल एक सिक्का ऐसा है जो दूसरों से बिल्कुल भिन्न है और इस बात को बहुत हद

तक पुष्ट करता है कि मिलिन्द राजा ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। उस के एक तरफ लिखा है—

Basileos Dikaiou Menandrou

दूसरी तरफ—महरज धमिकस मेनन्द्रस

यहाँ "धमिकस" का अर्थ है "धार्मिकस्य"। बौद्ध साहित्य में उपासक राजा के लिये बराबर 'धम्मराज' शब्द का प्रयोग होता है। अशोक का तो नाम ही हो गया था 'धर्माशोक। अतः इस सिक्के में जो 'धार्मिकस्य' पद का प्रयोग आया हैं उससे सिद्ध होता है कि मिलिन्द अवश्य बौद्ध हो गया रहा होगा।

प्लुटार्क भी अपने इतिहास में लिखता है कि मेनाण्डर बड़ा न्यायी, विद्वान और जनप्रिय राजा था। उसकी मृत्यु के बाद उसके फूल (=भस्मावशेष) लेने के लिए लोगों में लड़ाई छिड़ गई थी। लोगों ने उसके फूलों पर बड़े-बड़े स्तूप बनवाये। यह कहानी भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय जो बातें हुई थीं, उनसे बहुत मिलती हैं। फूलों के ऊपर स्तूप बनवाना बौद्धों की प्रचलित प्रथा थी। इससे भी यह ज्ञात होता है कि मिलिन्द अवश्य बौद्ध-धर्म में दीक्षित हो गया होगा।

केवल इतने ही प्रमाणों से इस ग्रन्थ का काल निश्चित रूप से निर्धारित करना सम्भव नहीं। हाँ, इतना तो स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ राजा मिलिन्द के पश्चात् और आचार्य बुद्धघोष के पहले लिखा गया होगा। राजा मिलिन्दका काल ईसा से पूर्व १५० वर्ष है, और बुद्धघोष का ईसा के ४10 वर्ष बाद।

मैंने यथासाध्य प्रयत्न किया है कि अनुवाद सरल और सुबोध हो, जिससे मिलिन्द-प्रश्न जैसे प्राचीन ग्रन्थ को पाठक आधुनिक ढंग से समझ सकें। मैं कहाँ तक अपने प्रयास में सफल हुआ हूँ, मैं नहीं जानता। बीच बीच में कुछ ऐसे शब्द चले आये है जिसका हिन्दी भाषा में ठीक उन अर्थों में व्यवहार नहीं होता, या जो बौद्ध दर्शन के पारिभाषिक शब्द है। ऐसे शब्दों पर मैंने अँग्रेजी के अंक लगा दिये है जिससे पाठक उसकी व्याख्या पुस्तक के अन्त में दी बई "बोधिनो में खोज कर देख लें।

अन्त में मैं श्रद्धेय आनन्द जी, राहुल जी और मित्रवर पण्डित उदय नारायण त्रिपाठी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अनुवाद करने तथा प्रूफ संशोधन में सहायता देकर बडी दया दिखाई हैं। मैं श्रामणेर विशुद्धानन्द को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने पुस्तक की सूची तथा अनुक्रमणी बनाने में सहायता की है।

मूलगन्ध कुटी विहार
सारनाथ
९-१०--३७

जगदीश काश्यप

प्रकाशकीय

बौद्ध साहित्य में 'मिलिन्द प्रश्न' ग्रंथ का स्थान धर्मशास्त्र, तर्कशास्त्र, समाज शास्त्र आदि विविध शास्त्रों के दृष्टी से अनुपमेय है। इस ग्रंथ का गुणगौरव अनेक विद्वजनों द्वारा किया जाता है।

प्रस्तुत ग्रंथ सुगत प्रकाशन द्वारा मराठी भाषा में सदानंद महास्थविर 'सद्धम्मादित्य' जी का अनुवादीत पाँच वर्ष पूर्व प्रकाशित किया है। हिन्दी भाषी जनता के लिये कई वर्षों से त्रिपिटकाचार्य भिक्षु जगदीश काश्यप जी का 'मिलिन्द प्रश्न' दुष्प्राप्य था। बड़ी कठनाई से बौद्ध तत्वज्ञान का यह महान ग्रंथ प्रकाशित करते हुये हमें बहुत आनंद हो रहा है। आशा है धर्मानुरागी पाठक वर्ग इस अनमोल ग्रंथ को अपनाकर उत्साह का वर्धन करेंगे।

इस ग्रंथ प्रकाशन में भन्ते सदानंद जी, एम. डी. पंचभाई, प्रा. सूर्यभान वाघमारे, दहिवले गुरुजी, सिंधुपती इन मान्यवरों का मार्गदर्शन भूला नहीं जाता। निर्मल मुद्रण की श्रीमती निर्मला पगारे और मुद्रण विभाग के देवाजी ठाकरे, राजु सुखदेवे, शशी बोरकर, लक्ष्मण कांबळे, अनिल टेंमूर्णे, शंकर कुरळकर, डहाट, गणेश माटें और मेरे पुत्र सुजय, संजय आदी सबों के उत्साह के कारण ही यह ग्रंथ समय पर प्रकाशित कर पाये हैं।

चित्रकार श्री. के. एस. चहांदे ने मुखपृष्ठ तयार कर दिया जिस के लिये वे धन्यवाद के पात्र है।

'सुगत प्रकाशन' के लेखक, अनुवादक, पाठक, ग्राहक और शुभचिंतक इन सभी के सदैव ऋणी हैं। जयभीम !

देवमन रामजी पगारे

धम्मचक्र प्रवर्तन दिन
१२ अक्तूबर, १९८६

मु. पो. निमनी तह. सौंसर
जि. छिंदवाडा (म. प्र.)

विषय-सूची

चौथा परिच्छेद

मेण्डक प्रश्न १

विषय	पृष्ठ

पहला वर्ग समाप्त

(ख) योगिकथा

दूसरा वर्ग समाप्त

तीसरा वर्ग समाप्त

चौथा वर्ग समाप्त

पांचवा वर्ग समाप्त

विषय | पृष्ठ

आठवा वर्ग समाप्त

मेण्डक प्रश्न समाप्त

अनुमान प्रश्न समाप्त

विषय	पृष्ठ
छठा परिच्छेद	३७१-४२२

उपाम कथा-प्रश्न

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

मिलिन्द - प्रश्न

ऊपरी कथा

जैसे गंगा नदी समुद्र से जा मिलती है उसी तरह सागल नामक उत्तम नगर में राजा मिलिन्द[1] नागसेन के पास गया।

(अज्ञान रूपी) अंधकार को नाश करने वाले, (ज्ञान रूपी) प्रकाश को धारण करने वाले, तथा विचित्र वक्ता (नागसेन के पास) राजा ने जाकर अनेक विषयों के सम्बन्ध में सूक्ष्म प्रश्न पूछे।

उन प्रश्नों के उत्तर गम्भीर अर्थों से युक्त, हृदयंगम, कर्णप्रिय, अद्भुत, अत्यन्त आनन्ददायक, अभिधर्म[2] और विनय[3] के गाम्भीर्य से युक्त,[4] सूत्रों के अनुकूल तथा उपमाओं और तर्कों के दृष्टोसे को न्यायसंगत हैं।

शङ्काओं को दूर करने वाले उन सूक्ष्म प्रश्नों को मन लगा कर प्रसन्न चित्त से आप सुने।

सागल नगर का वर्णन

ऐसा सुना जाता है।

यवनों[5] का वाणिज्य-व्यवसाय का केन्द्र सागल[6] नाम का एक नगर था। वह नगर नदी और पर्वतों से शोभित रमणीय भूमिभाग में बसा, आराम-उद्यान-उपवन-तड़ाग-पुष्करणी से सम्पन्न, नदी, पर्वत और वन से अत्यन्त रमणीय था। उस नगर को दक्ष कारीगरों ने निर्माण किया था। उसके सभी शत्रुओं का दमन हो चुका था। प्रजाओं को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं थी। अनेक प्रकार के विचित्र दृढ़ अटारी और कोठे थे। नगर का सिंह-दरवाजा विशाल और सुन्दर था। भीतरी गढ़ (अन्तःपुर) गहरी खाई और पीले प्राकार से घिरा था। सड़क, आंगन और

---

१. Minander (मिनान्दर इन्दोग्रीक सम्राट्)
२. इसमें भगवान बुद्ध का दर्शन है।
३. इसमें भिक्षुओं के नियमों का संग्रह है।
४. इसमें भगवान बुद्ध के उपदेशो का संग्रह है।
५. यूनानी
६. स्यालकोट

चौराहे सभी अच्छी तरह बँटे थे। दुकानें अच्छी तरह सजी सजाई बहुमूल्य सौदों से भरी थी। जगह जगह पर अनेक प्रकार की सैकड़ों सुन्दर दान-शालायें बनी थी। हिमालय पर्वत की चोटियों की तरह सैकड़ों और हजारों ऊँचे ऊँचे भवन थे। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चलने वाले लोगों से वहाँ चहल पहल रहती थी। झुण्ड के झुण्ड सुन्दर स्त्री और पुरुष घूमते रहते थे। वह नगर सभी प्रकार के मनुष्यों से गुलजार था। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, श्रमण तथा गणाचार्य सभी रहते थे। वहाँ बड़े बड़े विद्वानों का केन्द्र था। काशी, कोटुम्बर आदि स्थानों के बने कपड़ों की बड़ी बड़ी दुकानें थी। अनेक प्रकार के फूल तथा सुगन्धित द्रव्यों की दुकानें थीं। अभिलाषित रत्न भरे पड़े थे। सभी ओर शृङ्गार, वणिकों की दुकानें पसरी रहती थीं। कार्षापण, चाँदी, सोना, काँसा और पत्थर सभी प्रकार से परिपूर्ण वह नगर मानो बहुमूल्य रत्नों का एक चमकता खजाना था। सभी प्रकार के धन, धान्य और उपकरणों से भण्डार और कोष पूर्ण था। वहाँ अनेक प्रकार के खाद्य, भोज्य और पेय थे। उत्तर कुरु की नाई उपजाऊ तथा आलकनन्दा देवपुर की नाई शोभासम्पन्न वह नगर था।

ग्रन्थ के छः भाग

इसके बाद उन लोगों (मिलिन्द और नागसेन) के पूर्व जन्म की बातें कही जायेगी।

उसे छः भागों में बांट कर कहूंगा। जैसे :--

१–पूर्वयोग

२–मिलिन्द प्रश्न

३–लक्षण प्रश्न

४–मेण्डक प्रश्न

५–अनुमान प्रश्न

६–उपमाकथा प्रश्न

इनमें मिलिन्द प्रश्न के दो भाग हैं (क) लक्षण और (ख) विमतिच्छेदन। मेण्डक-प्रश्न के भी (क) महावर्ग और (ख) योगी-कथा नामक दो भाग हैं।

पहला परिच्छेद

१–पूर्व योग

१. उनके पूर्व जन्म की कथा

'पूर्वयोग' का अर्थ है उनके पूर्व जन्म में किये कर्म।

अतीतकाल में भगवान् काश्यप (बुद्ध) के शासन के समय, गङ्गा नदी के समीप, एक आश्रम में, एक बड़ा भिक्षु–संघ रहता था। वे व्रत और शील से सम्पन्न भिक्षु प्रातः काल ही उठ कर झाड़ू ले, बुद्ध के गुणों को मन में लाते आंगन को बुहारते, कूड़े को इकट्टा करते थे।

एक दिन एक भिक्षु ने किसी श्रामणेर से कहा–"यहाँ आओ और इस कूड़े को फेंक दो।" वह सुनते हुए भी अनसुनी करने लगा। दूसरी और तीसरी बार बुलाये जाने पर भी वह अनसुनी कर गया। इस पर उस भिक्षु ने–"यह श्रामणेर बड़ा अविनीत है" ऐसा मनमें विचार कर, क्रुद्ध हो कर उसे झाड़ू से मारा। तब उसने रोते हुए डर के मारे कुड़े को फेंकते मनमें ऐसा प्रथम सङ्कल्प किया–"इस कुड़े को फेंकने के पुण्य–कर्म से जब तक मुझे निर्वाणपद प्राप्त नही होता तब तक मैं यह कार्य करता रहुँगा और उसके भीतर जहाँ जहाँ जन्म ग्रहण करूँ, मध्यान्ह के सूर्य के समान तेजस्वी होऊँ" ऐसा प्रथम सङ्कल्प किया। कूड़े को फेंक कर श्रामणेर नहाने के लिये गङ्गा नदी के घाट पर गया। गङ्गा की शब्दायमान तरङ्गों को देखकर उसने दूसरा सङ्कल्प किया–"जहाँ जहाँ मैं जन्म ग्रहण करूँ इन तरङ्गों के वेग के समान प्रत्युत्पन्न–मति और प्रतिभाशाली होऊँ।"

उस भिक्षु ने भी झाड़ू रखने के स्थान पर झाड़ू को रखकर नहाने के लिये घाट की ओर जाते हुए श्रामणेर के सङ्कल्प को सुना। सुन कर मनमें विचारा–"यह (श्रामणेर) मुझ से प्रेरित होने पर यदि ऐसा सङ्कल्प करता है, तो क्या मुझे इसका फल नहीं प्राप्त होगा!"

ऐसा विचार कर भिक्षु ने भी सङ्कल्प किया,–"जहाँ जहाँ मैं जन्म ग्रहण करूँ गङ्गा की तरङ्गों के वेग के समान प्रत्यत्पन्नमति होऊँ और इसके पूछे सभी प्रश्नों की गुत्थियों को सुलझ ने में मैं समर्थ होऊँ।"

देवलोक तथा मनुष्य लोक में जन्म ग्रहण करते हुए उन दोनों ने एक बुद्धान्तर बिता दिया।

तब हम लोगों के भगवान् बुद्ध ने भी उन लागों को देखा और मोग्गलि-पुत्र तिष्य स्थविर के समान उनके विषय में भी भविष्यवाणी की-"मेरे महापरिनिर्वाण के पाँच सौ वर्षों के बाद ये दोनों जन्म ग्रहण करेंगे और जिस धर्म विनय का मैंने सूक्ष्म रूप से उपदेश किया है उसे ये प्रश्नोत्तरों, उपमाओं और युक्तियों से स्पष्ट कर देंगे।"

उन में वह श्रामणेर जम्बूद्वीप के सागल नामक नगर में मिलिन्द नाम का राजा हुआ। वह बड़ा पण्डित, चतुर, बुद्धिमान और समर्थ शासक था। भूत, भविष्यत, और वर्तमान सभी योग विधान में सावधान रहता था। उसने अनेक विद्याओं को पढ़ा था, जैसें-(१) श्रुति। (२) स्मृति। (३) सांख्य।[1] (४) योग।[2] (५) न्याय। (६) वैशेषिक। (७) गणित। (८) सङ्गीत। (९) वैद्यक। (१०) चारों वेद। (११) सभी पुराण। (१२) इतिहास। (१३) ज्योतिष। (१४) मन्त्र विद्या। (१५) तर्क। (१६) तन्त्र। (१७) युद्ध विद्या। (१८) छन्द और (१९) सामुद्रिक। इन १९ विद्याओं में वह पारङ्गत था। वाद करने में अद्वितीय और अजेय था। वह सभी तीर्थङ्करों में श्रेष्ठ समझा जाता था। प्रज्ञा, बल, वेग, वीरता, धन, भोग आदी में मिलिन्द राजा के समान सारे जम्बूद्वीप में कोई दूसरा नहीं था। वह महा सम्पत्तिशाली तथा उन्नतिशील था। उसकी सेनाओं और वाहनों का अन्त नहीं था।

तब, एक दिन राजा मिलिन्द अपनी चतुरङ्गिणी अनन्त सेना को देखने के विचार से नगर के बाहर गया। सेनाओं की गणना करने के बाद उस वाद-प्रिय राजा ने लोकायत और वितण्डवादियों से तर्क करने की उत्सुकता से ऊपर सूर्य की ओर देखा और अपने अमात्यों को सम्बोधित किया-"अभी बहुत दिन बाकी हैं। तब तक क्या करना चाहिये! क्या ऐसा कोई पण्डित सम्यक् सम्बुद्ध के सिद्धान्तों को जानने वाला श्रमण, ब्राह्मण या गणाचार्य है जिसके साथ मैं नगर में जाकर वार्तालाप करूँ, जो मेरी शंकाओं को दूर कर सके?"

(राजा के) ऐसा कहने पर पाँच सौ यवनों ने उसे कहा "हाँ महाराज, ऐसे छः पण्डित हैं-(१) पूरण कस्सप, (२) मक्खली गोसाल, (३) निगण्ठ नातपुत्त, (४) सञ्जय बेलट्ठिपुत्त, (५) अजित केसकम्बली और (६) ककुध कच्चान। वे संघ-नायक, गणनायक, गणाचार्य, प्रज्ञ और तीर्थङ्कर हैं। लोगों में उनका बड़ा सम्मान है। महाराज! आप उनके पास जायँ और अपनी शङ्काओं को दूर करें।"

१-२ सिंहल अनुवाद में 'सांख्य' को 'गणन शास्त्र' और 'योग' को 'काम शास्त्र' कहा गया है। यह अशुद्ध है।

२. पूरण कस्सप के साथ राजा मिलिन्द की भेंट

तब राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ सुन्दर रथ पर सवार हो जहाँ पूरण कस्सप था वहाँ गया और पूरण कस्सप के साथ कुशल प्रश्न पूछा। कुशल प्रश्न पूछने के बाद राजा एक ओर बैठ गया और पूरण कस्सप से यह बोला—"भन्ते कस्सप! संसार का कौन पालन करता है?"

"महाराज! पृथ्वी संसार का पालन करती है।"

"भन्ते कस्सप! यदि पृथ्वी संसार का पालन करती है तो अवीचि नरक में जाने वाले जीव पृथ्वी का अतिक्रमण कर के क्यों जाते हैं?"

राजा के ऐसा कहने पर पूरण कस्सप न उगल सका न निगल सका; कन्धों को गिराकर चुपचाप हतबुद्धि हो बैठ रहा।

३. मक्खलि गोसाल के साथ राजा मिलिन्द की भेंट

इस के बाद मिलिन्द राजा ने मक्खलि गोसाल से पूछा, "भन्ते गोसाल! क्या पाप और पुण्य कर्म है? क्या अच्छे और बुरे कर्मों के फल भोगने पड़ते है?"

"नहीं महाराज! पाप और पुण्य कर्म कुछ नहीं हैं। अच्छे और बुरे कर्मों के कोई फल भोगने नहीं पडते। महाराज! जो यहाँ क्षत्रिय है वे परलोक जा कर भी क्षत्रिय ही होंगे; जो यहाँ ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल या पुक्कुस हैं वे परलोक में जाकर भी ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चण्डाल या पुक्कुस ही होवेंगे। पाप और पुण्य कर्मों से क्या होता है?" गोसाल ने उत्तर दिया।

"भन्ते गोसाल! यदि जो यहाँ क्षत्रिय हैं वे परलोक जा कर भी क्षत्रिय ही होवेंगे और पाप पुण्य कर्मों से कुछ होने जाने का नहीं है, तो जो इस लोक में लूले हैं वे परलोक जा कर भी लूले ही होवेंगे, जो लंगड़े हैं वे लंगड़े ही होवेंगे, जो कनकटे और नकटे हैं वे कनकटे और नकटे ही होवेंगे।"

राजा के ऐसा कहने पर गोसाल चुप हो गया।

तब, राजा मिलिन्द के मन में ऐसा विचार आया—अरे, "यह जम्बूद्वीप तुच्छ है। यहाँ के पण्डित ज्ञान की दृष्टी से कोरे और नामधारी है। झूठ-मूठ का इतना नाम है!! मेरे साथ बातचीत कर सके और मेरी शङ्काओं को दूर कर सके ऐसा कोई लायक यहाँ नहीं है।"

एक दिन राजा मिलिन्द ने अमात्यों को सम्बोधित किया—"आज की रात बड़ी रमणीय है! तब, किस श्रमण या ब्राह्मण के पास जाकर मैं प्रश्न पूछूँ? कौन मेरे साथ बातचीत कर सकता है; कौन मेरी शङ्काओं को दूर करेगा?"

राजा के ऐसा कहने पर सभी अमात्य चुप हो, राजा के मुख की ओर देखते खड़े रहे।

उस समय सागल नगर बारह वर्षों से श्रमण, ब्राह्मण या गृहस्थ पण्डितों से खाली था। जहाँ राजा सुनता कि कोई श्रमण, ब्राह्मण या गृहस्थ पण्डित वास करता है वहाँ तत्काल जा कर राजा उससे प्रश्न पूछता। वे राजा को प्रश्नोत्तर से संतुष्ट न कर सकने पर जहाँ तहाँ चले जाते थे। जो किसी दूसरी जगह नहीं जाते थे वे सभी चुप लगाये रहते। प्रायः सभी भिक्षु हिमालय पर्वत पर चले गये थे। उस समय हिमालय पर्वत के रक्षिततल में कोटिशत अर्हत् वास करते थे।

४. आयुष्मान् अस्सगुत्त का भिक्षु-संघ को बुलाना

तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने अपनी दैवी श्रमण शक्ति से राजा मिलिन्द की बातों को सुना। सुन कर उन्होंने युगन्धर नामक पर्वत पर भिक्षु-संघ की एक बैठक की, और भिक्षुओं से पूछा--"आवुस ! क्या कोई भिक्षु ऐसा समर्थ है जो राजा मिलिन्द के साथ बातचीत कर के उसकी शङ्काओं को दूर कर सके ?"

ऐसा पूछे जाने पर वे कोटिशत अर्हत् चुप रहे। दूसरी बार और तीसरी बार भी पूछे जाने पर वे चुप ही रहे।

तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने भिक्षु-संघ से कहा--"आवुस ! तावतिंस भवन में वेजयन्त से पूर्व की ओर केतुमती नाम का एक बिमान है। वहाँ महासेन नामक एक देवपुत्र रहता है; वह राजा मिलिन्द के साथ बात-चीत करने तथा उसकी शङ्काओं को दूर करने में समर्थ है।

५. महासेन देवपुत्र से मनुष्यलोक में आने की याचना

तब कोटिशत अर्हत् युगन्धर पर्वत के ऊपर अन्तर्धान हो तावतिंस भवन में प्रकट हुए। देवाधिपति शक्र ने उन भिक्षुओं को दूर ही से आते देखा। देखकर आयुष्मान् अस्सगुत्त के निकट गया, और कुशल समाचार पूछकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हो, देवाधिपति शक्र ने आयुष्मान् अस्सगुत्त से कहा--

"भन्ते अस्सगुत्त ! महान सत्पुरुषों के संघ का किस कारण आगमन हुआ है ? मैं सङ्घ सेवा करने के लिये तैयार हूँ। संघ को किस चीज की आवश्यता है ? मैं क्या सेवा करूँ ?"

तब संघनायक अस्सगुत्त ने देवाधिपति शक्र से कहा--"महाराज ! जम्बूद्वीप के सागल नामक नगर में मिलिन्द नाम का राजा वादविवाद करने में अद्वितीय और अपराजेय है। वह सभी तीर्थङ्कारों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वह भिक्षु संघ के पास जाकर मिथ्यादृष्टि-विषयक प्रश्नों को पूछ कर उन्हें तंग करता है।"

तब, शक्र ने कहा—"भन्ते ! राजा मिलिन्द यहीं से उतर कर मनुष्य लोक में उत्पन्न हुआ है और भन्ते, केतुमती विमान में महासेन नाम का एक देवपुत्र वास करता है, जो उस मिलिन्द राजा के साथ बातचीत करके उसकी शङ्काओं को दूर करने में समर्थ है। उसी देवपुत्र से हमलोग मनुष्य लोक में जन्म-ग्रहण करने की प्रार्थना करें।"

तव, देवाधिपति शक्र भिक्षु-संघ को आगे करके केतुमती विमान में गया। वहाँ महासेन देवपुत्र को आलिङ्गन करके बोला—"मारिस ! भिक्षु संघ आपसे मनुष्य लोक में उत्पन्न होने की प्रार्थना करता है।"

"नहीं भन्ते, मुझे मनुष्यलोक से कोई काम नहीं। काम-काज के झंझटों से मनुष्य जीवन में चैन नहीं है। भन्ते, मैं देवलोक ही में क्रमशः ऊपर जन्म ग्रहण करते हुए मुक्त हो जाऊँगा।"

दूसरी और तीसरी बार भी शक्र के प्रार्थना करने पर महासेन देवपुत्र ने यही कहा—"नहीं भन्ते !"

तव, आयुष्मान अस्सगुत्त बोले—"मारिस ! देवताओं के सहित इस सारे लोक में खोजने पर भी आपको छोड़ कोई दूसरा दृष्टि में नहीं आता, जो राजा मिलिन्द के तर्कों को काटकर शासन की रक्षा करने में समर्थ हो। भिक्षु संघ आप से याचना करता है कि आप मनुष्य लोक में जन्म ग्रहण कर दशबल (बुद्ध) के शासन की रक्षा करें।"

यह सुन कर कि 'मैं राजा मिलिन्द के तर्कों को काट शासन की रक्षा कर सकूँगा' महासेन अत्यन्त आनन्दित हुआ। उसने ऐसा वचन दे दिया—"बहुत अच्छा भन्ते ! मैं मनुष्य लोक में जन्म ग्रहण करूँगा।"

तब, वे भिक्षु देवलोक में इस काम को कर तावतिंस लोक में अन्तर्धान हो हिमालय पर्वत के रक्षिततल प्रदेश में प्रकट हुए।

६. अस्सगुत्त का रोहण को दण्ड-कर्म देना

वहाँ आयुष्मान् अस्सगुत्त ने भिक्षु संघ से पूछा—"आवुस ! इस संघ में क्या कोई ऐसा भिक्षु है जो हम लोगों की बैठक में अनुपस्थित था ?"

यह पूछे जाने पर किसी भिक्षु ने कहा—"भन्ते ! आयुष्मान् रोहण ने आज से सातवें दिन पहले ही हिमालय पर्वत में प्रवेश कर समाधि लगा ली है।"

"तो उनके पास दूत भेजो।"

आयुष्मान् रोहण भी उसी क्षण समाधि से उठे और यह जाना कि 'संघ मुझे बुला रहा है' वहाँ अन्तर्धान हो रक्षित-तल में कोटिशत अर्हतों के सामने प्रकट हुए।

तब, आयुष्मान् अस्सगुत्त ने आयुष्मान् रोहण से कहा—"आवुस रोहण ! बुद्ध शासन के इस संकट में पड़े होने पर भी आप संघ के कामों की ओर ध्यान नहीं देते ?"

"भन्ते ! यह मुझ से गलती हुई।"

"आवुस रोहण ! तब आप दण्डकर्म करें।"

"भन्ते ! मैं क्या करूँ ?"

आवुस रोहण ! हिमालय पर्वत के पास कजङ्गल नाम का एक ब्राह्मणों का ग्राम है। वहाँ सोनुत्तर नाम का एक ब्राह्मण वास करता है। उस ब्राह्मण को नागसेन नाम का एक पुत्र उत्पन्न होगा। आप सात वर्ष और दश महीना उसके घर भिक्षाटन के लिये जायँ, और नागसेन बालक को लाकर प्रव्रजित करें। जब वह प्रव्रजित हो जायगा तब आप अपने दण्डकर्म से मुक्त हो जायँगे।

आयुष्मान् रोहण ने भी--"बहुत अच्छा !" कह स्वीकार कर लिया।

महासेन देवपुत्र ने भी देवलोक से उतर सोनुत्तर ब्राह्मण की भार्य्या की कोख में प्रतिसन्धि धारण की। प्रतिसन्धि ग्रहण करने के साथ ही तीन आश्चर्य (अद्भुत-धर्म) प्रकट हुए--(१) सभी शस्त्रास्त्र प्रज्वलित हो उठे। (२) नये धान पक गये, (३) और बड़ा भारी वृष्टि होने लगी।

आयुष्मान् रोहण भी उस प्रतिसन्धि ग्रहण करने के समय से ले कर सात साल दश महीने बराबर उस ब्राह्मण के घर भिक्षाटन के लिये गए। किन्तु उनके घरसे किसी दिन भी कलछी भर भात, या चम्मच भर कांजी, या अभिवादन, या नमस्कार, या स्वागत के शब्द नहीं पाए। बल्कि दुरदुराहट के कड़ुवे शब्द ही पाते थे। "भन्ते ! आगे जाँयँ।" इतना कहने वाला भी कोई नहीं था। सात वर्ष और दश महीने के बीतने पर एक दिन "भन्ते ! आगे जायँ" ऐसा किसी ने कहा। उसी दिन ब्राह्मण भी किसी काम को कर के कहीं बाहर से लौट रहा था। बीच रास्ते में स्थविर को देख कर पूछा—"कहिये साधु जी ! क्या आप मेरे घर गये थे ?"

"हाँ ब्राह्मण ! गया था।"

"क्या कुछ मिला भी ?"

"हाँ ब्राह्मण, मिला।"

उसने संतुष्ट मन हो घर जाकर पूछा--"उस साधु को क्या कुछ दिया था ?"

"नहीं, कुछ नहीं दिया था।"

दूसरे दिन ब्राह्मण घर के दरवाजे पर ही बैठा--"आज उस भिक्षु को झूठ बोलने के अपराध में दोषी ठहराऊँगा ?"

दूसरे दिन स्थविर ब्राह्मण के घर पर गये। ब्राह्मण ने स्थविर को देख कर कहा--"कल मेरे घर पर आपको कुछ नहीं मिला था, तो भी आपने 'मिला' ऐसा कह दिया। क्या आपको झूठ बोलना चाहिए ?"

स्थविर ने कहा--"ब्राह्मण ! तुम्हारे घर पर मैं सात वर्ष और दस महीने तक बराबर आता रहा, किन्तु किसी दिन 'आगे जायँ' इतना भी किसी ने नहीं कहा। कल 'आगे जायँ' इतना वचन तो मिला। इसी को लक्ष्य करके मैंनें वैसा कहा था।"

ब्राह्मण विचारने लगा--"यदि ये आचारवश कहे गए इस वचन को ही पाकर 'मिला' ऐसी लोगों में प्रशंसा करते हैं, तो कोई दूसरी खाने पीने की चीज को पाकर कैसे नहीं प्रशंसा करेंगे !" अतः उसने बहुत प्रसन्न हो अपने ही लिये तैयार किये गये भात से कलछी भर भात और उसी के बराबर व्यन्जन भिक्षा दिलवा कर कहा--"इतनी भिक्षा आप प्रति दिन पाया करें।"

उस दिन के बाद वह ब्राह्मण उस भिक्षु के आने पर उसके शान्तभाव को देख बड़ा प्रसन्न होता था। उसने स्थविर को सदा के लिए अपने घर पर ही भोजन करने की प्रार्थना की।

स्थविर ने चुप रह कर स्वीकार किया। उसके बाद प्रति दिन भोजन कर के जाने के समय कुछ न कुछ भगवान बुद्ध के उपदेशों को कह कर स्थविर रोहण चले जाते थे।[1]

७. नागसेन का जन्म

दस महीनें बीतने पर उस ब्राह्मणी को पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम नागसेन रखा गया पड़ा। वह क्रमशः बढ़ते हुए सात वर्ष का हो गया तब उसके पिता ने उसे कहा--"प्रिय नागसेन ! इस ब्राह्मण कुल की जो शिक्षायें हैं उन्हें सीखो।"

"तात ! इस ब्राह्मण कुल की कौन सी शिक्षायें हैं ?"

---

१. उस समय की ऐसी परिपाटी थी कि साधु सन्त भोजन करने के बाद कुछ धर्मोपदेश दिया करते थे।

"प्रिय नागसेन ! तीनों वेद और दूसरे शिल्प--ये ही शिक्षायें हैं।"
"तात ! मैं उन्हें सीखूंगा।"

तब, सोनुत्तर ब्राह्मण किसी ब्राह्मण आचार्य को एक सहस्त्र मुद्रायें गुरु-दक्षिणा दे, अपने भवन के एक योग्य स्थान में आसन लगवा बोला-- "हे ब्राह्मण ! आप नागसेन को वेद पढ़ावें।"

आचार्य उसे वेद-मन्त्रों को पढ़ाने लगा। बालक नागसेन ने एक ही आवृत्ति में तीनों वेदों को कण्ठस्थ कर लिया और भली भाँति समझ भी लिया। स्वयं ही उसे तीनों वेदों में एक प्रत्यक्ष अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हो गई। शब्द-ज्ञान, छन्द-ज्ञान, भाषा-ज्ञान तथा इतिहास कुछ भी बाकी नहीं बचा। वह पदों को जानने वाला, व्याकरण तथा लोकायत और महापुरुषलक्षण शास्त्र में पूरा पण्डित हो गया।

तब, नागसेन ने अपने पिता से पूछा--"पिताजी ! इस ब्राह्मण कुल में इससे आगे और भी कुछ शिक्षायें हैं या इतनी ही ?"

"पुत्र नागसेन ! इसके आगे कोई शिक्षा नहीं है; इतना ही सीखना था।"

तब, नागसेन आचार्य से विदा ले, प्रासाद से नीचे उतरा। अपने पूर्व संस्कारों से प्रेरित हो एकान्त में समाधि लगा अपनी पढ़ी हुई विद्या के आदि, मध्य और अवसान पर विचार करने लगा। वहाँ आदि में, मध्य में और अवसान में कहीं अल्पमात्र भी सार न पा बड़ा असंतुष्ट हुआ--"ये वेद तुच्छ हैं, खोखले हैं। उनमें न कोई सार है न कोई अर्थ है और न कोई तथ्य है।"

उस समय आयुष्मान् रोहण वत्तनीय के आश्रम में बैठे नागसेन के चित्त की बातों को अपने ध्यान बल से जान गए। वे चीवर पहन कर पात्र ले वत्तनीय आश्रम में अन्तर्धान हो कजङ्गल नामक ब्राह्मणों के गाँव के सामने प्रकट हुए।

८. नागसेन से आयुष्मान् रोहण की भेंट

नागसेन ने अपने घर के दरवाजे पर खड़े खड़े उन्हें दूर ही से आते देखा। उन्हें देखकर वह बहुत संतुष्ट, प्रमुदित और प्रीतियुक्त हो उठा। यह विचार कर कि शायद यह भिक्षु कुछ सार जानता होगा, वह उनके पास गया और बोला--"मारिस ! इस तरह सिर मुड़ाये और काषाय वस्त्र धारण किये आप कौन हैं ?"

"बच्चा ! मैं भिक्षु हूँ।"

"मारिस ! आप भिक्षु कैसे हैं ?"

"पापरूपी मलों को दूर करने के लिये मैं भिक्षु हुआ हूँ।"

"मारिस ! क्या कारण है कि आप के केश वैसे नहीं हैं जैसे दूसरे लोगों के ?"

"उनमें सोलह बाधायें देखकर, भिक्षु सिर और दाढ़ी मुंड़वा लेता है।

"कौन सी सोलह ?"

"रोहण ने कहा–केश और दाढ़ी रखनें से उसे (१) सँवारना होता है, (२) सजाना होता है, (३) तेल लगाना पड़ता है, (४) धोना पड़ता है, (५) माला पहनना होता है, (६) गन्ध लगाना होता है, (७) सुगंधित रखना होता है, (८) हर्रे का व्यवहार करना होता है, (९) आँवले का व्यवहार करना होता है, (१०) रंगना होता है, (११) बाँधना होता है, (१२) कंघी फेरना होता है, (१३) बार बार नाई को बुलाना पड़ता है, (१४) जटों को सुलझाना होता है, (१५) जूं पड़ जाती है और (१६) जब केश झड़ने लगते हैं तो लोग चिन्तित होते हैं, दुखी होते हैं, अफसोस करते हैं, छाती पीट पीट कर रोते हैं और मोह को प्राप्त होते हैं। बच्चा ! इन सोलह बाधाओंमें बझे मनुष्य अत्यन्त सूक्ष्म बातों को भूल जाते हैं।"

"मारिस ! क्या कारण है कि आपके वस्त्र भी वैसे नहीं हैं जैसे दूसरों के।"

"बच्चा ! गृहस्थों के सुन्दर वस्त्रों में कामवासनायें लगी रहती हैं। उन वस्त्र के कारण जिस भय के होने की सम्भावना है वह काषाय वस्त्र पहनने वाले को नही होता। इसलिये मेरे वस्त्र भी वैसे नहीं हैं जैसे दूसरों के।"

"मारिस ! क्या आप ज्ञान की बातें जानते हैं ?"

"बच्चा ! हाँ, मैं यथार्थ ज्ञान को जानता हूँ, और जो संसार मैं सबसे उत्तम मन्त्र है उसे भी जानता हूँ।"

"मारिस ! क्या आप मुझे भी सिखा सकते हैं ?"

"हाँ सिखा सकता हूँ।"

"तब मुझे सिखावें।"

"बच्चा ! उसके लिये यह उचित समय नहीं है। अभी मैं गाँव में भिक्षाटन के लिये आया हूँ।"

तब नागसेन आयुष्मान् रोहण के हाथ से पात्र ले उन्हें घर के भीतर ले गया। वहां अपने हाथों से उत्तम भोजन परोस कर उन्हें तृप्त किया। आयुष्मान् रोहण के भोजन कर चुकने और पात्र से हाथ हटा लेने पर उसने कहा––"मारिस ! अब मुझे मन्त्र सिखावें।"

आयुष्मान् रोहण बोले––"बच्चा ! जब तुम सभी बाधाओं से रहित हो, माँ-बाप की अनुमति ले मेरे भिक्षुवेश को धारण कर लोगे तब मैं तुम्हें सिखाऊँगा।"

९. नागसेन की प्रव्रज्या

११ नागसेन अपने माँ-बाप के पास जा कर बोला—"माताजी और पिताजी ! यह भिक्षु संसार के सबसे उत्तम मन्त्र को जानने का दावा करता है; लेकिन जो भिक्षु नहीं है उसे नहीं सिखाता। मैं उसके पास प्रव्रज्या ग्रहण कर उस मन्त्र को सीखूंगा।"

उसके माँ बाप ने समझा—"हम लोगों का पुत्र प्रव्रजित होकर मन्त्र सीखने के बाद फिर लौट आवेगा।" अत: "जाओ सीखो" ऐसी अनुमति दे दी।

तब आयुष्यमान् रोहण नागसेन को ले वत्तनीय आश्रम विजम्भवत्थु को गये। विजम्भवत्थु में एक रात रह कर जहाँ रक्षित-तल था वहां गये। वहाँ जाकर कोटिशत अर्हतों के बीच नागसेन को प्रव्रजित किया।

प्रव्रज्या ले लेने के बाद आयुष्मान् नागसेन ने आयुष्यमान् रोहण से कहा—"भन्ते ! मैंने आपका वेश धारण कर लिया। अब मुझे मन्त्र सिखावें।"

तब आयुष्मान् रोहण विचारने लगे—"इसे पहले क्या पढ़ाऊं सूत्र या अभिधर्म ! फिर यह सोच कर कि नागसेन पण्डित है, आसानी से अभिधर्म समझ लेगा। पहले अभिधर्म ही पढ़ाया।

कुशल, अकुशल और अव्याकृत (पुण्य, पाप और न-पाप-न-पुण्य) धर्मों को 'तीन प्रकार और दो प्रकार' के भेद से बताने वाली अभिधर्म की पहली पुस्तक (१) धम्मसङ्गणि; स्कन्ध विभङ्ग इत्यादि अट्ठारह विभङ्गों वाली दूसरी पुस्तक (२) विभङ्गप्पकरण; संग्रह असंग्रह इत्यादि चौदह प्रकार से बँटी हुई तीसरी पुस्तक (३) धातुकथाप्पकरण; स्कन्धप्रज्ञप्ति, आयतन-प्रज्ञप्ति, इत्यादि छ: प्रकार से बँटी चौथी पुस्तक (४) पुग्गलपञ्ञत्ति, अपने पक्ष में पाँच सौ सूत्र और विपक्ष के पाँच सौ सूत्र, इन्हीं एक हजार सूत्रों की पाँचवीं पुस्तक (५) कथावत्थुप्पकरण; मूल यमक, स्कन्धयमक इत्यादि दस प्रकार से बँटी छटी पुस्तक (६) यमकप्पकरण; हेतु प्रत्यय इत्यादि चौबीस प्रकार से बँटी सातवीं पुस्तक और (७) पट्ठनप्पकरण; इन सातों अभिधर्म पुस्तकों को नागसेन श्रामणेर ने शीघ्र ही पढ़ डाला और कण्ठगत भी कर लिया। फिर कहा—"भन्ते ! बस करें ! इतने ही से मैं आप को सब सुना सकता हूँ।"

तब, आयुष्यमान् नागसेन ने जहाँ कोटिशत अर्हत् थे वहाँ जाकर उनसे कहा—"भन्ते ! मैं सारे अभिधर्म-पिटक को 'कुशल धर्म, अकुशल धर्म, और अव्याकृत धर्म' इन्हीं तीन बातों में ला कर विस्तार करूँगा।"

"बहुत अच्छा नागसेन, विस्तार करो।"

तब आयुष्मान् नागसेन ने सात महीनों में सातों प्रकरणों को विस्तारपूर्वक समझाया। तब पृथ्वी कम्पित हो उठी, देवताओं ने साधुकार दिया, ब्रह्म-देवों ने करतल-ध्वनि की, दिव्य चन्दन चूर्ण तथा मन्दार पुष्पों की वर्षा होने लगी।

१०. नागसेन का अपराध और उसके लिए दण्ड-कर्म

बीस साल की आयु हो जाने के बाद उन कोटिशत अर्हतों ने रक्षिततल में आयुष्यमान् नागसेन को उपसम्पदा की। उसके एक रात बाद सुबह में आयुष्मान् नागसेन पात्र और चीवर ले अपने उपाध्याय के साथ भिक्षाटन के लिये गाँव में गये। उस समय उनके मन में यह बात उठी—"अरे मेरा उपाध्याय तुच्छ है, मूर्ख है। भगवान् बुद्ध के अवशेष उपदेशों को छोड़कर उसने मुझे पहले अभिधर्म ही पढ़ाया।"

तब आयुष्मान् रोहण ने अपने ध्यान बल से आयुष्मान् नागसेन के चित्त की बातों को जान कर बोले—"नागसेन ! तुम्हारे मन में अनुचित वितर्क उठ रहा है। तुम्हें ऐसा विचारना ठीक नहीं।"

तब आयुष्मान् नागसेन के मन में यह हुआ—यह आश्चर्य है ! बड़ा अद्भुत !! 'मेरे आचार्य अपने ध्यानबल से दूसरों के मन की बातें जान लेते हैं। मेरे उपाध्याय बड़े पण्डित हैं। मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए।' यह सोच उन्होंने कहा—

"भन्ते ! क्षमा करें। फिर कभी ऐसी बात मन में नहीं आने दूंगा।"

आयुष्मान् रोहन बोले—"नागसेन ! इतने से मैं नहीं क्षमा करता। सुनो ! सागल नाम का एक नगर है जहाँ मिलिन्द नाम का एक राजा राज करता है। वह मिथ्यादृष्टिविषयक प्रश्नों को पूछ कर भिक्षु-संघ को तंग करता है और नीचा दिखाता है। सो तुम वहाँ जाकर उस राजा का दमन करके उसे सन्तुष्ट करो। तब मैं तुम्हें क्षमा कर दूंगा।"

"भन्ते ! एक मिलिन्द राजा को तो रहने दें, यदि जम्बुद्वीप के सभी राजा आकर एक साथ मुझ से प्रश्न पूछें तो भी मैं सभी के प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें शान्त कर दूंगा। आप मुझे क्षमा कर दें।"

"नहीं, क्षमा करता हूँ।"

"तो भन्ते ! इन तीन महीनों तक मैं कहाँ रहूँ ?"

"नागसेन ! वत्तनीय आश्रम में आयुष्मान् अस्सगुत्त रहते हैं। तुम वहीं उनके पास जाओ और मेरी ओर से उनके चरणों में वन्दना करके कहो—"भन्ते ! मेरे उपाध्याय आपके चरणों में सिर से प्रणाम करते हैं और आपका कुशल क्षेम पूछते हैं। इन तीन महीनों तक आपके नज़दीक रहने के लिए मुझे भेजा है।"

"तुम्हारे उपाध्याय का क्या नाम है ?" यदि ऐसा पूछें तो कहना 'रोहण स्थविर' और यदि पूछें, "मेरा क्या नाम है ?" तो कह देना भन्ते ! आपका नाम मेरे उपाध्याय जानते हैं।"

'बहुत अच्छा' कह आयुष्मान् नागसेन आयुष्मान् रोहण को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर, चीवर पहन और पात्र ले क्रमशः चारिका करते वत्तनीय आश्रम में आयुष्मान् अस्सगुत्त के पास पहुँचे। उनके पास जा कर प्रणाम करके एक ओर खड़े हो गये। खड़े होकर उनसे यह कहा— "भन्ते, मेरे उपाध्याय आपके चरणों में सिर से प्रणाम करते हैं और आपका कुशलमंगल पूछते हैं। मेरे उपाध्याय ने इन तीन महीनों तक आपके पास रहने के लिये भेजा है।"

आयुष्मान् अस्सगुत्त बोले—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"भन्ते ! मेरा नाम नागसेन है !"

"तुम्हारे उपाध्याय का क्या नाम है ?"

"भन्ते ! मेरे उपाध्याय का नाम रोहण स्थविर है !"

"मेरा क्या नाम है ?"

"भन्ते ! आपका नाम मेरे उपाध्याय जानते हैं।"

"नागसेन ! बहुत अच्छा, अपने पात्र और चीवर रक्खो।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा।"

पात्र और चीवर रखने के बाद दूसरे दिन परिवेण में झाड़ू दे, मुंह धोने के लिये पानी और दतुवन उचित स्थान पर रख दिया।[1] स्थविर ने झाड़ू दिये स्थान पर फिर भी झाड़ू दिया; उस पानी को छोड़ कर दूसरा पानी लिया, उस दतुवन को न ले दूसरी दतुवन ली; कुछ आलापसलाप भी नहीं किया। इस तरह सात दिन करके सातवे दिन फिर पूछा। फिर भी नागसेन को वही उत्तर देने पर वर्षावास का अधिष्ठान किया।

---

१. आगन्तुक भिक्षु का यह कर्तव्य है। देखो विनय टिक, पृष्ट ४९७—९१।

११. महाउपासिका को नागसेन का उपदेश देना

उस समय एक महाउपासिका तीस वर्षों से आयुष्मान् अस्सगुत्त की सेवा कर रही थी। वह महाउपासिका तेमासा के बीतने पर आयुष्मान् अस्सगुत्त के पास आई और बोली—"क्या आपके साथ कोई दूसरा भी भिक्षु है ?"

"हाँ महाउपासिके ! मेरे साथ नागसेन नाम का एक भिक्षु है।"

"तो भन्ते ! आयुष्मान् नागसेन के साथ आप कल मेरे यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण स्वीकार करें।"

आयुष्मान् अस्सगुत्त ने चुप रहकर स्वीकार किया।

आयुष्मान् अस्सगुत्त उस रात के बीतने पर सुबह पहन, और पात्र चीवर ले आयुष्मान् नागसेन को पीछे कर, उस महाउपासिका के घर पर गए। जाकर बिछे आसन पर बैठे।

महाउपासिका ने उन्हें अपने हाथों से अच्छा अच्छा भोजन परोस कर खिलाया।

भोजन कर चुकने तथा पात्र से हाथ फेर लेने के बाद आयुष्मान् अस्सगुत्त बोले—"नागसेन ! तुम महाउपासिका का दानानुमोदन करो।" इतना कह उठकर चले गए।

तब उस महाउपासिका ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"तात नागसेन ! मैं बहुत बूढ़ी हूँ, मुझे गम्भीर धर्म का उपदेश करें।" आयुष्मान् नागसेन ने भी उसे लोकोत्तर निर्वाण-सम्बन्धी अभिधर्म की, गम्भीर बातों को कहा। उससे उस महाउपासिका को उसी क्षण उसी आसन पर रागरहित निर्मल धर्मज्ञान हो आया—"जो उत्पन्न होता है वह नष्ट होने वाला है।"

आयुष्मान् नागसेन भी धर्मोपदेश करने के बाद अपनी कही गई बातों पर विचार करते हुए यथार्थ ज्ञान का लाभ कर उसी आसन पर बैठे बैठे स्रोत आपत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए।

तब आयुष्मान् अस्सगुत्त ने अपनी बैठक में बैठे ही दोनों के धर्म-ज्ञान उत्पन्न होने को जान कर साधुकार दिया—साधु साधु नागसेन। तुमने एक ही बाण से दो निशानों को मारा है। अनेक देवताओं ने भी साधुकार दिया।

तब आयुष्मान् नागसेन आसन से उठ आयुष्मान् अस्सगुत्त के पास जा, प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

१२. नागसेन का पाटलिपुत्र जाना

आयुष्मान् अस्सगुत्त बोले—"अब तुम पाटलिपुत्र जाओ। पाटलिपुत्र नगर के अशोकाराम में आयुष्मान् धर्मरक्षित रहते हैं। उनके साथ भगवान् बुद्ध के उपदेशों को पूरा पूरा पढ़ लो।"

"भन्ते! यहाँ से पाटलिपुत्र नगर कितनी दूर है?"

"एक सौ योजनों।"

"भन्ते! बहुत दूर है, और बीच में भिक्षा मिलना भी दुर्लभ है, मैं कैसे जाऊँगा?"

"नागसेन! जाओ, बीच में भिक्षा मिलेगी–शाली चावल का भात जिसमें से काले दाने चुन लिए गए हैं, अनेक प्रकार के सूप और व्यञ्जन। 'बहुत अच्छा' कह, आयुष्मान् नागसेन आयुष्मान् अस्सगुत्त को प्रणाम और प्रदक्षिणा कर, पात्र और चीवर ले कर पाटलिपुत्र की ओर चारिका के लिये चल पड़े।

उस समय पाटलिपुत्र का एक व्यापारी पाँच सौ गाड़ियों के साथ पाटलिपुत्र जाने वाली सड़क पर से जा रहा था। उसने आयुष्मान् नागसेन को दूर से ही आते देखा। देखकर अपनी गाड़ियों को रोक कर उनके पास जाकर प्रणाम किया और पूछा– "बाबा! आप कहाँ जा रहे हैं?"

"गृहपति! मैं पाटलीपुत्र जा रहा हुँ।"

"बाबा। बहुत अच्छा!! हम लोग भी पाटलिपुत्र जा रहे हैं। हमलोगों के साथ आप आराम से चलें। तब वह पाटलिपुत्र का व्यापारी आयुष्मान् नागसेन के व्यवहारों को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह आयुष्मान् नागसेन को अपने हाथों से खिला, उनके भोजन कर चुकने पर एक नीचा आसन ले कर बैठ गया और बोला–"बाबा, आप का नाम क्या है?"

"गृहपति! मेरा नाम नागसेन है।"

"बाबा, क्या आप भगवान् बुद्ध के उपदेशों को जानते हैं?"

"गृहपति! मैं अभिधर्म की बातों को जानता हूँ।"

"बाबा, धन्य मेरा भाग्य! मैं भी अभिधर्मिक और आप भी अभिधर्म जानते हैं। तब मुझे अभिधर्म की बातों को कहें।"

तब, आयुष्मान् नागसेन ने उसे अभिधर्म का उपदेश किया। उपदेश करते करते उसे धर्म–ज्ञान हो आया– जो उत्पन्न हुआ है वह नाश होने वाला है। 'वह' व्यापारी अपनी पाँच सौ गाड़ियों को आगे करके चला पीछे पीछे जाते हुए पाटलिपुत्र के निकट पहुँच, दो सड़कों के फूटने की एक जगह ठहर वह आयुष्मान् नागसेन से बोला–

"बाबा ! यही अशोकाराम का मार्ग है और यह मेरा कीमती कम्बल है, सोलह हाथ लम्बा और आठ हाथ चौड़ा, इसे आप स्वीकार करें।"

आयुष्यमान् नागसेन ने कृपा कर उस कम्बल को स्वीकार किया।

तब, वह व्यापारी सन्तुष्ट, प्रीतियुक्त और प्रमुदित हो आयुष्मान् नागसेन को प्रमाण और प्रदक्षिणा करके चला गया।

आयुष्मान् नागसेन ने अशोकाराम में आयुष्मान् धर्मरक्षित के पास जा प्रणाम कर अपने आने का प्रयोजन कहा।

१३. नागसेन का अर्हत् पद पाना

तीन ही महीनों के भीतर एक ही आवृत्ति में आयुष्मान् नागसेन ने आयुष्मान् धर्मरक्षित से बुद्ध के वचन तीनों पिटकों को कण्ठ कर लिया; और फिर तीन महीनों में उसके अर्थों को भी जान लिया।

तब, आयुष्मान् धर्मरक्षित ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"नागसेन ! जैसे ग्वाला गौवों को केवल रखता है, दूध पीने वाले दूसरे ही होते हैं, उसी तरह तुमने त्रिपिटक जान लिया तो क्या हुआ, यदि श्रमणफल के भागी नहीं बने"

"भन्ते ! बस करें, अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।" उसी दिन रात में उन्होंने प्रतिसंविदाओं के साथ अर्हत् पद पा लिया।

आयुष्मान् नागसेन के इस सत्य में प्रतिष्ठित होते ही पृथ्वी कम्पित हो उठी, ब्रह्म देवों ने करतल ध्वनि की, दिव्य चन्दन-चूर्ण और मन्दार पुष्पों की वर्षा होने लगी।

उस समय कोटिशत अर्हतों ने हिमालय पर्वत के रक्षिततल में इकट्ठे होकर आयुष्मान् नागसेन के पास दूत भेजा। नागसेन यहाँ आवे, हम लोग नागसेन को देखना चाहते हैं।

तब, आयुष्मान् नागसेन दूतकी बात सुन, अशोकाराम में अन्तर्धान हो, हिमालय पर्वत के रक्षिततल में कोटिशत अर्हतों के सामने प्रकट हुए।

उन अर्हतों ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"नागसेन ! राजा मिलिन्द वादप्रतिवाद में प्रश्न पूछ कर भिक्षु-संघ को तंग करता और नीचा दिखाता है। तुम जाओ और उस राजा का दमन करो।"

"भन्ते ! अकेले राजा मिलिन्द को तो छोड़ दें, यदि जम्बुद्वीप के सभी राजा आकर एकसाथ ही प्रश्न पूछें तो मैं सबों का उत्तर दे उन्हें शान्त कर दूंगा। भन्ते ! आप लोग निर्भय हो सागल नगर जायँ।"

तब उन स्थविर भिक्षुओं ने सागल नगर को काषायवस्त्र की चमक से चमका, ऋषियों के अनुकूल वायुमण्डल पैदा किया।

१४. आयुष्मान् आयुपाल से राजा मिलिन्द की भेंट

उस समय आयुष्मान् आयुपाल संखेय्य परिवेण में रहते थे। तब, राजा मिलिन्द ने अपने अमात्यों से कहा––"आज की रात बड़ी रमणोय है। आज किस श्रमण या ब्राह्मण के पास धर्म-चर्चा करने तथा प्रश्नों को पूछने जाऊँ ? कौन मेरे साथ बातचीत करके मेरी शंकाओं को दूर करने का साहस रखता है ?"

राजा के यह पूछने पर पाँच सौ यवनों ने यह उत्तर दिया––"महाराज ! आयुपाल नाम का एक स्थविर है जो तीनों पिटकों का जानता है और बहुत बड़ा पण्डित है। वह इस समय संखेय्य परिवेण में वास करता है। आप उसके पास जावें और प्रश्न पूछें।

"अच्छा, तो उन भदन्त आयुपाल को मेरे आने की सूचना दे दो।"

तब, आज्ञा पाकर एक ने आयुष्मान् आयुपाल के निकट दूत भेजा–"भन्ते ! राजा मिलिन्द आप से मिलना चाहता है।"

आयुष्मान् आयुपाल ने भी कहा–"तो आवें।"

तब, राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ अच्छे रथ पर सवार हो संखेय्य परिवेण में आयुष्मान् आयुपाल के पास गया। कुशल क्षेम की बातों को पूछन के बाद एक ओर बैठ गया और बोला––"भन्ते ! आप प्रव्रजित क्यों हुए ? आपका परम उद्देश्य क्या है ?"

स्थविर बोले––"महाराज ! धर्म पूर्वक तथा शान्तिपूर्वक रहने के लिये मैं प्रव्राजित हुआ हूँ।"

"भन्ते ! क्या कोई गृहस्थ भी है जो धर्मपूर्वक और शान्तिपूर्वक रहता है ?"

"हाँ महाराज ! गृहस्थ भी धर्मपूर्वक और शान्तिपूर्वक रह सकता है। बनारस के ऋशिपतन मृगदाव में धर्मचक्र घुमाने के बाद अठ्टारह करोड़ ब्रह्म-देवों तथा दूसरे भी बहुत से देवताओं को धर्म-ज्ञान हो गया था। उन देवताओं में से कोई भी प्रव्रजित नहीं थे; बल्कि सभी गृहस्थ ही थे। फिर भी, भगवान् के महासमय, महामगल, समचित्तपरियाय, राहुलोवाद तथा पराभव सूत्रों के उपदेश करने पर जिन देवताओं को धर्मज्ञान हो गया उनका गिनती भी नहीं की जा सकती है। वे सभी गृहस्थ ही थे, प्रव्रजित नहीं।"

"भन्ते आयुपाल ! तब तो आपको प्रव्रज्या निरर्थक ही हुई है। पूर्वजन्म के किये गए पापों से ही सभी बौद्ध भिक्षु प्रव्रजित हुए हैं और धुतांग धारण करते हैं। भन्ते आयुपाल ! जो भिक्षु ऐकासनिक धुतांग धारण करते हैं, वे अवश्य अपने पूर्व जन्म में

चोर रहे होंगे; दूसरों के भोगों को चुरा लेने के पाप के फल से ही वे एकासनिक हुए हैं। वह न कभी भी किसी एक जगह रह पाते और न मन के अनुकूल कुछ खा पी सकते हैं। इसमें न उनका कुछ शील, न तप और न ब्रह्मचर्य है। भन्ते आयुपाल ! और जो भिक्षु अभ्यवकाशिक (सदा खुले स्थान ही में रहना) धुतांग को धारण करते हैं वे पहले जन्म में गांव को नष्ट करने वाले चोर रहे होंगे; दूसरों के घर नष्ट करने के पाप ही से इस जन्म में सदा खुले ही मैदान में रहते हैं, किसी घर के भीतर नहीं ठहर सकते हैं। इसमें उनका कुछ शील, तप या ब्रह्मचर्य नहीं है। भन्ते आयुपाल ! और जो भिक्षु सदा बैठे रहने का धुतांग धारण करते हैं, वे पहले जन्म में मार्ग के लुटेरे रहे होंगे। वे मुसाफिरों को बांध कर और बैठा कर छोड़ देते होंगे; उसी पाप के करने के फल से वे सदा बैठे रहते हैं, कभी सो नहीं सकते। इसमें न उनका कोई शील, न तप और न ब्रह्मचर्य है।"

इस पर आयुष्मान् आयुपाल चुप हो गए। उन्हें कुछ नहीं सूझा।

तब, पाँच सौ यवनों ने राजा मिलिन्द से कहा—"महाराज ! यह स्थविर पण्डित तो है किंतु ऐसा तेज नहीं कि उत्तर दे सके।"

आयुष्मान् आयुपाल को उस तरह मौन देख राजा ताली बजाते हुए उच्च स्वर से बोल उठा—"अरे, जम्बूद्वीप तुच्छ है; बिलकुल खोखला है। यहां कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जो मेरे साथ बात चीत करके मेरी शंकाओं को दूर कर सके।"

यह कह राजा ने यवनों की ओर देखा; किन्तु उन्हें फिर भी निर्भीक और निःशंक देख मन में विचारा—"मालूम होता है अवश्य कोई दूसरा पण्डित भिक्षू है जो मेरे साथ बातें करने की हिंमत रखता है, जिससे कि वह यवन निर्भीक और निःशंक हैं।"

तब, राजा मिलिन्द ने यवनों से पूछा—"क्या दूसरे भी कोई पण्डित भिक्षु हैं जो मेरी शंकाओं को दूर कर सकते हैं ?"

उस समय आयुष्मान् नागसेन श्रमणों के एक समूह के साथ गांव, कस्बे और राजधानियों में भिक्षाटन करते क्रमशः सागल नगर में पहुँचे थे। वे संघ-नायक, गणनायक, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, बहुत लोगों में सम्मानित, पण्डित, चतुर, बुद्धिमान्, निपुण, विज्ञ, अनुभवी, नम्र तेज, बहुश्रुत, तीनों पिटकों को जानने वाले, वेदों में पारंगत, स्थिरचित्त वाले, लोक-कथाओं को जानने वाले, भगवान् बुद्ध के शासन की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को भी जानने वाले, प्रज्ञप्तिधर, पारमी-प्राप्त, भगवान् के धर्म के अनुकूल देशना करने में कुशल, कभी भी विफल न होने वाली विचित्र प्रत्युत्पन्न-मति

से युक्त थे। विचित्र वक्ता, शुभ बातों को बोलने वाले, अद्वितीय, अपराजेय थे। उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता था। उन्हें तर्कों से नहीं बझाया जा सकता था। सागर के समान शान्त, हिमालय के ऐसा निश्चल, विजयी, अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करने वाले, ज्ञान के प्रकाश को फैलाने वाले, बड़े भारी वक्ता, दुसरे मत वालों को पराजित करने वाले, दूसरे तैर्थिकों को हराने वाले, भिक्षु भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, राजा और राजमन्त्री सभी से सत्कार पाने वाले और पूजा किए जाने वाले, चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लानप्रत्यय पाने वाले, उत्तम लाभ और यश पाने वाले, धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से आए हुए कुशल और विज्ञ पुरुषों को बुद्ध-धर्म के नव रत्नों को दिखाने वाले, धर्ममार्ग का उपदेश करने वाले, धर्मरूपी प्रकाश को धारण करने वाले, धर्म-स्तम्भ को गाड़ने वाले, धर्म-यज्ञ करने वाले, धर्म-ध्वजा को पकड़े, धर्मभेरी को बजाते, सिंहनाद करते, बिजली के ऐसा तड़कते, मधुरवाणी बोलते, करुणारुपी बूंदों को सुखद वर्षा करते, अपने ज्ञानरुपी विद्युत को चमकाते, बड़े भारी धर्म–रुपी मेघ से अमृत वर्षा कर लोकों का सन्तुष्ट करते, सागल नगर पहुँचे थे। वहाँ आयुष्मान् नागसेन अस्सी हजार भिक्षुओं के साथ संखेय्य परिवेण में ठहरे थे। कहा जाता है :–

"बड़े पण्डित, वक्ता, निपुण और निर्भीक, सिद्धान्तों को जानने वाले समझाने में चतुर।

त्रिपिटक के जानने वाले, पाँच और चार निकायों के जानने वाले उन भिक्षुओं ने नागसेन को अपना अगुआ मान लिया था।

गम्भीरप्रज्ञ, मेधावी, सुमार्ग और कुमार्ग को जानने वाले, निर्भर नागसेन, जिन्होंने परम पद निर्वाण को पा लिया था।

उन निपुण सत्यवादी भिक्षुओं के साथ गाँव और कस्बों में घूमते हुए सागल नगर पहुँचे थे।

संखेय्य परिवेण में नागसेन ठहरे थे। जैसे पर्वत पर केसरी वैसे वे मनुष्यों के बीच शोभायमान होते थे।"

१५. आयुष्मान नागसेन से राजा मिलिन्द की पहली भेंट

तब, देवमन्त्री ने राजा मिलिन्द से कहा–"महाराज ! ठहरें !! नागसेन नाम के एक स्थविर पण्डित हैं। वे इस समय संखेय्य परिवेण में ठहरे हैं। महाराज ! आप उनके पास जायँ और प्रश्न पूछें। आपके साथ बातें करके आपकी शङ्काओं को दूर करने के लिये वे तैयार हैं।"

सहसा नागसेन के नाम को सुन कर राजा मिलिन्द को भय होने लगा; उसके गात्र स्तम्भित हो गए और रोमाँच हो आया।

तब, राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से पूछा—"वह नागसेन भिक्षु मेरे साथ बातें करने को तैयार है ?"

"हाँ, तैयार हैं। यदि इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, प्रजापति, सूयाम, संतुषित देव, लोकपाल और बापदादों के साथ महाब्रह्मा भी आवें तो नागसेन उनसे बातें कर सकते हैं तब मनुष्यों की बात क्या ! !"

तब, राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से कहा—"देवमन्त्री ! तो उनके पास दूत भेज कर उन्हे सूचित कर दो कि मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

"देव ! बहुत अच्छा" कह देवमन्त्री ने आयुष्मान् नागसेन के पास दूत भेजा—"भन्ते ! राजा मिलिन्द आपसे मिलना चाहते हैं।"

आयुष्मान् नागसेन ने भी उत्तर दिया—"अच्छा, राजा आवें।"

तब राजा मिलिन्द पाँच सौ यवनों के साथ अच्छे रथ पर सवार हो बड़ी भारी सेना के साथ संखेय्य परिवेण में आ, जहाँ आयुष्मान् नागसेन थे, वहाँ गया।

उस समय आयुष्मान नागसेन अस्सी हजार भिक्षुओं के साथ सम्मेलन-गृह में बैठे थे। राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन की परिषद को देखा। दूर ही से देख देवमन्त्री से कहा—"देवमन्त्री ! यह इतनी बड़ी परिषद् किसकी है ?"

"महाराज ! आयुष्मान् नागसेन की यह परिषद् हैं।"

तब, आयुष्मान् नागसेन की परिषद् को दूर ही से देख राजा मिलिन्द को भय होने लगा; उसके गात्र स्तम्भित हो गए और रोमाँच हो आया।

गैंड़ों से घिरे हाथी की तरह, गरुड़ों से घिरे साँप की तरह, अजगर से घिरे सियार की तरह, महिषों से घिरे भालू की तरह, सांप से पीछा किए गए मेंढ़क की तरह, सिंह से पीछा किए हरिण की तरह, सपेरे के हाथों में आए साँप की तरह, बिल्ली से खेल खिलाए जाते हुए चूहे की तरह, ओझा से बाँधे गए भूत की तरह, राहु से ग्रसित चाँद की तरह, पेटी में बन्द किये गए सांप की तरह, पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह, जाल में पड़ी मछली की तरह, हिंसक पशुओं से भरे जंगल में भटके मनुष्य की तरह, वैश्रवण के प्रति अपराध किए यक्ष की तरह, तथा आयु समाप्त हुए देवता की तरह राजा मिलिन्द घबड़ा, डर, चिंतित, उदास तथा खिन्न हो गया। मुझे यह कहीं हरा न दे ऐसा शंकित हो उसने देवमन्त्री से कहा—"देवमन्त्री ! आप मुझे मत बतावें कि आयुष्मान् नागसेन कौन हैं। बिना बताये ही मैं उन्हें जान लूंगा।"

"महाराज ! बहुत अच्छा ! आप उन्हें स्वयं पहचाने।"

उस समय आयुष्मान् नागसेन सामने बैठे चालीस हजार भिक्षुओं से कम आयु के और पीछे बैठे चालीस हजार भिक्षुओं से अधिक आयु के थे। तब राजा मिलिन्द ने सारे भिक्षु-संघ को आगे, पीछे और बीच में देखते हुए आयुष्मान् नागसेन पर अपनी दृष्टी स्थिर की।

आयुष्मान् नागसेन भिक्षु-संघ के बीच में केसरी सिंह की तरह डरभय से रहित स्थिर भाव से बैठे थे। उन्हें देख कर आकार ही से जान लिया—यही आयुष्मान् नागसेन हैं।

तब, राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से कहा—"देवमन्त्री ! क्या यही आयुष्मान् नागसेन हैं ?"

"जी हां, यही आयुष्मान् नागसेन हैं। आपने नागसेन को ठीक पहचान लिया।"

राजा को यह देख बड़ा संतोष हुआ कि बिना बताये मैंने नागसेन को पहचान लिया। किन्तु आयुष्मान् नागसेन को देख राजा को भय होने लगा,—उसके गात्र स्तब्ध हो गए और रोमाँच हो आया।

कहा है :—

"ज्ञानसम्पन्न और उत्तम संयमों में अभ्यस्त आयुष्मान् नागसेन को देख राजा बोल उठा—

मैंने बहुत वक्ताओं को देखा है; मैंने अनेक शास्त्रार्थ किए हैं; किन्तु कभी भी मुझे ऐसा भय नहीं हुआ था जैसा आज हो रहा है।

आज अवश्य मेरी हार होगी और नागसेन जीत जायगा, क्योंकि मेरा चित्त चंचल हो रहा है।"

ऊपरी कथा समाप्त

● ● ●

दूसरा परिच्छेद

२ मिलिन्द-प्रश्न

(क) लक्षण-प्रश्न

१. पुद्गल प्रश्न मीमांसा

तब, राजा मिलिन्द आयुष्मान् नागसेन के पास गया और उन्हें नमस्कार तथा अभिनन्दन करने के बाद एक ओर बैठ गया। आयुष्मान् नागसेन ने भी उत्तर में राजा का अभिनन्दन किया। उससे राजा के चित्त को सांत्वना मिली।

तब, राजा मिलिन्द ने पूछा--'भन्ते! आप किस नाम से जाने जाते है, आपका शुभ नाम क्या है ?"

महाराज ! "नागसेन" के नाम से मैं जाना जाता हूँ, और मेरे सब्रह्मचारी मुझे इसी नाम से पुकारते है। महाराज ! यद्यपि माँ-बाप नागसेन, सूरसेन, वीरसेन, या सिंहसेन ऐसा कुछ नाम दे देते है, किन्तु ये सभी केवल व्यवहार करने के लिये संज्ञाये भर हैं, क्योंकि यथार्थ में ऐसा कोई एक पुरुष (आत्मा) नही हैं।"[1]

तब, राजा मिलिन्द बोला--"मेरे पाँच सौ यवन और अस्सी हजार भिक्षुओं आप लोग सुने ! ! आयुष्मान् नागसेन का कहना है--"यथार्थ में कोई एक पुरुष नही है। उनके इस कहने को क्या समझना चाहिए ?"

"भन्ते नागसेन ! यदि कोई एक पुरुष नही है तो कौन आपको [2] चीवर भिक्षान्न, शयनासन और ग्लानप्रत्यय देता है ? कौन उसका भोग करता है ? कौन शील की रक्षा करता है ? कौन ध्यान भावना का अभ्यास करता है ? कौन आर्यमार्ग[1] के फल निर्वाण का साक्षात्कार करता है ? कौन प्राणातिपात करता है ? कौन अदत्तादान (चोरी) करता है ? कौन मिथ्या भोगों में अनुरक्त होता है ? कौन मिथ्या भाषण करता है ? कौन मद्य पीता है ? कौन इन [3]पाँच अन्तराय कारक कर्मों को करता हैं ? यदि ऐसी बात है तो न पाप हैं और न पुण्य; न पाप और न पुण्य कर्मों का कोई करनेवाला हैं, और न कोई कराने वाला; न पाप और पुण्य कर्मो के कोई फल होते है। भन्ते नागसेन ! यदि आपको कोई मार डाले तो किसी का मारना नहीं हुआ। भन्ते नागसेन ! तब, आपके कोई आचार्य भी नहीं हुए, कोई उपाध्याय भी नहीं हुए, आपकी उपसम्पदा भी नहीं हुई।

---

१. आर्य-अष्टांगिक-मार्ग।

"आप कहते है कि आपके [5]सब्रह्मचारी आपको 'नागसेन' नाम से पुकारते है; तो यह 'नागसेन' क्या है? भन्ते! क्या ये केश नागसेन है?"

"नहीं महाराज!"

"ये रोयें नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज!"

"[5]ये नख, दाँत चमड़ा माँस, स्नायु, हड्डी, मज्जा, वक्क, हृदय, यकृत् क्लोमक, प्लीहा (= तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, पतली आँत, पेट, पखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद, आँसू, चर्बी, लार, नेटा लसिका, दिमाग, नागसेन हैं?

"नही महाराज!"

"भन्ते! तब क्या आपका रूप नागसेन है?"

"नहीं महाराज!"

"क्या आपकी वेदनायें नागसेन है?"

"नही महाराज!"

"आपकी संज्ञा नागसेन है?"

"नहीं महाराज!"

"आपके संस्कार नागसेन हैं?"

"नहीं महाराज!"

"आपका विज्ञान नागसेन है?"

"नहीं महाराज!"

"भन्ते! तो क्या रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान सभी एकसाथ नागसेन है?"

"नहीं महाराज!"

"भन्ते! तो क्या इन रूपादि से भिन्न कोई नागसेन है?"

नहीं महाराज!

"भन्ते! मै आपसे पुछते पूछते थक गया किन्तु 'नागसेन' क्या है इसका पत्ता नहीं लगा। तो क्या 'नागसेन' केवल शब्द मात्र है? आखिर नागसेन है कौन? भन्ते! आप झूठ बोलते है कि नागसेन कोई नहीं है।"

तब आयुष्मान् नागसेन ने राजा मिलिन्द से कहा—"महाराज! आप

क्षत्रिय बहुत ही सुकुमार है। इस दुपहरिये की तपी और गर्म बालू तथा कंकड़ों से भरी भूमि पर पैदल चल कर आने से आपके पैर दुख रहे होंगे शरीर थक गया होगा, मन अच्छा नहीं लगता होगा, और बड़ी शारीरिक पीड़ा हो रही होगी। क्या आप पैदल चलकर यहाँ आए या किसी सवारी पर ?

"भन्ते ! मै पैदल नहीं, किन्तु रथ पर आया।"

"महाराज ! यदि आप रथ पर आये तो मुझे बतावे कि आपका रथ कहाँ है ? महाराज ! क्या ईषा (=दंड) रथ है ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्या अक्ष रथ है ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्या चक्के रथ है ?"

"नहीं भन्ते !"

"रथ का पञ्जर रथ हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्या रथ की रस्सियाँ रथ हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्या लगाम रथ हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्या चाबुक रथ हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! ईषा इत्यादि सभी क्या एक साथ रथ हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज! क्या ईषा इत्यादि के परे कहीं रथ हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! आपसे पूछते पूछते थक गया किन्तु यह पत्ता नहीं लगा कि रथ कहाँ हैं। क्या रथ केवल एक शब्द मात्र हैं ? आखिर यह रथ हैं क्या ? महाराज ! आप झूठ बोलते हैं कि रथ नहीं है ! महाराज ! सारे जम्बुद्वीप के आप सब से बड़े राजा है; भला किस से डर कर आप झूठ बोलते है ! "

पाँच सौ यवनो, और मेरे अस्सी हजार भिक्षुओं ! आप लोग सुने ! राजा मिलिन्द ने कहाँ--मैं रथ पर यहाँ आया; किन्तु मेरे पूछने पर कि रथ कहाँ है वे मुझे नहीं बता पाते। क्या उनकी बते मानी जा सकती है ?"

इस पर उन पाँच सौ यवनों ने आयुष्मान् नागसेन को साधुकार देकर राजा

मिलिन्द से कहा—"महाराज ! यदि आप हो सके तो इस का उत्तर दें।"

तब, राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन से कहा—"भन्ते नागसेन ! मैं झूठ नहीं बोलता। ईषा इत्यादि रथ के अवयवों के आधार पर केवल व्यवहार के लिए 'रथ' ऐसा एक नाम कहा जाता है।"

"महाराज ! बहुत ठीक, अपने जान लिया कि रथ क्या है। इसी तरह मेरे केश इत्यादि के आधार पर केवल व्यवहार के लिये 'नागसेन' ऐसा एक नाम कहा जाता है। किंतु, परमार्थ में 'नागसेन' ऐसा कोई एक पुरुष विद्यमान् नहीं है। भिक्षुणी वज्रा ने भगवान् के सामने कहा था:—

"जैसे अवयवों के आधार पर 'रथ' संज्ञा होती है, उसी तरह स्कन्धों के होने से 'सत्व (= जीव) समझा' जाता है।"[1]

"भन्ते नागसेन ! आश्चर्य है ! अद्भुत है ! ! इस जटिल प्रश्न को आपने बड़ी खूबी के साथ सुलझा दिया। यदि इस समय भगवान् बुद्ध स्वयं होते तो वे भी अवश्य साधुवाद देते—साधु, साधु नागसेन ! आप ने इस जटिल प्रश्न को बड़ी खूबी के साथ सुलझा दिया।"

२. आयुविषयक प्रश्न

"भन्ते नागसेन ! आप कितने वर्ष के हैं ?"

"महाराज ! मैं सात वर्ष का हूँ।"[2]

"भन्ते ! यहाँ सात क्या है ? क्या आप सात हैं, या केवल गिनती सात है ?"

उस समय, सभी आभरणों से युक्त राजा मिलिन्द की छाया पृथ्वी पर पड़ रही थी, और जलपात्र में भी प्रतिबिम्बित हो रही थी।

उसे दिखा आयुष्मान् नागसेन ने पूछा—"महाराज ! यह आपकी छाया पृथ्वी पर पड़ रही है और जलपात्र में प्रतिबिम्बित हो रही है। तो महाराज ! क्या आप राजा हैं या यह छाया राजा है ?"

"भन्ते नागसेन ! मैं राजा हूँ, यह छाया नहीं। किंतु छाया मेरे ही कारण पड़ रही है।"

"महाराज ! इसी तरह, वर्षों की गिनती सात है, मैं सात नहीं हूँ। किंतु, मेरे कारण ही यह सात (वर्षों की) गिनती हुई, ठीक आपकी छाया की तरह।"

१, देखो संयुक्त-निकाय ५ /१०/६

२, जन्म से नहीं, किंतु भिक्षु होने के बाद से।

"भन्ते नागसेन ! आश्चर्य है ! अद्भुत है !! आप ने इस जटिल प्रश्न को बड़ी खूबी के साथ सुलझा दिया।"

३. पण्डित-वाद और राज-वाद

(क) राजा बोला—"भन्ते नागसेन ! क्या आप मेरे साथ शास्त्रार्थ करेंगे ?"

"महाराज ! यदि आप पण्डितों की तरह शास्त्रार्थ करेंगे; तो अवश्य करूँगा; और यदि राजाओं की तरह शास्त्रार्थ करेंगे तो नहीं करूँगा।"

"भन्ते नागसेन ! किस तरह पण्ति लोग शास्त्रार्थ करते हैं ?"

"महाराज ! पण्डित शास्त्रार्थं में एक दूसरे को तर्कों से लपेट लेता है, एक दूसरे की लपेटन को खोल देता है। एक दूसरे को तर्कों से पकड़ लेता है, एक दूसरे की पकड़ से छूट जाता है। एक दूसरे के सामने तर्क रखता है। वह उसका खण्डन कर देता है। किंतु इन सब के होने पर भी कोई गुस्सा नहीं करता। महाराज ! इसी तरह पण्डित लोग शास्त्रार्थ करते हैं ?"

"भन्ते ! राजा लोग कैसे शास्त्रार्थ करते हैं ?"

"महाराज ! राजाओं के शास्त्रार्थ में यदि कोई राजा का खण्डन करता है तो उसे तुरन्त दण्ड दिया जाता है—इसे ऐसा दण्ड दो। महाराज ! इसी तरह राजा लोग शास्त्रार्थ करते हैं।"

"भन्ते ! मैं पण्डितों की तरह शास्त्रार्थ करूँगा, राजाओं की तरह नहीं। आप विश्वास के साथ शास्त्रार्थ करें जैसे आप किसी भिक्षु के साथ या श्रामणेर के साथ, या उपासक के साथ, या आराम में रहने वाले किसी के साथ बातें करते हैं उसी तरह पूरे विश्वास से मेरे साथ शास्त्रार्थ करें। मत डरें।"

"बहुत अच्छा" कह स्थविर ने स्वीकार किया।"

(ख) राजा बोला, "भन्ते ! मैं पूछता हूँ !"

"महाराज पूछें।"

"भन्ते ! मैं ने तो पूछा।"

"महाराज ! तो मैं ने उसका उत्तर भी दे दिया।"

भन्ते ! आपने क्या उत्तर दिया ?"

"महाराज ! आपने क्या पूछा ?"

"तब, राजा मिलिन्द के मन में यह बात आई—"अरे ! यह भिक्षु पण्डित है,

मेरे साथ शास्त्रार्थ कर सकता है। मैं। इनसे बहुत सी बातें पूछ सकता हूँ, किन्तु शीघ्र ही सूरज डूबने वाला है। अच्छा हो यदि कल मेरे राज-भवन में ही शास्त्रार्थ हो।"

यह विचार राजा मिलिन्द ने देवमन्त्री से कहा--"देवमन्त्री ! आप अब भिक्षु से कह दें कि कल राज-भवन में ही शास्त्रार्थ होगा।"

यह कह राजा मिलिन्द आसन से उठ, स्थविर नागसेन से छुट्टी ले, रथ पर सवार हो, मन में "नागसेन, नागसेन" दुहराते चला गया।

तब, देवमन्त्री ने आयुष्मान् नागसेन से कहा--"भन्ते ! राजा मिलिन्द की इच्छा है कि कल राज-भवन ही में शास्त्रार्थ हो।"

"बहुत अच्छा"--कह कर स्थविर ने स्वीकार किया।

दूसरे दिन सुबह ही देवमन्त्री अनन्तकाय, मंकुर और सब्बदिन्न राजा के पास गए और बोले--"महाराज ! क्या आज स्वामी नागसेन आवें ?"

"हाँ आवें।"

"कितने भिक्षुओं के साथ आवें ?"

"जितने भिक्षुओं को चाहें उतने भिक्षुओं के साथ आवें।"

तब, सब्बदिन्न बोले--"महाराज ! अच्छा हो यदि दस भिक्षुओं के साथ आवें।" दूसरी बार भी राजा ने कहा--"जितने चाहें उतने भिक्षुओं के साथ आवें।" फिर भी सब्बदिन्न बोला--"महाराज ! अच्छा हो यदि दस भिक्षुओं के साथ आवें।" तीसरी बार भी राजा ने कहा--"जितने चाहें उतने भिक्षुओं के साथ आवें।" फिर भी सब्बदिन्न बोला-- "महाराज ! अच्छा हो यदि दस भिक्षुओं के साथ आवें।" राजा ने कहा--"उनके स्वागत के लिए सभी तैयारियाँ कर ली गई हैं ? मैं कहता हूँ--जितने चाहें उतने के साथ आवें। सब्बदिन्न तू 'दस' ही क्यों कहते हैं ? क्या हम लोग भिक्षुओं को भोजन नहीं दे सकते ?" तब, सब्बदिन्न चुप हो गए।

तब, देवमन्त्री, अनन्तकाय और मंकुर आयुष्मान् नागसेन के पास जाकर बोले, "भन्ते ! राजा मिलिन्द ने कहा है कि आप जितने भिक्षुओं को चाहें उतने के साथ आवें।"

४. अनन्तकाय का उपासक बनना

तब, आयुष्मान् नागसेन ने सुबह ही पहन, और पात्र चीवर ले अस्सी हजार भिभुओं के साथ सागल नगर में प्रवेश किया। उस समय आयुष्मान नागसेन के पास चलते हुए अनन्तकाय ने पूछा--"भन्ते ! जब मैं 'नागसेन' ऐसा कहता हूँ तो यह 'नागसेन' है क्या ?"

स्थविर बोले, "आप 'नागसेन' से क्या समझते हैं ?"

"भन्ते ! जो जीव-वायु भीतर जाती और बाहर आती है उसी को मैं नागसेन समझता हूँ।"

"यदि यह जीव-वायु भीतर जा कर बाहर नहीं आए, या बाहर आकर भीतर नहीं जाये तो वह पुरुष जीयेगा या नहीं ?"

"नहीं भन्ते !"

"जो ये सङ्ख बजाने वाले सङ्ख बजाते हैं उनकी फुंक (वायु) क्या फिर भी उनके भीतर जाती है ?"

"नहीं भन्ते !"

"जो ये बंसीं बजाने वाले बंसी बजाते हैं उनकी फूंक (वायु) क्या फिर भी उनके भीतर जाती है।"

"नहीं भन्ते ?"

"जो ये तुरही बजाने वाले तुरही बजाते हैं उनकी फुँक क्या फिर भी उनके भीतर जाती है।"

"नहीं भन्ते !"

"तब, वे मर क्यों नहीं जाते ?"

"आप के साथ मैं शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। कृपया बतावें कि बात क्या है।"

स्थविर बोले--"यह जीव-वायु कोई चीज नहीं है। सांस लेना और छोड़न तो केवल इस शरीर का धर्म है।"

स्थविर ने अभिधर्म के अनुकूल इस बात को समझाया। अनन्तकाय समझ गया ओर तत्काल उपासक बन गया।

"तब, आयुष्मान नागसेन राजा मिलिन्द के भवन पर गए और बिछे आसन पर बैठ गए।"

राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन और उनकी सारी मण्डली को अच्छे अच्छे भोजन अपने हाथों से परस खिलाये और प्रत्येक भिक्षु को एक एक जोड़ा तथा आयुष्मान् नागसेन को तीन चीवर देकर वह बोले--"भन्ते ! दस भिक्षु आपके साथ ठहरें ओर वाकी लौट जायँ !" तब, राजा मिलिन्द आयुष्मान नागसेन के भोजन कर चुकने तथा पात्र से हाथ खींच लेने पर एक ओर नीचा आसन लेकर बैठ गया और बोला ! किस विषय पर कथा सलाप हो ?"

"महाराज ! हम लोगों को तो केवल धर्मार्थ से प्रयोजन है, अतः 'धर्मार्थ" "विषय पर कथा-सलाप हो।"

५. प्रव्रज्या के विषय में प्रश्न

राजा बोला–"भन्ते नागसेन ! किस लिए आपकी प्रव्रज्या हुई है ? आपका परम–उद्देश्य क्या है ?"

स्थविर बोले–"महाराज ! क्यों ? यह दुःख रुक जाय और नया दुःख उत्पन्न न हो–इसी के लिए हमारी प्रव्रज्या हुई है। फिर भी जन्म ग्रहण न हो, ऐसा परम निर्वाण पाना हमारा परम–उद्देश्य है।"

"भन्ते नागसेन, क्या सभी लोग इसीलिए प्रव्रजित होते हैं ?

नहीं महाराज ! कुछ इसके लिये प्रव्रजित होते हैं। कुछ राजा से डर कर प्रव्रजित होते हैं। कुछ चोर के डर से । कुछ कर्जे के बोझ से । कुछ केवल पेट पालने के लिए । किन्तु जो उचित रीति से प्रव्रजित होते हैं वे इसीलिए प्रव्रजित होते हैं।"

"भन्ते ! क्या आप इसी के लिये प्रव्रजित हुए ?"

"महाराज ! मैं बहुत छोटी ही आयु में प्रव्रजित हुआ था, नहीं जानता था कि किस लिए प्रव्रजित हो रहा हूँ। परन्तु मेरे मन में यह बात आई थी-ये बौद्ध भिक्षु बड़े पण्डित होते हैं, मुझे भी शिक्षा देंगे सो मैं अब उन लोगों से सीख कर जानता हूँ और देखता हूँ कि प्रव्रज्या का यही अर्थ है।"

"भन्ते ! बहुत ठीक !"

६ जन्म और मृत्यु के विषय में प्रश्न

राजा बोला–"भन्ते नागसेन ! क्या ऐसे भी कोई हैं जो मरने के बाद फिर जन्म नहीं ग्रहण करते ?"

स्थविर बोले–"कुछ ऐसे हैं जो जन्म ग्रहण करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो जन्म नहीं ग्रहण करते।"

"कौन जन्म ग्रहण करते और कौन नहीं ?"

"जिन में क्लेश (चित्त का मैल) लगा है वे जन्म ग्रहण करते, और जो क्लेश से रहित हो गए हैं वे जन्म नहीं ग्रहण करते।"

"भन्ते ! आप जन्म ग्रहण करेंगे या नहीं ?"

"महाराज ! यदि संसार की ओर आसक्ति लगी रहेगी तो जन्म ग्रहण करूँगा और यदि आसक्ति छूट जायगी तो नही करूँगा।"

"भन्ते ! बहुत ठीक।"

७. विवेक और ज्ञान के विषय में प्रश्न

(क) राजा बोला–"भन्ते नागसेन ! जो जन्म नहीं ग्रहण करते क्या वे विवेक लाभ करने से जन्म नहीं ग्रहण करते ?"

"महाराज ! विवेक लाभ करने से, ज्ञान से, और दूसरे पुण्य धर्मों के करने से।

"भन्ते ! विवेक–लाभ और ज्ञान, दोनों तो एक ही हैं न ?"

"नहीं महाराज ! विवेक दूसरी ही चीज है और ज्ञान दूसरी ही चीज। इन भेड़–बकरों, गाय, बैल, ऊंट तथा गदहों को विवेक तो है किंतु ज्ञान नहीं है।"

"भन्ते ! बहुत ठीक।"

(ख) राजा बोला–"भन्ते ! विवेक की पहचान क्या है और ज्ञान की पहचान क्या है ?"

"महाराज ! 'बोध हो जाना' विवेक की पहचान है, और 'काटने की शक्ति का होना' ज्ञान की पहचान है।"

"यह कैसे ? कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! आपने कभी यव की कटनी होते हुए देखा है ?"

"हाँ भन्ते ! देखा है।"

"महाराज ! लोग कैसे यव की कटनी करते हैं ?"

"भन्ते ! बायें हाथ से यव को बालों को पकड़ दाहिने हाथ से हँसिया लेकर काटते हैं।"

"महाराज ! उसी तरह योगी विवेक से अपने मन को पकड़ ज्ञान (रूपी हँसिया) से क्लेशों को काट डालता है। इसी भाव से मैं ने कहा है, 'बोध होना, विवेक को पहचान है। और काट डालना ज्ञान को पहचान है।"

"भन्ते ! ठीक कहा है।"

८. पुण्य धर्म क्या है ?

राजा बोला––"भन्ते ! आपने जो अभी कहा 'पुण्य धर्मों के करने से' सो यह पुण्य धर्म क्या है ?"

"महाराज ! शील, श्रद्धा, वीर्य, स्मृति और समाधि, ये ही पुण्य-धर्म हैं।"

(क) शील की पहचान

"भन्ते ! शील की पहचान क्या है ?"

"महाराज ! 'आधार होना' शील की पहचान है । इन्द्रिय, बल, बोध्यङ्ग मार्ग, स्मृतिप्रस्थान, सम्यक् प्रधान, ऋद्धिपाद, ध्यान, विमोक्ष, समाधि और समापत्ति इन सभी अच्छे धर्मों का आधार शील ही है । महाराज ! शील के आधार पर खड़े किए जाने पर कोई अच्छा धर्म नहीं डिगता ।"

"कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! जैसे जितने जीव और पौधे हैं सभी पृथ्वी के आधार ही पर जनमते और बड़े होते हैं । इसी तरह योगी शील के आधार ही पर, और शील ही पर दृढ़ हो इन पाँच इन्द्रियों को भावना करता है (१) श्रद्धेन्द्रिय, (२) वीर्येंद्रिय, (४) समाधीन्द्रिय, (५) प्रज्ञेन्द्रिय ।"

कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! जैसे जितने ताकत से किये जाने वाले काम हैं सभी पृथ्वी ही के आधार पर और पृथ्वी ही पर खड़े होकर किए जाते हैं, उसी तरह योगी शील के आधार पर ।"

"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! जैसे कारीगर कोई नगर बसाने के लिए पहले उस स्थान को साफ सुथरा कर झाड़ी और काँटों को दूर कर, समतल करा, फिर उसके बाद सड़क और चौराहों का नकशा खींचकर नगर बसाता है, उसी तरह योगी शील के आधार पर ।"

"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! जैसे खिलाड़ी पहले पृथ्वी को खन, कंकड़ और पत्थरों को दूर हटवा, भूमि को बराबर करवा नर्म भूमि पर अपने खेलों को दिखाता है, उसी तरह योगी शील के आधार पर ।"

"महाराज ! भगवान् ने भी कहा है--

"ज्ञानी मनुष्य शील पर दृढ़ हो अपने चित्त को भावना से वस में करता, संयमी और बुद्धिमान भिक्षु इस (तृष्णारूपी) जटा को साफ कर सकता है ।

"पृथ्वी की तरह यह लोगों का आधार है, कुशल और अभिवृद्धि का यह मूल है, सभी बुद्धों के शासन का यह मुख है, मोक्ष के लिए शील ही उत्तम मार्ग है ।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा ।"

(ख) श्रद्धा की पहचान

राजा बोला, "भन्ते नागसेन ! श्रद्धा की क्या पहचान है ?"

"महाराज ! मन में प्रसन्नता और बड़ी आकांक्षा पैदा कर देना श्रद्धा की पहचान है।"

(१) "भन्ते ! मन में प्रसन्नता पैदा कर देना कैसे श्रद्धा की पहचान है ?"

"महाराज ! श्रद्धा पैदा होने पर मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करती है । चित्त बाधाओं से रहित, स्वच्छ, प्रसन्न और निर्मल हो जाता है। महाराज ! इसलियें 'चित्त में प्रसन्नता पैदा कर देना' श्रद्धा की पहचान है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कल्पना करें–कोई चक्रवर्ती[1] राजा अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ रास्ते में जाते हुए किसी छिछली नदी को पार करे। उन हाथी, घोड़ों, रथों और पैदल सिपाहियों से पानी हिड़ा जाकर मैला और गंदला हो जाय। पार जाने के बाद राजा नौकरों से कहे–'पानी ले आओ, मैं पीना चाहता हूँ।' राजा के पास पानी साफ करने का पत्थर (फिटकरी) हो। देव ! 'बहुत अच्छा' कह वे नौकर उस पत्थर को पानी में डाल दें जिससे तुरनाही सभी सङ्क, सेवाल या गंदलापन हट जाय, मैल बैठ जाय और पानी स्वच्छ, प्रसन्न तथा निर्मल हो जाय। तब, राजा के पास पानो ले आवें– 'देव, पानी पीवें।"

"महाराज ! जिस तरह यहाँ पानी है वैसे चित्त को समझना चाहिए। जिस तरह वे नौकर हैं वैसे योगी को समझना चाहिए। जिस तरह यहाँ सङ्ख, सेवाल और मैल हैं वैसे चित्त का क्लेश समझना चाहिए, और जिस तरह पानी साफ करने का पत्थर है वैसे श्रद्धा को समझना चाहिए। जैसे पत्थर के डालते ही सङ्ख सेवाल तथा मल सभी हट गए और पानी स्वच्छ, प्रसन्न तथा निर्मल हो गया, वैसे ही श्रद्धा आते ही मन की सभी बाधायें हट जाती हैं. चित्त बाधाओं से रहित ही स्वच्छ, प्रसन्न तथा निर्मल हो जाता है। महाराज ! इसी तरह "प्रसन्नता उत्पन्न कर देना" श्रद्धा की पहचान समझनी चाहिए।"

(२) "भन्ते ! मन में बड़ी आकांक्षा पैदा कर देना कैसे श्रद्धा की पहचान है ?"

---

१. देखो दीघनिकाय 'चक्रवर्ती-सूत्र'।

"महाराज ! योगी दूसरे सन्तों के चित्तको मुक्त स्रोतआपत्ति, सकृदागामी, अनागामी-फल, या अर्हत् पदपर आरूढ़ देख स्वयं भी उस बड़े पद को पाने के लिए आकांक्षा बांधता है, उस अप्राप्त पदको प्राप्त करने के लिए और नहीं देखे को देखने के लिए प्रयत्न तथा परिश्रम करता है। महाराज ! इस तरह 'मन में बड़ी आकांक्षा पैदा कर देना' श्रद्धा की पहचान समझनी चाहिए।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! पहाड़ के ऊपर बड़े जोरों से पानी बरसे ! पानी नीचे की ओर बहते हुए पहाड़ के कन्दरों, गुफाओं और नालों को भर कर नदी को भी पूरा भर दे। नदी अपने दोनों किनारों को तोड़ती हुई आगे बढ़े। तब, वहां कुछ मनुष्यों की एक मण्डली पहुँचे जो नदी के पाट या गहराई को नहीं जानने के कारण डरकर किनारे ही बैठी रहे। तब, कोई एक दूसरा मनुष्य वहाँ आवे, जो अपने साहस और बल को देख, ठीक से काछा बाँध तैर कर पार चला जाय। उसे पार गया देख दूसरे लोग भी उसी तरह तैर कर पार चले जायँ।

"महाराज ! इसी तरह एक-योगी दूसरे सन्तों के चित्त को मुक्त देख, स्वयं भी उस पदको पाने की बड़ी आकांक्षा करता है और उसके लिये प्रयत्न तथा परिश्रम करता है। इसी तरह, "मन में बड़ी आकांक्षा पैदाकर देना" श्रद्धा की पहचान है। संयुक्त निकाय में भगवान् ने कहा भी है :-

"श्रद्धा से धारा को पारकर जाता है; प्रयत्न में तत्पर में तत्पर रहने से सागर को पार जाता हैं; वीर्य से दुःखों को नाश कर देता है; और प्रज्ञा से बिलकुल मुक्त हो जाता है।[1]"

"भन्ते ! अपने बहुत ठीक कहा।"

(ग) वीर्य की पहचान

"राजा बोला—"भन्ते ! वीर्य को क्या पहचान है ?"

"महाराज ! दृढ़' कर देना वीर्य की पहचान है। जो पुण्य धर्म वीर्य से दृढ़ कर दिए गए हैं वे कभी नहीं डिगते।

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

---

१. सुत्तनिपात में भी यह गाथा आती है। देखो १।१०५४

"महाराज ! जैसे कोई मनुष्य अपने घर को गिरता देख एक खम्भे का सहारा दे उसे दृढ़कर देता है और तब घर नहीं गिरने पाता, उसी तरह वीर्य से दृढ़ कर दिए गए सभी पुण्य-धर्म नहीं डिगते ।"

"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! किसी छोटी सेना को एक बड़ी सेना हरा दे । तब हार खाया हुआ राजा और भी कुछ सिपाहियों को देकर उन्हें फिर भी लड़ने को भेजे, जाकर उस बड़ी सेना को हरा दें । महाराज ! इसी तरह 'दृढ़ करना' वीर्य की पहचान है । भगवान् ने कहा भी है-"भिक्षुओं ! वीर्यवान् आर्य-श्रावक पापको छोड़ पुण्य को ग्रहण करता है, दोष-युक्त को छोड़ दोष-रहित को ग्रहण करता है और अपने को शुद्ध कर देता है ।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा ।"

(घ) स्मृति की पहचान

राजा-बोला-"भन्ते नागसेन ! स्मृति की क्या पहचान है ?"

"महाराज ! (१) बराबर याद रखना और (२) स्वीकार करना स्मृति की पहचान है ।"

(१) "भन्ते ! 'बराबर याद रखना' कैसे स्मृति की पहचान है ?"

"महाराज ! स्मृति बराबर याद दिलाती रहती है कि यह कुशल, यह अकुशल, यह दोष-युक्त, यह दोष-रहित, यह बुरा, यह अच्छा और यह कृष्ण, यह शुक्ल है । वह बराबर याद रखता है ।"

ये चार स्मृति-प्रस्थान, ये चार सम्यक् चेष्टा, ये चार ऋद्धियाँ, ये पाँच इन्द्रियाँ, ये पाँच बल, ये सात बोध्यङ्ग, यह आर्य-अष्टाङ्गिक-मार्ग, यह शमथ, यह विदर्शना, यह विद्या और यह विमुक्ति है । उससे योगी सेवनोय धर्मों की सेवा करता है, असेवनीय धर्मों की सेवा नहीं करता-यह स्मृति ही के कारण ।"

"महाराज ! इसी प्रकार 'बराबर याद रखना' स्मृति की पहचान है"

"कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! जैसे किसी चक्रवर्ती राजा का भण्डारी रोज सांझ और सुबह राजा को उसके यश को याद दिलाता रहे-देव ! आप को इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने रथ, पैदल सिपाही, इतना सोना और इतनी सम्पत्ति है; आप उसे याद रक्खें । उसी तरह स्मृति सदा याद दिलाती रहती है-यह कुशल, यह

अकुशल। महाराज ! इसी तरह, 'बराबर याद दिलाते रहना स्मृति की पहचान है।"

(२) "भन्ते ! 'स्वीकार करना' कैसे स्मृति की पहचान है ?"

"महाराज ! स्मृति उत्पन्न होकर खोज करती है कि कौन धर्म हित के हैं और कौन धर्म अहित के--ये धर्म हित के, ये धर्म अहित के, धर्म भलाई करने वाले और ये धर्म बुराई करने वाले हैं। उससे योगी अहित धर्मों को छोड़ता है, हित के धर्मों को स्वीकार करता है। बुराई करने वाले धर्मों को छोड़ता है और भलाई करने वाले धर्मों को स्वीकार करता है। महाराज ! इस तरह 'स्वीकार करना' स्मृति की पहचान बताई गई है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! किसी चक्रवर्ती राजा का प्रधान मन्त्री उसे समझावे–यह आपके लिये हित का है, यह अहित का है, यह भलाई करने वाला, और यह बुराई करने वाला। फिर अहित को छोड़ने, हित को स्वीकार करने की राय दे। महाराज ! उसी तरह, स्मृति उत्पन्न होकर खोज करती है कि कौन धर्म हित के। भगवान् ने कहा भी है, "भिक्षुओ ! मैं स्मृति को सब धर्मों को सिद्ध करने वाली बताता हूँ।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

(ङ) समाधि की पहचान

राजा बोला--"भन्ते ! समाधि की क्या पहचान है ?"

"महाराज ! 'प्रमुख होना' समाधि की पहचान है। जितने पुण्य धर्म हैं सभी समाधि के प्रमुख होने से होते हैं, इसी की ओर झुकते हैं, यहीं ले जाते हैं और इसी में आकर अवस्थित होते हैं।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! जैसे किसी मीनार की सभी सीढ़ियां सब से ऊपर वाली मंजिल की ही ओर प्रमुख (=ले जाने वाली) होती हैं, उसी ओर जाती हैं। वहीं जाकर अन्त होती हैं, और वही सब से श्रेष्ठ समझा जाता है, वैसे ही जितने पुण्य धर्म हैं सभी समाधि के प्रमुख होने ही से।"

"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई राजा अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ लड़ाई में जाय। सारी सेना, सभी हाथी, घोड़े, सभी रथ और सभी पैदल सिपाही लड़ाई ही की ओर बढ़ें, उसी ओर झुकें और वहीं जाकर जूझें। महाराज ! उसी तरह जितने पुण्य धर्म हैं। इसी तरह 'प्रमुख होना' समाधि की पहचान है। भगवान् ने

कहा भी है, "भिक्षुओ ! समाधि का अभ्यास करो, समाधि लग जाने से सच्चा ज्ञान होता है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

(च) ज्ञान की पहचान

राजा बोला—"भन्ते ! ज्ञान की क्या पहचान है ?"

"महाराज ! मैं कह चुका हूँ कि 'काटना' ज्ञान की पहचान है और 'दिखा देना' भी एक दूसरी पहचान है।"

"भन्ते ! 'दिखा देना' ज्ञाना की पहचान कैसे है ?"

"महाराज ! ज्ञान उत्पन्न होने से अविद्या रूपी अंधेरा दूर हो जाता है और विद्या रूपी प्रकाश पैदा होता है, जिसमें चारों आर्य सत्य साफ-साफ दिखाई देते हैं। तब, योगी अनित्य, दुःख और अनात्म को भली भाँति ज्ञान से जान लेता है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई आदमी हाथ में एक जलता चिराग लेकर किसी अंधेरी कोठरी में जाय। उसके जाते ही अंधेरा हट जाय, सारी कोठरी प्रकाश से भर जाय और सभी चीजें दीखने लगें। महाराज ! वैसे ही ज्ञान के उत्पन्न होने से अविद्या रूपी अंधेरा दूर हो जाता है और विद्या रूपी प्रकाश पैदा होता है जिसमें चारों आर्य सत्य साफ साफ दिखाई देते हैं। तब, योगी अनित्य, दुख और अनात्म को भली भांति जान लेता है। महाराज ! इसी तरह 'दिखा देना' ज्ञान की पहचान कही गई है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

(छ) सभी धर्मों का एकसाथ एक काम

राजा बोला—"भन्ते ! क्या ये सभी अनेक धर्म एकसाथ मिलकर कोई काम करते हैं ?"

"हाँ महाराज ! ये सभी एकसाथ मिलकर तृष्णा-समूह को नाश कर देते हैं।"

"भन्ते ! यह कैसे ? कृपया उपमा देकर समझावें।"

---

१. संयुक्त-निकाय २१।५

"महाराज ! हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सिपाही, अनेक प्रकार की सेना होने पर भी 'शत्रु को हराना' एक ही काम करती है। उसी तरह अनेक प्रकार के पुण्य धर्म एकसाथ मिलकर तृष्णा समूह को नाश कर देते हैं।

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

पहला वर्ग समाप्त

---

९. वस्तु के अस्तित्व का सिलसिला

राजा बोला—"भन्ते ! जो उत्पन्न होता है वह वही व्यक्ति है या दूसरा ?"

स्थाविर बोले—"न वही और न दूसरा ही।"

१—"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! जब आप बहुत बच्चे थे खाट पर चित ही लेट सकते थे, सो क्या आप अब भी इतने बड़े होकर वही हैं ?"

"नहीं भन्ते ! अब मैं दूसरा हो गया।"

"महाराज ! यदि आप वही बच्चे नहीं हैं, तो अब आपकी कोई माँ भी नहीं है, कोई पिता भी नहीं है, कोई शिक्षक भी नहीं है; और कोई शीलवान् या ज्ञानी भी नहीं हो सकता। महाराज ! क्योंकि तब तो गर्भ की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की भी भिन्न भिन्न मातायें हो जायँगी, बड़े हो जाने पर माता भी भिन्न हो जायगी। जो शिल्पों को सीखता है वह दूसरा और जो सीख कर तैयार हो जाता है वह दूसरा होगा। दोष करने वाला दूसरा होगा और किसी दूसरे का हाथ पैर काटा जायगा !"

"नहीं भन्ते ! किंतु आप इससे क्या दिखाना चाहते हैं ?"

स्थविर बोले—"महाराज ! मैं बचपन में दूसरा था और इस समय बड़ा होकर दूसरा हो गया हूँ, किन्तु वे सभी भिन्न भिन्न अवस्थायें इस शरीर पर ही घटने से एक ही में ले ली जाती हैं।"

२—"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! यदि आदमी कोई दिया जलावे, तो क्या वह रात भर जलता रहेगा ?"

"हाँ भन्ते ! रात भर जलता रहेगा।"

"महाराज ! रात के पहले पहर में जो दिये की टेम थी, क्या वही दूसरे या तीसरे पहर में भी बनी रहती है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! तो क्या वह दीया पहले पहर में दूसरा, दूसरे और तीसरे पहर में दूसरा हो जाता है ?"

"नहीं भन्ते ! वही दिया सारी रात जलता रहता है।"

"महाराज ! ठीक इसी तरह किसी वस्तु के अस्तित्व के सिलसिले में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक लय होती है और इस तरह प्रवाह जारी रहता है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता; क्योंकि एक के लय होते ही दूसरी उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण, न वही जीव रहता है और न दूसरा ही हो जाता है।"

"एक जन्म के अन्तिम विज्ञान के लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है।"

३–"कृपया एक और उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! दूध दूहे जाने पर कुछ समय के बाद जम कर दही हो जाता है; दही से मक्खन और मक्खन से घी भी बना लिया जाता है। तब कोई कहे–'जो दूध था वही दही था।' महाराज ! ऐसा कहने वाला क्या ठीक कहता है ?"

"नही भन्ते ! दूध से ये चीजें बन गईं।"

"महाराज ! ठीक इसी भाँति किसी वस्तु के अस्तित्व के प्रवाह में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक लय होती है, और इस तरह प्रवाह जारी रहता है एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर नहीं होता, क्योंकि एक के लय होते ही दूसरा उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण, न वही जीव रहता है और न दूसरा ही हो जाता है।"

"एक जन्म के अन्तिम विज्ञान के लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ा होता है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

१०. पुनर्जन्म से मुक्त होने का ज्ञान

राजा बोला–"भन्ते ! जो इसके बाद जन्म नहीं ग्रहण करेगा वह क्या इस बात को जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूँगा ?"

"हाँ महाराज ! वह इस बात को जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूँगा।"

"भन्ते ! वह कैसे इस बात को जानता है ?"

"महाराज ! फिर भी जन्म ग्रहण करने के जो हेतु और प्रत्यय हैं उनके शान्त तथा नष्ट हो जाने से वह इस बात को जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूँगा।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई किसान जोत बोकर अपने भण्डार को भर ले। उसके बाद कुछ समय तक न जोते, न बोये, जमा किए हुए अन्न को बैठ कर खाय, या बाँट में मैं लगावे, अपने दूसरे कामों में खर्च करे। महाराज ! तो क्या वह किसान नहीं जानेगा कि मेरा भन्डार अब भर नहीं रहा है (किन्तु खाली हो रहा है) ?"

"हाँ भन्ते ! जरूर जानेगा।"

"कैसे जानेगा ?"

"भण्डार के भरने के जो हेतु और प्रत्यय हैं उनके बन्द हो जाने से।"

"महाराज ! इसी तरह, फिर भी जन्म ग्रहण करने के जो हेतु और प्रत्यय हैं उनके शान्त तथा नष्ट हो जाने से वह इस बात को जानता है कि मैं फिर जन्म नहीं ग्रहण करूँगा।"

"भन्ते ! आप ठीक कहते हैं।"

११. ज्ञान तथा प्रज्ञा के स्वरूप और उद्देश्य

राजा बोला, "भन्ते ! जिसको ज्ञान उत्पन्न होता है उसको क्या प्रज्ञा भी उत्पन्न हो जाती है ?"

"हाँ महाराज ! उसको प्रज्ञा भी उत्पन्न हो जाती है।"

"भन्ते ! क्या ज्ञान और प्रज्ञा दोनों एक ही चीज हैं ?"

"हाँ महाराज ! ज्ञान और प्रज्ञा दोनों एक ही चीज हैं।"

"भन्ते ! यदि ऐसी बात हैं तो उसे किसी विषय में मोह (मूढ़ता) रहेगा या नहीं ?"

"महाराज ! उसे कुछ विषयों में मोह नहीं रहेगा और कुछ विषयों में रहेगा।"

"किन विषयों में मोह नहीं रहेगा और किन विषयों में रहेगा ?"

"महाराज ! जिन विद्याओं को उसने नहीं पढ़ा है, जिन देशों में वह नहीं गया है तथा जिन बातों को उसने नहीं सुना है, उन विषयों में उसे मोह होगा।"

"और किन विषयों में मोह नहीं होगा ?"

"महाराज ! अपनी प्रज्ञा से जो उसने अनित्य, दुःख और अनात्म को जान लिया है; उसके विषय में उसे कोई मोह नहीं होगा ।"

"भन्ते ! इन विषयों में उसका मोह कहाँ चला जाता है ?"

"महाराज ! ज्ञान के उत्पन्न होते ही उस विषय के सभी मोह नष्ट हो जाते हैं ।"

"कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! किसी अँधेरी कोठरी में कोई दिया जला दे । उससे अँधेरा चला जाय और उजाला हो जाय । महाराज ! उसी तरह ज्ञान के उत्पन्न होते ही मोह चला जाता है ।"

"भन्ते ! और उसकी प्रज्ञा कहाँ चली जाती है ?"

"महाराज ! प्रज्ञा भी अपना काम करके चली जाती है । उस प्रज्ञा से जो "सभी अनित्य है, सभी दुःख है, सभी अनात्म है" करके उत्पन्न होता है वही रह जाता है ।"

१–"इसे स्पष्ट करने के लिये कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! कोई बड़ा आदमी रात के समय एक चिट्ठी लिखना चाहे । वह अपने लेखक (क्लर्क) को बुला और रोशनी जला चिट्ठी लिखावे । चिट्ठी लिखी जा चुकने पर रोशनी बुझा दे । जिस तरह रोशनी के बुझ जाने से चिट्ठी का कुछ नहीं बिगड़ता महाराज ! इसी तरह प्रज्ञा भी अपना काम करके चली जाती है । उस प्रज्ञा से जो 'सभी अनित्य है' करके उत्पन्न होता है वही रह जाता है ।"

२–"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! पूरब की ओर लोगों में ऐसी चाल है । सभी अपने अपने घर के पास पाँच पाँच पानी से भरे घड़ों को रख छोड़ते है, जो कभी घर में आग लग गई और पाँचों घड़े उसके बुझाने में काम आ गए । महाराज ! क्या वे लोग आग बुझ जाने पर भी घड़ों को काम में लाते रहेंगे ?"

"नहीं भन्ते ! घड़ों का काम तो हो गया, अब उनसे क्या करना है ?"

"महाराज ! जैसे यहाँ पाँच पानी के घड़े हैं, उसी तरह पांच इन्द्रियों को समझना चाहिए–श्रद्धेन्द्रिय, वीर्येन्द्रिय, स्मृतीन्द्रिय, समाधीन्द्रिय, प्रज्ञेन्द्रिय । जैसे वहाँ आग बुझाने वाले मनुष्य हैं, वैसे ही योगी को समझना चाहिए । जैसे वहाँ आग है वैसे ही क्लेशों (तृष्णा) को समझना चाहिए । जैसे वहाँ पाँच घड़ों से आग बुझाई जाती है वैसे ही यहाँ पाँच इन्द्रियों से क्लेश के बुझाने को समझना चाहिए । एक बार क्लेश बुझ जाने के बाद फिर पैदा नहीं होता ।"

"महाराज ! इसी तरह प्रज्ञा अपना काम करने के बाद ।"

३–"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! कोई वैद्य पाँच जड़ी-बूटियों को लावे । उन्हें पीस दवा तैयार करे और उस दवा को पिला रोगी को अच्छा कर दे । महाराज ! रोगी के अच्छा हो जाने के बाद फिर भी वैद्य उसे दवा पिलाना चाहेगा ?"

"नहीं भन्ते ! अब उन जड़ी-बूटियों का क्या काम !!"

"महाराज ! यहाँ जैसे पाँच जड़ी–बूटियाँ हुई उसी तरह पाँच इन्द्रियों को समझना चाहिए । जैसे वैद्य है वैसे ही योगी को समझना चाहिए । जैसे रोगी का रोग है वैसे क्लेशों को समझना चाहिए । जैसे रोगी है वैसे ही अज्ञानी जीव को समझना चाहिए । जैसे पाँच जड़ी-बूटियाँ से रोग दूर कर दिया गया, वैसे ही पाँच इन्द्रियों से क्लेश का नाश कर दिया जाता है ।"

"महाराज ! इसी तरह प्रज्ञा अपना काम करके ।"

४–"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! कोई लड़का सिपाही पाँच तीरों को लेकर लड़ाई में जाय, वह उन पाँच तीरों को छोड़े और उससे शत्रुओं को हरा कर भगा दे । महाराज ! शत्रुओं के भाग जाने पर क्या वह फिर भी तीरों को छोड़ना चाहेगा ?"

"नहीं भन्ते ! शत्रुओं के भाग जाने पर तीर छोड़ने का क्या काम ?"

"महाराज ! जैसे ये पाँच तीर हैं, वैसे ही पाँच इन्द्रियों को समझना चाहिए । जैसे लड़का सिपाही हुआ वैसे ही योगी को समझना चाहिए । जैसे शत्रु है वैसे क्लेश को समझना चाहिए । जैसे पाँच तीरों से शत्रु भगा दिए गए, वैसे ही पाँच इन्द्रियों से क्लेश का नाश कर दिया जाता है । क्लेश एक बार नष्ट हो जाने पर फिर पैदा नहीं होते । महाराज ! इसी तरह प्रज्ञा अपना काम करके ।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया ।"

१२. अर्हत् को क्या सुख दुःख होते हैं ?

राजा बोला–"भन्ते ! जो फिर जन्म लेने वाला नहीं है वह क्या कोई वेदना सुख या दुःख अनुभव करता है ?"

स्थविर बोले–"कुछ कोई अनुभव करता है और कुछ कोई नहीं ।"

"किसका अनुभव करता है और किसका नहीं ?"

"शरीर में उत्पन्न होने वाली वेदनाओं को अनुभव करता है और मन में होने वाली वेदनाओं को अनुभव नहीं करता ।"

"भन्ते ! यह कैसे ?"

"शरीर में उत्पन्न होने वाली वेदनाओं के उठने के जो हेतु और प्रत्यय हैं उनके बन्द नहीं होने के कारण वह उनको अनुभव करता है। चित्त में उत्पन्न होने वाली वेदनाओं के उठने के जो हेतु और प्रत्यय हैं उनके बन्द हो जाने कारण वह उनको अनुभव नहीं करता।"

"महाराज ! भगवान् ने भी कहा है–"जो एक ही प्रकार की वेदनाओं को अनुभव करता है–शरीर में उत्पन्न होने वाली को, चित्त में उत्पन्न होने वाली को नहीं ।"

"भन्ते ! वह दुःख–वेदनाओं को अनुभव करते क्यों (ठहरा) रहता है ? अपना शरीर क्यों नहीं छोड़ देता ?"

"महाराज ! अर्हत् को न कोई चाह रहती है और न कोई–बे–चाह। वह कच्चे को तुरन्त का पका देना नहीं चाहता। पण्डित लोग पकने की राह देखते हैं।"

"महाराज ! धर्म–सेनापति सारिपुत्र ने कहा भी है :–

"न मुझे मरने की चाह है और न जीने की।

जैसे मजदूर काम करने के बाद अपनी मजदूरी पाने की प्रतीक्षा करता है वैसे ही मैं अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

न मुझे मरने की चाह है और न जीने की ।।

ज्ञान–पूर्वक सावधान हो अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

१३. वेदनाओं के विषय में

राजा बोला–"भन्ते ! सुख–वेदना कुशल (पुण्य), अकुशल (पाप) या अव्याकृत (न–पुण्य–न–पाप) होती है ?"

"महाराज ! तीनों हो सकती हैं।"

"भन्ते यदि जो कुशल हैं, वह दुःख देने वाले नहीं है और जो दुःख देने वाले हैं वे कुशल नहीं हैं; तब ऐसा कोई कुशल हो ही नहीं सकता है, जो दुःख देने वाला हो।"

"महाराज ! कोई आदमी अपने एक हाथ में लोहे का धधकता गोला रख ले, और दूसरे हाथ में बर्फ का एक बड़ा टुकड़ा; तो क्या दोनों उसे कष्ट देंगे ?"

"हाँ भन्ते ! दोनों उसे कष्ट देंगे।"

"महाराज ! क्या वे दोनों गर्म हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"तो क्या दोनों ठंढ़े हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

तो, अब आप अपनी हार मान लें ! यदि गर्म ही कष्ट देता है तो दोनों के गर्म न होने से कष्ट होना ही नहीं चाहिए था; और यदि ठंढ़ा ही कष्ट देता है तो दोनों के ठंढ़ा न होने से भी कष्ट नहीं होना चाहिए था। महाराज ! तब वे दोनों कैसे कष्ट देते हैं—क्योंकि न तो दोनों गर्म हैं और न ठंढ़े ? एक गर्म है और एक ठंडा—तब दोनों कष्ट देते हैं, ऐसा हो नहीं सकता।"

"आप के ऐसे वादी के साथ मैं बातें नहीं कर सकता। कृपा कर बतावें बात क्या है।"

तब, स्थविर ने अभिधर्म के अनुकूल व्याख्या कर राजा को समझा दिया। महाराज ! ये छः सांसारिक जीवन के सुख हैं और ये छः त्याग-मय जीवन के, ये छः सांसारिक जीवन के दुःख हैं और ये छः त्याग—मय जीवन के, ये छः सांसारिक जीवन की उपेक्षायें हैं और ये त्याग—मय जीवन की। सब मिला कर इस तरह छः छक्के हुए। भूतकाल की ३६ वेदनायें, भविष्यत् काल की ३६ वेदनायें और वर्तमान काल की ३६ वेदनायें-इन सबों को एकसाथ जोड़ देने से कुल १०८ प्रकार की वेदनायें हुई।

"भन्ते ! आपने ठीक बताया।"

१४. परिवर्तन में भी व्यक्तित्व का रहना

राजा बोला—"भन्ते ! कौन जन्म ग्रहण करता है ?"

स्थविर बोले—"महाराज ! नाम (= Mind) और रूप (= Matter) जन्म ग्रहण करता है ?"

"क्या यही नाम और रूप जन्म ग्रहण करता है ?"

"महाराज ! यही नाम और रूप जन्म नहीं ग्रहण करता। मनुष्य इस नाम और रूप से पाप या पुण्य करता है, उस कर्म के करने से दूसरा नाम और रूप जन्म ग्रहण करता हैं।"

"भन्ते ! तब तो पहला नाम और रूप अपने कर्मों से मुक्त हो गया ?"

स्थविर बोले—"महाराज ! यदि फिर भी जन्म नहीं ग्रहण करे तो मुक्त हो गया; किंतु, चूंकि वह फिर भी जन्म ग्रहण करता है इस लिये (मुक्त) नहीं हुआ ।"

१—"कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"कोई आदमी किसी का आम चुरा ले ! 'उसे आम का मालिक पकड़ कर राजा के पास ले जाय—'राजन् ! इसने मेरा आम चुरा लिया है ।' इस पर वह ऐसा कहे—'नहीं ! मैंने इसके आमों को नहीं चुराया है । दुसरे आम को इसने लगाया था और मैंने दूसरे आम लिये । मुझे सजा नहीं मिलनी चाहिये ।' महाराज ! अब आप बतावें कि उसे सजा मिलनी चाहिए या नहीं ?"

"हाँ भन्ते ! सजा मिलनी चाहिए ।"

"सो क्यों ?"

"भन्ते ! वह ऐसा भले ही कहे, किंतु पहले आम को छोड़ दूसरे ही को चुराने के लिये उसे जरूर सजा मिलनी चाहिये ।"

"महाराज ! इसी तरह मनुष्य इस नाम और रूप से पाप या पुण्य कर्मों को करता है । उन कर्मों से दूसरा नाम और रूप जन्म ग्रहण करता है । इसलिए वह अपने कर्मों से मुक्त नहीं हुआ ।"

२—"कृपया फिर भी उपमा दें ।"

"महाराज ! कोई आदमी किसीका धान या ईख चुरा ले और पकड़े जाने पर आम के चोर के ऐसा ही कहे ।

"महाराज ! या, कोई आदमी जाड़े में आग जला कर तापे और उसे बिना बुझाये छोड़ चला जाय । वह आग किसी दूसरे आदमी के खेत को जला दे । तब, उसे पकड़ खेत का मालिक राजा के पास ले जाय—'राजन् ! इसने मेरे खेत को जला दिया है ।' इस पर वह ऐसा कहे—'मैं ने इसके खेत को नहीं जलाया है । देव ! वह दूसरी ही आग थी जो मैंने जलाई थी, और वह दूसरी है जिससे इसका खेत जल गया । मुझे सजा नहीं मिलनी चाहिये ।' महाराज ! अब आप बतावें कि उसे सजा मिलनी चाहिये या नहीं ?"

"हाँ भन्ते ! मिलनी चाहिये ।"

"सो क्यों ?"

"भन्ते ! ऐसा भले ही वह क्यों न कहे, किंतु उसी की जलाई हुई आग बढ़ते खेत को भी जला दिया।"

"महाराज ! इसी तरह, मनुष्य इस नाम और रूप से पाप या पुण्य कर्मों को करता है।"

३—"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई आदमी दीया लेकर अपने घर के उपरले छत जाय और भोजन करे। वह दीया जलता हुआ कुछ तिनकों में लग जाय। वे तिनके घर को (आग) लगा दें और वह घर सारे गाँव को लगा दे। गाँव वाले उस आदमी को पकड़ कर कहें—"तुम ने गाँव में क्यों आग लगा दी है ?" इस पर वह ऐसा कहे—"मैंने गांव में आग नहीं लगाई। उस दीये का आग दूसरी ही थी जिसके उजेले में मैंने भोजन किया वह आग दूसरी ही थी जिससे गाँव जल गया।"

इस तरह आपस में झगड़ा करते वे आप के पास आवें, तब आप किधर फैसला देंगे ?"

"भन्ते ! गाँव वालों की ओर।"

"सो क्यों ?"

"वह ऐसा कुछ भले ही क्यों न कहे, किन्तु आग उसी ने लगाई।"

"महाराज ! इसी तरह, यद्यपि मृत्यु के साथ एक नाम और रूप का लय होता है और जन्म के साथ दूसरा नाम और रूप उठ खड़ा होता है, किन्तु यह भी उसी से होता है। इसलिए वह अपने कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।"

४—"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई आदमी एक छोटी लड़की से विवाह कर, उसके लिए रुपये दे, कहीं दूर चला जाय। कुछ दिनों के बाद वह बढ़कर जवान हो जाय। तब, कोई दूसरा आदमी रुपए देकर उससे विवाह कर ले। इसके बाद पहला आदमी आकर कहे—'तुमने मेरी स्त्री को क्यों निकाला लिया ?' इस पर वह ऐसा जवाब दे—'मैंने तुम्हारी स्त्री को नहीं निकाला। वह छोटी लड़की दूसरी ही थी जिसके साथ तुमने विवाह किया था और जिसके लिए रुपए दिए थे। यह सयानी और जवान औरत दूसरी ही है जिसके साथ मैंने विवाह किया है और जिसके लिए रुपये दिए हैं।' अब, यदि वे दोनों इस तरह झगड़ते हुए आपके पास आवें तो आप किधर फैसला देंगे ?"

"भन्ते ! पहले आदमी की ओर।"

"सो क्यों ?"

"वह ऐसा कुछ भले ही क्यों न कहे, किंतु वही लड़की तो बढ़ कर सयानी हुई।"

"महाराज ! इसी तरह यद्यपि मृत्यु के साथ एक नाम और रूप। इसलिए "वह अपने कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।"

५—"कृपया फिर भी उपमा दे कर समझावें।"

"महाराज ! कोई आदमी किसी ग्वाले से एक मटका दूध मोल ले। और मटके को उसी के यहाँ छोड़ कर चला जाय—कल लौटते हुए इसे लेता जाऊँगा। वह दूध रात भरमें जम कर दही हो जाय। दूसरे दिन वह आदमी आकर ग्वाले से अपना दूध का मटका माँगे। ग्वाला उस दही जमे हुये मटके का उसे दे। इस पर आदमी बोले—"मैं तुम से नही लेना नहीं चाहता। मेरा दूध का मटका लाओ।" ग्वाला बोले—"यह तो अपने ही जम कर दही हो गया है।"

"महाराज ! इस तरह वे दोनों झगड़ते हुए आपके पास आवें तो आप किधर फैसला देंगे ?"

"भन्ते ! ग्वाले की ओर।"

"सो क्यों ?"

"वह ऐसा कुछ भले ही क्यों न कहे, किंतु दूध ही तो जमकर दही हुआ।"

"महाराज ! इसी तरह यद्यपि मृत्यु के साथ एक नाम और रूप। इसलिए वह अपने कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

१५. नागसेन के पुनर्जन्म के विषय में प्रश्न

राजा बोला—"भन्ते ! आप फिर भी जन्म ग्रहण करेंगे या नहीं ?"

"महाराज ! बस करें, इसके पूछने का क्या मतलब ? मैंने तो पहले ही कह दिया है कि यदि साँसारिक आसक्ति के साथ मरूँगा तो जन्म ग्रहण करूँगा नहीं तो नहीं।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई आदमी राजा को सेवा करे। राजा उससे खुश हो उसे कोई बड़ा पद दे दे। उस पद को पा वह सभी ऐश और आराम के साथ चैन से रहे। यदि वह आदमी लोगों से कहता फिरे—'राजा ने मेरी कुछ भी भलाई नहीं की की हैं' तो क्या वह ठीक कहता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह, इसके पूछने से क्या मतलब ! मैंने तो पहले ही कह दिया है।"

"भन्ते बहुत अच्छा।"

१६. नाम और रूप; तथा उनका परस्पर आश्रित होना

राजा बोला—"भन्ते ! आप जो नाम और रूप के विषय में कह रहे थे, सो वह नाम क्या चीज है और रूप क्या चीज ?"

"महाराज ! जितनी स्थूल चीजें है सभी रूप हैं; और जितने सूक्ष्म मानसिक धर्म हैं सभी नाम हैं।"

"भन्ते ! ऐसा क्यों नहीं होता कि या तो केवल नाम ही या केवल रूप ही जन्म ग्रहण करे ?"

"महाराज ! नाम और रूप दोनों आपस में आश्रित हैं, एक दूसरे के बिना ठहर नहीं सकते। दोनों साथ ही होते हैं।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! यदि मुर्गी के पेट में बच्चा नहीं होवे तो अण्डा भी नहीं हो सकता; क्योंकि बच्चा और अण्डा दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। दोनों एक ही साथ होते हैं। यह अनन्त काल से होता चला आता है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

१७. काल के विषय में

राजा बोला—"भन्ते नागसेन ! आपने जो अभी कहा—अनन्त काल से—सो यह काल क्या चीज है ?"

"महाराज ! काल तीन हैं—भूत, भविष्यत, और वर्तमान।"

"भन्ते ! क्या सचमुच काल नाम की कोई चीज है ?"

"महाराज ! काल कोई चीज है भी और नहीं भी।"

"भन्ते ! कौन सा काल है और कौन सा नहीं ?"

"महाराज ! कुछ ऐसे संस्कार हैं जो बीत गए, गुजर गए, अब नहीं रहे, लय हो गए, बिलकुल परिवर्तित हो गए। उनके लिए काल नहीं है। जो धर्म फल

दिखा रहे हैं या कहीं न कहीं प्रतिसन्धि कर रहे हैं उनके लिए काल है। जो प्राणी मरकर फिर भी जन्म ले रहे हैं उनके लिए काल है। जो प्राणी कहीं मरकर फिर नहीं उत्पन्न होते (अर्हत्) उनके लिए काल नहीं। जो यहाँ परम निर्वाण को प्राप्त हो गए उनके लिए भी काल नहीं है। निर्वाण पाने के बाद काल कैसा ?"[1]

"भन्ते नागसेन ! आपने ठीक समझाया।"

द्वितीय वर्ग समाप्त

---

१८. तीनों काल का मूल अविद्या

राजा बोला—"भन्ते ! भूतकाल का क्या मूल है, भविष्यत् काल का क्या मूल है, और वर्तमान काल का क्या मूल है ?"

"महाराज ! इनका मूल अविद्या है।"

अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम–नाम और नाम–रूपके होने से छः आयतन, छः आयतनों के होने से स्पर्श, स्पर्श के होने से वेदना, वेदना के होनें से तृष्णा, तृष्णा के होने से उपादान, उपादान के होने से भव, भव के होने से जन्म, जन्म के होने से बुढ़ापा, मरना, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बचैनी और परेशानी होती हैं। इस प्रकार, इस दुःखों के सिलसिले का आरम्भ कहाँ से हुआ इसका पता नहीं।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

१९. काल के आरम्भ का पता

राजा बोला—"भन्ते ! आप जो कहते हैं–इसका आरम्भ कहाँ से हुआ इसका पता नहीं–सो इसे कृपया एक उपमा देकर समझावें।"

१–"महाराज ! कोई आदमी एक छोटे से बीज को जमीन में रोप दे। उस बीज से अङ्कुर फूटे और धीरे-धीरे बड़ा होकर वृक्ष हो जाये। उस वृक्ष में फल लगे। उस फल के बीज को वह आदमी फिर रोप दे। उससे अङ्कुर फूटे, फल लग जाये। महाराज ! तो आप बतावें, क्या इस सिलसिले का कहीं अन्त होने पायेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह काल का आरम्भ कहाँ से हुआ इसका पता नहीं।"

---

१. प्रतीत्य–समुत्पाद–देखो बुद्धचर्या पृष्ठ १२८।

२–"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

स्थविर पृथ्वी पर एक गोल आकार खींच कर बोले–

"महाराज ! इस चक्के का कहीं अन्त है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह, भगवान ने इसे चक्का बताया है।

चक्षु और रूप के होने से चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है। जब ये तीनों एकसाथ मिलते हैं तो स्पर्श होता है। स्पर्श से वेदना और वेदना से तृष्णा होती है। इस तृष्णा (देखने की तृष्णा) से फिर भी चक्षु उत्पन्न होता है। भला इस सिलसिले का कहीं अन्त है ?"

"नहीं भन्ते।"

श्रोत्र (कान) और शब्दों के होने से श्रोत्र विज्ञान तथा मन और धर्मों के होने से मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों के एकसाथ मिलने से स्पर्श होता है। स्पर्श से वेदना और वेदना से तृष्णा होती है। इस तृष्णा से फिर मन उत्पन्न होता है। भला, इस सिलसिले का कहीं अन्त है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह, काल का आरम्भ कहां से होता है इसका पता नहीं लगता।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

२०. आरम्भ का पता

राजा बोला–"भन्ते ! आप जो कहते हैं–आरम्भ कहाँ से होता है इसका पता नहीं–सो यह 'आरम्भ' क्या है ?"

"महाराज ! जो भूत काल है वही आरम्भ है।"

"भन्ते ! तो क्या किसी भी आरम्भ का पता नहीं लगता ?"

"महाराज ! किसी का पता लगता है और किसी का नहीं।"

"भन्ते ! किसका पता लगता है और किसका नहीं ?"

"महाराज ! पहले कभी अविद्या बिलकुल ही नहीं थी ऐसे 'आरम्भ' का पता नहीं लगता है। यदि कोई चीज न होकर हो जाती है, और कोई हो कर नष्ट हो जाती है–तो ऐसे 'आरम्भ' का पता लगता है।"

"भन्ते ! यदि कोई चीज न होकर हो जाती है, और होकर नष्ट हो जाती है–तो इस तरह दोनों ओर से काटो जा कर क्या उसकी भी स्थिति हुई ?"

"महाराज ! हाँ, यदि वह दोनों ओर से काटी जा कर दोनों ओर बढ़ने लगे।"

"भन्ते ! मैं यह नहीं पूछता। वह आरम्भ से (जहाँ पर कटा है वहाँ से) बढ़ सकता है या नहीं ?"

"हाँ बढ़ सकता है।"

"कृपया उपमा दे कर समझावें।"

स्थविर ने उसी 'बीज और वृक्ष' की उपमा को कहा–"ये स्कन्ध दुःखों के प्रवाह के बीज हैं।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

२१. संस्कार की उत्पत्ति और उससे मुक्ति

राजा बोला–"भन्ते ! क्या ऐसे संस्कार हैं जो उत्पन्न होते हैं ?"

"हाँ हैं।"

"वे कौन से हैं ?"

"महाराज ! चक्षु और रूपों के रहने से चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है। चक्षु-विज्ञान के होने से चक्षु-स्पर्श होता है। उससे वेदना होती है। वेदना से तृष्णा होती है। तृष्णा के होने से उपादान होता है। उपादान के होने से भव होता है। भव के होने से जन्म-ग्रहण होता है। जन्म-ग्रहण होने से बुढ़ापा, मरना, शोक, रोना, पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी होती है। इस तरह केवल दुःख ही दुःख होता है।

"महाराज ! चक्षु और रूपों के नहीं रहने से चक्षु-विज्ञान नहीं उत्पन्न होता। स्पर्श नहीं होता। वेदना नहीं होती। तृष्णा नहीं होती। उपादान नहीं होता। भव नहीं होता। जन्म-ग्रहण नहीं होता। बुढ़ापा, मरना नहीं होता। इस तरह, दुःख के सारे प्रवाह से मुक्ति हो जाती है।"

"भन्ते ! ठीक है।"

२२. वही चीजें पैदा होती हैं जिनकी स्थिति का प्रवाह पहले से चला आता है

राजा बोला–"भन्ते ! क्या ऐसे संस्कार हैं जो नहीं होकर भी पैदा हो जाते हैं ?"

"महाराज ! ऐसे कोई संस्कार नहीं हैं जो नहीं होकर भी पैदा हो जाते हैं, वे ही संस्कार पैदा होते हैं जिनका प्रवाह पहले से चला आता है।"[1]

१–"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! आप जिस घर में बैठे हैं क्या यह नहीं होकर हो गया है ?"

"भन्ते ! ऐसी कोई भी चीज नहीं हैं जो बिलकुल नहीं होकर हो जाती है। वही चीजें पैदा होती हैं जिनका प्रवाह पहले ही से चला आता है।"

ये लकड़ियाँ पहले जंगल में मौजूद थीं। यह मिट्टी पहले जमीन में थी। स्त्री और पुरुषों की मिहनत से ही यह घर तैयार हुआ है।"

"महाराज ! इसी तरह, कोई भी संस्कार नहीं हैं जो न होकर पैदा हुए हों। वे ही संस्कार पैदा होते हैं जिनका सिलसिला पहले से चला आता है।"

२–"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! सभी पेड़ पौधे पृथ्वी से ही उगकर बढ़ते, बड़े होते और फूलते-फलते हैं। ये सभी नहीं होकर नहीं पैदा हो गए, बल्कि इनकी स्थिति का प्रवाह पहले ही से चला आता है।"

"महाराज ! इसी तरह, ऐसी कोई भी चीज नहीं है जो बिलकुल नहीं होकर हो जाती है। वही चीजें पैदा होती हैं जिनका प्रवाह पहले ही से चला आता है।"

३–"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कुम्हार जमीन से मिट्टी खोद उससे अनेक प्रकार के बर्तनों को गढ़ता है। वे बर्तन न होकर नहीं हो जाते हैं, किंतु उनकी स्थिति का प्रवाह मिट्टी से चला आता है।

"महाराज ! इसी तरह, ऐसे कोई संस्कार नहीं हैं जो न होकर पैदा हो जाते हों। वही चीजें पैदा होती हैं जिनकी स्थिति का सिलसिला पहले से चला आता है।"

४–"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"यदि वीणा का पत्र, चर्म, खोखला काठ, दण्ड, गला, तार या धनु कुछ भी नहीं हो; और कोई बजाने वाला आदमी भी न हो–तो क्या कोई आवाज निकलेगी ?"

---

१. अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती। भाव ही से भाव की हैउत्पत्ति होती ।

"नहीं भन्ते !"

"और, यदि ये सभी चीजें हों तब ?"

"भन्ते ! तब आवाज निकलेगी।"

"महाराज ! इसी तरह, ऐसे कोई संस्कार नहीं, जो न होकर पैदा हो जाते हैं। वही चीजें पैदा होती हैं जिनकी स्थिति का प्रवाह पहले से चला आता है।"

५-"कृपया फिर भी उपमा दे कर समझावें।"

"महाराज ! यदि अरणि न हो, अरणि-पोतक न हो, मथने की रस्सी न हो, उत्तरारणि न हो, चिथड़ा न हो, और आग पैदा करने वाला कोई आदमी भी नहीं हो-तो क्या आग निकलेगी ?"

"नहीं भन्ते।"

"और यदि ये सभी चीजें हों तब ?"

"भन्ते ! तब आग निकलेगी।"

"महाराज ! इसी तरह, ऐसे कोई संस्कार नहीं हैं जो न होकर पैदा हो जाते हैं। वही चीजें पैदा होती हैं जिन की स्थिति का सिलसिला पहले से चला आता है।"

६-"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! यदि जलाने वाला काँच न हो, सूरज की गर्मी भी हो, और सूखा कंडा भी हो-तो क्या आग निकलेगी ?"

"नहीं भन्ते !"

"और यदि सभी चीजें हों तब ?"

"भन्ते ! तब आग निकलेगी।"

"महाराज ! इसी तरह, ऐसे कोई संस्कार नहीं हैं, जो न होकर पैदा हो जाते हैं। वही चीजें पैदा होती हैं जिनकी स्थिति का प्रवाह पहले से चला आता है।"

७-"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! यदि आइना न हो, प्रकाश न हो और मुख भी नहीं हो-तो क्या कोई परछाईं पड़ेगी ?"

"नहीं भन्ते !"

"और, यदि ये सभी चीजें हों तब ?"

"भन्ते ! तब परछाई पड़ेगी।"

"महाराज ! इसी तरह, ऐसे कोई संस्कार नहीं है जो न होकर पैदा हो जाते हैं। वही चीजें पैदा होती हैं जिनकी स्थिति का प्रवाह पहले से चला आता है।"

"भन्ते ! आपने बिलकुल साफ कर दिया।"

२३. हम लोगों के भीतर कोई आत्मा नहीं है।

राजा बोला–"भन्ते ! जानने वाला (=ज्ञात) कोई (आत्मा) है या नहीं ?"

"महाराज ! यह जानने वाला कौन ?"

"भन्ते ! जो जीव हम लोगों के भीतर रह आँख से रूपों को देखता है, कान से शब्दों को सुनता है, नाक से गन्धों को लेता है, जीभ से स्वाद लेता है, शरीर से स्पर्श का अनुभव करता है, और मन से धर्मों को जानता है। जिस तरह हम लोग इस कोठे पर बैठकर जिस जिस खिड़की से–पूरब वाली से, या पच्छिम वाली से, या दक्खिन वाली से, या उत्तर वाली से देखना चाहें देख सकते हैं।"

स्थविर बोले–"महाराज ! पाँच दरवाजे कौन से हैं सो मैं कहूँगा, आप उसे मन लगाकर सुनें।"

हम लोग कोठे पर बैठकर पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन किसी भी खिड़की से बाहर के रूपों को देख सकते हैं; उसी तरह हम लोगों के भीतर रहने वाले जीव में आँख, कान इत्यादि सभी इन्द्रियों से रूपों को देखने, शब्दों को सुनने, गन्धों को सूँघने, रसों का स्वाद लेने, स्पर्श करने या धर्मों को जानने का सामर्थ्य होना चाहिए।"

"भन्ते ! ऐसी बात तो नहीं है।"

"महाराज ! तब तो आप के आगे कहे हुए से पीछे का, और पीछे कहे हुए से आगे का मेल नहीं खाता।"

"महाराज ! इन खिड़कियों को खोल देने से हम लोग यहीं बैठे बैठे खुले आकाश की ओर बाहर के सभी रूपों को साफ साफ देख सकते हैं। इसी तरह, क्या हम लोगों के भीतर रहने वाला जीव आँखों के खुल जाने से खुले आकाश

की ओर हो सभी रूपों को साफ साफ देख सकता है, कान, नाक, जीभ, और काया के खुल जाने पर शब्दों को साफ साफ सुन सकता है, गन्धों को सूंघ सकता है, रसों को चख सकता है और चीजों को स्पर्श कर सकता है ?"

"नही भन्ते !"

"महाराज ! तब तो आप के आगे कहे हुए से पीछे का, और पीछे कहे हुए से आगे का मेल नहीं खाता।

"महाराज ! यदि दिन्न (नामक पुरुष) यहाँ से बाहर जाकर दरवाजे पर खड़ा हो जाय तो क्या आप इस बात को नहीं जानेंगे ?"

"हाँ, भन्ते ! जानूंगा।"

"महाराज ! यदि दिन्न फिर भीतर आकर आप के सामने खड़ा हो जाय तो क्या आप इस बात को नहीं जानेंगे ?"

"हाँ, भन्ते ! जानूंगा।"

"महाराज ! इसी तरह, हम लोगों के भीतर में रहने वाला जीव जीभ से बाहर के रस को जानेगा–यह खट्टा है, नमकीन है, तीता है, कड़ुआ है, कसैला है या मीठा है ?"

"हाँ, भन्ते ! जानेगा।"

"उन रसों के भीतर चले जाने पर भीतर ही रहने वाला जीव उनका अनुभव करेगा या नहीं–यह खट्टा है, नमकीन है, तीता है, कड़ुआ है, कसला है या मीठा है ?"

"नहीं भन्ते ! नहीं अनुभव करेगा।"

"महाराज ! तब तो आपके आगे कहे हुए से पीछे का, और पीछे कहे हुए से आगे का मेल नहीं खाता।

"महाराज ! कोई आदमी सौ घड़े मधु मंगवा एक नाद भरवा दे। फिर, एक दूसरे आदमी का मुंह अच्छी तरह बांधकर उसमें डलवा दे तो आप बतावें, क्या वह जान सकेगा कि जिस में वह डाल दिया गया है, सो मीठा है या नहीं ?"

"भन्ते ! नहीं जान सकेगा।"

"सो क्यों ?"

"क्योंकि मधु उसके मुंह में जायगा ही नहीं।"

"महाराज ! तब तो आप के आगे कहे से पीछे का... ।"

"भन्ते ! आप जैसे पण्डित के साथ मैं क्या बहस कर सकता हूँ। कृपा कर बतावें कि बात क्या है।"

तब, स्थविर ने राजा मिलिन्द को अभिधर्म के अनुसार सब कुछ समझा दिया।

"महाराज ! चक्षु और रूपों के होने से चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है। उसके उत्पन्न होने के साथ ही स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना और एकाग्रता एक पर एक उत्पन्न होते हैं। इसी तरह दूसरी इन्द्रियों के साथ भी समझ लेना चाहिए। ये धर्म एक दूसरे ही से उत्पन्न होते हैं। दूसरा कोई जानने वाला (=ज्ञाता आत्मा) नहीं है।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

२४. जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान होता है वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है

राजा बोला—"भन्ते ! जहाँ जहाँ चक्षु-विज्ञान उत्पन्न होता है वहाँ क्या मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता ?"

"हाँ, महाराज ! वहाँ मनोविज्ञान भी उत्पन्न होता।"

"भन्ते ! पहले कौन उत्पन्न होता है, चक्षुविज्ञान या मनोविज्ञान ?"

"महाराज ! पहले चक्षुविज्ञान और बाद में मनोविज्ञान ?"

भन्ते ! क्या चक्षुविज्ञान मनोविज्ञान को आज्ञा देता है कि, "जहाँ जहाँ मैं उत्पन्न होऊँ वहाँ वहाँ तुम भी होवो" अथवा मनोविज्ञान चक्षुविज्ञान को आज्ञा देता है, जहाँ जहाँ तुम उत्पन्न होगे वहाँ वहाँ मैं भी हूँगा ?"

"नहीं महाराज ! उन लोगों का आपस में कोई ऐसी आज्ञा का सम्बन्ध नहीं होता।"

"भन्ते ! तो क्या बात है कि जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है ?"

"महाराज ! उन लोगों में ऐसा (१) ढालूपन होने से, (२) दरवाजा होने से, (३) आदत होने से, और (४) साथीपना होने से।"

"भन्ते ! (१) ढालूपन होने से कैसे जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान होता है, वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है ? कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! अच्छा, बतावें कि पानी पड़ने से पानी किस ओर ढरक कर बहता है ?"

"भन्ते ! जिधर की जमीन ढ़ालू है उधर ही पानी ढ़रक कर बहता है।"

"फिर किसी दूसरे दिन पानी बरसने से वह किस ओर बहेगा ?"

"भन्ते ! उसी ओर।"

"महाराज,! क्या पहला पानी दूसरे पानी को आज्ञा देता है, "जिस ओर ढ़रक कर मैं बहूँ उसी ओर तुम भी बहो ?" या दूसरा पानी पहले पानी को आज्ञा देता है "जिस ओर तुम बहोगे उसी ओर मैं बहूँगा ?"

"नहीं भन्ते ! उन लोगों में ऐसी कोई बातें नहीं होती। जमीन के ढ़ालू होने से ही दोनों पानी उसी ओर बहते हैं।"

"महाराज ! इसी तरह, ढ़ालूपन होने से जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है। उनमें परस्पर कोई आज्ञा का देना नहीं होता।"

"भन्ते ! (२) दरवाजा होने से कैसे जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान होता है वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है ? कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज किसी राजा का सीमान्त प्रान्त में एक नगर हो, जो दृढ़ प्राकार से घिरा हो तथा जिसका फाटक भी बड़ा दृढ़ हो। उस नगर में एक ही दरवाजा हो। अब, कोई आदमी उस नगर से बाहर निकलना चाहे तो किस ओर से निकलेगा ?"

"भन्ते ! उसी दरवाजे (निकास) से निकलेगा।"

"फिर, कोई दूसरा आदमी बाहर निकलना चाहे तो किस ओर से निकलेगा?"

"भन्ते ! उसी दरवाजे से।"

"महाराज ! क्या यहाँ पहला आदमी दुसरे को आज्ञा देता है कि मैं जिस ओर से निकलूं उधर ही से तुम भी निकलो, या दूसरा आदमी पहले को आज्ञा देता है कि तुम जिधर से निकलोगे उधर ही से मैं भी निकलूंगा ?"

"नहीं भन्ते ! उन लोगों के बीच कोई बातें नहीं होती हैं। दरवाजा के होने से ही जिधर से एक निकलता है उधर से दूसरा भी निकलता है।"

"महाराज ! इसी तरह, दरवाजा होने से जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है। उनकी आपस में कोई बात नहीं हुई होती।"

"भन्ते ! (३) आदत होने से कैसे जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान होता है वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है ! कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! आगे एक बैलगाड़ी गई हो, तो दूसरी गाड़ी किस ओर जायगी ?"

"भन्ते ! जिस ओर पहली गाड़ी गई होगी उसी ओर दूसरी भी जायगी ।"

"महाराज ! क्या पहली गाड़ी दूसरी गाड़ी को आज्ञा देती है, या दूसरी गाड़ी पहली को आज्ञा देती है ?"

"नहीं भन्ते ! उनमें कोई ऐसी बात नहीं हुई होती । (बैलों में) ऐसी आदत पड़ जाने से ही वह एक दूसरे के पीछे पीछे जाते हैं ।"

"महाराज ! इसी तरह, आदत से ही जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान होता है वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है । उनमें कोई बात नहीं हुई होती ।"

"भन्ते (४) व्यवहार होने से कैसे जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान होता है वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है ? कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! मुद्रा, गणना, संख्या और लेखा इत्यादि शिल्पों में नवसिखिया बार बार भूलें करता है । सावधानी से बार बार व्यवहार करने पर उसकी भूलें जाती रहती हैं । इसी तरह, व्यवहार से जहाँ जहाँ चक्षुविज्ञान उत्पन्न होता है वहाँ वहाँ मनोविज्ञान भी होता है ।"

इसी भाँति दूसरी भी इन्द्रियों के विज्ञानों के साथ मनोविज्ञान उत्पन्न होता है ।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया ।"

२५. मनोविज्ञान के होने से वेदना भी होती है

राजा बोला—"भन्ते ! जहाँ मनोविज्ञान उत्पन्न होता है वहाँ क्या वेदना भी होती है ?"

"हाँ महाराज ! जहाँ मनोविज्ञान होता है वहाँ स्पर्श भी होता है, वेदना भी होती है, संज्ञा भी होती है, चेतना भी होती है, वितर्क भी होता है, विचार भी होता है । स्पर्श से होने वाले सभी धर्म होते हैं ।"

(क) स्पर्श की पहचान

"भन्ते ! स्पर्श की पहचान क्या है ?"

"महाराज ! 'छूना' स्पर्श की पहचान है ।"

१—"कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! दो भेंड़ टक्कर खाँयें । उनमें एक भेंड़ को तो चक्षु समझना चाहिए, और दूसरे को रूप । जो उन दोनों का टकराना है उसे ही स्पर्श समझना चाहिए ।"

२–"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई ताली बजावे। उनमें एक हाथ को तो चक्षु और दूसरे को रूप समझना चाहिए। जो दोनों हाथों का मिलना है उसे स्पर्श समझना चाहिए।"

३–"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई झाँझ बजावे। उसमें एक झाँझ को तो चक्षु और दूसरे को रूप समझना चाहिए। जो इन दोनों का आकर मिलना है उसे स्पर्श समझना चाहिए।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

(ख) वेदना की पहचान

"भन्ते नागसेन ! 'वेदना' की क्या पहचान है ?"

"महाराज ! 'अनुभव करना' वेदना की पहचान है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई आदमी राजा की सेवा करे। राजा उससे खुश हो कोई बड़ा पद दे दे। वह उस पद को पा सभी ऐश-आराम करते हुए बड़े चैन से रहे। अब, उसके मन में ऐसा हो–मैंने पहले राजा की सेवा की, जिससे खुश हो राजा ने मुझे यह पद दे दिया है उसी समय से लेकर मैं इस ऐश और आराम का अनुभव कर रहा हूँ।"

"महाराज ! कोई आदमी पुण्य-कर्म करके मरने के बाद स्वर्ग लोक में उत्पन्न हो अच्छी गति को प्राप्त हो। वह वहाँ दिव्य पाँच कामगुणों का उपभोग करे। तब उसके मन में ऐसा हो–मैंने पहले पुण्य-कर्म किए। उसी से मैं इन दिव्य पांच कामगुणों का अनुभव कर रहा हूँ।"

"महाराज ! इसी तरह "अनुभव करना" वेदना की पहचान है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

(ग) संज्ञा की पहचान

"भन्ते ! संज्ञा की क्या पहचान है ?"

"महाराज ! 'पहचानना' संज्ञा की पहचान है।"

"क्या पहचानना ?"

"नीले रंग को भी, पीले को भी, लाल को भी, उजले को भी और मंजीठ रंग को भी पहचानना। महाराज ! इस तरह, 'पहचानना' संज्ञा की पहचान है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! राजा का भण्डारी भण्डार में जाकर नीली, पीली, लाल, उजली, मंजीठ सभी रंग की राजा के भोग की चीजों को देखकर उन्हें पहचानता है और जानता है। महाराज ! इसी तरह, 'पहचानना' संज्ञा की पहचान है।"

"भन्ते ! आपने बहुत ठीक कहा।"

(घ) चेतना की पहचान

"भन्ते नागसेन ! चेतना की क्या पहचान है ?"

"महाराज ! 'समझना' और 'तैयार होना' चेतना की पहचान है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई आदमी विष तैयार कर अपने पी ले और दूसरों को भी दे। वह अपने भी दुःख भोगे और दूसरों को भी दुःख में डाल दे।"

"महाराज ! इसी तरह कोई आदमी पाप कर्मों की चेतना करके मरने के बाद नरक में दुर्गति को प्राप्त होते हैं। जो उसके सिखाये होते हैं वे भी दुर्गति को प्राप्त होते हैं।"

"महाराज ! कोई आदमी घी, मक्खन, तेल, मधु और शक्कर को एकसाथ तैयार कर स्वयं पी ले और दूसरों को भी पिला दे। वह स्वयं भी सुखी होवे और दूसरों को भी सुखी बनावे।"

"महाराज ! इसी तरह, कोई पुण्य कर्मों की चेतना करके मरने के बाद स्वर्गलोक में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होते हैं। जो उनके सिखाये हैं वे भी सुगति को प्राप्त होते हैं।"

"महाराज ! इसी तरह, 'समझना' और 'तैयार करना' चेतना की पहचान है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

(ङ) विज्ञान की पहचान

"भन्ते ! विज्ञान की क्या पहचान है ?"

"महाराज ! 'जान लेना' विज्ञान की पहचान है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! नगर का रखवाला नगर के बीच किसी चौराहे पर बैठ चारों दिशाओं से आने वाले पुरुषों को देखे। महाराज ! इसी तरह, जो पुरुष आँख से देखता है उसे विज्ञान से जान लेता है, जो कान से शब्दों को सुनता है उसे भी विज्ञान से जान लेता है, जो नाक से गंध सूंघता है उसे भी विज्ञान से जान लेता है, जो जीभसे रसों को चखता है उसे भो विज्ञान से जान लेता है, जो शरीर से स्पर्श करता है उसे भी विज्ञान से जान लेता है, जिन धर्मों को मन से अनुभव करता है उन्हें भी विज्ञान से जान लेता है। महाराज ! इस तरह 'जान लना' विज्ञान की पहचान है।"

"भन्ते ! ठीक कहा।"

(च) वितर्क की पहचान

"भन्ते नागसेन ! वितर्क की क्या पहचान है ?"

"महाराज ! 'किसी काम में लग जाना' वितर्क की पहचान है।

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! जैसे बढ़ई अच्छी तरह से तैयार किए हुए काठ के टुकड़े को जोड़ में लगा देता है, वैंसे ही 'किसी काम में लग जाना' वितर्क की पहचान है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

(छ) विचार की पहचान

"भन्ते नागसेन ! विचार का क्या लक्षण है ?"

"महाराज ! 'अनुमार्जन' विचार का लक्षण है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! काँसे की थाली को पीटने से उससे आवाज निकलती है। यहाँ जिस तरह पीटना है उसे वितर्क, और जो आवाज का निकलना है उसे विचार समझना चाहिए।"

तीसरा वर्ग समाप्त

२६. स्पर्श आदि मिल जाने पर अलग अलग नहीं किया जा सकता

राजा बोला–"भन्ते ! इन स्पर्श इत्यादि धर्मों के एकसाथ मिल जाने पर क्या उन्हें अलग अलग बाँट कर दिखाया जा सकता है–यह स्पर्श है, यह वेदना है, यह विचार है ?"

"महाराज ! इस तरह नहीं दिखाया जा सकता ।"

"कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! राजा का रसोइया झोल या तेमन तैयार करे । वह उसमें दही, नमक, जीरा, मरिच इत्यादि अनेक चीजें डाले । तब राजा उसे कहे–'दही का स्वाद अलग कर दो, नमक का स्वाद अलग कर दो, मिर्च का स्वाद अलग कर दो, और भी दूसरी चीजों के स्वाद को अलग अलग निकाल दो ।' महाराज ! तो उन चीजों के एकसाथ मिल जाने के बाद क्या उनको अलग अलग निकाल कर दिखाया जा सकता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"तो भी, सभी स्वाद उसमें अपनी अपनी तरह से मौजूद रहेंगे । महाराज ! इसी तरह उन धर्मों के एकसाथ मिल जाने के बाद उन्हें अगल अलग निकाल कर नहीं दिखाया जा सकता ।"

"भन्ते ! ठीक है ।"

नमकीन और भारीपन

स्थविर बोले– "महाराज ! क्या नमक आँख से देख कर पहचाना जा सकता है ?"

"हाँ भन्ते ! पहचाना जा सकता है ।"

"महाराज ! जरा सोंच कर उत्तर दें ।"

"भन्ते ! क्या जीभ से पहचाना जाना चाहिए ?"

"हाँ, महाराज ! जीभ से पहचाना जाना चाहिए ।"

"भन्ते ! क्या सभी तरह के नमक जीभ ही से पहचाने जाते हैं ?"

"हाँ महाराज ! सभी तरह के नमक जीभ ही से पहचाने जाते हैं ।"

"भन्ते ! यदि ऐसी बात है तो उसे बैल गाड़ियों पर लाद कर क्यों लाते हैं ? केवल नमक ही न लाना चाहिए ?"

"महाराज ! केवल नमक लाना संभव नहीं है। ये धर्म, नमकीन और भारीपन दोनों एकसाथ ऐसे मिल गए हैं कि अलग नहीं किए जा सकते।"

"महाराज ! नमक तराजू पर तौला जा सकता है ?"

"हाँ भन्ते ! तौला जा सकता है।"

"नहीं महाराज ! नमक तराजू पर नहीं तौला जा सकता; केवल भारीपन तौला जाता है।"

"हाँ भन्ते ! ठीक है।"

नागसेन और मिलिन्द राजा के महाप्रश्न समाप्त

● ● ●

तीसरा परिच्छेद

(ख) विमतिच्छेदन प्रश्न

१. पाँच आयतन दूसरे दूसरे कर्मों के फल से हुए हैं, एक के फल से नहीं

राजा बोला—"भन्ते ! जो ये पांच आयतन (आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा) हैं, वे क्या नाना कर्मों के फल सें हुए हैं या एक कर्म के फल से ?"

"महाराज ! नाना कर्मों के फल से, एक कर्म के फल से नहीं।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई आदमी एक ही खेत में पांच प्रकार के बीजों को बोए, तो क्या उन अनेक बीजों के फल भी अनेक नहीं होंगे ?"

"हाँ भन्ते ! अनेक प्रकार के बीजों के फल भी अनेक प्रकार के होंगे।

"महाराज ! इसी तरह, जो ये पंच आयतन हैं वे दूसरे दूसरे कर्मों के फल हैं एक ही के नहीं।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

२. कर्म की प्रधानता

राजा बोला—"भन्ते ! क्या कारण है कि सभी आदमी एक ही तरह के नहीं होते ? कोई कम आयु वाले, कोई दीर्घ आयु वाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग, कोई भद्दे, कोई बड़े सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बड़े प्रभाव वाले, कोई धनी कोई नीचे कुल वाले, कोई ऊँचे कुल वाले, कोई बेवकूफ और कोई होशियार क्यों होते हैं ?"

स्थविर बोले—"महाराज ! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियाँ एक जैसी नहीं होती ? कोई खट्टी, कोई नमकीन, कोई तीती, कोई कड़ुई, कोई कसैली और कोई मीठी क्यों होती हैं ?"

"भन्ते ! मैं समझता हूँ कि बीजों के भिन्न भिन्न होने से ही बनस्पतियाँ भी भिन्न भिन्न होती हैं।"

"महाराज ! इसी तरह, सभी मनुष्यों के अपने अपने कर्म भिन्न भिन्न होने से वे सभी एक ही तरह के नहीं हैं। कोई कम आयु वाले, कोई दीर्घ आयु वाले होते हैं। महाराज ! भगवान् ने भी कहा है—"हे मानव ! सभी जीव अपने कर्मों के फल ही का भोग करते हैं, सभी जीव अपने कर्मों के आप मालिक है, अपने कर्मों के

अनुसार ही नाना योनियों में उत्पन्न होते हैं, अपना कर्म ही अपना बन्धु है, अपना कर्म ही अपना आश्रय है, कर्म ही से लोग ऊँचे और नीचे हुए हैं।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

३. प्रयत्न करना चाहिये

राजा बोला—"भन्ते ! आपने पहले कहा है—इस दुःख से छूटने और नये दुःख नहीं उत्पन्न होने देने के लिए ही हम लोगों को प्रव्रज्या होती है।"

"हाँ, ऐसा कहा।"

"भन्ते ! किंतु यह प्रव्रज्या पूर्व जन्म के कर्मों के फल से होती है या इसके लिए इसी जन्म में प्रयत्न किया जा सकता है ?"

स्थविर बोले—"महाराज ! जो कुछ करना बाकी है उसे पूरा करने के लिए इस जन्म में प्रयत्न किया जा सकता है, पूर्व जन्म के कर्मों का फल तो आप ही होता है।"

१—"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! जब आपको प्यास लगती है तब क्या आप कुएँ या तालाब खुदवाने लगते हैं—पानी ले कर पीऊँगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह, जो कुछ करना बाकी है उसे पूरा करने के लिए इस जन्म में प्रयत्न किया जा सकता है, पूर्व जन्म के कर्मों का फल तो आप हो होता है।"

२—"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! क्या आप भूख लगने पर भात खाने के लिए खेत जोतवाना धान रोपवाना और कटवाना आरम्भ करते हैं ?"

"नहीं भन्ते।"

"महाराज ! इसी तरह, जो कुछ करना बाकी है उसे पूरा करने के लिए. ।"

३—"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! क्या किसी के लड़ाई छिड़ जाने पर आप खाई खुदाने लगते हैं, प्राकार बनवाने लगते हैं, फाटक बनवाने लगते हैं, अटारी उठवाने लगते हैं, सेना के लिए रसद जमा करने लगते हैं, हाथी, घोड़े, रथ, धनुष और तलवार तैयार करने लगते हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह जो कुछ करना बाकी है....।"

भगवान् ने भी कहा है :-

"समय आ जाने पर बुद्धिमानों को वही काम करना चाहिए जिनमें अपना हित समझें। उन मूर्ख गाड़ीवानों को तरह न होकर, दृढ़ता के साथ अपने काम में डटे रहना चाहिये।"

"जिस तरह, वे गाड़ीवान बड़ी और बराबर सड़क को छोड़ ऊभड़ खाभड़ रास्ते में पड़ गाड़ी के अक्ष के टूट जाने से विपत्ति में पड़ गए। इसी तरह धर्म को छोड़, अधर्म में पड़ मूर्ख लोग मृत्यु के मुख में आकर हतोत्साह हो शोक करते हैं।"

"भन्ते ! बहुत ठीक।"

४. स्वाभाविक आग और नरक की आग

राजा बोला-"भन्ते ! आप लोग कहते हैं-स्वाभाविक आग से नरक की आग कहीं अधिक तेज है। एक छोटा कंकड़ भी स्वाभाविक आग में डाल कर दिन भर फुँकते रहने से भी नहीं गलता; किंतु नरक की आग में पड़ कर बड़े बड़े चट्टान भी एक क्षण ही में गल जाते हैं। -इसे मैं बिलकुल नहीं समझता। आप लोग ऐसा भी कहते हैं-जो जीव वहाँ उत्पन्न होते हैं वे उस नरक की आग में हजारों वर्ष तक पकते रहते हैं किंतु नहीं गलते।-इस बात को भी मैं बिलकुल नहीं समझता।"

१-स्थविर बोले-"महाराज ! क्या, मकर, कुम्भीर, कछुए, मोर, और कबूतर के मादे कड़े पत्थर के कंकड़ों को नहीं चुग जाती ?"

"हाँ भन्ते ! चुग जाती हैं।"

"क्या वे कंकड़ उनके पेट में जा कर नहीं पच जाते ?"

"हाँ भन्ते ! पच जाते हैं।"

"उनके पेट में जो बच्चे हैं क्या वे भी पच जाते हैं ?"

"नहीं भन्ते ! बच्चे नहीं पच जाते।"

"सो क्यों ?"

"भन्ते ! मैं समझता हूँ कि अपने कर्मों के वैसा होने से वे नहीं पच जाते।"

"महाराज ! इसी तरह अपने कर्मों के वैसे होने से नरक में उत्पन्न होने वाले जीव वहाँ की आग में हजारों वर्ष तक पकते रहते हैं किंतु नहीं गलते। वहीं उत्पन्न होते हैं, वहीं बढ़ते हैं, और वहीं मर भी जाते हैं।"

भगवान् ने कहा भी है–"तब तक वे उस नरक से नहीं छूटते, जब तक उनके पाप नहीं खतम होते।"

२–"कृपया फिर भी उदाहरण देकर समझावें।"

"महाराज जो मादे सिंह, बाघ, चीते और कुत्तियाँ हैं वे कड़ी कड़ी हड्डियाँ तथा कड़े कड़े मांस–पिण्ड़ों को नहीं चबा जाती हैं ?"

"हाँ भन्ते ! चबा जाती हैं और वे सब पच जाते हैं किन्तु उनके पेट के बच्चे नहीं पचते।"

"सो क्यों ?"

"भन्ते मैं समझता हूँ कि अपने कर्मों के वैसे होने से वे नहीं पच जाते।"

"महाराज ! इसी तरह, अपने कर्मों के वैसे होने से नरक में उत्पन्न होने वाले जीव वहाँ की आग में हजारों वर्ष तक पकते रहते हैं, किंतु नहीं गलते। वहीं उत्पन्न होते हैं, वहीं बढ़ते हैं, और वहीं मर भी जाते हैं।"

३–"कृपया भी उदावरण देकर समझावें।"

"महाराज ! क्या सुकुमार यवन स्त्रियाँ, सुकुमार क्षत्राणियाँ, सुकुमार ब्राह्मणियाँ और सुकुमार वैश्य स्त्रियाँ कड़े कड़े पदार्थ और मांस नहीं खातीं ?"

"हाँ भन्ते। खाती हैं।"

"महाराज ! उनके भीतर पेट में जाकर कड़ी कड़ीं चीजें नहीं पच जातीं ?"

"हाँ भन्ते ! पच जाती हैं किन्तु उनके गर्भ नहीं पचते।"

"सो क्यों ?"

"महाराज मैं समझता हूँ कि अपने कर्मों के वैसे होने से वे नहीं पचते।"

"महाराज। इसी तरह, अपने कर्मों के वैसे होने से नरक में उत्पन्न होने वाले जीव वहाँ की आग में हजारों वर्ष तक पकते रहते हैं, किंतु नहीं गलते। वहीं उत्पन्न होते हैं, वहीं बढ़ते हैं और वहीं मर भी जाते हैं।"

"भगवान् ने कहा भी है–" तब तक वे नरक से नहीं छूटते हैं जब तक उनके पाप खतम नहीं होते।"

"भन्ते आपने ठीक समझाया ।"

५. पृथ्वी किस पर ठहरी है

राजा बोला—"भन्ते ! आप लोग कहते हैं कि यह पृथ्वी पानी पर ठहरी हुई है, पानी हवा पर, और हवा आकाश पर ठहरी हुई है। इसे भी मैं नहीं मानता।"

स्थविर ने धम्मकरक (गडुये) में पानी लेकर राजा को बतलाया—"महाराज जिस तरह यह पानी हवा पर ठहरा हुआ है उसी तरह वह पानी भी हवा पर ठहरा है।"

"भन्ते ! बहुत ठीक।"

६. निरोध और निर्वाण

राजा बोला—"भन्ते ! क्या निरोध हो जाना ही निर्वाण है ?"

"हाँ महाराज ! निरोध हो जाना (=बन्द हो जाना) ही निर्वाण है।"

"भन्ते ! निरोध हो जाना ही निर्वाण कैसे है ?"

"महाराज ! सभी संसारी अज्ञानी जीव इन्द्रियों और विषयों के उपभोग में लगे रहते हैं, उसी में आनन्द लेते हैं और उसी में डूबे रहते हैं। वे उसी की धारा में पड़े रहते हैं; बार बार जन्म लेते, बूढ़े होते, मरते, शोक करते, रोते पीटते, दुःख, बेचैनी और परेशानी से नहीं छूटते हैं। दुःख ही दुःख में पड़े रहते हैं।"

"महाराज ! किंतु ज्ञानी आर्यश्रावक जन इन्द्रियों और विषयों के उपभोग में नहीं लगे रहते, उसमें आनन्द नहीं लेते, और उसी में नहीं डूबे रहते। इससे उनकी तृष्णा का निरोध (= बन्द) हो जाता है। तृष्णा के निरोध हो जाने से उपादान का निरोध हो जाता है। उपादान के निरोध से भव का निरोध हो जाता है। भव के निरोध होने से जन्म लेना बन्द हो जाता है। पुनर्जन्म के बंद होने से बूढ़ा होना, मरना, शोक, रोना, पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी सभी दुःख, रुक जाते हैं। महाराज ! इस तरह निरोध हो जाना ही निर्वाण है।"

७. कौन निर्वाण पायेंगे ?

राजा बोला—"भन्ते ! क्या सभी जीव निर्वाण प्राप्त करेंगे ?"

"नहीं महाराज ! सभी निर्वाण नहीं पायेंगे। जो पुण्य करने वाले, स्वीकार करने योग्य धर्मों को ही मानने वाले, जानने योग्य धर्मों को जानने वाले, अनुचित

धर्मों को छोड़ देने वाले, अभ्यास में लाने योग्य धर्मों को अभ्यास में लाने वाले, और साक्षात्कार करने योग्य धर्मों को साक्षात् करने वाले हैं; वे ही निर्वाण पाते हैं।"

"भन्ते बहुत अच्छा।"

८. निर्वाण नहीं पाने वाले भी जान सकते हैं कि यह सुख है

राजा बोला—"भन्ते ! जो निर्वाण नही पाता क्या वह जानता है कि निर्वाण सुख है ?"

"हाँ महाराज ! जो निर्वाण नहीं पाता, वह भी जानता है कि निर्वाण सुख है।"

"भन्ते ! स्वयं उसे नहीं पाकार कैसे जानता है कि वह सुख है ?"

"महाराज ! जिनके हाथ या पैर कभी काटे नहीं गए, वे क्या जानते हैं कि हाथ या पैर के काटे जाने से दुःख होता है ?"

"हाँ भन्ते ! जानते हैं।"

"कैसे जानते हैं ?"

"भन्ते ! हाथ या पैर काटे गए दूसरे लोगों के रोने पीटने को सुन कर जानते हैं कि इसमें दुःख होता है।"

"महाराज ! इसी तरह, निर्वाण पाए हुए लोगों के संतोष और प्रीतिपूर्ण वाक्यों को सुन कर, वे भी जिन्होंने इसे नहीं पाया है, जान सकते हैं कि निर्वाण सुख है।"

"भन्ते ! ठीक समझाया।"

पहला वर्ग समाप्त

---

९. बुद्ध के होने में शंका

राजा बोला—"भन्ते ! आपने भगवान् बुद्ध को देखा है ?"

"नहीं महाराज !"

"क्या आपके आचार्यों ने बुद्ध को देखा है ?"

"नहीं महाराज !"

"भन्ते ! तब भगवान् बुद्ध हुए ही नहीं ?"

"महाराज ! हिमालय पर्वत पर आपने 'ऊहा' नाम की नदी को देखा है ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्या आपके पिता ने उसे देखा था ?"

"नहीं भन्ते ?"

"महाराज ! तो क्या 'ऊहा' नदी नहीं है ?"

"है भन्ते ! यद्यपि मैं या मेरे पिता ने उसे नही देखा; तो भी वह नदी है।"

"महाराज ! उसी तरह, यद्यपि मैं या मेरे आचार्यों ने भगवान् बुद्ध को नहीं देखा, तो भी वे हुए हैं।"

"भन्ते ! ठीक समझाया।"

१०. भगवान् अनुत्तर हैं

राजा बोला—"भन्ते ! क्या भगवान् बुद्ध अनुत्तर (परम श्रेष्ठ) हैं ?"

"हाँ महाराज ! भगवान् अनुत्तर हैं।"

"भन्ते ! कैसे आप उन्हें बिना देखे भी जानते हैं कि वे अनुत्तर हैं ?"

"महाराज ! जिन्होंने महासमुद्र को नहीं देखा, क्या वे नहीं जानते हैं कि वह बहुत विशाल, गम्भीर, और अथाह है, जिसमें गंगा, जमुना, अचिरवती, सरयू (सरभू) और मही (गंडक) पाँचों बड़ी बड़ी नदियाँ जाकर गिरती हैं तो भी वह न कम न बेशी होता है ?"

"हाँ भन्ते ! जानते हैं।"

"महाराज ! इसी तरह, निर्वाण प्राप्त कर लिए उनके बड़े बड़े श्रावकों को देखकर जानता हूँ कि भगवान् अनुत्तर हैं।"

"भन्ते ! ठीक हैं।"

---

११. बुद्ध के अनुत्तर होने को जानना

राजा बोला—"भन्ते ! क्या यह जाना जा सकता है कि बुद्ध अनुत्तर हैं ?"

"हाँ महाराज ! जाना जा सकता है।"

"भन्ते किस तरह ?"

"महाराज ! अतीत काल में एक बड़े भारी लेखक हो गए हैं जिनका नाम तिष्य स्थविर था। उनके गुजरे बहुत साल हो गए, तो भी लोग उन्हें कैसे जानते हैं?"

"भन्ते ! उनके लिखे हुए को देखकर ।"

"महाराज ! उसी तरह, जो धर्म को जानता है वह भगवान् को जानता है, क्योंकि भगवान् ही ने उसका उपदेश किया है ।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा ।"

१२. धर्म को जानना

राजा बोला– "भन्ते ! आपने धर्म को जान लिया है ?"

"महाराज ! भगवान् बुद्ध के उपदेशों के अनुसार श्रावकों को धर्म समझने का यत्न करना चाहिए ।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा ।"

१३. बिना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है

राजा बोला–"भन्ते ! यदि संक्रमण[1] नहीं होता हैं तो पुनर्जन्म कैसे होता है ?"

"हाँ महाराज ! बिना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है ।"

१–"भन्ते ! सो कैसे होता है ? कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! यदि कोई एक बत्ती से दूसरी बत्ती जला ले तो क्या यहाँ एक बत्ती दूसरी में संक्रमण करती है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह, बिना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है ।"

२–"कृपया फिर उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! क्या आपको कोई श्लोक याद है जिसे आपने अपने गुरू के मुख से सीखा था ?"

"हाँ याद है ।"

"महाराज ! क्या वह श्लोक आचार्य के मुख से निकल कर आप में घुस गया है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह बिना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है ।"

"भन्ते ! आपने अच्छा समझाया ।"

---

१. आत्मा का एक शरीर से निकल कर दूसरे में जाना

१४. परमार्थ में कोई ज्ञाता नहीं है

राजा बोला—"भन्ते ! कोई जानने वाला (=ज्ञाता=पुरुष=आत्मा) है या नहीं ?"

स्थविर बोले—"महाराज ! परमार्थ में ऐसा जानने वाला कोई नहीं है।"

"भन्ते ! ठीक है।"

१५. पुनर्जन्म के विषय में

राजा बोला—"भन्ते ! ऐसा कोई जीव है जो इस शरीर से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है ?"

"नहीं महाराज !"

"भन्ते ! यदि इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाने वाला कोई नहीं है, तब तो वह अपने पाप-कर्मों से मुक्त हो गया।"

"हाँ महाराज ! यदि उसका फिर भी जन्म नहीं हो तो अलबत्ता वह अपने पाप-कर्मों से मुक्त हो गया और यदि फिर भी वह जन्म ग्रहण करे तो मुक्त नहीं हुआ।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! यदि कोई आदमी किसी दूसरे का आम चुरा ले तो दण्ड का भागी होगा या नहीं ?"

"हाँ भन्ते ! होगा।"

"महाराज ! उस आम को तो उसने रोपा नहीं था जिसे इसने लिया, फिर दण्ड का भागी कैसे होगा ?"

"भन्ते ! उसके रोपे हुये आम से ही यह भी पैदा हुआ, इसलिए वह दण्ड का भागी होगा।"

"महाराज ! इसी तरह, एक पुरुष इस नाम-रूप से अच्छे और बुरे कर्मों को करता है। उन कर्मों के प्रभाव से दूसरा नाम-रूप जन्म लेता है। इसलि वह अपने पाप कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

१६. कर्म-फल के विषय में

राजा बोला—"भन्ते ! जब एक नाम-रूप से अच्छे या बुरे कर्म किये जाते हैं तो वे कर्म कहाँ ठहरते हैं ?"

"महाराज ! कभी भी पीछा नहीं छोड़ने वाली छाया की भांति वे कर्म उसका पीछा करते हैं।"

"भन्ते ! क्या वे कर्म दिखाए जा सकते हैं– यहाँ वे ठहरे हैं ?"

"महाराज ! वे इस तरह दिखाये नहीं जा सकते।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! क्या कोई वृक्ष के उन फलों को दिखा सकता है जो अभी लगे ही नहीं–वे यहाँ हैं, वे वहाँ हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह कर्मों के इस लगातार कभी नहीं टूटने वाले प्रवाह में वे नहीं दिखाए जा सकते–ये यहाँ हैं ?"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

१७. जन्म लेने का ज्ञान होना

राजा बोला–"भन्ते ! जो जन्म लेता है वह क्या पहले से जानता कि मैं जन्म लूँगा ?"

"हाँ महाराज ! वह जानता है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! क्या कोई किसान बीजों को बोकर अच्छी वृष्टि हो जाने के बाद नहीं जानता कि अच्छी फसल लगेगी ?"

"हाँ भन्ते ! जानता है।"

"महाराज इसी तरह जो जन्म लेता है वह पहले से इस बात को जानता है कि मैं जन्म लूँगा।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

१८. निर्वाण के बाद व्यक्तित्व का सर्वथा लोप हो जाता है

राजा बोला–"भन्ते ! क्या बुद्ध सचमुच हुए हैं ?"

"हाँ महाराज ! हुए हैं।"

भन्ते ! क्या आप दिखा सकते हैं वे कहाँ हैं ?"

"महाराज ! भगवान् परम निर्वाण को प्राप्त हो गए हैं, जिसके बाद उनके व्यक्तित्व को बनाए रखने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता। इसलिए वे अब दिखाए नहीं जा सकते।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! क्या जलती हुई आग की लपट जो होकर बुझ गई, दिखाई जा सकती है–यह यहाँ है ?"

"नहीं भन्ते ! वह लपट तो बुझ गई।"

"महाराज ! इसी तरह, भगवान् परम निर्वाण को प्राप्त हो गए हैं, जिनके बाद उनके व्यक्तित्व के बनाये रखने के लिये कुछ भी नहीं रह जाता। इसलिए वे अब दिखाए नहीं जा सकते।"

हाँ, वे अपने धर्म रूपी शरीर से दिखाए जा सकते हैं। उनका बताया धर्म ही उनके विषय में बता रहा है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

दूसरा वर्ग समाप्त

---

१९. हम लोगों का शरीर एक बड़ा फोड़ा है

राजा बोला–"भन्ते ! भिक्षुओं को अपना शरीर प्यारा होता है या नहीं ?"

"नही महाराज ! वे शरीर से प्यार नहीं रखते।"

"भन्ते ! तब आप अपने शरीर की इतनी देखरेख और आदर क्यों करते हैं ?"

"महाराज ! लड़ाई में जाने पर कभी आपको तीर लगता है या नहीं ?"

"हाँ लगता है।"

"महाराज ! आप उस घाव में क्या मलहम लगवाते हैं, तेल डलवाते हैं, और उसे पतली पट्टी से बंधवा देते हैं ?"

"हाँ भन्ते ! हम ऐसा करते हैं।"

"महाराज ! आपको अपना घाव क्या बहुत प्यारा होता है जो आप उसमें मलहम लगवाते, तेल डलवाते और उसे पतली पट्टी से बंधवा दे हैं ?"

"भन्ते ! मुझे घाव प्यारा नहीं है, किन्तु नये माँस के बढ़ने के लिए ही ये उपचार किए जाते हैं।"

"महाराज ! इसी तरह, भिक्षुओं को अपना शरीर प्यारा नहीं है, किंतु वे बिना इसमें आसक्त हुए ब्रह्मचर्य पालन करने ही के लिए इसकी इतनी देखरेख करते हैं। भगवान् ने भी शरीर को फोड़ा के ऐसा बताया है।" उन्होंने कहा हैं :-

"गीले चर्म से ढ़का हुआ यह शरीर नव मुंह वाला एक बड़ा फोड़ा है जिनसे सदा दुर्गन्ध करने वाला मैल बहता रहता है।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

२०. भगवान् बुद्ध सर्वज्ञ थे

राजा बोला-"भन्ते ! क्या बुद्ध सर्वज्ञ और सब कुछ देखने वाले है ?"

"हाँ महाराज !"

"भन्ते ! तब उन्होंने क्यों क्रमशः जैसे जैसे उनकी आवश्यकता हुई वैसे वैसे शिक्षापदों (विनय) का उपदेश किया ? एक ही बार सारे विनय का उपदेश क्यों नहीं कर दिया ?"

"महाराज ! आपका कोई वैद्य है जो सभी दवाइयों को जानता है ?"

"हाँ भन्ते ! है।"

"महाराज ! क्या वह बीमार पड़ने ही पर दवा देता है, या बिना बीमार पड़े ही ?"

"भन्ते ! बीमार पड़ने पर ही वह दवा देता है बिना बीमार पड़े नहीं।"

"महाराज ! इसी तरह, भगवान् सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा होने पर भी बिना उचित अवसर आए अपने श्रावकों को शिक्षापद का उपदेश नहीं देते थे। उचित अवसर आने पर ही वे उन (शिक्षाओं) को जीवन भर पालन करने का उपदेश देते थ।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

२१. बुद्ध में महापुरुषों के ३२ लक्षण

राजा बोला-"भन्ते ! क्या बुद्ध सचमुच महापुरुषों के ३२ लक्षणों से युक्त ८० अनुव्यञ्जनों से शोभित और सुवर्ण के वर्ण वाले थे तथा उनसे एक व्याम भर चारों ओर प्रकाश फैलता रहता था ?"[1]

---

१. देखो दीघनिकाय 'लक्षण-सूत्र'

"हाँ महाराज ! वे सचमुच वैसे थे।"

"भन्ते ! क्या उनके माँ-बाप भी वैसे ही थे ?"

"नहीं महाराज ! वे वैसे नहीं थे।"

"भन्ते ! तब बुद्ध भी वैसे नहीं हो सकते, क्योंकि लड़का या तो अपनी माँ के समान या अपने पिता के समान होता है।"

स्थविर बोले–"महाराज ! क्या आप कमल के फूल को जानते है ?"

"हाँ भन्ते ! जानता हूँ।"

"वह कहाँ उत्पन्न होता है ?"

"कीचड़ में उत्पन्न होता हैं और पानी में बढ़ता है।"

"महाराज ! तो क्या कमल का फूल अपने रंग, गन्ध और रस में कीचड़ के ऐसा होता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"तो क्या पानी के ऐसा ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह यद्यपि भगवान् वैसे थे किंतु उनके माँ–बाप वैसे नहीं थे।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

२२. भगवान बुद्ध का ब्रह्मचर्य

राजा बोला–"भन्ते ! भगवान बुद्ध ब्रह्मचारी थे न ?"

"हाँ महाराज ! वे ब्रह्मचारी थे।"

"भन्ते ! तब तो वे ब्रह्मा के शिष्य हुए ?

"महाराज ! क्या आपका कोई अपना राजकीय हाथी है ?"

"हाँ भन्ते ! है।"

"महाराज ! क्या वह हाथी कहीं कभी भी क्रौंच-नाद करता है ?"

"हाँ भन्ते ! क्रौंच–नाद करता है।"

"महाराज ! तब तो वह क्रौंचों (पक्षी विशेष) का शिष्य हुआ ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! अच्छा, आप बतावे–ब्रह्मा को बुद्धि है या नहीं ?"

"भन्ते ! बुद्धि है।"

"महाराज ! तब ब्रह्मा भगवान बुद्ध का शिष्य हुआ।"

"भन्ते नागसेन ! आपने खूब कहा।"

२३. बुद्धकी उपसम्पदा

राजा बोला—"भन्ते ! क्या उपसम्पदा (भिक्षु बनने का संस्कार) अच्छी चीज है ?"

"हाँ महाराज ! उपसम्पदा अच्छी चीज है।"

"भन्ते ! बुद्ध की उपसपम्दा हुई थी या नहीं ?"

"महाराज ! बोधि[1] वृक्ष के नीचे जो भगवान् ने बुद्धत्व पाया था वही उनकी उपसम्पदा थी। उन्होंने दूसरों के हाथ उपसम्पदा नहीं पाई थी जैसे कि उनके श्रावक लोग पाते हैं। भगवान् ही ने इसका नियम बना दिया है—जो हम लोगों के लिए जीवन भर अलंघनीय हैं।"

"भन्ते ! आप ठीक कहते हैं।"

२४. गर्म और ठंढे अश्रु

राजा बोला—"भन्ते ! जो अपनी माँ के मर जाने से रोता है और जो केवल धर्म के प्रेम से रोता है, उन दोनों के अश्रुओं में कौन ठीक है और कौन नहीं ?"

"महाराज ! एक अश्रु राग, द्वेष और मोह के कारण गरम और मलिन होता है, और दूसरा तथा मन के पवित्र होने से ठंढ़ा और निर्मल होता है। महाराज ! जो ठंढ़ा है वह ठीक और जो गरम है वह बे ठीक।"

"भन्ते ! आपने अच्छा समझाया।"

२५. रागी और विरागी में भेद

राजा बोला—"भन्ते ! राग वाले और बिना राग वाले चित्तों में क्या भेद है ?"

"महाराज ! उनमें एक तो तृष्णा में डूबा है और दूसरा नहीं।"

"भन्ते ! इसके क्या माने हैं ?"

"महाराज ! उनमें चाह लगी है और दूसरे को नहीं।"

"भन्ते ! मैं तो देखता हूँ कि राग वाले और बिना राग वाले दोनों एक ही तरह खाने की अच्छी चीजों को चाहते हैं कोई बुरी को नहीं।"

---

१. बोध-गया का वह पीपल वृक्ष जिसके नीचें बैठकर भगवान् ने बुधत्व पाया था बोधिवृक्ष कहलाता है।

"महाराज ! राग वाले पुरुष भोजन के स्वाद को लेते हैं और उसमें राग भी करते हैं; बिना राग वाले पुरुष भोजन के स्वाद को लेते हैं सही किन्तु उसमें राग नहीं करते।"

"भन्ते ! आपने बड़ा अच्छा समझाया।"

२६. प्रज्ञा कहाँ रहती है

राजा बोला–"भन्ते ! प्रज्ञा कहाँ रहती है ?"

"महाराज ! कहीं भी नहीं।"

"भन्ते ! तब प्रज्ञा है ही नहीं।

"महाराज ! हवा कहाँ रहती है ?"

"भन्ते ! कहीं भी नहीं।"

"महाराज ! तो हवा है ही नहीं।"

"भन्ते ! आपने अच्छा जवाब दिया।"

२७. संसार क्या है

राजा बोला–"भन्ते ! आप लोग जो 'संसार, संसार' कहा करते हैं, वह संसार क्या है ?"

"महाराज ! यहाँ जन्म ले यहीं मरता हैं, यहाँ मर कहीं दूसरी जगह पैदा होता है–यही संसार है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! कोई आदमी पके आम को खा उसकी गुठली रोप दे। उससे एक बड़ा वृक्ष पैदा होवे और उसमें फल लगे। तब, वह आदमी उसके भी पके फल को खा गुठली रोप दे। उससे भी एक बड़ा वृक्ष पैदा हो और उसमें भी फल लगे। इसी प्रकार इसी प्रकार इस सिलसिले के अन्त का कहीं पता नहीं।"

"महाराज ! इसी तरह यहाँ पैदा हो यहीं मरता हैं। यही संसार हैं।

"भन्ते ! ठीक समझाया।"

२८. स्मृति से स्मरण होता है

राजा बोला–"भन्ते ! बीत गई बातों को हम लोग कैसे स्मरण करते हैं ?"

"स्मृति से।"

"भन्ते ! स्मृति से नहीं, चित्त से न स्मरण करते हैं ?"

"महाराज ! क्या आपने कभी किसी बात को भुला दिया है जिसे स्वयं ही पहले कर चुके हैं ?"

"हाँ भन्ते !"

"महाराज ! उस समय क्या आप बिना चित्त के हो गये थे ?"

"नहीं भन्ते ! उस समय स्मृति नहीं थी।"

"महाराज ! तब आपने कैसे कहा–चित्त से स्मरण करते है, स्मृति से नहीं ?"

"भन्ते ! अब मैं ठीक समझ गया।"

२९. स्मृति की उत्पत्ति

राजा बोला–"भन्ते ! सभी स्मृतियाँ मन से ही उत्पन्न होती हैं या बाहर की चीजों से भी ?"

"महाराज ! मन से भी उत्पन्न होतीं हैं और बाहर की चीजों से भी।"

"भन्ते ! किन्तु सभी स्मृतियाँ मन से ही होती हैं बाहर से नहीं।"

"महाराज ! यदि बाहर से स्मृतियाँ नहीं होती तो शिल्पों को दूसरे से सीखना, पढ़ना और गुरु सभी निरर्थक हो जायेंगें। किन्तु एसी बात नहीं हैं।"

तीसरा वर्ग समाप्त

---

३०. सोलह प्रकारों से स्मृति की उत्पत्ति

राजा बोला–"भन्ते ! कितने प्रकारों से स्मृति उत्पन्न होती है ?"

"महाराज ! सोलह प्रकारों से स्मृति उत्पन्न होती है।"

"वे सोलह प्रकार कौनसे हैं ?"

(१) अभिज्ञा (जानने से स्मृति उत्पन्न होती है)।

"कैसे ?"

"जैसे आयुष्मान् आनन्द, उपासिका खुज्जुत्तरा या कोई और जिनकी स्मृति अच्छी थी, अपने पूर्व जन्मों की बातों को भी स्मरण करते थे।"

(२) बाहर की बातों से भी स्मृति उत्पन्न होती है।

"कैसे ?"

"जैसे, किसी भुलक्कड़ आदमी को याद [1]दिलाने के लिए कोई दूसरा उसे गांठ बाँध दे।"

(३) किसी बड़ी बात के घटने पर भी स्मृति उत्पन्न होती है।

"कैसे ?"

"जैसे, राजा के अभिषेक की तैयारियों को या अपने स्रोत आपत्ति फल पर प्रतिष्ठित होने की बात को सभी याद रखते हैं। ये बड़ी घटनायें हैं।"

(४) कोई आनन्द पाने से भी उसकी बात स्मरण हो आती है।

"कैसे ?"

"फलानी जगह फलानी बात में बड़ा आनन्द आया था–ऐसी जो याद होती है।"

(५) कोई दुःख पाने से भी उसकी बात स्मरण हो आती है।

"कैसे ?"

"फलानी जगह फलानी बात में बहुत दुःख झेलना पड़ा था–ऐसी जो याद होती है।"

(६) दो वस्तुओं में समानता होने से एक को देखने पर दूसरी की भी स्मृति हो आती है।

',कैसे ?"

"जैसे माँ, बाप, भाई या बहन के समान किसी दूसरे को देख उनकी स्मृति हो आती है; अथवा किसी ऊँट, या बैल, या गदहे को देख उन्हीं के समान किसी दूसरे ऊँट या बैल या गदहे की याद आ जाती है।"

(७) दो असमान वस्तुओं में एक को देखने से भी स्मृति हो आती है।

"कैसे ?"

"जैसे, फलाने का ऐसा रूप, ऐसा शब्द, ऐसा गन्ध, ऐसा रस, ऐसा स्पर्श है–इत्यादि की याद होती है।

---

१. 'निबन्धन्ति' का अर्थ 'बतलाते रहना भी हो सकता है।

(८) दूसरे के कहने से स्मृति हो आती है।

"कैसे ?"

"जैसे, किसी दूसरे के कहने से किसी बात की याद हो आती है।"

(९) किसी चिन्ह को देखकर स्मृति हो आती है।

"कैसे ?"

"जैसे', किसी चिन्ह को देख कर किसी खास बैल को पहचान लिया जात है।"

(१०) भूली हुई बात कोशिश करने से याद हो आती है।

"कैसे ?"

"जैसे कोई भुलक्कड़ आदमी किसी दूसरे के 'याद करो, याद करो' कहने पर कोशिश करता है और उसे उसकी याद हो आती है।"

(११) विचार करने से भी स्मृति हो आती है।

"कैसे ?"

"जैसे, जो पुरुष लेख लिखने में कुशल है वह झट जान जाता है कि इस अक्षर के बाद यह अक्षर आना चाहिए।"

(१२) हिसाब लगाने से भी किसी बात की स्मृति हो आती है।

"कैसे ?"

"जैसे, हिसाब को जानने वाले बड़े बड़े हिसाब को भी लगा लेते हैं।"

(१३) कण्ठस्थ कर ली गई बात भी झट याद हो आती।

"कैसे ?"

"जैसे लोग बार बार रट कर किसी चीज को कण्ठ कर लेते हैं।"

(१४) भावना करने से भी स्मृति हो आती है।

"कैसे ?"

"जैसे, भिक्षु भावना के बल से अपने अनेक पूर्व जन्मों की बातें याद करता है। एक जन्म की बातें, दो जन्मों की बातें, आकार, प्रकार से याद करता है।"[1]

(१५) किताब को देखने से भी किसी बात की स्मृति हो आती है।

"कैसे ?"

"जैसे, अधिवक्ता किसी खास कानून को ठीक से याद करने के लिए कहता है "फलानी किताब तो ले आओ।" किताब को देखने पर उसे वह कानून याद हो आता है।"

---

१. देखो दीघनिकाय 'ब्रह्मजाल-सूत्र'।

(१६) धरोहर में रक्खी गई चीजों को देखकर उनकी शर्तें याद हो आती है।

(१७) पहले अनुभव कर लेने के कारण उसकी स्मृति हो आती है।

"कैसे ?"

"देखी गई चीजों के रूप की स्मृति हो आती है, सुने गए शब्दों की स्मृति हो आती है, सूंघे गए गंधों की स्मृति हो आती है, चखे गए स्वादों की स्मृति हो आती हैं, स्पर्श किए गए स्पर्शों की स्मृति हो आती है, जाने हुए धर्मों की स्मृति हो आती है।"

"महाराज ! इन्हीं १६ प्रकारों से स्मृति हो आती है।"[2]

३१. मृत्यु के समय बुद्ध के स्मरण करने मात्र से देवत्व लाभ

राजा बोला—"भन्ते ! आप लोग कहते हैं कि सौ वर्षों तक भी पापमय जीवन बिताने पर यदि मरने के समय 'बुद्ध' की स्मृति हो जाय तो वह देवलोक में जाकर उत्पन्न होता है। मैं इसे नहीं मानता। आप लोग ऐसा भी कहते हैं कि एक जीव को भी मारने से वह नरक में उत्पन्न होता है। इसे भी मैं नहीं मानता।"

"महाराज ! क्या एक छोटा पत्थर का टुकड़ा भी बिना नाव के पानी में तैर सकता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! और क्या सौ गाड़ी भी पत्थर के टुकड़े नाव पर लाद दिए जाने से पानी में नहीं तैर सकते ?"

"हाँ भन्ते ! तैर सकते हैं ?"

"महाराज ! सभी पुण्य कर्मों को नाव के ऐसा समझना चाहिए।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

३२. दुःख-प्रहाण के लिये उद्योग

राजा बोला—"भन्ते ! क्या आप लोग अतीत काल (भूत) के दुःखों का नाश करने के लिए उद्योग करते हैं ?"

"नहीं महाराज !"

---

२. सोलह प्रकार कहा है किंतु यथार्थ में सत्रह प्रकार हैं।

"तो क्या अनागत (भविष्यत्) काल के दुःखों का नाश करने के लिए उद्योग करते हैं ?"

"नहीं महाराज !"

"तो क्या वर्तमान काल के दुःखों का नाश करने लिए प्रयत्न करते हैं ?"

"नहीं महाराज !"

"यदि आप लोग अतीत, अनागत और वर्तमान तीनों में से किसी काल के भी दुःखों का नाश करने के लिए प्रयत्न नहीं करते, तो फिर किस लिए प्रयत्न करते हैं ?"

स्थविर बोले-"जिसमें यह दुःख रुक जाय और नया दुःख नहीं पैदा हो, इसी के लिये उद्योग करते हैं"।

"भन्ते ! क्या अनागत दुःख है ?"

"नहीं है महाराज !"

"भन्ते आप लोग बड़े पण्डित है जो उन दुःखों को नाश करने का उद्योग करते हैं, जो है ही नहीं।"

१-"महाराज ! क्या कभी आप के शत्रु राजा आप के विरुद्ध उठ खड़े हुए ?"

"हाँ भन्ते !"

"महाराज ! क्या आप उस समय खाई खुदवाने, प्राकार उठवाने, फाटक बनवाने, अगरी बँधवाने और रसद इकट्ठा करने लगे ?"

"नहीं भन्ते ! पहले से ही सभी चीजें तैयार थीं।"

"तो क्या महाराज ! आप उस समय हाथी, रथ की शिक्षा आरम्भ करते हैं ?"

"नहीं भन्ते ! वे सभी पहले से ही सीखे रहते है।"

"पहले ही से तैयार और सीखे क्यों रहते है ?"

"भन्ते ! अनागत काल में कभी होने वाले भय के बचाव के लिए।"

"महाराज ! क्या अनागत-भय (जो आया ही नहीं है) भी होता है ?"

"भन्ते ! नहीं होता है।"

"महाराज ! आप तो बड़े पण्डित हैं जो उस भय से बचने की तैयारी करते है जो है ही नहीं।"

२-"कृपया दूसरी उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! आप क्या प्यास लगने पर पानी के लिये कुँवा या तालब खुदवाने लगते हैं ?"

"नहीं भन्ते ! वह पहले से ही तैयार रहता है।"

"पहले से तैयार क्यों रहता है ?"

"अनागत काल की प्यास बुझाने के लिए।"

"यह कैसी बात करते हैं ! क्या अनागत काल की भी प्यास होती है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! तब तो आप बड़े पण्डित हैं जो उस प्यास को बुझाने की तैयारी करते हैं जो लगी ही नहीं है।"

३–"कृपया फिर उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! जब आप को भूख लगती है। (ऊपर ही के ऐसा समझ लेना चाहिए)

"भन्ते ! आपने खूब कहा।"

३३. ब्रह्मलोक यहाँ से कितनी दूर है

राजा बोला–"भन्ते ! यहाँ से ब्रह्मलोक कितनी दूर है ?"

"महाराज ! बहुत दूर है !! यदि घर के गुम्बज जितना बड़ा एक चट्टान वहाँ से छोड़ा जाय तो वह एक दिन रात में अड़तालीस हजार योजन चलते हुए चार महीने में यहां पहुँचेगा।"

"भन्ते ! आप तो भी कैसे कहते हैं कि कोई संयमी भिक्षु अपनी ऋद्धि के बल से बलवान् पुरुष की नाँई पसारी बाँह को समेटते और समेटी बाँह को पसारते ही जम्बूद्वीप में अन्तर्धान हो ब्रह्म लोक में प्रकट हो सकता है ? मैं इसे नहीं मानता कि इतनी जल्दी इतने सौ योजन पार करेगा।"

स्थविर बोले–"महाराज ! आप की जन्मभूमि कहाँ है ?"

"भन्ते ! अलसन्द नाम का एक द्वीप है जहाँ मेरा जन्म हुआ था।"

"महाराज ! यहाँ से अलसन्द कितनी दूर है ?"

"भन्ते ! दो सौ योजन !"

"महाराज ! अभी आपको कोई बात याद है जो आपने वहाँ की थी ?"

"हाँ याद है।"

"महाराज ! आप इतनी जल्दी दो सौ योजन चले गए ?"

"भन्ते ! मैं समझ गया।"

३४. मरकर दूसरी जगह उत्पन्न होने के लिए समय की आवश्यकता नहीं

राजा बोला—"भन्ते ! यदि कोई यहाँ मरकर ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हो, और कोई दूसरा यहाँ मरकर काश्मीर में उत्पन्न हो, तो दोनों में कौन पहले पहुँचेगा ?"

"महाराज ! दोनों साथ ही ।"

१—"कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! आपका जन्म किस नगर में हुआ था ?"

"भन्ते ! कलसी नाम का एक गाँव है वहीं मेरा जन्म हुआ था ।"

"यहाँ से कलसी गाँव कितनी दूर है ?"

"करीब दो सौ योजन ।"

"अच्छा यहाँ से काश्मीर कितनी दूर है ?"

"केवल बारह योजन ।"

"महाराज ! अब आप कलसी गाँव के विषय में याद करें ।"

"भन्ते ! किया ।"

"और, अब काश्मीर के विषय में याद करें ।"

"भन्ते ! याद किया ।"

"महाराज ! अब आप बतावें कि दोनों स्थानों में किसकी याद जल्दी आई ?"

"भन्ते ! दोनों स्थानों की याद एक ही तरह से बराबर देर में हुई ।"

"महाराज ! वैसे ही यहाँ मरकर ब्रह्मलोक या काश्मीर कहीं भी एक ही समान जन्म होता है ।"

२—"कृपया फिर भी उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! मड़राते हुए दो पक्षियों में एक आकर किसी ऊँचे वृक्ष पर बैठा और दूसरा किसी झाड़ी पर । यदि वे एक ही साथ बैठे तो किसकी छाया जमीन पर पहले आवेगी ?"

"भन्ते ! दोनों की छाया साथ आवेगी ।"

"महाराज ! इसी तरह, यदि कोई यहाँ मरकर ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हो,

और कोई दूसरा यहाँ मरकर काश्मीर में उत्पन्न हो तो वे दोनों साथ पहुँचेंगे।"

"भन्ते ! आपने ठीक समझाया।"

३५. बोध्यङ्ग के विषय में

राजा बोला—"भन्ते ! बोध्यङ्ग कितने है ?"

"सात हैं।"

"भन्ते ! कितने बोध्यङ्गों से धर्म का ज्ञान होता है ?"

"धर्मविचय सम्बोध्यङ्ग नामक एक ही (बोध्यंग) से हो सकता है।

"भन्ते ! तब सात किस लिए बताए गए हैं ?"

"महाराज ! यदि कोई तलवार म्यान में रखी रहे और नंगी नहीं की जाय तो क्या उससे जिसको चाहे काट सकते हैं ?"

"नही भन्ते !"

"महाराज ! उसी तरह, बिना धर्म-विचय सम्बोध्यङ्ग के दूसरे बोध्यङ्गों से कुछ भी धर्म-ज्ञान नहीं हो सकता।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

३६. पाप और पुण्य के विषय में

राजा बोला—"भन्ते ! पाप और पुण्य इन दोनों में कौन अधिक है ?"

"महाराज ! पुण्य अधिक है।"

कैसे ?"

"महाराज ! पाप करने वालों को बड़ा पश्चात्ताप होता है, और वे अपना पाप मान लेते हैं, इसलिए पाप नहीं बढ़ता। किन्तु पुण्य करने वाले को कोई भी पश्चात्ताप नहीं होता। कोई भी पश्चात्ताप नहीं होने से एक प्रमोद होता है, प्रमोद होने से प्रीति होती है, प्रीति पाए हुए मनुष्य का शरीर शान्त हो जाता है; शरीर शान्त हो जाने से सुख होता है, सुख होने से चित्त की समाधि होती है, और समाहित हो जाने से यथार्थज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार पुण्य अधिक ही होता जाता है।"

"महाराज ! कोई लंगड़ा और लूला आदमी भी यदि भगवान् को एक मुट्ठी कमल-फूल भेंट करे तो वह इक्यानबे कल्पों तक विनिपात (दुर्गति) को नहीं प्राप्त होगा।"

"महाराज ! इसीलिए कहा है कि पाप से पुण्य अधिक है।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

३७. जाने और अनजाने पाप करना

राजा बोला—"भन्ते जो जानते हुए पाप कर्म करता है और जो अनजाने कर बैठता है; उन दोनों में किसका पाप अधिक है ?"

स्थविर बोले— "महाराज ! जो बिना जाने पाप कर्म करता है उसी का पापा अधिक है।"

"भन्ते ! तब तो जो मेरे राजपुत्र या मन्त्री बिना जाने पाप करते हैं उनके लिए मुझे दुगना दण्ड देना चाहिए।"

"महाराज ! यदि कोई एक लोहे के दहकते लाल गोले को जानते हुए छुए और दूसरा उसे बिना जाने हुए छू दे; तो दोनों में कौन अधिक जलेगा ?"

"भन्ते ! जो बिना जाने छू दे वही।"

"महाराज ! इसी तरह जो बिना जाने पाप करता है, उसे अधिक पाप लगता है ?"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

३८. इसी शरीर से देवलोकों में जाना

राजा बोला—"भन्ते ! क्या ऐसा कोई है जो इसी शरीर से उत्तर-कुरु, ब्रह्मलोक या दूसरे चार द्वीपों में से कहीं जा सकता है ?"

"हाँ महाराज ! ऐसे भी लोग हैं ?"

"भन्ते ! वे कैसे जाते हैं ?"

"महाराज ! क्या आप पृथ्वी पर ही एक बित्ता या एक हाथ लाँघ सकते हैं ?"

"हाँ भन्ते ! मैं आठ हाथ भी लाँघ सकता हूँ।"

"महाराज ! आप आठ हाथ कैसे लाँघ लेते हैं ?"

"भन्ते ! मैं इस तरह मन में लाँघने को करता हूँ कि वहाँ जा कर गिरूँगा। मन में ऐसा लाते ही मेरा शरीर हलका मालूम होने लगता है और मैं लाँघ लेता हूँ।"

"महाराज ! इसी तरह, ऋद्धि पाया हुआ संयमी भिक्षु ऐसा चित्त उत्पन्न करता है जिससे वह आकाश में जा सकता है।"

"भन्ते ! ठीक है।"

३९. लम्बी हड्डियाँ

राजा बोला–"भन्ते ! आप लोग कहते हैं कि एक सौ योजन लम्बी भी हड्डियाँ हैं। उतने लम्बे तो वृक्ष भी नहीं हैं, हड्डियाँ कैसे हो सकती हैं ?"

"महाराज ! क्या आपने सुना है कि महासमुद्र में पांच सौ योजन लम्बी भी मछलियाँ हैं ?"

"हाँ भन्ते ! मैंने सुना है।"

"यदि ऐसी बात है तो क्या उनकी हड्डियाँ एक भी योजन लम्बी नहीं हो सकतीं ?"

"भन्ते ! हो सकती हैं।"

४०. आस्वास-प्रस्वास का निरोध

"भन्ते ! आप लोग ऐसा कहते हैं कि साँस के लेने और छोड़ने को रोक दिया जा सकता है ?"

"हाँ महाराज ! सचमुच रोक दिया जा सकता है।"

"भन्ते ! किस तरह ?"

"महाराज ! क्या आपने कभी किसी को खर्राटा लेते हुए सुना है ?"

"हाँ भन्ते ! सुना है।"

"महाराज ! यदि वह अपने शरीर को हिलावे या मोड़े तो क्या खर्राटा लेना कुछ रुक नहीं जाता।"

"हाँ भन्ते ! रुक जाता है।"

"महाराज ! जब उस अभावित-काय, आभावित-चित्त, अभावित-शील और अभावित-प्रज्ञा मनुष्य का खर्राटा लेना अपने शरीर के सिकोड़ने या मोड़ने भर से रुक जाता है, तो इस में क्या आश्चर्य है। यदि भावितकाय, भावित-चित्त, भावित-शील और भावित-प्रज्ञा भिक्षु का स्वास लेना और छोड़ना चौथे ध्यान में पहुँच कर रुक जाय।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा।"

४१. समुद्र क्यों नाम पड़ा

राजा बोला–"भन्ते ! सभी 'समुद्र' 'समुद्र' कहा करते हैं। जल की उस राशि का नाम 'समुद्र' क्यों पडा ?"

स्थविर बोले "महाराज ! क्योंकि उसमें सम (बराबर) उदक (पानी) और सम नमक है इसीलिए उसका नाम समुद्र पड़ा ।"

"भन्ते ! आपने ठीक कहा ।"

४२. सारे समुद्र का नमकीन होना

राजा बोला—"भन्ते ! क्या कारण है कि सारे समुद्र का नमकीन एक ही रस है ?"

"महाराज ! बहुत समय से पानी के एक ही जगह रहने के कारण सारे समुद्र का नमकीन एक ही रस है ।"

"भन्ते ! ठीक है ।"

४३. सूक्ष्म धर्म

राजा बोला—"भन्ते ! क्या सब से सूक्ष्म चीज भी काटी जा सकती है ?"

"हाँ महाराज ! काटी जा सकती है ?"

'भन्ते ! सबसे सूक्ष्म चीज क्या है ?"

"महाराज ! धर्म ही सब से सूक्ष्म चीज है । किन्तु सभी धर्मों में ऐसी बात नहीं है । सूक्ष्म या स्थूल होना धर्म के ही विशेषण हैं । किन्तु जो कुछ कटा जा सकता है प्रज्ञा से ही काटा जा सकता हैं; और ऐसा कोई नहीं है जो प्रज्ञा को काटे ।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा ।"

४४. विज्ञान, प्रज्ञा और जीव (आत्मा)

(क) राजा बोला—"भन्ते ! विज्ञान, प्रज्ञा और जीव क्या ये तीन शब्द अक्षर और अर्थ दोनों में पृथक पृथक हैं, या एक ही अर्थ के भिन्न भिन्न नाम हैं ?"

"महाराज ! 'जान लेना' विज्ञान की पहचान है; 'ठीक से समझ लेना' प्रज्ञा की पहचान है; और 'जीव' ऐसी कोई चीज ही नहीं है ।"

"भन्ते ! यदि जीव (आत्मा) कोई चीज ही नहीं है तो हम लोगों में वह क्या है जो आंख से रूपों को देखता है, कान से शब्दों को सुनता है, नाक से गन्धों को सुंघता है, जीभ से स्वादों को चखता है, शरीर से स्पर्श करता है, और मन से धर्मों को जानता है ?"

"महाराज ! यदि शरीर से भिन्न कोई जीव (आत्मा) है जो हम लोगों के भीतर रह आंख से रूपों को देखता है, तो आँख निकाल लेने पर बड़े छेद से उसे और भी अच्छी तरह देखना चाहिये ? कान काट देने पर उसे और

अच्छी तरह सुनना चाहिये ? नाक काट देने पर उसे और भी अच्छी तरह सूंघना चाहिए। जीभ काट देने पर उसे और भी अच्छी तरह स्पर्श करना चाहिए ?"

"नहीं भन्ते ! ऐसी बात नहीं है।"

"महाराज ! तो हम लोगों के भीतर कोई जीव भी नहीं है।"

"भन्ते ! बहुत अच्छा।"

(ख) अरूप धर्म के विषय में

स्थविर बोले—"महाराज ! भगवान् ने एक बड़ा कठिन काम किया है।"

"भन्ते ! वह क्या ?"

"महाराज ! एक ही वस्तु के आलम्बन पर होने वाले रूप-रहित चित्त और चैतसिक धर्मों का विश्लेषण करना। उन्होंने अलग अलग करके बताया—यह स्पर्श है, यह वेदना है, यह संज्ञा है, यह चेतना है, और यह चित्त है।"

"कृपया उपमा देकर समझावें।"

"महाराज ! जैसे कोई आदमी नाव पर सवार हो समुद्र में जाय और चुल्लू में समुद्र का पानी ले उसे चख कर बता दे कि यह गङ्गा नदी का आया हुआ पानी है, यह जमुना का, यह अचिरवती का, यह सरयू का, और यह मही का।"

"भन्ते ! ऐसा बताना तो बड़ा कठिन है।"

"महाराज ! एक ही वस्तु से आलम्बन पर होने वाले रूप-रहित चित्त और चैतसिक धर्मों का विश्लेषण करना उससे भी कठिन है।"

"भन्ते ! ठीक है।"

चौथा वर्ग समाप्त

स्थविर बोले—"महाराज ! क्या आप जानते हैं कि अभी क्या समय हुआ है ?"

"हाँ भन्ते ! जानता हूँ। रात का पहला याम बीत गया, बिचला याम आरम्भ हुआ है, मसाल जला दिए गए हैं, चारों पताके फहरा देने के लिए आज्ञा दे दी गई है, और अब दान देने की वस्तुयें भण्डार से ले जाई जायँगी।"

यवनों ने कहा—"महाराज ! यह भिक्षु तो बड़ा भारी पण्डित है।"

"हाँ, स्थविर बड़े भारी पण्डित हैं। इन्हीं के ऐसा गुरु और मेरे ही जैसा चेला होना चाहिए। पण्डित लोग धर्म को झट ही समझ लेते हैं।"

उनके उत्तरों से संतुष्ट हो राजा ने स्थविर नागसेन को बड़ा मूल्यवान् चीवर देकर कहा–"भन्ते ! आठ सौ दिनों तक मेरे यहां भोजन लेने का निन्मत्रण स्वीकार करें। अन्तः पुर में आपके योग्य जो कुछ भी चीजें हैं, मैं भेंट चढ़ाने के लिये तैयार हूँ।"

"रहने दें महाराज ! मेरा गुजारा तो हो ही रहा है।"

"भन्ते ! मैं जानता हूँ कि आपका गुजारा हो रहा हैं, किन्तु कृपा कर मुझे और अपने दोनों को बचावें। अपने को इस अपवाद से बचावें कि, 'राजा को संतुष्ट कर के भी कुछ नहीं पाया।' मुझे इस अपवाद से बचावें कि, 'स्थविर से संतुष्ट हो कर भी मैंने कुछ भेंट नहीं चढ़ाई।"

"अच्छा महाराज ! वैसा ही हो।"

"भन्ते ! जैसे सोने के पींजड़े में भी डाल दिए जाने से मृगराज सिंह बाहर की ही ओर ताकता रहता है, वैसे ही मैं इस राज–भवत में रहते हुए भी [1]बाहर की ही ओर दृष्टि किए हूँ। किंतु भन्ते ! यदि अभी ही मैं घर छोड़ कर भिक्षु बन जाउँ, तो अधिक दिनों तक नहीं बच सकूंगा। मेरे शत्रु बहुत हैं जो मौका पाकर मुझे मार डालेंगे।"

इस तरह राजा मिलिन्द के प्रश्नों का उत्तर दे आयुष्मान् नागसेत आसन से उठ अपने आश्रम को चले गए।

नागसेन के चले जाने के बाद राजा मिलिन्द आप ही आप उन प्रश्नों और उत्तरों पर विचार करने लगा। उसने देखा–मेरे सभी प्रश्न मार्के के थे और उनके उत्तर भी वैसे ही थे।"

दूसरे दिन सुबह ही अपना चीवर पहन पात्र ले आयुष्मान् नागसेन राजा के घर पर आए और बिछे आसन पर बैठ गए।

राजा मिलिन्द भी उन्हें प्रणाम कर आदर के साथ एक ओर बैठगया और बोला–"भन्ते ! आप ऐसा न समझें कि रात भर मैं इसी की खुशी में जागा रहा कि आयुष्मान् नागसेन से मैंने खूब प्रश्न पूछे; किंतु मैं यही विचार करता रहा कि क्या मेरे प्रश्न अच्छे और उनके उत्तर संतोष–जनक थे ? अन्त में उन्हें सचमुच वैसा ही पाया।"

---

१. घर छोड़ कर भिक्षु बन जाने के लिये।

स्थविर भी बोले—"महाराज ! आप भी ऐसा न समझें कि रात भर मैं इसी खुशी में जागा रहा कि राजा के प्रश्नों का मैंने कैसा उत्तर दिया ! मैं भी आप ही की तरह विचारता रहा और वैसा ही पाया।"

इस तरह उन दोनों ! गजराजों ने एक दूसरे के कहे हुए का अभि-नन्दन किया।

मिलिन्द राजा के प्रश्नों का उत्तर देना समाप्त

चौथा परिच्छेद

४. मेण्डक प्रश्न १

(क) महावर्ग

१. मेण्डक–आरम्भ कथा

वक्ता, तर्क–प्रिय, विचक्षण और अत्यन्त बुद्धिमान् राजा मिलिन्द नागसेन के ज्ञान की परीक्षा करने के लिए आया।

उनके निकट बैठ, अपनी सारी बुद्धि खतम न हो जाने तक बार बार प्रश्न करता गया। अन्त में उसने भी त्रिपिटक के सिद्धान्तों को मान लिया।

रात के समय एकान्त में धर्म के नये पहलुओं पर विचार करते हुये उसे मेण्डक नाम के कुछ उलझन में डाल देने वाले अत्यन्त जटिल प्रश्न सूझे।

उसने सोचा :– धर्मराज (बुद्ध) के शासन (उपदेश) में कुछ बातें तो पर्याय से कही गई हैं; कुछ, समय आने पर किसी खास चीज को सामने रख कर और कुछ केवल साधारण बातों को समझाने के लिए।

उनके ठीक ठीक अर्थ को नहीं समझने के कारण आगे चल कर मतभेद पैदा होगा।

अतः मैं इन मेण्डक नाम के जटिल प्रश्नों को आयुष्मान नागसेन से पूछकर उन्हें सुलझवाऊंगा जिसमें भविष्यकाल में धर्म के विषय में लोगों को बड़ी जानकारी हो।

---

१. मेण्डक का अर्थ है 'भेड़'। भेड़ के दो नोकीले सींग होते हैं। वैसे ही 'मेण्डक प्रश्न' में ऐसे दो विकल्प रखे जाते हैं, जिनमें दोनों समान रूप से आपत्तिजनक होते हैं। अंगरेजी में इसे कहते है–The two horns of a dilemma इसका हिन्दी अनुवाद मैंने 'दुविधा' किया है।

तब, राजा मिलिन्द ने दूसरे दिन सुबह पौ फटने पर सिर से नहा हाथ जोड़, भूत, भविष्यत और वर्तमान काल के बुद्धों को प्रमाण किया। प्रणाम करके आठ गुणों को पालन करने का व्रत लिया–"मैं आज से लेकर सात दिनों तक इन आठ गुणों को पालन करने का व्रत लेता हूँ। इस व्रत पालन से आचार्य को प्रसन्न कर उनसे मेण्डक नाम के प्रश्नों को पूछूंगा।

तब, राजा मिलिन्द अपने स्वाभाविक राज–वस्त्र तथा आभूषणों को उतार सिर पर एक कपड़ा डाल, काषाय वस्त्र धारण कर, तपस्वी के ऐसा रहने लगा।

उस सप्ताह उसने कोई राज्य–कार्य नहीं किया। यहाँ तक कि मन में किसी राग, द्वेष और मोह को आने भी नहीं दिया। नौकर–चाकरों के प्रति भी नम्र और प्रसन्न रहा। अपने शरीर और वचन का पूरा संयम करता रहा। छः आयतनों की पूरी रक्षा की। सदा मैत्री–भावना का अभ्यास करता रहा। सप्ताह भर बाहर कहीं न जा इन्हीं आठ गुणों का चिन्तन करता रहा।

आठवें दिन रात के बीतते सुबह होने पर जलपान से छुट्टी ले, नीचे नजर किए शान्त–भाव तथा स्थिर–चित्त से बड़े आनन्द के साथ स्थविर नागसेन के पास गया। उनके पैरों पर सिर से प्रणाम करके एक ओर खड़ा हो गया और बोला :–

"भन्ते ! मैं आपके साथ अकेला कुछ बातें करना चाहता हूँ। वहाँ कोई तीसरा न रहने पावे। आठ अंगों से युक्त मुनियों के रहने योग्य किसी निर्जन और एकान्त जंगल में ही मैं अपनी बातें कहना चाहता हूँ। हम लोगों में कुछ छिपा न रहे–कुछ भी रहस्य न रहे। बातें चलने पर रहस्यमय से भी रहस्यमय बातों को मैं सुनना चाहता हूँ। अपने मन के भाव उपमाओं से भी साफ किए जा सकते हैं। भन्ते ! जैसे इस पृथ्वी में पूरे विश्वास के साथ खजाना गाड़कर छिपाया जा सकता है, वैसे ही मैं भी आप से रहस्यमय से रहस्यमय बातों को सुनकर उन्हें ग्रहण करने योग्य हूँ।"

तब, राजा मिलिन्द अपने गुरु (नागसेन) के साथ वैसे ही किसी स्थान में पहुँच कर बोला–"भन्ते ! धर्म के गूढ़ तत्वों पर मन्त्रणा करने वालों को आठ स्थानों से अलग रहना चाहिए। इन आठ स्थानों में कोई भी बुद्धिमान पुरुष वैसी मन्त्रणा नहीं करता। मन्त्रणा करने पर सभी व्यर्थ होता है; उसका कोई भी नतीजा नहीं निकलता।"

(क) धार्मिक मन्त्रणा करने के अयोग्य ८ स्थान

"ये आठ स्थान कौन कौन हैं? (१) ऊबड़–खाबड़, (२) भयावह, (३) जहाँ बड़ी तेज हवा चलती हो, (४) जो बहुत छिपा हुआ हो, (५) देवस्थल,

(६) चहल–पहल वाली सड़कें, (७) पुल और (८) घाट।"

स्थविर बोले–"महाराज ! इन स्थानों में क्या दोष हैं ?"

राजा बोला–"भन्ते ! ऊभड़–खाबड़ जगह में मन्त्रणा करने से बातें नहीं जमती हैं कोई और नतीजा भी नहीं निकलता। भयावह स्थान में मन डर जाता है जिससे बातें ठीक ठीक समझ में नहीं आतीं। जहाँ बड़ी तेज हवा चलती है वहाँ एक दूसरे के शब्द दब जाते हैं और साफ साफ सुनाई नहीं देते। बहुत छिपे हुए स्थान में कोई दूसरा छिप कर सुन सकता हैं। देवस्थल में मन्त्रणा करने से बातें भारी हो जाती हैं। चहल पहल वाली सड़कों पर मन्त्रणा करने से बातें हलकी हो जातीं हैं। पुल पर मन्त्रणा करने से बातें चंचल हो जाती हैं। घाट पर मन्त्रणा करने से सभी बातें आम हो जाती हैं इसलिए कहा गया है कि धार्मिक विषयों पर मन्त्रणा करने के लिये इन आठ स्थानों को छोड़ देना चाहिये।"

(ख) धार्मिक विषयों पर मन्त्रणा करने के अयोग्य आठ व्यक्ति

"भन्ते नागसेन ! आठ प्रकार के लोगों के साथ मन्त्रणा करने से वे सारे अर्थ को बिगाड़ देते हैं।"

"वे आठ प्रकार के लोग कौन से हैं ?"

"(१) राग–युक्त, (२) द्वेष–युक्त, (३) मोह–युक्त, (४) अभिमानयुक्त, (५) लोभ–युक्त, (६) आलस्य–युक्त, (७) किसी एक मत को पकड़े रहने वाला, और (८) मूर्ख। इन आठ प्रकार के लोगों के साथ मन्त्रणा करने से वे सारे अर्थ को बिगाड़ देते हैं।"

स्थविर बोले–"इन आठ व्यक्तियों में क्या दोष है ?"

"भन्ते ! राग–युक्त व्यक्ति राग के कारण, द्वेष–युक्त व्यक्ति द्वेष के कारण, मोह–युक्त व्यक्ति मोह के कारण, अभिमान–युक्त व्यक्ति अभिमान के कारण, लोभ–युक्त व्यक्ति लोभ के कारण, आलस्य–युक्त व्यक्ति आलस्य के कारण, किसी एक मत को पकड़े रहने वाले व्यक्ति अपने हठ के कारण और मूर्ख लोग अपनी मूर्खता के कारण सारे अर्थ को बिगाड़ देते हैं।"

इसलिये कहा गया है :–

'रत्तो दुट्ठो च मूळ्हो च मानी लुद्धो तथा' लसो।
एक चिन्ती च बालो च एते अत्थविनासकति' ॥

(ग) गुप्त विषयों को खोल देने वाले नव प्रकार के व्यक्ति

"भन्ते ! नव प्रकार के ऐसे व्यक्ति हैं जिन से कोई गुप्त बात कहने से खोल देते हैं, पचा नहीं सकते।"

"वे नव प्रकार के व्यक्ति कौन से हैं और उनमें क्या दोष होते हैं ?"

(१) "राग-युक्त व्यक्ति अपने राग के कारण, (२) द्वेष-युक्त व्यक्ति अपने द्वेष के कारण, (३) मोह-युक्त व्यक्ति अपने मोह के कारण, (४) डरपोक व्यक्ति अपने डर के कारण, (५) घूसखोर व्यक्ति घूस के कारण, (६) स्त्री लोग अपने कमजोर स्वभाव के कारण, (७) पियक्कड़ दारू पीने के लालच में, (८) नपुंसक व्यक्ति अपनी अपूर्णता के कारण, और (९) बालक अपनी चपलता के कारण मंत्रणा की गई गुप्त बातों को खोल देते हैं, पचा नहीं सकते।"

इस लिए कहा गया है.-

"रत्तो दुट्ठो च मुळ्हो च भीरू अमिसचक्खुको
इत्थी सोण्ड़ो पण्डको च नवमो भवति दारको ॥
नवेते पुग्गला लोके इत्तरा चलिताचला ।
एतेहि मन्तितं गुह्यं खिप्पं भवति पाकटन्ति ॥"

(घ) बुद्धि पक जाने आठ कारण

"भन्ते ! आठ कारणों से बुद्धि परिपक्व हो जाती है।"

"किन आठ कारणों से ?"

(१) आयु पढ़ने से, (२) यश फैलने से, (३) बार बार प्रश्नों को पूछने से, (४) गुरु के साथ रहने से, (५) स्वयं ही अच्छी तरह विचार करने से, (६) अच्छे लोगों के साथ सलाप करने से, (७) मन में प्रेम भाव बढ़ाने से और (८) अनुकूल स्थान में वास करने से मनुष्य की बुद्धि परिपक्व हो जाती है।

इसलिए कहा गया है :-

"वयेन यशपुच्छाहि तित्थवासेन योनिसो ।
साकच्छा-स्नेह संसेवा पतिरूपवसेन च ॥
एतानि अट्टठ्ठनानि बुद्धिविसद-कारका ।
येसं एतानि सम्भोन्ति तेसं बुद्धि पभिज्जतीति ॥"

(ङ) शिष्य के प्रति आचार्य के पच्चीस कर्तव्य

"भन्ते नागसेन ! यह स्थान मन्त्रणा करने के आठों दोषों से रहित है, और मैं भी उसके लिए बड़ा ही योग्य व्यक्ति हूँ। छिपाने योग्य बातों को मैं छिपा कर रखने वाला हूँ, जीवन भर मैं किसी बात को नहीं खोल सकता। ऊपर बताए गए आठों प्रकार से मेरी बुद्धि परिपक्व हो गई है। मेरे जैसा दूसरा शिष्य मिलना कठिन है।"

"ऐसे योग्य शिष्य के आचार्य को पच्चीस गुणों से युक्त होना चाहिए।"

"किन पच्चीस गुणों से ?"

"भन्ते ! (१) आचार्य को शिष्य के विषय में हमेशा पूरा ध्यान रखना चाहिए, (२) कर्तव्य और अकर्तव्य का सदा उपदेश देते रहना चाहिए, (३) किस में सावधान रहे और किसमें नहीं इसका उपदेश देते रहना चाहिए, (४) उसके सोने आदि के विषय में ख्याल रखना चाहिए, (५) बीमार पड़ने पर ख्याल रखना चाहिए, (६) उसने क्या पाया है और क्या नहीं इसका भी ख्याल रखना चाहिए, (७) उसके विशेष चारित्र को जानना चाहिए, (८) भिक्षा-पात्र में जो मिले उसे बाँट कर खाना चाहिए, (९) उसे सदा उत्साह देते रहना चाहिए-मत डरो इस बात को तुरन्त समझ लोगे, (१०) फलाने आदमी की संगत कर सकते हो-ऐसा बता देना चाहिए, (११) फलाने गांव में जा सकते हो, (१२) फलाने विहार में जा सकते हो, (१३) उसके साथ गप्पें नहीं मारनी चाहिए, (१४) उसके दोषों को क्षमा कर देना चाहिए, (१५) पूरे उत्साह के साथ सिखाना चाहिए, (१६) बिना किसी नागा के पढ़ाना चाहिए, (१७-१८) उसे सब कुछ बिना छिपाए हुए बता देना चाहिए (१९) विद्या में इसको जन्म दे रहा हूँ-ऐसा विचार कर उसके प्रति पुत्रव्रत स्नेह रखना चाहिए, (२०) वह अपने उद्देश्य से फिसलने न पावे ऐसा यत्न करना चाहिए, (२१) इसे सभी शिक्षाओं को दे कर बड़ा बना रहा हूँ-ऐसा ख्याल रखना चाहिए, (२२) उसके साथ मैत्री भाव रखना चाहिए, (२३) आपत्ति आ पड़ने पर उसे छोड़ देना चाहिए, (२४) सिखाने योग्य बातों को सिखाने में कभी चूकना नही चाहिए, (२५) धर्म से गिरते देख उसे आगे बढ़ाना चाहिए।"

"भन्ते ! अच्छे आचार्यों के यही पच्चीस गुण हैं, जिनसे वे अपने शिष्य के साथ बर्ताव करते हैं। आप इन पच्चीस गुणों से मेरे प्रति व्यवहार करें।"

"भन्ते ! मुझे कुछ संदेह उत्पन्न हो रहे हैं। बुद्ध द्वारा उपदेश लिए गए जो मेण्डक प्रश्न हैं, उनके विषय में आगे चलकर लोगों में मतभेद हो जायगा। भविष्य में आपके जैसे बुद्धिमान पण्डित का होना कठिन है। अतः, विपक्षी मतों के भ्रम को दूर करने के लिए मेरे प्रश्नों पर प्रकाश डालें।"

(च) उपासक के दस गुण

स्थविर ने 'बहुत अच्छा' कह उपासक के दस गुणों को बताया।

"महाराज ! उपासक में ये दस गुण होने चाहिए।"

"कौन से दस ?"

"महाराज ! (१) उपासक अपने भिक्षुओं के साथ सहानुभूति रखता है, (२) धर्म को सबसे ऊँचा समझता है, (३) यथाशक्ति दान देता है, (४) धर्म को

गिरते देख उसे उठाने का पूरा उद्योग करता है, (५) सत्य-धारणा वाला होता है। (६) कौतूहल के मारे जीवन भर दूसरे मतों के फन्दे में नहीं पड़ता, (७) शरीर और वचन का पूरा संयम करता है, (८) शान्ति चाहने वाला होता है, (९) एकता-प्रिय होता है, (१०) केवल दिखाने के लिए धर्म का आडम्बर नहीं करना किन्तु यथार्थ में बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में आया होता है। महाराज ! ये सभी दस उपासक के गुण आप में विद्यमान हैं। यह आपके लिए बड़ा ही उचित और योग्य है कि आप धर्म को इस तरह गिरते देख उसे उठाने का यत्न करना चाहते हैं। मैं आप को छुट्टी देता हूँ–जो चाहें पूछ सकते हैं।"

मेण्डकारम्भ कथा

२. बुद्ध-पूजा के विषय में

राजा मिलिन्द ने आयुष्मान् नागसेन से छुट्टी ले उनके चरणों पर माथा टेक प्रणाम किया और बोला–"भन्ते ! दूसरे मत वाले कहते हैं कि :–

यदि बुद्ध अपनी पूजा स्वीकार करते हैं तो उन्होंने निर्वाण नहीं पाया। अभी भी अवश्य वे इस संसार में रहते होंगे; और उनकी स्थिति इस संसार में कहीं न कहीं होगी ही। यदि ऐसी बात है तो वे एक महज मामूली जीव हुए, और उनके प्रति की गई पूजायें बेकार हैं।"

"यदि वे परिनिर्वाण पा चुके हैं, संसार से बिलकुल छुट गए हैं, और सारी स्थितियों से मुक्त हो गए हैं, तब उनकी पूजा करना बेकार है (क्योंकि जब वे हैं ही नहीं तो पूजा किसकी !)। इस तरह दोनों हालत में चाहे बुद्ध परिनिर्वाण पा चुके हैं या नहीं उनकी पूजा करने का कोई मतलब ही नहीं।"

"यह प्रश्न कम बुद्धि वालों की पहुँच के बाहर है। बुद्धिमान लोगों का ही विषय है। आप कृपा कर इन मिथ्या तर्क को काट दें। इस दुविधा को दूर करें। आप के सामने यह प्रश्न रक्खा गया है। भविष्य काल में उत्पन्न होने वाले बौद्धों को इस दुविधा से निकलने के लिए आँख दे दें कि जिससे वे दूसरे मत वालों के कुतर्कों को मुंह तोड़ सकें।"

स्थविर बोले–"महाराज ! भगवान् परिनिर्वाण पा चुके हैं। भगवान् किसी पूजा को स्वीकार या अस्वीकार नहीं करते।[1] बोधिवृक्ष के नीचे ही भगवान् बुद्ध इस प्रश्न के परे हो गये थे। अब संसार से बिलकुल छूट निर्वाण पा लेने पर तो कहना ही क्या है।"

---

१. बोध गया में वह पीपल का वृक्ष जिसके नीचे शाक्यमुनि गौतम ज्ञान प्राप्त कर बुद्ध हुये।

"महाराज ! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने भी कहा हैं :–"

"वे, अपना सानी न रखने वाले बुद्ध देवता और मनुष्य दोनों से पूजा पाकर भी न उसे स्वीकार और न अस्वीकार करते हैं। बुद्धों की ऐसी ही बात है।"

राजा बोला–"भन्ते ! यदि पुत्र पिता की या पिता पुत्र की बड़ाई करे तो यह कोई दलील नहीं कही जा सकती। यह तो उनके अपने अपने मन की केवल उमङ्ग है। हाँ, अब आप झूठे मतों के भ्रम को दूर करने तथा अपने सच्चे धर्म को प्रकाश में लाने के लिए इसे ठीक ठीक समझावें।"

स्थविर बोले–"महाराज ! भगवान् तो मुक्त हो चुके हैं। वे अब किसी की पूजा को कैसे स्वीकार या अस्वीकार करेंगे ! देवता और मनुष्य लोग उन भगवान् के शरीर–भस्म रूपी रत्न की पूजा करते हुए तथा उनके बताए–ज्ञान–रत्न के अनुकूल आचरण करते हुए तीनों सम्पत्तियाँ प्राप्त करते हैं।"

(१) आग की उपमा

"महाराज कोई बड़ो आग जला कर पीछे बुझा दिए जाने पर क्या वह सूखी घास, लकड़ी या कोई इंधन स्वीकार करेगी ?"

"नहीं भन्ते ! जलती रहने पर भी क्या वह अचेतन आग घास या लकड़ी थोड़े ही स्वीकार करती है ! बुझकर ठंडी हो जाने पर तो कहना ही क्या है !!"

"महाराज ! उस बड़ी आग के बुझ जाने पर क्या संसार आग से खाली हो जाता है ?"

"नहीं भन्ते ! आग तो सूखी लकड़ियों में रहती है। कोई आदमी जो आग पैदा करना चाहता है अरणि को बल से मथ कर उसे पैदा कर सकता है। उस आग से अपना कोई भी काम चला सकता।"

"महाराज ! तो दूसरे मत वालों की यह दलील बेकार है कि स्वीकार न करने वालों के प्रति किए गए व्यवहारों का कोई मतलब नहीं निकलता।"

'महाराज ! जैसे वह बड़ी आग जलाई गई, वैसे ही भगवान् अपने बुद्ध–तेज से दस हजार लोकों में जलते रहे। जैसे वह आग बुझ कर ठंडी हो गई, वैसे ही भगवान् निर्वाण प्राप्त कर संसार से बिलकुल छूट गए। जैसे आग बुझ कर ठंडी

हो जाने पर कोई घास या लकड़ी नहीं ग्रहण करती, वैसे ही संसार के उपकार करने वाले भगवान् भी स्वीकार और अस्वीकार करने के प्रश्न से मुक्त हो गए हैं। जैसे आग बुझ जाने के बाद कोई आदमी, जो आग पैदा करना चाहता है, अरणि को अपने बल से मथ कर उसे पैदा कर सकता है, वैसे ही देवता और मनुष्य लोग उन भगवान् के शरीर-भस्म रूपी रत्न की पूजा करते हुए तथा उनके बताए ज्ञान-रत्न के अनुकूल आचरण करते हुए तीनों सम्पत्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं।

"महाराज ! इस कारण से भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने पर भी उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती है।"

(२) आँधी की उपमा

"महाराज ! एक दूसरा भी कारण सुनें, जिससे कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने पर भी उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती हैं :–

"महाराज ! एक बड़ी भारी आँधी उठे और फिर धीरे धीरे दब जाय। तो क्या दब जाने के बाद वह आँधी फिर भी उठना चाहती हैं ?"

"नहीं भन्ते ! दब गई आँधी को फिर भी उठने की चाह नहीं हो सकती है।"

"क्यों ?"

क्योंकि आँधी अचेतन पदार्थ है, उसे चाह नहीं होती।"

"महाराज ! आँधी अचेतन पदार्थ है, उसें चाह नहीं होती।"

"महाराज ! और क्या दब जाने पर भी उसे 'आँधी' ही के नाम से पुकारेंगे ?"

"नहीं भन्ते ! किन्तु पंखा वायु पैदा करने का सहारा है। कोई आदमी जिसे गरमी लग रही हो या बुखार आया हो, पंखे को झलकर वायु पैदा कर सकता है। उस वायु से गर्मी या बुखार को कुछ दूर कर सकता है।"

"महाराज ! तब तो दूसरे मत वालों की यह दलील बेकार है कि स्वीकार न करने वालों के प्रति किए गए व्यवहारों का कोई मतलब नहीं निकलता।

"महाराज ! जैसे वह बडी आँधी बही वैसे ही भगवान् भी दस हजार लोकों पर अत्यन्त ठंडी, मीठी, धीमी और और सुखद मैत्रीरूपी वायु से बहते रहे। जैसे आँधी उठ कर दब गई, वैसे ही भगवान् निर्वाण प्राप्त कर संसार से बिलकुल छूट गए। जैसे दब गई आँधी फिर भी उठने की चाह नही करती, वैसे ही संसार के उपकार करने वाले भगवान को न स्वीकार और न अस्वीकार करने की चाह

रही। जैसे वे आदमी गर्मी और बुखार से तप रहे थे, वैसे ही देवता और मनुष्य लोग राग, द्वेष और मोह रूपी अग्नि से तप रहे हैं। जैसे पंखा वायु पैदा करने का सहारा है, वैसे ही भगवान् के शरीर धातु-रत्न तीनों सम्पत्तियों के लाने का सहारा है। जैसे गर्मी और बुखार से तपने वाले लोग पंखा झल कर वायु पैदा करते और ताप को दूर करते हैं, वैसे ही देवता और मनुष्य लोग शरीर-धातु की पूजा कर भगवान् के बताए ज्ञान-रत्न के अनुसार आचरण करते हुए बहुत पुण्य कमाते हैं जिससे अपने राग, द्वेष और मोह रूपी अग्नि के ताप को दूर कर सकते हैं।

"महाराज ! इस कारण से भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने पर भी उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती हैं।"

(३) ढोल की उपमा

"महाराज ! एक और कारण सुनें जिस से बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने पर भी उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती हैं :-

"महाराज ! कोई आदमी ढ़ोल पीटे जिसकी आवाज निकल कर चुप हो जाय। तो क्या वह चुप हो गई आवाज फिर भी निकलना चाहेगी !"

"नहीं भन्ते ! आवाज तो चुप हो गई; फिर भी निकलने की उसे कैसे इच्छा होगी ? ढ़ोल की आवाज एक बार निकल कर चुप हो जाने के बाद सदा के लिए लय हो जाती है। किंतु हाँ, आवाज निकालने के लिए ढ़ोल एक सहारा है। कोई आदमी जो आवाज निकालना चाहे ढ़ोल को पीट कर निकाल सकता है।"

"महाराज ! इसी तरह, भगवान् शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्त, विमुक्ति-ज्ञान और दर्शन से परिभावित शरीर धातु रूपी रत्न, धर्म और विनय को देकर स्वयं निर्वाण प्राप्त कर संसार से बिलकुल छूट गए। किंतु, भगवान् को मुक्त हो जाने से तीनों सम्पत्तियों का लाभ नहीं रुक गया। संसार के दुःखों से पीड़ित हो जो उन्हें (=तीन सम्पत्तियों को) पाना चाहे, वह भगवान् की शरीर-धातु की पूजा कर, उनके बताए ज्ञानरत्न के अनुसार आचरण करते हुए पा सकता है।

"महाराज ! इस कारण से भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने पर भी उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती है।"

"महाराज ! भगवान् ने भविष्य में होने वाले इसे पहले ही देख लिया था। उन्होंने कहा और समझाया भी था :-

"आनन्द ! तुम लोगों में से किसी को ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता हैं, 'शास्ता (बुद्ध) उपदेश देने वाले चले गये । अब हम लोगों को राह बताने वाला कोई नहीं है ।' किंतु ऐसी बात नहीं हैं । आनन्द ! इस तरह पछताने का कोई कारण नहीं । मेरे उपदेश दिए गये जो धर्म हैं और बताये जो भिक्षुओं के नियम हैं, वे मेरे पीछे तुम्हें राह दिखावेंगे[1]"

इसलिये कि भगवान् परिनिर्वाण पा लिये और अब नहीं रहे, उनके प्रति की गई पूजायें बेकार नहीं हो सकतीं । विपक्ष वालों का ऐसा कहना झूठा, अनुचित अयथार्थ, और विरुद्ध ठहरा । यह दुःख देने वाला और नरक को ले जाने वाला है ।"

(४) महापृथ्वी की उपमा

"महाराज ! एक और कारण सुनें जिससे भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने पर उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती है :--

"महाराज ! क्या महापृथ्वी को ऐसी इच्छा होती है कि मुझ में सभी प्रकार के बीज बोये जायँ ?"

"नहीं भन्ते !"

"पृथ्वी की बिना आज्ञा पाये कि "मजबूत जम कर गड़े रहो; वृक्ष होकर बड़े धड़ और लम्बी लम्बी फैली हुई शाखाओं वाले हो जाओ; फलो और फूलो"--उसमें क्यों बीज रोप दिए जाते हैं ?"

"भन्ते ! यद्यपि पृथ्वी कोई आज्ञा नहीं देती तो भी उन बीजों के जमने और बढ़ने का वह आधार होती है । उसी में बोये जाकर वे बीज जमते और बड़ो बड़ी धड़ तथा फल और फूलों से लदी शाखाओं वाले वृक्ष तैयार हो जाते हैं ।"

"महाराज ! तब तो दूसरे मत वालों की यह दलील उन्हीं को बातों से बेकार, निकमी और झूठी ठहरी कि स्वीकार न करने वालों के प्रति किये गये व्यवहारों का कोई मतलब नहीं निकलता ।"

"महाराज ! महापृथ्वी सा भगवान् अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध को समझना चाहिये ।"

इसी पृथ्वी की तरह वे भी कुछ स्वीकार या अस्वीकार नहीं करते । पृथ्वी के आधार पर जैसे बीज जम कर बड़े बड़े वृक्ष हो जाते हैं, वैसे ही देवता और मनुष्य लोग भगवान् की शरीर-धातु की पूजा के आधार पर पुण्य रूपी जड़ों को ठीक से पकड़ समाधि-स्कन्ध, धर्म-सार और शीलशाखाओं वाले बड़े बड़े वृक्ष हो जाते हैं । उन वृक्षों में विमुक्त रूपी फल और श्रामण्य रूपी फूल लगते हैं ।"

---

१. देखो दीघनिकाय "महापरिनिर्वाण-सूत्र" बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४१ ।

"महाराज ! इस कारण से बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने पर भी उनके प्रति गई पूजा अचूक और सफल होती है।"

(५) पेट के कीडों की उपमा

"महाराज ! एक और कारण सुनें–"

"क्या ऊँट, बैल, गदहे, बकरे, दूसरे जानवर, या मनुष्य अपने पेट के अन्दर कीड़ों को पैदा होने की अनुमति देते हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! तो यह कैसी बात है कि वे कीड़े बिना उनकी अनुमति के उनके पेट में उत्पन्न हो जाते और बेटे पौते इतने बढ़ते जाते है ?"

"भन्ते ! उनके बुरे कर्मों के कारण।"

"महाराज ! इसी तरह, भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने और संसार से बिलकुल छूट जाने पर भी उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती है।"

(६) रोग की उपमा

"महाराज ! एक और कारण सूनें।"

"महाराज ! क्या मनुष्य लोग ऐसी अनुमति देते हैं कि उनके शरीर में अट्ठानवे प्रकार के रोग घुसें ?"

"नहीं भन्ते !"

"तब उनके शरीर में रोग क्यों आते हैं ?"

"पूर्वजन्म के पापकर्मों से।"

"महाराज ! यदि पूर्व-जन्म में किये गये पापों के फल इस जन्म में मिलते हैं, तो पूर्व जन्म या इसी जन्म के किये गये पाप और पुण्य अवश्य अचूक और फल देने वाले होंगे। इसलिये भगवान् के प्रति की गई पूजा अवश्य अचूक और सफल होगी, भले ही वे परिनिर्वाण पाकर संसार से बिलकुल छूट गये हैं।"

(७) नन्दक यक्ष की उपमा

"महाराज ! एक और कारण।"

"महाराज ! क्या आप ने सुना है कि नन्दक नाम का एक यक्ष स्थविर सारिपुत्र को छूते ही जमीन ही के भीतर धंस गया ?"

"हाँ भन्ते ! लोग ऐसा कहते हैं।"

"महाराज ! क्या स्थविर सारिपुत्र ने ऐसा निर्देश किया था ?"

"भन्ते ! देवताओं के साथ इस सारे लोक के उलट जाने, सूरज और चाँद के पृथ्वी पर टूट पड़ने तथा पर्वतराज सुमेरु के चूर चूर हो जाने पर भी स्थविर सारिपुत्र किसी के दुःख की इच्छा मन में नहीं ला सकते थे।"

'क्यों नहीं ?"

"भन्ते ! क्योंकि क्रोध उत्पन्न करने के जितने कारण हैं वह उनमें सभी शान्त और निर्मूल हो गये थे। इसीलिये अपने वध करने की इच्छा से आये हुये के प्रति भी उन्होंने क्रोध नहीं किया।"

"महाराज ! तो बिना सारिपुत्र के आदेश किये नन्दक नाम का यक्ष जमीन में क्यों धँस गया ?"

"अपने पाप के कारण।"

"महाराज ! देखते हैं ! शाप नहीं देने पर भी सारिपुत्र के प्रति किये गये पाप का फल उसे भोगना पड़ा। यदि पाप कर्मों की ऐसी बात है तो पुण्य कर्मों की कैसी होगी ?

"महाराज ! इसी कारण भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने तथा संसार से बिलकुल छूट जाने पर भी उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती है।"

"महाराज ! और कितने लोग हैं जो इसी तरह जमीन में धँस गये हैं–आपने उनके विषय में कुछ सुना है ?"

"हाँ भन्ते ! सुना है।"

"अच्छा, सुनावें।"

"भन्ते ! (१) चिञ्चा नाम की लड़की, (२) सुप्पबुद्ध नाम का शाक्य, (३) स्थविर देवदत्त, (४) नन्दक नाम का यक्ष, और (५) नन्द नाम का ब्राह्मण–ये पाँच इसी तरह जीते जी जमीन में धँस गये थे।"

"महाराज ! किसके प्रति उन लोगों ने अपराध किया था।"

"भन्ते ! भगवान् और उनके भिक्षुओं के प्रति।"

"क्या भगवान् और उन भिक्षुओं ने उन्हें जमीन में धँस जाने का आदेश दिया था ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इससे सिद्ध होता है कि भगवान् के परिनिर्वाण पाकर संसार से बिलकुल छूट जाने पर भी और उनके न स्वीकार करने पर भी प्रति किए व्यवहार अचूक और अवश्य ही फल देने वाले होते हैं।"

"भन्ते नागसेन ! आपने इस जटिल प्रश्न को खूब सुलझाया हैं। बिलकुल साफ कर दिया। आपने रहस्य को खोल दिया, गाँठ को ढ़ीला कर दिया, जंगल में एक खुली जगह निकाल दी। विपक्ष वालों का मुंह टूट गया। मिथ्या विश्वास झूठा दिखाई देने लगा। दूसरे मत वालों का सारा तेज जाता रहा। आप गणचार्यों में सब से श्रेष्ठ हैं।"

पूजाप्रतिग्रहण प्रश्न समाप्त

३. क्या बुद्ध सर्वज्ञ थे ?

"भन्ते नागसेन ! क्या बुद्ध सर्वज्ञ थे ?"

"हाँ महाराज ! बुद्ध सर्वज्ञ थे। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वे हर घड़ी हर तरह से संसार की सभी बातों की जानकरी बनाये रखते थे। उनकी सर्वज्ञता इसी में थी कि ध्यान करके वे किसी बात को जान ले सकते थे।"

"भन्ते यदि भगवान् ध्यान में खोज करके ही किसी बात को जान सकते थे, तो सर्वज्ञ नहीं हुये।"

"महाराज ! सौ गाड़ी, आधा चूल, सात अम्मंण और दो तुम्बे धानों की क्या संख्या है ? उसे चुटकी भर समय में ध्यान कर के बता सकते हैं कि कितने लाख धान हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

सात प्रकार के चित्त

"महाराज ! सात प्रकार के चित्त होते हैं।"

(१) संक्लेश चित्त

"जो राग–युक्त, द्वेष–युक्त, मोह–युक्त, क्लेशों से युक्त है तथा जिन्होंने शरीर, शील, चित्त और प्रज्ञा की भावना नहीं की है–उनका चित्त भारी, मोटा, और मन्द होता है।"

"सो क्यों ?"

"चित्त के अभावित होने से।"

"महाराज ! बहुत फैल कर पसरी घनी शाखाओं के एक दूसरे में गुथ कर फँसे हुये बाँस की झाड़ी में से कुछ काट कर निकालना बड़ा कठिन और धीरे धीरे होता है। सो क्यों ? शाखाओं के एक दूसरे में गुथकर बझ जाने के कारण !"

"महाराज ! इसी तरह, जो राग-युक्त पुरुष हैं उनका चित्त भारी, मोटा और मन्द होता है।"

"सो क्यों ?"

"क्लेसों में गुथकर फँस जाने से।"

"यही उन सात प्रकार के चित्तों में पहला है।"

२. स्रोतआपन्न का चित्त

"दूसरे प्रकार का चित्त इससे अलग ही है।"

"महाराज ! जो स्रोतापन्न हो गये हैं, जो बुरी राह की ओर नहीं जा सकते, जो सच्चे सिद्धान्त को जान चुके हैं, तथा बुद्ध के धर्म को जानते हैं-उनका चित्त तीन भ्रममूलक विषयों में हलका और तेज होता है। तो भी, ऊपर की बातों में (आर्य मार्ग में) भारी, मोटा और मंद होता है।"

"सो क्यों ?"

"उन तीन विषयों में चित्त के शुद्ध हो जाने तथा बाकी क्लेशों के बने रहने से।"

"महाराज ! जैसे, किसी बाँस की झाड़ी को तीन पोर तक साफ कर दिया गया किन्तु ऊपर शाखाओं को आपस में गुथकर फँसा छोड़ दिया गया हो, तो उसमें से कुछ काट कर तीन पोर तो खींच लेना आसान होगा, किन्तु ऊपर फिर भी फँस कर रुक जायगा।"

"सो क्यों ?"

"क्योंकि नीचे काट कर साफ कर दिया गया और ऊपर घना ही छोड़ दिया गया है।"

"महाराज ! इसी तरह जो स्रोतआपन्न हो चुके हैं उनका चित्त तीन भ्रम-मूलक विषयों में हलका और तेज होता है, तो भी ऊपर की बातों में भारी, मोटा और मंद होता है। सो क्यों ? उन तीन भ्रमों के दूर हो जाने तथा बाकी क्लेशों के बने रहने से।"

यह दूसरे प्रकार का चित्त है।"

(३) सकृदागामी का चित्त

"तीसरे प्रकार का चित्त इन दोनों से अलग ही है।"

"महाराज ! जो सकृदागामी हो गये हैं और जिनमें राग, द्वेष और मोह नाममात्र के रह गये हैं, उनका चित्त पाँच स्थानों में हलका और तेज होता है, तो भी दूसरी ऊपर की बातों में भारी और मंद होता है।"

"सो क्यों ?"

"इन पाँच स्थानों में परिशुद्ध हो जाने, किन्तु ऊपर के क्लेशों के बने रहने के कारण।"

"महाराज ! जैसे किसी बांस की झाड़ी को पाँच पोर तक साफ करके ऊपर की शाखाओं को आपस में गुथकर फँसे हुये छोड़ देने से उसमें से कुछ काट कर पाँच पोर तक तो आसानी से खींचा जा सकता है, किंतु ऊपर जाकर फँस जाता है। सो क्यों ? नीचे साफ करने पर भी ऊपर घना ही छोड़ देने के कारण।"

"महाराज ! इसी तरह, जो सकृदागामी हो गये हैं उनका चित्त पाँच स्थानों में हलका और तेज होता है, तो भी दूसरी ऊपर की बातों में भारी और मंद होता है।"

"यह तीसरे प्रकार का चित्त है।"

(४) अनागामी का चित्त

"चौथे प्रकार का चित्त इन तीनों से अलग ही है।"

"महाराज ! जो अनागामी हो गये हैं और जिनके नीचे के पांच बन्धन कट गये हैं उनका चित्त दस स्थानों में हलका और तेज होता हैं, किन्तु ऊपर की भूमियों में भारी और मंद होता है।"

"सो क्यों ?"

उन दस स्थानों में चित्त के परिशुद्ध होने, तथा बाकी क्लेशों (= चित्त के मैल) के बने रहने से।"

"महाराज ! जैसे किसी बांस की झाड़ी को दस पोर तक साफ करके।"

"महाराज ! इसी तरह, जो अनागामी हो गये हैं उनका चित्त दस स्थानों में हलका और तेज होता है, किन्तु ऊपर की भूमियों में भारी और मंद होता है।"

सो क्यों ? दस स्थानों में चित्त के परिशुद्ध होने किंतु बाकी क्लेशों के बने रहने से।"

यही चौथे प्रकार का चित्त है ।"

(५) अर्हत् का चित्त

"पाँचवें प्रकार का चित्त इन चारों से अलग ही है ।"

"महाराज ! जो अर्हत् हो गये हैं, जिनके आस्रव क्षीण हो गये हैं, जिनके सभी मैल साफ हो गये हैं, जिनके सभी क्लेश हट गये हैं, जिनके ब्रह्मचर्य-वास पूरे हो गए हैं, जिनके जो कुछ करने का थे सभी समाप्त हो गए हैं, जिनके सभी भार उतर गए हैं, जो सच्चे ज्ञान तक पहुँच गए हैं, जिनके भवबन्धन बिलकुल कट गये हैं तथा जिनके चित्त पूर्णतः शुद्ध हो गये हैं, उनका चित्त किसी भी श्रावक के करने तथा जानने वाली सभी बातों में हलका और तेज होता है, किंतु [1]प्रत्येक-बुद्ध की भूमियों में भारी और मंद होता है ।"

"सो क्यों ?"

"क्योंकि श्रावक की बातों में उनका चित्त शुद्ध हो गया है तो भी प्रत्येक-बुद्ध की बातों में शुद्ध नहीं हुआ है ।"

"महाराज ! जैसे किसी बाँस की झाड़ी को बिलकुल साफ कर देने से उसमें से जो कुछ भी काट कर आसानी से खींचा जा सकता है, वैसे ही ।"

"सो क्यों ? क्योंकि वह बाँस की झाड़ी अच्छी तरह साफ कर दी गई है ।"

"महाराज ! इसी तरह, जो अर्हत् हो गये हैं, उनका चित्त किसी भी श्रावक से करने तथा जानने वाली सभी बातों में हलका और तेज होता है, किंतु प्रत्येक-बुद्ध की भूमियों में भारी और मंद होता है ।"

यही पाँचवें प्रकार का चित्त है ।

(६) प्रत्येक-बुद्ध का चित्त

"छठे प्रकार का चित्त इन पाँचों से अलग ही है ।"

'महाराज ! जो प्रत्येक-बुद्ध हो गये हैं, जो अपने मालिक आप हैं, जिनको किसी आचार्य की आवश्यकता नहीं रही, जो गैंड़े की सींग की तरह अकेले रहने वाले हैं, और जो अपने जीवन में परिशुद्ध तथा निर्मल हो गये हैं; उनका चित्त अपने विषय में हलका और तेज होता है, किन्तु सर्वज्ञ बुद्ध की भूमियों में भारी और मंद होता है ।"[1]

---

१. देखो 'सुत्तनिपात' में 'खग्गविसाण-सुत्त' ।

"सो क्यों ?"

"क्योंकि यद्यपि वे अपने विषय में बिलकुल परिशुद्ध और निर्मल हो गये हैं; तो भी सर्वज्ञ बुद्ध की भूमियां विशाल हैं।"

"महाराज ! जैसे कोई आदमी ही अपनी जगह में बहने वाली किसी छिछली नदी को दिन या रात जब चाहे तभी बिना किसी डर के पार कर जाय; किन्तु बहुत गम्भीर, विशाल, अथाह और अपार महासमुद्र को देख डर जाय और उसको पार करने की सारी हिम्मत चली जाय, वैसे ही।"

"सो क्यों ?"

"क्योंकि वह अपनी नदी से परिचित है, और महासमुद्र बहुत विशाल है।"

"यही छठे प्रकार का चित्त है।"

(७) सम्यक् सम्बुद्ध का चित्त

"सातवें प्रकार का चित्त इन छओं से अलग है।

"महाराज ! जो सम्यक्-संबुद्ध हो गये हैं, सर्वज्ञ, दस बलों को धारण करने वाले, चार प्रकार के वैशारद्यों से युक्त, अठ्टारह बुद्ध-धर्मों से युक्त हैं, जिन्होंने इन्द्रियों को पूरा पूरा जीत लिया है, जिनके ज्ञान कहीं नहीं रुकते—उनका चित्त सभी जगह हलका और तेज रहता है।"

"सो क्यों !"

"क्योंकि वे सभी तरह से शुद्ध हो गए हैं।"

"महाराज ! अच्छी तरह माँजा हुआ, निर्मल, गाँठ से रहित, तेज धारा वाला सीधा और निर्दोष बाण किसी शक्तिशाली धनुष पर रक्खा जाय और उसे कोई बलवान् आदमी किसी पतले रेशम के कपड़े या मलमल, या पतले ऊनी कपड़े पर छोड़े। तो क्या उसकी गति में किसी प्रकार की रुकावट आवेगी ?"

"नहीं भन्ते !"

"सो क्यों ?"

"क्योंकि कपड़ा इतना पतला और कोमल है, बाण इतना तेज है; उस पर भी छोड़ने वाला इतना बलवान् है।"

"महाराज ! उसी तरह, बुद्ध हो गये लोगों का चित्त सभी विषयों में हलका और तेज होता है।"

"सो क्यों ?"

"क्योंकि वे सभी तरह से शुद्ध हो गये हैं।"

"यही सातवें प्रकार का चित्त है।"

"महाराज ! जो यह सातवाँ सम्यक्-सम्बुद्धों का चित्त हैं; वह बाकी छ; चित्तों से सभी तरह श्रेष्ठ है। वह अपरिमित गुणों से शुद्ध और हलका है। महाराज ! अपने चित्त के इतना शुद्ध और हलका होने से ही भगवान् दोनों प्रकार की ऋद्धि-शक्तियों को दिखा सकते थे। इसीसे उनके चित्त की शुद्धता और हलकेपन का पता चलता है। उन ऋद्धि-शक्तिशों का और कोई दूसरा कारण नहीं बताया जा सकता। वे ऋद्धि-शक्तियाँ भी भगवान् के चित्त के साथ तुलना करने पर अत्यन्त अल्प जान पड़ती हैं। तो भी, भगवान् की सर्वज्ञता आवर्जन-प्रतिबद्ध (= चाहने पर) थी। भगवान् की सर्वज्ञता इसी में कि वे जिस बात को जानना चाहते थे ध्यान करके उसे जान सकते थे।"

"महाराज ! जैसे कोई आदमी (अप्रयास) किसी चीज को अपने हाथ से दूसरे के हाथ में दे दे, या मूंह के खुल जाने पर बात बोले, या मुंह में पड़े हुए ग्रास को निगल जाय, या आँख को खोले या बन्द करे, या मोड़े हुये हाथ को पसार दे, या पसारे हुये हाथ को मोड़ ले-वैसे ही या उससे भी जल्दी और आसानी से भगवान् अपनी सर्वज्ञता से जिस बात को जानना चाहें जान सकते थे। यद्यपि बुद्ध ध्यान करके ही किसी बात को जान सकते हैं; तो भी, वैसे कोई ध्यान नहीं करने के समय भी उन्हें सर्वज्ञ छोड़ दूसरा कुछ नहीं कहा जा सकता।"

"भन्ते ! किंतु उसी बात को तो जानने के लिये ध्यान करते हैं, जिसका ज्ञान पहले से ठीक ठीक नहीं रहता ? हां तो मुझे उस बात को समझावें।"

"महाराज ! जैसे एक सम्पत्तिशाली धनी पुरुष हो। सोना, चाँदी और बहुमूल्य रत्नों से उसका खजाना भरा हो। उसके भण्डार में घड़े, हाँड़ी, नाद तथा और भी दूसरे बर्तनों में सभी प्रकार के चावल, गेहूँ, धान, जौ, अनाज, तिल, मूंग, उड़द, घी, तेल, मक्खन, दूध, दही, मधु, सक्कर, गुड़ इत्यादि सभी चीजें भरी हों। अब, कोई बटोही, आतिथ्य सत्कार पाने के योग्य व्यक्ति, आतिथ्य सत्कार पाने की आशा से उसके घर पर आवे। उस समय घर के तैयार किये भोजन सभी उठ जाने के कारण लोग उस बटोही के लिये भोजन पकाने के विचार से भण्डार में चावल लाने जायँ।"

"महाराज ! तो क्या केवल इस कारण से वह पुरुष निर्धन और दरिद्र कहा जायगा ?"

"नहीं "भन्ते ! जो चक्रवर्ती राजा है उनके घर में भी समय बेसमय तैयार किया हुआ भोजन उठ जाता है, दूसरे गृहस्थों के घर की तो बात ही क्या ?"

"महाराज ! उसी तरह, बुद्धों की सर्वज्ञता आवर्जन-प्रतिबद्ध होती है। जिस बात को वे जाना चाहते हैं।"

"महाराज ! जैसे एक वृक्ष हो जिसकी शाखाएँ फलों के भार से लदी हों, किंतु उसके नीचे एक भी फल गिरा पड़ा न हो। महाराज ! तो क्या केवल इस कारण से वह वृक्ष बाँझ और फलों से रहित कहा जायगा ?"

"नहीं भन्ते ! वे फल तो कभी न कभी गिरेंगे ही; तब कोई भी उन्हें मन भर खा सकता है।"

"महाराज ! इसी तरह, बुद्धों की सर्वज्ञता आवर्जन-प्रतिबद्ध होती है।"

"भन्ते नागसेन ! क्या बुद्ध जिस बात को जानना चाहते हैं उसको ध्यान करते ही जान लेते हैं ?"

"हाँ महाराज ![1] जैसे चक्रवर्ती राजा अपने स्मरण मात्र से जहाँ चाहे वहीं चक्र-रत्न को उपस्थित कर देता है; वैसे ही बुद्ध जिस बात को जानना चाहते हैं, उसको ध्यान करते ही जान लेते हैं।"

"भन्ते भगवान् की सर्वज्ञता सिद्ध करने के लिए जो आपने तर्क दिए हैं वे बड़े पक्के हैं। मैं मान लेता हूँ कि भगवान् यथार्थ में सर्वज्ञ थे।"

४. देवदत्त की प्रव्रज्या के विषय में

"भन्ते ! देवदत्त को किसने प्रव्रज्या दी थी ?"

"महाराज ! (१) भद्दिय, (२) अनुरुद्ध, (३) आनन्द, (४) भृगु, (५) किम्बिल, (६) देवदत्त ये छः क्षत्रियपुत्र-तथा सातवाँ (७) उपाली नाई-भगवान् के बुद्धत्व प्राप्त करने पर अपनी ही उमङ्ग से शाक्य कुलों को छोड़ बुद्ध के पीछे हुये। उन्हें भगवान् ने प्रव्रज्या दे दी थी।"[2]

"भन्ते देवदत्त ने प्रव्रज्या लेकर संघ को फोड़ दिया था। ?"

"हाँ महाराज ! दूसरा कोई गृहस्थ, या भिक्षुणी, या उपासिका, या श्रामणेर, या श्रामणेरी संघ को नहीं फोड़ सकती है। समान-संवास का, और समान सीमा में रहने वाला कोई प्रकृतात्म भिक्षु ही संघ को फोड़ सकता है।"

१. देखो दीघनिकाय, चक्कवत्ती-सुत्र।

२. देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ५९।

"भन्ते ! संघ फोड़ने वाले व्यक्ति का कैसा कर्म होता है ?"

"महाराज ! उसका कर्म[1] कल्प भर टिकने वाला होता है।"

"भन्ते नागसेन ! क्या भगवान् को पहले से मालूम था कि देवदत्त प्रव्रजित होकर संघ को फोड़ देगा और उस कर्म के फल से कल्प भर नरक में पकता रहेगा ?"

"हाँ महाराज ! बुद्ध को मालूम था।"

"भन्ते नागसेन ! तब तो लोगों का यह कहना सरासर गलत है कि बुद्ध बड़े करुणाशील, दूसरों के प्रति अनुकम्पा रखने वाले, सभी जीवों के हितैषी तथा अहित को दूर कर हित करने वाले थे। और यदि उन्होंने बिना जाने देवदत्त को प्रव्रज्या दे दी थी तो सर्वज्ञ नहीं ठहरे। भन्ते ! आप के सामने यह दुविधा (Dilemma) रक्खी गई हैं, इसे आप सुलझा दें। यहाँ अपना बल दिखावें।"

"महाराज ! भगवान् महाकारुणिक और सर्वज्ञ दोनों थे। अपनी करुणा और सर्वज्ञता से देवदत्त की क्या गति होगी यह उन्होंने जान लिया था। अपने कर्मों के इकट्ठे हो जाने के कारण देवदत्त का अनेक हजारों और करोड़ों कल्प तक एक नरक से दूसरे में गिर गिर कर पकना बदा ही था। भगवान ने अपनी करुणा और सर्वज्ञता से देखा कि देवदत्त मेरे शासन में प्रव्रजित हो थोड़ा बहुत तो पुण्य कमा सकता है, जिससे उसकी नरकों में पकने की अवधि कम हो जायगी। यही देख उन्होंने उसे प्रव्रज्या दे दी थी।"

"भन्ते नागसेन ! तब तो बुद्ध पहले चोट देकर पीछे मलहम लगाते हैं, पहले पहाड़ से ढ़केल कर पीछे बचाने के लिए हाथ बढ़ाते हैं, पहले जान मार देते और पीछे जिला भी देते हैं, पहले कष्ट देते और पीछे कुछ सुखी भी कर देते हैं।"

"महाराज ! जीवों के हित करने के लिए ही बुद्ध उन्हें मार डालते, ढ़केल देते या पीटते हैं। महाराज ! जैसे माँ-बाप बच्चे की भलाई करने ही के ख्याल से पीटते और ढ़केल भी देते हैं, वैसे ही बुद्ध, लोगों के पुण्य बढ़ाने ही के ख्याल से सब कुछ करते हैं। महाराज ! यदि देवदत्त प्रव्रजित न हो गृहस्थ ही रहता तो और भी अधिक पाप करता; जिसके कारण हजारों और करोड़ों वर्ष तक एक नरक से गिर दूसरे नरक में पकता रहता। भगवान् ने अपनी सर्वज्ञता से इस बात को जान लिया

---

१. उस पाप-कर्म के फल से वह एक कल्प तक घोर नरक में पकता रहता है।

था। उन्होंने देखा कि इस धर्म-विनय के अनुसार प्रव्रजित होने से देवदत्त के दुःख कुछ घट जायँगे। अतः उसी के हित के लिए उस पर करुणा करके उसे प्रव्रज्या दे दी थी।"

१–"महाराज! जैसे, कोई धन, यश, पद और ऊँचे कुल से बहुत बड़ा आदमी अपने प्रभाव से राजा को विश्वास दिला अपने किसी सम्बन्धी या मित्र का बहुत कड़ा दण्ड कुछ हलका करा ले, वैसे ही भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रजित कर शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति के बल से उसके बहुत बड़े दुःखों की अवधि को कम कर दिया। नहीं तो अनेक हजार और करोड़ वर्षों तक एक नरक से दूसरे नरक में गिर गिर कर पकते रहना उसे बदा ही था।

"महाराज! जैसे कोई चतुर वैद्य या जर्राह अपनी तेज दवाई से किसी संगीन बीमारी को कम कर कर दे, वैसे ही भगवान् ने उचित बात को जानते हुए देवदत्त को प्रव्रजित कर उसे करुणा-बल से तेज धर्म-रूपी दवाई को दे उसके दुःखों की बहुत बड़ी अवधि को कम कर दिया। नहीं तो अनेक हजार और करोड़ वर्षों तक एक नरक से दूसरे नरक में गिर गिर कर पकते रहना उसे बदा ही था।"

"महाराज! देवदत्त के उस बड़े-दुःखपुञ्ज को कम करके क्या भगवान् ने कुछ गलती की थी?"

"नहीं भन्ते! कुछ भी नहीं, बिलकुल नहीं!!"

"महाराज! तो आप इस कारण को जान लें जिससे भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रज्या दी।"

२–"महाराज! एक और कारण सुनें जिससे भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रज्या दी।"

"महाराज! किसी चोर को पकड़ लोग राजा के पास ले आवें और कहें–'देव! यह आप का चोर है, इसे जो चाहें दण्ड दें'। उस पर राजा बोले–'हाँ' इसे नगर के बाहर ले जाओ और वध्यभूमि में इसका सिर काट डालो।" राजा की आज्ञा पा उसके अनुसार लोग उसे वध्यभूमि की ओर ले जायँ। तब, कोई राजा का ऊँचा अफसर उसे देखे, जिसे राजा की ओर से बहुत नाम, धन और भोग मिल चुके हों, जिसकी बात राजा भी सुनता हो और जो राजा से कुछ करवा सकता हो। उसे देखे उसको बड़ी दया हो जाय और लोगों को कहे–"आप लोग ठहरें! इसका सिर काट देने से आप लोगों को क्या मिलेगा? इसकी जान बक्स दें! केवल इसका हाथ या पैर काट कर इसे छोड़ दें। इस विषय में मैं राजा से कह दूंगा।" इस आदमी के कहने से लोग मान जायँ और वैसा ही करें।"

"महाराज ! आप बतावें कि वह अफसर चोर की भलाई करने वाला हुआ या नहीं ?"

"भन्ते ! जब उसने उसकी जान बचा दी तो क्या नहीं किया !"

"महाराज ! उस मनुष्य के हाथ पैर काटे जाने से उसे जो दुःख हुआ क्या उसका पाप उसे नहीं लगा ?"

"भन्ते ! उस चोर ने तो अपनी ही करनी से दुःख पाया। उस मनुष्य ने–जिसने उसकी जान बचा दी–उसकी कुछ भी बुराई नहीं की।"

"महाराज ! उसी तरह, भगवान् ने देवदत्त के दुःखों को कम करने ही के ख्याल से उसे प्रव्रज्या दे दी थी।"

"महाराज ! देवदत्त के दुःख उससे कट गए, क्योंकि मरते समय उसने अपने प्राणों से बुद्ध की शरण ले ली थी। उसने कहा था–'मैं अपने प्राणों से बुद्ध की शरण लेता हूँ, जो उत्तमों में उत्तम, देवों के देव, देवता और मनुष्य सभी के मार्ग दिखाने वाले, सर्वद्रष्टा और सौ शुभ लक्षणों से युक्त हैं।"

"महाराज ! एक कल्प को छः भागों में बाँटने से पहले भाग के अन्त होने के समय में देवदत्त ने संघ फोड़ा था। बाकी पाँच भागों तक नरक में पकता रहेगा। बाद में वहाँ से छूट अट्ठिस्सर नाम का प्रत्येक-बुद्ध होगा। महाराज ! तब बतावें कि क्या भगवान देवदत्त के उपकार करने वाले हुए या नहीं ?"

"भन्ते ! भगवान् देवदत्त के सब कुछ करनेवाले हुये। उन्होंने उसे प्रत्येक बुद्ध के पद तक पहुँचा दिया। उन्होंने उसका क्या नहीं किया।"

'महाराज ! संघ फोड़ने के पाप से जो देवदत्त नरक में गिर कर पक रहा है; उसके लिए भगवान् किसी तरह दोषी ठहरे क्या ?"

"नहीं भन्ते ! अपनी ही करनी से देवदत्त कल्प भर नरक में पकेगा। भगवान् ने तो और उसके दुःखों की अवधि को कम कर दिया। वे किसी प्रकार दोषी नहीं ठहराये जा सकते।"

"महाराज ! आप अब इस कारण को समझ लें जिससे भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रज्या दी।"

३–"महाराज ! एक और भी कारण सुनें जिससे भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रजित किया था–"

"महाराज ! किसी आदमी की पीव और लहू से भरा एक फोड़ा हो जाय। उसके माँस सड़ जाने के कारण बड़ी दुर्गन्धि हो। फोड़े में साइन (नासूर) हो जाय और बड़ी पीड़ा दे। बात, पित्त, कफ, तथा सन्निपात से पीड़ित हो धीरे धीरे उसकी हालत खराब हो जाय। तब कोई योग्य वैद्य या जर्राह आवे और उस घाव पर एक रुखड़ो, तेज और बहुत लगने वाली दवाई का लेप चढ़ा दे। उससे फोड़ा पक कर तैयार हो जाय। फिर वैद्य छूरी से नस्तर लगा फोड़े को सलाई से दाग दे, और उसके ऊपर कुछ नमक छिड़क कर किसी दवाई का लेप चढ़ा दे। उससे फोड़ा अच्छा हो कर धीरे धीरे भर जाय और आदमी बिलकुल चंगा हो जाय। महाराज ! क्या यहाँ वैद्य या जर्राह उस आदमी के अहित करने के विचार से उसे दवाई का लेप देता है, छूरी से नस्तर लगाता है, सलाई से दागता है, और नमक छिड़कता है ?"

"नहीं भन्ते ! बल्कि उसे चंगा करके उसका हित करसे के विचार से वह वैद्य इन कामों को करता है।"

"महाराज ! चिकित्सा करने में जो आदमी को दुःख उठाने पड़े उसके लिए, क्या वैद्य दोषी ठहराया जा सकता है ?"

"नहीं भन्ते ! वैद्य ने तो उस आदमी को चंगा करके उसका हित करने ही के लिये सारी चिकित्सा की। उसके लिये वह दोषी कैसे ठहराया जायगा ? उसने तो बड़ा पुण्य का काम किया।"

"महाराज ! इसी तरह, भगवान् ने बड़ी करुणा करके देवदत्त के दुःखों को कम करने के लिये उसे प्रव्रज्या दी।"

४—"महाराज ! एक और कारण सुनें जिससे भगवान् ने देवदत्त को प्रव्रज्या दी—"

"महाराज ! किसी आदमी को एक कांटा गड़ जाय। उसका कोई हितचिन्तक उसे चंगा करने के ख्याल से गड़े हुये काँटे के आगे पीछे खुरेद कर लहू बहते रहने पर भी उसे किसी काँटे या छूरी के नोक से निकाल दे। महाराज। तो क्या वह पुरुष उसका अहित चाहने वाला समझा जायगा ?"

"नहीं भन्ते। वह तो उसका हित करने वाला हुआ। यदि वह काँटा नहीं निकाल देता तो वह आदमी मर भी जा सकता था, या मरने के समान दुःख भी उठा सकता था।"

"महाराज ! इसी तरह, भगवान् ने बड़ी करुणा करके देवदत्त के दुःखों को कम करने के लिये ही उसे प्रव्रजित किया था। यदि उसे प्रव्रजित नहीं करते

तो देवदत्त हजारों और करोड़ों कल्पों तक एक नरक से दूसरे नरक में गिर गिर कर पकता रहता।"

"हाँ भन्ते! भगवान् ने धारा में बहे जाते देवदत्त को पार लगा दिया। बुरी राह में पड़े देवदत्त को ठीक राह दिखा दिया। पहाड़ से लुढ़कते देवदत्त को रुकने का सहारा दे दिया। गड़हे में गिरे देवदत्त को बाहर निकाल दिया।"

"भन्ते! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ भला और कौन दूसरा इन बातों को दिखा सकता!!"

५. बड़े भूकम्प होने के कारण

"भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा–'भिक्षुओ! किसी बड़े भूकम्प होने के आठ कारण या प्रत्यय होते हैं।" सभी जगह लागू होने वाली यह बात है। कोई ऐसी जगह नहीं हैं जहाँ यह बात झूठी ठहरे। इस पर और कुछ टीका–टिप्पणी नहीं चढ़ाई जा सकती। किसी बड़े भूकम्प होने के इन आठ कारणों और प्रत्ययों को छोड़ नवाँ (कारण) नहीं हो सकता। भन्ते! यदि कोई नवाँ कारण होता तो उसे भी भगवान् अवश्य कहते। कोई नवाँ कारण नहीं है इसी लिये भगवान् ने नहीं कहा।"

"किन्तु मैं समझता हूँ कि एक नवाँ कारण भी है। वह यह कि वेस्सन्तर[1] राजा के सब कुछ दान दे डालने के समय पृथ्वी सात बार काँप उठी थी। भन्ते! यदि किसी बड़े भूकम्प होने के आठ ही कारण होते तो यह बात झूठी ठहरती है कि वेस्सन्तर राजा के सब कुछ दान दे डालने के समय पृथ्वी सात बार कांप उठी थी। और यदि यह बात सत्य है कि वेस्सन्तर राजा के सब कुछ दान दे डालने के समय पृथ्वी सात बार काँप उठी थी; तो यह बात झूठी ठहरती है किसी बड़े भूकम्प के होने के आठ ही कारण हैं।"

"भन्ते! यदि यह भी सूक्ष्म, भूलैये में डाल देने वाली, गम्भीर और सुलझाने में कठिन दुविधा आपके सामने उपस्थित है। आपके जैसे बुद्धिमान व्यक्ति को छोड़ दूसरे किसी कम बुद्धि वाले से यह दुविधा नहीं खोली जा सकती।"

महाराज! भगवान् ने कहा है–'भिक्षुओ! किसी बड़े भूकम्प होने के आठ कारण या प्रत्यय होते हैं।" सो ठीक है। वेस्सन्तर राजा के सब कुछ दान दे डालने के समय भी जो सात बार पृथ्वी काँप उठी, वह साधारण नियम के अनुकूल नहीं था, संयोग–वश हो गया था तथा बताए गये आठ कारणों का अपवाद स्वरूप था। इसी लिये आठ कारणों में उसकी गिनती नहीं की गई।"

---

१. देखो 'वेस्सन्तर जातक'।

१–"महाराज ! लोग साधारणतः तीन ही पानी गिरने को गिनते हैं– (१) बरसात का पानी गिरना, (२) जाड़े का पानी गिरना, और (३) आषाढ़ तथा सावन महीनों का पानी गिरना। यदि इसके अलावे कभी पानी पड़ जाय तो लोग उसे 'बिना मौसम' का पानी कहते हैं। उसे साधारण मौसिमों में नहीं गिनते।"

"महाराज ! हिमालय पर्वत से पाँच सौ नदियाँ निकलती हैं, किंतु उनमें साधारणतः केवल दस ही की गिनती होती है–(१) गङ्गा, (२) जमुना, (३) अचिरवती, (४) सरयू, (५) मही, (६) सिन्धु, (७) सरस्वती, (८) वेत्रवती, (९) बितमसा (व्यास) और (१०) चन्द्रभागा। दूसरी नदियों की गिनती इन में नहीं की जाती। सो क्यों ? क्योंकि वे छोटी और छिछली हैं।"

"महाराज ! राजा के दरबार में एक या दो सौ अफसर हैं किन्तु उनमें केवल छः की गिनती होती है–(१) सेनापति, (२) प्रधान मन्त्री (३) प्रधान न्यायकर्ता, (४) प्रधान कोषाध्यक्ष, (५) राजछत्र उठाने वाला (छत्रधारक) और (६) शरीर–रक्षक। इन्हीं छः की गिनती होती है। सो क्यों ? क्योंकि ये ही राजगुणों से युक्त हैं बाकी की गिनती नहीं होती। उन्हें केवल अफसर का नाम दे दिया जाता है।"

'महाराज ! इसी तरह, जो वेस्सन्तर राजा के सब कुछ दान दे डालने के समय पृथ्वी काँप उठी थी, वह साधारण नियम के अनुकूल नहीं था, संयोग–वश हो गया था, तथा बताये गये आठ कारणों का अपवाद–स्वरूप था। (इसलिये) उन आठ कारणों में उसकी गिरती नहीं की गई।"

२–"महाराज आपने क्या बुद्ध–धर्म में किए गये अभ्यासों के फल को इसी जन्म में पाते सुना है, जिसकी ख्याति देवताओं तक भी पहुँच चुकी है ?"

"हाँ भन्ते ! सुना है। वे सात लोग हैं।"

"कौन कौन ?"

(१) सुमन नाम का माली, (२) एकसाटक नाम का ब्राह्मण, (३) पुराण नाम का मजदूर, (४) मल्लिका नाम की रानी, (५) 'गोपाल की माँ' कही जाने वाली रानी, (६) सुप्पिय नाम की उपासिका और (७) पुराणा नाम की नोकरानी। इन सातों ने धर्म कर्म किए थे जिनका फल इसी जन्म में मिल गया था, और जिनकी कीर्ति देवताओं तक पहुँच गई थी।"

"महाराज ! क्या अपने दूसरों के विषय में सुना है, जो इसी मनुष्य के शरीर से स्वर्ग चले गए थे ?"

"हाँ भन्ते ! उसके विषय में भी सुना है।"

"वे कौन थे ?"

(१) गुत्तिल नाम का गन्धर्व, (२) साधीन नाम का राजा, (३) राजा निमि और (४) राजा मान्धाता-ये चार। बहुत ही पुराने समय में उन लोगों ने यह कठिन और बड़ा काम किया था।"

"महाराज क्या आपने कभी इस समय या पुराने समय में पृथ्वी को एक या दो, या तीन बार किसी के दान देते समय कापते सुना हैं ?"

"नहीं भन्ते ! नहीं सुना है।।"

"महाराज ! मैंने भी उस पुण्यात्मा वेस्सन्तर राजा के विषय में छोड़ और किसी दूसरे के दान देते समय पथ्वी कों काँपते नहीं सुना, यद्यपि मैंने सभी पुराणों को पढ़ा है, सभी विद्याओं का अध्ययन किया है, बहुत धर्म सुने हैं, बहुत कण्ट किये हैं, सदा नई बातों के सीखने के फेर में बहुत खोज की है, प्रश्नों के पूछने और उत्तर देने में तत्परता दिखाई है, तथा आचार्यों से सीखते रहने की इच्छा रक्खी है।"

३-"भगवान् काश्यप और भगवान् शाक्य-मुनि के समयों के बीच न जाने कितने सौ और हजार वर्ष बीत गये,[1] किंतु इसके बीच में मैंने ऐसी कोई दूसरी घटना नहीं सुनी।"

"महाराज ! पृथ्वी का काँपना कोई आसान या ठट्टा थोड़े ही है ! महाराज ! पुण्यों के भार से लद, शुद्ध धर्मों के बोझ से दब, सँभाल न सकने के कारण महापृथ्वी ड़ोल जाती है, और काँपने लगती है। महाराज ! जैसे गाड़ी को बहुत लाद देने से नाभी, और नेमि खसक जाते हैं और धुरा टूट जाता है, वैसे ही।"

"महाराज ! जैसे आकाश आँधी और पानी के वेग से भर जाता है, मेघ हवा के वेग से टक्कर खाकर गरजते और कड़कते हैं, तथा बड़ी वृष्टि होती हैं; वैसे ही वेस्सन्तर राजा के प्रताप और पुण्य के भार को नहीं संभाल सकने के कारण पृथ्वी ड़ोल गई और कांपने लगी, क्योंकि वेस्सन्तर राजा का चित्त न तो राग, द्वेष, या मोह से न अभिमान, न अविद्या न पाप न वैर और न असंतोष से युक्त था, बल्कि दानशीलता से लबालब भरा था। उन्होंने सोचा-'जिन लोगों को कुछ भी

---

१. दखो 'बोधिनी' १ परि. ४।

आवश्यकता है वे मेरे पास आवें और अपनी चाही चीज को पाकर अत्यन्त संतुष्ट होंगे।" इस तरह उनकी बुद्धि दानशीलता की ही ओर झुकी थी।"

४--"महाराज ! वेस्सन्तर राजा का चित्त इन्ही दस बातों में लगा था:- (१) आत्म-संयम, (२) आध्यात्मिक शान्ति, (३) क्षान्ति (क्षमा), (४) संवर, (५) यम, (६) नियम, (७) अक्रोध, (८) अहिंसा, (९) सत्य और (१०) शुद्धता। महाराज ! विषय भोगों को उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया था। उन्होंने भव-तृष्णा को जीत लिया था। उनके सभी प्रयत्न ऊपर ही उठने के थे। महाराज ! उन्होंने स्वार्थ को बिलकुल छोड़ दिया था। वे केवल परार्थ में लगे थे। उनका चित्त पर दृढ़ता के साथ लगा था कि-"कैसे मैं सभी जीवों को सुखी, स्वस्थ, धनी और दीर्घजीवी बना दूं ! !" महाराज ! वे दान इस ख्याल से नहीं देते थे कि दूसरे जन्म में इसका बड़ा अच्छा फल मिलेगा। दान करने के पुण्य के बदले में कुछ पाने की आशा उनके मन में नहीं थी। न वे किसी खुशामद में आकर दान देते थे। न अपने लड़के लड़कियों के दीर्घ-जीवन, अच्छा कुल, सुख शक्ति या यश पाने की आशा से। बल्कि उन्हों जो सच्चा ज्ञान पैदा हो गया था, उसी से प्रेरित हो कर उन्होंने इतना बड़ा, अपरिमित और अद्वितीय दान दिया। उस सच्चे ज्ञान को पा उन्होंने कहा था :-

"बुद्धत्व पाने के लिये मैंने अपने पुत्र जालि, अपनी लड़की कृष्णाजिना; अपनी रानी माद्री सभी को बिना कुछ मन में विचार लाए दान कर दिया।"

५-"महाराज ! वेस्सन्तर राजा दूसरों के क्रोध को प्रेम से, दूसरों की बुराई को उसकी भलाई करके, दूसरों की कृपणता को दान शीलता से झूठ को सच से और सभी पापों को पुण्य से जीत लिया करते थे।"

"महाराज ! वेस्सन्तर राजा धर्म ही की खोज में लगे रहते थे; धर्म ही उनका परम उद्देश्य था। जब वे उस महादान को दे रहे थे, तब उनकी दानशीलता के प्रभाव से उस वायु में एक चञ्चलता पैदा हो गई जिस पर कि यह पृथ्वी ठहरी है। धीरे धीरे वह महावायु जोर से चलने लगी। ऊपर, नीचे, तथा सभीं दिशाओं में पृथ्वी ड़ोलने लगी। बड़े बड़े मजबूत वृक्ष हिल गये। आकाश में बड़े बड़े बादलों के पुंज छा गये। धूली लिये एक भारी आँधी उठी। दिशायें एक दूसरे से टक्कर खानें लगीं। झंझावात जोरों से चलने लगी। सारी प्रकृति में एक भीषण कोलाहल उठ खड़ा हुआ। हवा के उन झकोरों से पानी धीरे धीरे हटने लगा, जिसके कारण मछलियाँ और दूसरे जलजीव व्याकुल हो उठे। पानी की बड़ी बड़ी लहरें एक दूसरे से टकराने लगीं। सभी जल के प्राणी डर से भर गए। समुद्र जोरों से गरजने लगा। फेन की मालायें उठने लगी। समुद्र में भारी उथल पुथल मच गई। असुर, गरुड, यक्ष,

नाग सभी डर के मारे घबड़ा गयें-अरे, यह क्या ! ! क्या समुद्र उलट जायगा ! ! ! और धड़कते हुए हृदय से बचने की जगह खोजने लगे। पानी में विक्षोभ होने से पृथ्वी भी हिलने लगी, क्योंकि वह उसी पर ठहयी है। पहाड़ों की बड़ी बड़ी चोटियां तथा सुमेर मुड़ गये। पृथ्वी के काँपने से सांप, नेवले, बिल्लियाँ, सियार, भालु, हरिण और पक्षी-सभी व्याकुल हो गये। निम्न श्रेणी के यक्ष रोने लगे; किन्तु उच्चश्रेणी के यक्ष बड़े प्रसन्न हुए।"

"महाराज ! कोई बड़ी कड़ाही पानी से भर कर चूल्हे पर रख दी जाय। उसमें काफी चावल छोड़ दिया जाय। फिर, चूल्हे में जलती हुई आग पहले कड़ाही के पेंदे को तपावे, उसके बाद पानी गरम होकर खौलने लगे। पानी के खौलने से चावल के दाने ऊपर नीचे होने लगें। उसके ऊपर बहुत बुलबुले छूटने लगें और फेन का ताँता बँध जाय।"

"महाराज ! उसी तरह, वेस्सन्तर राजा ने अपनी प्रिय से प्रिय चीजों को भी दान दे डाला, जिनका देना बढ़ा कठिन समझा जाता है। उनकी दानशीलता के प्रभाव से महावायु में विक्षोभ हुए बिना नहीं रह सका। वायु के चञ्चल होने से पानी भी चञ्चल हो उठा। और पानीके चञ्चल होने से महापृथ्वी काँपनें लगी। मानो उस महादान-शीलता के प्रभाव से वायु, जल और पृथ्वी तीनों अलग अलग हो गये। महाराज ! वेस्सन्तर राजा के उस महादान के समान किसी दूसरे ने दान नहीं दिया।"

६-"महाराज ! इस पृथ्वी में नाना प्रकार के रत्न हैं, जैसे :-इन्द्रनील, महानील, जोतिरस, वैदूर्य, ऊर्मापुष्प, सिरीर पुष्प मनोहर, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, वज्र, कज्जोपक्रमक, स्पर्शराग, लोहिताङ्ग, मसारगल्ल इत्यादि। किंतु, [1]चक्रवर्ती रत्न इन सभी से बढ़कर समझा जाता है। महाराज ! चक्रवर्ती रत्न चारों ओर योजन भर अपने प्रकाश को फैलाता है।"

"महाराज ! इसी तरह, इस पृथ्वी पर आज तक जिसने बड़े बड़े दान दिन गए हैं, सभो में श्रेष्ठ वेस्सन्तर राजा का महादान है। महाराज ! वेस्सन्तर राजा के महा-दान देने के समय पृथ्वी सात बार काँप उठी थी।"

"भन्ते नागसेन ! बुद्धों की बातें आश्चर्य हैं, अद्भुत हैं। शान्ति, चित्त, अधिमुक्ती तथा अभिप्राय में भगवान् बोधिसत्व रहते हुए ही अद्वितीय थे। भन्ते ! बोधिसत्वों के पराक्रम को आपने दिखला दिया, उन जितेन्द्रियों की पारमिताओं को प्रकाश में कर दिया। भगवान् के वीर्य की श्रेष्ठता को भी जतला दिया। भन्ते ! आपने खूब समझाया।"

---

१. देखो दीघनिकाय चक्रवर्ती-सूत्र।

"बुद्ध का धर्म ऊँचा करके दिखा दिया। बुद्ध की पारमिताओं की कीर्ति फैला दी। विपक्षी मतों के कुतर्कों की गुत्थियाँ सुलझा दीं। सभी झूठे सिद्धान्तों का भंडा फोड़ दिया। इतनी जटिल दुविधा साफ कर दी। जंगल काट कर साफ कर दिया। बुद्ध के पुत्रों ने अपनी चाही चीज पा ली। भन्ते! आप गणाचार्यों में श्रेष्ठ हैं। आपने बिलकुल ठीक कहा, मैं ऐसा मान लेता हूँ।"

(इति) महाभूमि चाल प्रादुर्भाव प्रश्न समाप्त

६. शिवि राजा का आँखों को दान कर देना

"भन्ते नागसेन! आप लोग कहा करते हैं—"शिवि राजा ने माँगने वालों को अपनी आँखें भी दान में दे डालीं। अपने अंधे हो जाने के बाद उनकी आँखें फिर भी दिव्य प्रभाव से जम गई।"[1] यह बात नहीं जँचती इसे कहने वाला दुविधा में डाल दिया जा सकता है। ऐसा कहना गलत है। सूत्रों में कहा गया है—"हेतु के बिलकुल नष्ट हो जाने पर, किसी हेतु या आधार के नहीं रहने पर दिव्य चक्षु नहीं उत्पन्न हो सकता।"

"भन्ते! यदि शिवि राजा ने यथार्थ में अपनी आँखें दान में दे डालीं तो यह बात झूठ उतरती है कि उनकी आँखें फिर भी दिव्य प्रभाव से जम गई; और यदि यथार्थ में उनकी आँखें दिव्य प्रभाव से जमी थीं तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्होंनें माँगने वालों को अपनी आँखें भी दान में दे डालीं।"

"भन्ते! यह दुविधा गाँठ से भी अधिक जकड़ी हुई है, तीर से भी अधिक तेज है, और घने जंगलों से भी अधिक घनी है। यह आपके सामने रक्खी गई है। इस दुविधा को आप खोल दें जिससे विपक्षी मतों के झूठे तर्क नहीं चलने पावें"

"महाराज! शिवि राजा ने माँगने वालों को अपनी आँखें दान में दे डाली थीं, इसमे आप कोई भी संदेह न करें। उसके बदले दिव्य प्रभाव से उनकी आँखें फिर भी जम गई थीं इसमें भी कोई संदेह न करें।"

"भन्ते नागसेन! हेतु के बिलकुल नष्ट हो जाने और कोई हेतु या आधार के नहीं रहने पर भी क्या दिव्य-चक्षु उत्पन्न हो सकता है?"

"नहीं महाराज! नहीं उत्पन्न हो सकता।"

"भन्ते! तब, उसके बिलकुल नष्ट हो जाने तथा कोई हेतु या आधार के नहीं रहने पर भी उसकी आँखें कैसे जम गई? हाँ, अब आप इस बात को मुझे समझावें।"

---

१. देखो 'शिवि-जातक'।

"महाराज ! क्या इस लोक में सत्य नाम की कोई चीज है, जिसके अनुसार सत्य बोलने वाले अपने सत्य-कर्मों को करते हैं ?"

"हाँ भन्ते ! सत्य नाम की चीज है। इसी के सहारे सत्यवादी लोग पानी भी बरसा सकते हैं, धधकती आग को भी बुझा दे सकते हैं, विष को भी शान्त कर सकते है, तथा और भी, इसी तरह, जो जो चाहें कर सकते हैं।"

"महाराज ! तब तो यही बात शिवि राजा के साथ भी घटती है। यह सत्य का ही प्रताप था कि शिवि राजा की आँखें फिर भी जम गई थीं। किसी हेतु के उपस्थित नहीं रहने पर भी सत्य ही के प्रताप से ऐसा हुआ था। यहाँ पर तो सत्य ही को उसका हेतु समझना चाहिए।"

"महाराज ! जो बड़े बड़े सिद्ध पुरुष हैं, उनके 'पानी बरसे' इतना कहने भर से उनके सत्य बल से पानी बरसने लगता है। तो क्या उस समय आकाश में वर्षा होने के सभी लक्षण पहले से मौजूद रहते हैं जिसके कारण पानी बरस जाता है ?"

"नहीं भन्ते ! वहाँ उनका सत्य-बल ही पानी बरसा देने का कारण होता है।"

"महाराज ! इसी तरह शिवि राजा के विषय में कोई साधारण प्राकृतिक कारण नहीं था; उनके सत्य का प्रताप ही एक कारण था।"

"महाराज ! जो बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष हैं, उनके "आग बुझ जाय" इतना कहने भर से बड़ी धधक कर जलती आग का ढ़ेर भी क्षणभर में बुझ कर ठंढ़ा हो जाता है। तो क्या महाराज ! पहले ही से ऐसे लक्षण उपस्थित रहते हैं जिनके कारण आग का ढ़ेर क्षणभर में बुझकर ठंड़ा हो जाता हैं ?"

"नहीं भन्ते ! वहाँ उनका केवल सत्य बल ही आग के बुझ जाने का कारण होता है।"

"महाराज ! इसी तरह शिवि राजा के विषय में भी उनके सत्य का प्रताप ही एक कारण था।"

"महाराज ! जो बड़े बड़े सिद्ध पुरुष हैं उनके-'यह विष शान्त हो जाय' इतना कहने भर से कड़ा विष भी दब जाता है। तो क्या यहाँ विष के दबने के लक्षण पहले ही मौजूद रहते हैं ?"

"नहीं भन्ते ! उनके सत्य का प्रताप ही यहाँ कारण होता है।"

"महाराज ! इसी तरह, शिवि राजा के विषय में भी उनके सत्य का प्रताप ही एक कारण था।"

"महाराज ! चार आर्य सत्यों के साक्षात्कार करने का भी कोई — दूसरा कारण नहीं होता; इसी सत्य के आधार पर उनका भी साक्षात्का होता है।"

१. चीन राजा

"महाराज ! चीन देश में चीनी लोगों का एक राजा रहता है। वह समुद्र को बाँध देने की इच्छा से, कभी कभी चार चार महीनों का बीच देकर एक सत्य व्रत का पालन करता है। उसके बाद अपने रथ में सिहों को जोत कर समुद्र में योजन भर पैठ जाता है। उस समय उसके रथ के आगे से समुद्र की लहरें पीछे हट जाती हैं। जब वह रथ को लौटा लेता है तो लहरें फिर अपनी जगहों पर लौट आती हैं। क्या समुद्र देवता और मनुष्यों की साधारण शक्ति से बाँधा जा सकता है ?"

"भन्ते ! समुद्र की बात तो छोड़ दें। एक छोटे तलाब के पानी को भी इस तरह वश में नहीं लाया जा सकता।"

"महाराज ! इसी से आप सत्य के बल का पता लगा लें! संसार में कोई भी ऐसी जगह नहीं है जहाँ सत्य-बल की पहुँच न हो।"

२. बिन्दुमती गणिका का सत्य-बल

"महाराज ! एक दिन पाटलिपुत्र (=वर्तमान पटना) में धर्मराज अशोक अपने गाँव-शहर-निवासियों, अफसरों, नौकरों और मन्त्रियों के साथ गङ्गा नदी देखने गये। उस समय गङ्गा नदी नये पानी के आ जाने से लबालब भर गई थी। उस पाँच सौ योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी बढ़ी हुई नदी को देखकर धर्मराज अशोक बोले-"क्या तुम लोगों में कोई ऐसा है जो गङ्गा नदी की धारा को उलटी बहा दे ?"

अफसरों ने कहा-"देव ! भला ऐसा कौन कर सकता है ?"

उस समय बिन्दुमती नाम की एक गणिका भी वहीं गङ्गा नदी के किनारे आई हुई थी। उसने राजा के इस सवाल को सुना। वह अपने मन में बोली-'मैं तो इस पाटलिपुत्र नगर में अपने रूप को बेचकर जीने वाली एक गणिका हूँ। मेरी जीविका बहुत ही नीच कोटि की है। किंतु, तो भी राजा मेरे सत्य-बल को देख लें !" तब उसने अपना सत्य-बल लगाया। उसके सत्य-बल लगाते ही गङ्गा नदी उलटी धार हो गलगला कर बहने लगी। सभी लोग देखते रह गए।"

तरङ्गों के आपस में टकराने से बड़ा भारी शब्द हो उठा। उसे सुन राजा आश्चर्य से भर गये; और चकित हो अपने अफसरों से पूछने लगे–"अरे ! यह गङ्गा नदी उलटी धार कैसी बहने लगी ?"

"महाराज ! आप के सवाल को सुनकर विन्दुमती गणिका ने अपना सत्य-बल लगाया, उसी से गङ्गा नदी ऊपर की ओर बह रही है।"

राजा को बड़ा विस्मय हुआ। वे तुरन्त ही स्वयं उस गणिका के पास गए और बोले–"[1]अगे ! क्या सचमुच तुम्हारे सत्य-बल लगाने से गङ्गा नदी उलटी धार बह रही है ?"

"हाँ महाराज !"

राजा बोले–"तुम्हें सत्य-बल कहाँ से आया ? या किसी ने तुम से यह सुनकर यों ही आकर मुझ से कह दिया ? तुम ने कैसे गङ्गा नदी को उलटी धार बहा दिया ?"

वह बोली– "महाराज ! अपने सत्य-बल से।"

राजा बोल उठे–"अरे, तुम जैसी चोरनी, ठगनी, बुरी, छिनाल हद दर्जे की पापिनी, बुरे से कामों को करने वाली, काम से अन्धे बने लोगों को लूटकर जीने वाली औरत को सत्य-बल कैसा ?"

"महाराज ! आप बिलकुल ठीक कहते हैं। मैं ठीक वैसी ही औरत हूँ। किंतु वैसे होती हुई भी मुझ में सत्य-बल का इतना तेज है कि मैं उस से देवताओं और मनुष्यों के साथ इस लोक को भी उलट दे सकती हूँ।"

राजा बोले–"वह सत्य-बल क्या है ? मुझे सुनाओ तो सही !"

"महाराज ! चाहे क्षत्रिय या ब्राह्मण, या वैश्य, या शूद्र, जो भी मुझे एक बार मेरी फीस दे देता है, मैं सभी को बराबर समझकर सेवा करती हूँ। न क्षत्रियों को ऊँच और न शूद्रों को नीच समझती हूँ। ऊँच नीच के भाव को एकदम छोड़ जो फीस देता है उसकी सेवा करती हूँ। महाराज ! मेरा सत्य-बल यही है। इसी सत्य-बल से मैंने गङ्गा नदी को उलटी धार बहा दिया।"

इस कथा को कहकर आयुष्मान् नागसेन बोले– "महाराज ! इसी तरह, ऐसा कोई भी काम नहीं, जो सत्य पर दृढ़ रहने वालों से नहीं किया जा सके।

---

१. अजे ! स्त्री को सम्बोधन करने के लिये यह शब्द प्रचलित था। आजकल मगध में इसका रूपान्तर 'अगे' है।

महाराज ! शिवि राजा ने माँगने वालों को अपनी आँखें भी दे डालीं और उनके सत्य-बल से उनकी आँखें फिर भी जम गईं यह केवल उनके सत्य का प्रताप था।

"महाराज ! जो सूत्रों में कहा गया है-इस भौतिक चक्षु के नष्ट हो जाने तथा उसके कारण और आधार के बिलकुल चले जाने पर कोई दिव्य चक्षु की उत्पत्ति नहीं होती-सो भावनामय-चक्षु के विषय में कहा गया है। महाराज ! इसे ऐसा ही समझें।"

"भन्ते नागसेन ! आप ने खूब कहा। आप ने दुविधा को अच्छा खोल दिया। विपक्ष में बोलने वालों का मुँह तोड़ दिया। आप के कहे हुए को मैं मान लेता हूँ।"

७. गर्भाशय में जन्म ग्रहण करने के विषय में

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है-"भिक्षुओ ! तीन बातों के मिलने से गर्भ धारण होता है-(१) माता पिता का मिलना, (२) माता का ऋतुनी होना, और (३) गन्धर्व। इन तीनों के मिलने से ही गर्भ-धारण होता है।" [1]सभी जगह लागू होने वाली यह बात है। कोई ऐसी जगह नही है जहाँ यह झूठी ठहरे। इस पर और कुछ टीका टिप्पणी नहीं चढ़ाई जा सकती। यह बात अर्हत द्वारा कही गई है। उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के बीच में बैठकर कहा था-"दो (स्त्री और पुरुष) के संयोग होने से ही गर्भ रहता है।"

दुकूल नामक तापस ने पारिका नामक तापसी की नाभी को उसके ऋतुनी होने के समय में अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से छू दिया था। उसी छूने भर से उसे साम नाम का इक लड़का पैदा हो गया।"

मातङ्ग ऋषि ने भी ब्राह्मण की लड़की की नाभी को उसके ऋतुनी होने के समय में अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से छू दिया था। उसी छूने भर से उसे माण्डव्य नाम का लड़का पैदा हो गया।"

"भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् की ऊपर वाली कही गई बात सच है तो साम और माण्डव्य के उस तरह पैदा होने की बात झूठी ठहरती है। और यदि भगवान् ने यह यथार्थ मैं कहा है कि साम और माण्ड्व्य इन दो लड़कों का जन्म उस प्रकार केवल नाभी के छू देने भर से हो गया था, तो उनकी यह बात झूठी ठहरती है कि उन तीनों के संयोग से ही गर्भ-धारण होता है, भन्ते ! यह दुविधा

१. देखो अंगुत्तरनिकाय 'तिकनिपात'।

भी बड़ी गम्भीर और सूक्ष्म है। यह बुद्धिमानों के ही समझने लायक है। सो यह दुविधा आपके सामने रक्खी गई है। विपक्षी मतों का खण्डन कर दें ! ज्ञान के उत्तम प्रकाश को फैला दें।

"महाराज ! भगवान् ने यह ठीक कहा है–"भिक्षुओ ! तीन बातों के मिलने से ही गर्भ-धारण होता है–(१) माता पिता का संयोग, (२) माता का ऋतुनी होना और (३) गन्धर्व। इन तीनों के मिलने से ही–गर्भ धारण होता है।" महाराज ! भगवान् ने यह भी यथार्थ में कहा कि साम और माण्डव्य का जन्म केवल नाभी के छूने भर से हो गया था।

"भन्ते ! कृपया इसे साफ करके मुझे समझावें।"

१–"महाराज ! क्या आपने पहले कभी भी सुना है कि साँकृत्य (सांकिच्च) कुमार, इसिसिंग (ऋष्यश्रृंग) तापस, और स्थविरकुमार काश्यप का जन्म कैसे हुआ था ?

"हाँ भन्ते ! सुना है। उनके जन्म के विषय में भला कौन नहीं जानता ? दो हिरनिया ऋतुनी होने के समय दो तपस्वियों के पेशाब-खाने में गई और उन तपस्वियों के शुक्र के साथ पेशाब को पी गई। उसी से सांकृत्य कुमार और ऋष्यश्रृंग तापस का जन्म हुआ था।"

एक समय उदायि स्थविर भिक्षुणियों के आश्रम में गये हुए थे। उस समय उनके चित्त में काम उत्पन्न हो गया, और वे भिक्षुणियों के गुह्यस्थानों को ध्यान में लाने लगे। उससे उनको शुक्र-मोचन हो गया। तब, उन्होंने उस भिक्षुणी से कहा–"बहन ! थोडा पानी ला दूं। मैं अपने नीचे के कपड़े (अन्तरवासक) को धोऊँगा।"

भिक्षुणी बोली–"मुझे दें ! मैं ही धो दूंगी।"

भिक्षु ने अपना कपड़ा दे दिया। वह भिक्षुणी उस समय ऋतुनी थी, सो वह भिक्षु के उस शुक्र को तो मुंह में डाल कर निगल गई और कुछ उसने अपने गुह्येन्द्रिय में डाल लिया। उसी से स्थविर कुमार काश्यप का जन्म हुआ। लोग इस कथा को इसी तरह बताते हैं।"

"महाराज ! आप इसे ठीक मानते हैं या नहीं ?"

"हाँ भन्ते ! इसके लिए एक बड़ा सबूत है जिससे मुझे मानना पड़ता है।"

"वह कौन सा सबूत है ?"

"भन्ते ! जब खेत कीचड़ कीचड़ (गीला) होकर तैयार हो जाता है, तो उसमें जो बीज बोया जाता है बड़ी जल्दी जम जाता है न ?"

"हाँ, महाराज !"

"भन्ते ! इसी तरह, उस ऋतुनी भिक्षुणी ने कलल के संस्थति हो जाने, लहू के रुक जाने तथा धातु के स्थिर हो जाने पर उस शुक्र को ले कर कलल में छोड़ दिया था। इसी से पेट रह गया। यही एक बड़ा सबूत है।"

"महाराज ! मैं भी इसे मान लेता हूँ। तो आप कुमार काश्यप के गर्भ-धारण के विषय में कही जाने वाली इस कथा को भी स्वीकार करते हैं न ?"

"हाँ भन्ते ! स्वीकार करता हूँ।"

"ठीक है महाराज ! आप मेरे रास्ते पर आ गये। आपने जो एक तरह से गर्भ-धारण का सम्भव होना मान लिया, उससे मुझे काफी बल मिल गया।"

"अच्छा ! अब यह बतावें कि उन दो हिरनियों को पेशाव पीछे से गर्भ रह गया, उसे विश्वास करते हैं या नहीं ?"

"हाँ भन्ते ! जो कुछ खाया, पीया या चाटा है, सभी कलल ही में जाता है, और अपने स्थान पर आ कर बढ़ने लगता है। भन्ते ! जैसे सभी नदियाँ समुद्र ही में जाकर गिरती हैं, वैसे ही जो कुछ खाया, पीया या चाटा जाता है सभी कलल ही में जाता है। इसी कारण से मैं यह भी मान लेता हूँ, कि मुँह से भी जाकर गर्भ-धारण हो सकता है।"

"ठीक है महाराज ! आप तो बिलकुल मेरे रास्ते पर आ गए। तो आप सांकृत्य कुमार और ऋष्यश्रृंग तापस के जन्म कें विषय में कही जाने वाली कथा को स्वीकार करते हैं न ?"

२-"महाराज ! सामकुमार और माण्डव्य माणवक के जन्म में भी तीनों बातें चली जाती हैं। उनका जन्म भी ऊपर वाले से मिलता जुलता है। मैं उसका कारण कहता हूँ-

दुकूल नाम का तापस और पारिका नाम की तापसी दोनों जंगल में रहते थे। दोनों का ध्यान विवेक उत्तम-अर्थ की खोज में लगा था। उन लोगों की तपस्या के तेज से ब्रह्मलोक भी गर्म हो उठा था। उस समय स्वयं इन्द्र भी सुबह-शाम दोनों वेला उसकी सेवा के लिये हाजिर रहता था।"

"इन्द्र ने उन दोनों के विषय में मैत्री-भावना करने के समय देखा- "आगे चल कर ये दोनों अंधे हो जायँगे।" यह देख इन्द्र ने उन दोनों से कहा-'कृपा कर आप लोग मेरी एक बात स्वीकार कर लें। मेरी बड़ी इच्छा हो रही है कि आप

लोगों का एक पुत्र होता। वह पुत्र आप लोगों की सेवा करता और बड़ा सहारा होता।"

हे इन्द्र ! हम लोगों को पुत्र से प्रयोजन नहीं है। आप ऐसी प्रार्थना न करें। इसे हम लोग नहीं स्वीकार कर सकते।

उन लोगों की भलाई चाहने वाले इन्द्र ने दूसरी और तीसरी बार भी कहा—मेरी एक बात कृपा कर मान लें। आप लोगों का एक पुत्र होता तो बड़ी अच्छी बात होती। वह आप लोगों की सेवा करता और वृद्धावस्था में बड़ा सहारा होता।"

"तीसरी बार उन दोनों ने कहा—"रहने दें इन्द्र ! हम लोगों को आप अनर्थ में मत लगावें। भला यह शरीर कब नहीं नष्ट हो जा सकता है ! नष्ट हो जावे, नष्ट होना तो इसका स्वभाव ही है। पृथ्वी के टूक टूक हो जाने पर भी, पहाड़ों के ढह जाने पर भी, शून्य आकाश के फट जाने पर भी, तथा चाँद और सूरज के टूट कर टपक पड़ने पर भी हम लोग सांसारिक कार्यों में नहीं फँस सकते। अब आप हम लोगों के सामने कभी मत आवें। आपके आने पर कुछ विश्वास हुआ था, किंतु अब मालूम पड़ता हैं कि आप हम लोगों की बुराई चाहने वाले हैं।"

तब, देवेन्द्र उन लोगों को राजी न कर सकने पर फिर भी विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर बोला—"यदि आप मेरी बात पर तैयार नहीं होते हैं, तो केवल इतना तो करें कि तापसी के ऋतुनी तथा पुष्पवती होने पर उसकी नाभी को अपने दाहिने हाथ के अँगूठे से छू दें। इतने भर से उसे गर्भ धारण हो जायगा। गर्भ-धारण के लिये इतना ही काफी होगा।"

"हाँ इन्द्र ! मैं इतना कर सकता हूँ। इसके करने भर से हम लोगों का तप नहीं टूटता।" —इतना कह कर स्वीकार कर लिया।

देवपुत्र

उस समय देवलोक में एक पुण्यवान् देवपुत्र रहता था। अपने पुण्यों को समाप्त हो जाने से वहाँ उसकी आयु भी समाप्त हो चली थी। अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ कहीं वह जन्म ग्रहण करने में समर्थ था। यदि वह चाहता तो चक्रवर्ती राजा के कुल में भी उत्पन्न हो सकता।"

"देवेन्द्र ने उस देवपुत्र के पास जाकर कहा—"सुनें मार्ष (मारिस) आप का भाग्य जग गया। आपने बड़ी भारी सिद्धि पा ली है। मैं आज आपकी एक सहायता करना चाहता हूँ। आप का जन्म बड़े रमणीय स्थान में होगा। बड़े ही अनुकूल कुल में आप उत्पन्न होंगे। सुन्दर माँ-बाप से आप पाले-पोसे जायँगे। आवें, आप मेरी

बात मानें।" दूसरी और तीसरी बार भी देवेन्द्र ने हाथ जोड़ कर उस देवपुत्र से यह प्रार्थना की।

तब देवपुत्र ने कहा—"मार्ष ! वह कौन सा कुल है जिसकी आप बार बार इतनी बड़ाई करते हैं ?"

"दुकुल नाम का तापस और पारिक नाम को तापसी—इन्हीं के कुल की।"

देवपुत्र ने देवेन्द्र की बात से सन्तुष्ट हो स्वीकार कर लिया—"बहुत अच्छा मारिस ! जो आपकी इच्छा है वही होवें। मारिस ! मैं आप के बताये गए कुल में जन्म लूंगा। किस कुल में जन्म लूं—अण्डज, या जरायुज, या संस्वेदज, या औपपातिक—किस कुल में ?"[1]

"मारिस ! आप जरायुज योनि में जन्म लें।"

"तब, देवेन्द्र ने उसके उत्पत्ति—दिन को गिन कर दुकुल तापस को बतलाया—"फलाने दिन तायसी ऋतुनी तथा पुष्पवती होगी, सो आप उस दिन उसकी नाभी को अपने दहिने हाथ के अंगूठे से छू देंगे।"

"महाराज ! ठीक उसी दिन तापसी ऋतुनी हो गई। देवपुत्र भी उसके गर्भ में प्रतिसन्धि ग्रहण करने के लिए तैयार था। तापस ने भी तापसी की नाभी को अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से छू दिया। उस छूने भर से तीनों बातें हो गई। नाभी के छने से तापसी को काम—राग उत्पन्न हो आया। किंतु यह नाभी का छूना मैथुन नहीं था। हँसी मजाक करना, बातें करना, आँखें लड़ाना, आपस में स्पर्श करना-इन सभी बातों से गर्भ का सञ्चार हो जाता है। महाराज ! मैथुन करने को छोड़ इस प्रकार की गर्भधारण होता है। महाराज ! जैसे आग दूर ही रह बिना मैथुन धर्म के सेवन किए ही केवल छूने भर से भी गर्भ रह जाता है।"

३—"महाराज ! इन चार बातों से गर्भधारण होता है (१) अपने कर्म के वश से, (२) योनि के वश से, (३) कुल के वश से, और (४) प्रार्थना के वश से। किंतु सभी जीव कर्मों के ही अनुकूल जन्म ग्रहण करते हैं।

(१) "कर्मों के कारण जीवों का गर्भ—धारण कैसा होता है ?"

"महाराज ! बहुत पुण्यवान लोग, बड़े क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति, देवता, अण्डज, जरायुज, संस्वेदज या औपपातिक जिस कुल में जन्म लेना चाहते हैं उसी में ले सकते हैं। महाराज ! कोई बड़ा धनी आदमी, जिसके पास काफी सोना चाँदी हो,

---

१. ओपपातिक—जिनका जन्म माता-पिता के संयोग से नहीं किंतु मन के संकल्प करने भर से हो जाता है।

बडी सम्पत्ति हो, और जिसके बन्धु बान्धव भी बहुत हों, दसा दासी, नौकर, खेत, गाँव, कस्बे या जिले जिसको लेना चाहे दुगुना तिगुना दाम देकर भी ले सकता है। उसी तरह, बहुत पुण्यवान् लोग जिस कुल में जन्म लेना चाहते हैं उसी में ले सकते हैं। इसी तरह कर्म के कारण जीवों का गर्भ-धारण होता है।"

(२) योनि के प्रभाव से जीवों का गर्भ-धारण कैसे होता है ?"

"महाराज ! मुर्गी को हवा चलने से और बगुलों को मेघ के गरजने से ही गर्भ रह जाता है। देवता लोग गर्भाशय में जन्म नहीं ग्रहण करते। जीवों का जन्म नाना प्रकार से होता है। जैसे महाराज ! भिन्न भिन्न मनुष्यों की भिन्न भिन्न तरह की रहन-सहन है कोई आगे ढँकते हैं, कोई पीछे ढँकते हैं, कोई नंगे रहते हैं, कोई सिर मूंडवाते हैं। और उजले कपडे पहनते हैं, कोई पगड़ी बाँधते है, कोई माथा मुड़वाते और काषाय वस्त्र पहनते हैं, कोई जटा बढ़ाते और वल्कल धारण करते हैं, कोई छाल ही ओढ़ते हैं, कोई मोटे कपड़े पहनते हैं, कोई जटा बढ़ाते और वल्कल धारण करते हैं, कोई छाल ही ओढ़ते हैं, कोई मोटे कपड़े पहनते हैं–उसी तरह भिन्न भिन्न जीव नाना प्रकार से गर्भ-धारण करते हैं। इसी तरह, योनि के प्रभाव से जीवों का गर्भ धारण होता है।"

(३) कुल सम्बन्ध से जीवों का गर्भ-धारण कैसे होता है ?"

"महाराज ! अण्डज, रजायुज, संस्वेदज और औपपातिक के भेद से चार कुल होते हैं। अपने अपने कर्मों के अनुसार जीव इन कुलों में जन्म लेते हैं। उन उन कुलों में उनके समान ही जीव उत्पन्न होते हैं। जैसे, जितने पशु या पक्षी हिमालय के सुमेरू पर्वत पर पहुँच जाते हैं सभी अपने अपने रंग को छोड़ सोने के रंग के हो जाते हैं, वैसे ही जो जीव जहाँ कहीं से आकर जिस किसी कुल में पैदा होते हैं उसी के समान हो जाते हैं। इसी तरह कुल के सम्बन्ध से जीवों का जन्म होता है।"

(४) प्रार्थना के प्रभाव से जीवों का गर्भ-धारण होता है।"

"महाराज ! कोई कोई कुल सन्तान-हीन होता है। उस कुल में बड़ी सम्पत्ति होती है। कुल वाले बड़े श्रद्धा-प्रसन्न, शीलवान, कल्याणधर्म-परायण और तपःपरायण होते हैं। उसी समय कोई देवपुत्र अपने पुण्य के क्षीण हो जाने के कारण देवलोक से च्युत होने वाला होता है। तब, देवेन्द्र उस कुल पर बड़ी दया कर के उस देवपुत्र से प्रार्थना करता है–'हे मारिस ! आप फलाने कुल में जन्म लें'। वह देवपुत्र देवेन्द्र की प्रार्थना को मान उसी कुल में जन्म लेता है।"

"महाराज ! जैसे पुण्य की इच्छा रखने वाले मनुष्य किसी शीलवान् भिक्षु को प्रार्थना करके अपने घर पर ले जाते हैं, कि उसके जाने से कुल का कल्याण होगा। इसी प्रकार इन्द्र उस देवपुत्र को प्रार्थना करके उस कुल में ले जाता है। इसी तरह प्रार्थना के प्रभाव से जीवों का गर्भ-धारण होता है।

"महाराज ! देवेन्द्र से प्रार्थना किए जाने पर साम कुमार ने पारिका तापसि की कोख में जन्म ग्रहण कर लिया। महाराज ! साम कुमार बड़ा पुण्यवान् था। उसके माता-पिता भी बड़े शीलवान् और कल्याणधर्मी थे। उस पर भी प्रार्थना करने वाला स्वयं देवेन्द्र जैसा योग्य व्यक्ति था। इन तीनों के चित्त के मिल जाने से साम कुमार का जन्म हुआ।"

"महाराज ! कोई कुशल पुरुष अच्छी तरह तैयार किए गए खेत में बीज रोपे। यदि बीज में कोई बाधा न हो जाय तो क्या उस बीस के बढ़ने में में कोई रुकावट होगी ?"

"नहीं भन्ते ! कोई बाधा नहीं होने से बीज अवश्य शीघ्र ही बढ़ेगा।"

"महाराज ! इसी तरह किसी भी बाधा के नहीं होने से और तीनों के चित्त मिल जाने से साम कुमार ने जन्म ग्रहण किया।"

"महाराज ! क्या आपने पहले सुना है, कि ऋषियों के मन में क्रोध आ जाने से चढ़ता बढ़ता गुलजार देश भी नष्ट हो जाता है ?"

"हाँ भन्ते ! ऐसा सुनने में आता है कि दण्डकारण्य, मेध्यारण्य, कालिङ्गारण्य और मातंगरण्य सभी पहले मनुष्यों के गुलजार नगर थ-ऋषियों के शाप से ही ये जंगल हो गए।"

"महाराज ! यदि उन ऋषियों के क्रोध करने से नगर के नगर जंगल हो जाते हैं, तो क्या उनके प्रसन्न होने से कोई अच्छी बात नहीं हो सकती ?"

"हाँ भन्ते ! अवश्य हो सकती है।"

"महाराज ! तो, इसी तरह तीन महाबलशाली व्यक्तियों के चित्त मिल जाने से साम कुमार का जन्म हुआ। ऋषि के निमित्त से, देव के निमित्त से और पुण्य के निमित्त से साम कुमार जनमे। महाराज ! इसे ऐसा ही समझें।"

"महाराज ! तीनों देवपुत्र देवेन्द्र से प्रार्थना किए जाने पर कुल में उत्पन्न हुए। वे तीन कौन से ? (१) साम कुमार (२) महापनाद और (३) कुस राजा। ये तीनों बोधिसत्व हैं।"

"भन्ते नागसेन ! मैंने देख लिया कि गर्भ-धारण कैसे होता है। आपने कारणों को अच्छा समझाया। अन्धकार में प्रकाश कर दिया। उलझनों को सुलझा दिया। विपक्ष वालों का मुँह फीका कर दिया। आपने जैसा बताया, उसे मैं मान लेता हूँ।"

गर्भावक्रान्ति प्रश्न समाप्त

८. बुद्ध-धर्म का अन्तर्धान होना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है-"आनन्द ! मेरा धर्म पाँच सौ वर्षों तक रहेगा[1]।" साथ ही साथ अपने परिनिर्वाण के समय सुभद्र नामक परिव्राजक से पूछे जाने पर भगवान् ने यह भी कहा है-'सुभद्र ! यदि भिक्षु लोग धर्म के अनुसार रहें तो यह संसार अर्हतों से कभी खाली नहीं होगा। सभी जगह लागू होने वाली यह बात है। कोई ऐसी जगह नहीं हैं जहाँ यह झूठी ठहरे। इस पर और कुछ टीका टिप्पणी नहीं चढ़ाई जा सकती।

"भन्ते ! यदि भगवान् ने यह ठीक कहा-"आनन्द ! मेरा धर्म पाँच सौ वर्षों तक रहेगा।" तो यह बात झूठी उतरती है कि यह संसार अर्हतों से कभी खाली नहीं होगा। और, यदि भगवान् ने यही ठीक कहा है, "यह संसार अर्हतों से खाली नहीं होगा" तो यह बात झूठी उतरती है कि पाँच सौ वर्षों तक ही धर्म रह सकेगा।"

'भन्ते ! यह भी दुविधा में डाल देने वाला प्रश्न है। यह आप के सामने रक्खा गया है। यह प्रश्न गूढ़ से भी गूढ़ कड़ा से भी कड़ा और जटिल से भी जटिल है। यहाँ आप अपना ज्ञान-बल दिखावें जैसे सागर में रह कर मगर (दिखाता है)।"

'महाराज ! भगवान् ने ऊपर की दोनों बातें यथार्थ में कही हैं। किंतु, भगवान की भिन्न भिन्न बातें भाव में और शब्दों में दोनों में भिन्न भिन्न होती हैं। इन में से एक तो यह बताता है कि बुद्ध-धर्म का शासन कितने दिनों तक रहेगा और दूसरा यह कि धर्म का फल कैसे सदा एक ही तरह से मिलता है। ये दोनों बातें एक दूसरे से बिलकुल अलग अलग हैं। जैसे आकाश और पृथ्वी, स्वर्ग और नरक, पाप और पुण्य तथा सुख और दुःख आपस में एक दूसरे से बिलकुल अलग है, वैसे ही ऊपर की दोनों बातें एक दूसरे से बिलकुल अलग हैं। तो भी जिसमें आपका पूछना बेकार नहीं जाय, मैं इसके विषय में कुछ विशेष व्याख्या करूँगा।"

---

१. किसी किसी पुस्तक में १००० वर्षों का भी पाठ आता है।

"महाराज ! जो भगवान् ने कहा था-"आनन्द ! मेरा धर्म पाँच सौ वर्षों तक रहेगा," सो केवल शासन के टिकने की अवधि को बताया था-इतने वर्षों के बाद शासन नष्ट हो जायगा। क्योंकि उन्होंने साफ साफ कहा था-"आनन्द ! यदि स्त्रियाँ प्रव्रजित नहीं होती तो मेरा शासन एक हजार वर्षों तक रहता, किंतु अब केवल पाँच सौ वर्षों तक रहेगा।"

"महाराज ! इस तरह कह भगवान् केवल शासन के टिकने की अवधि को बताते हैं या धर्म को बुरा बता कर उसकी निन्दा करते हैं ?"

"नहीं भन्ते ! निन्दा नहीं करते।"

"महाराज ! नष्ट हो जाने का यह निर्देश-मात्र था। जो बच गया हैं वह कब तक टिकेगा इसी का कहना था। ठीक वैसे ही जैसे एक आदमी जिसकी आमदनी बहुत घट गई है-लोगों को बता दे कि उसके पास क्या रह गया है और वह कब तक चलेगा। ऐसा बताते हुए भगवान् ने केवल धर्म के रहने की अवधि को बताया था।"

"और, जो अपने परिनिर्वाण के समय सुभद्र नामक परिव्रजक के सामनें श्रमणों की बड़ाई करते हुए भगवान् ने कहा था 'सुभद्र ! यदि भिक्षु लोग धर्म के अनुसार ठीक से रहें तो संसार अर्हतों से कभी खाली नहीं हो सकता'-सो धर्म-पालन करने के फल को दिखलाया था। किसी चीज के टिकने की अवधि और उसके स्वरूप का वर्णन-इन दोनों को आप ने एक में मिलाकर गड़बड़ा दिया। किन्तु, यदि आप पूछते हैं तो मैं समझा सकता हूँ कि उन दोनों में क्या सम्बन्ध है। आप ठीक से मन लगा कर सुनें-

१-"महाराज ! स्वच्छ और शीतल जल से लबालब भरा हुआ एक तालाब हो। उसके चारों ओर सुन्दर घाट बंधा हो। उस तालाब का पानी घटने न पाता हो, और ऊपर एक बड़ा भारी मेघ छा जावे। मुसलाधार वर्षा होने लगे। तो क्या तालाब का पानी उससे कम या समाप्त हो जायगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्यों नहीं ?"

"मूसलाधार वर्षा होने के कारण।"

"महाराज ! उसी तरह, भगवान का बताया हुआ सद्धर्म एक तालाब है। विनय, शील और पुण्य के स्वच्छ शीतल जल से सदा यह लबालब भरा रहता है। यह उमड़ उमड़ कर स्वर्गों से भी ऊँचा बहता है। यदि इसमें बुद्ध के पुत्र सदा

विनय-पालन, शील-रक्षा, पुण्य और पवित्रता की वृष्टि करते रहे तो यह बहुत दिनों तक बना रहेग। तब, संसार अर्हतों से खाली भी नहीं होगा। भगवान् का यही अभिप्राय था जब उन्होंने कहा था-"सुभद्र ! यदि भिक्षु लोग धर्म के अनुसार ठीक से रहें तो संसार कभी भी अर्हतों से खाली नहीं होगा।"

२-"महाराज ! यदि लोग किसी एक बड़े आग के ढ़ेर में गोयठे, सूखी लकड़ियाँ और सूखे पत्ते डालते रहें, तो क्या वह आग का ढ़ेर बुझ जायगा ?"

"नहीं भन्ते वह तो और भी धधक कर तथा लपटें ले ले कर जलेगा।"

"महाराज ! ठीक उसी तरह, विनय और शील के पालन करने से दस हजार लोकों में से भी ऊँचे तक भगवान् के दिव्य सद्धर्म को आँच उठती है। महाराज ! इस पर भी यदि बुद्ध के पुत्र दृढ़ वीर्यता के साथ, ध्यान में तत्पर हों, ध्यान-सुख का अनुभव करते, तीन[1] प्रकार की शिक्षाओं को पालते अपने को पूरा संयमी बनाना सीखें तो बुद्ध-शासन बहुत समय तक बना रहेगा। तब संसार अर्हतों से कभी खाली नहीं होगा। महाराज ! भगवान् का यही अभिप्राय था।"

३-"महाराज ! किसी चिकने, बराबर, अच्छी तरह साफ किए और झलकाए निर्मल दर्पण को कोई चिकने और सूक्ष्म गेरू के चूर्ण से बार बार मले तो वह दर्पण क्या दागों और धूलों से भरकर मैला होने पाएगा।"

"नही भन्ते ! वह और भी चमकता ही जायगा।"

"महाराज ! इसी तरह, एक तो बुद्ध-धर्म स्वयं ही क्लेशरूपी मलों को दूर करने से निर्मल है, यदि बुद्ध के पुत्र उसे अपने विनय-शीलादि गुणों से और भी साफ करते रहें तो वह बहुत वर्षों तक ठहर सकेगा। संसार अर्हतों से कभी खाली नहीं होगा। महाराज ! इसी अभिप्राय से भगवान् ने कहा था। धर्म का मूल अभ्यास ही में है। अभ्यास ही उसका सार है, और वह अभ्यास के ही बल पर खड़ा है।"

१-"भन्ते ! आप जो कहते हैं कि सद्धर्म का लोप हो जायगा उसके क्या माने हैं ?"

"महाराज ! किसी धर्म का लोप तीन तरह से होता है। किन तीन तरह से (१) उसके ठीक ठीक अभिप्राय को भूल जाने से, (२) उसके अनुसार किसी के भी चलते नहीं रहने से, और (३) उसके सभी चिन्हों के लुप्त हो जाने से।[2]

---

१. (१) अधिशील, (२) अधिचित्त और (३) अधिप्रज्ञ।

२. उत्सव मनाना, पर्व मनाना, भिक्षुओं से शील लेना-इत्यादि बाहरी चिन्ह।

धर्म के ठीक ठीक अभिप्राय को भूल जाने से उसके पालन करने वाले को भी उसका बोध नहीं होता। धर्म के अनुसार किसी के भी नहीं चलने से शिक्षापदों का लोप हो जाता है, केवल चिन्ह रह जाता है। जब उसका चिन्ह भी चला जाता है तो धर्म बिलकुल लुप्त हो जाता है। इन्हीं तीन तरह से भी धर्म का लोप होता है।"

"भन्ते नागसेन! आपने अच्छा समझाया। इस गम्भीर दुविधा को खोल कर बिलकुल साफ साफ दिखा दिया। गिरह को काट दिया। विपक्षी मतों का खण्डन कर दिया और उन्हें फोका कर दिया। आप गणाचार्यों में श्रेष्ठ हैं।"

सद्धर्मान्तर्धान प्रश्न समाप्त

९. बुद्ध की निष्कलङ्कता

"भन्ते नागसेन! क्या भगवान् ने बुद्ध हो अपने सारे पापों को जला दिया था, या कुछ उन में बच भी रहे थे?"

"महाराज! सभी पापों को जला कर ही भगवान् बुद्ध हुए थे। उन में कुछ भी पाप बच नहीं रहा था।"

"भन्ते! उन्हें क्या कोई शारीरिक कष्ट हुआ था?"

"हाँ महाराज! राजगृह में भगवान् के पैर में एक पत्थर का टुकड़ा चुभ गया था। एक बार उन्हें लाल आँव भी पड़ने लगा था। पेट के गड़बड़ा जाने से जीवक ने उन्हें एक बार जुलाब भी दे दी थी। एक बार वायु के बिगड़ जाने से स्थविर आनन्द ने उन्हें गरम पानी लाकर दिया था।"

"भन्ते! यदि भगवान् ने अपने सभी पापों को जला दिया था तो यह बात झूठी उतरती है कि उन्हें ये शारीरिक कष्ट उठाने पड़े थे। और यदि उन्हें यथार्थ में ये शारीरिक कष्ट उठाने पड़े थे तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्होंने अपने सभी पापों को जला दिया था। भन्ते! बिना कर्मों के रहे सुख नहीं हो सकता। कर्मों के होने ही से सुख या दुःख होते हैं।"

"यह भी एक दुविधा आपके सामने रक्खी गई है। इसे खोल कर समझावें।"

"नहीं महाराज! सभी वेदनाओं का मूल कर्म ही नहीं है। वेदनाओं के होने के आठ कारण हैं जिनसे संसार के सभी जीव सुख-दुःख भोगते हैं। वे आठ कौन से हैं? (१) वायु का बिगड़ जाना, (२) पित्त का प्रकोप होना, (३) कफ का बढ़ जाना, (४) सन्निपात का दोष हो जाना, (५) ऋतुओं का बदलना, (६) खाने में गड़बड़ होना, (७) बाह्य प्रकृति के दूसरे प्रभाव और (८) अपने कर्मों का फल

होना–इन आठ कारणों से प्राणी नाना प्रकार के सुख–दुःख भोगते हैं। महाराज! इन्हीं आठ कारणों से।"

"महाराज! जो ऐसा मानते हैं कि कर्म ही के कारण लोग दुःख भोगते हैं, इसके अलावे कोई दूसरा कारण नहीं हैं, उनका मानना गलत है।"

"भन्ते नागसेन! तो भी दूसरे सात कारणों का मूल कर्म ही है, क्योंकि वे सभी कर्म ही के कारण होते हैं।"

"महाराज! यदि सभी दुःख कर्म ही के कारण उत्पन्न होते हैं तो उनको भिन्न भिन्न प्रकारों में बाँटा जा सकता! महाराज! वायु बिगड़ जाने के दस कारण होते हैं–(१) सर्दी, (२) गर्मी, (३) भूख (४) प्यास, (५) अति भोजन, (६) अधिक खड़ा रहना, (७) अधिक परिश्रम करना, (८) बहुत तेज चलना, (९) बाह्य प्रकृति के दूसरे प्रभाव और (१०) अपने कर्म का फल। इन दस कारणों में पहले नव पूर्व जन्म या दूसरे जन्म में काम नहीं करते, किंतु इसी जन्म में करते हैं। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता, कि सभी सुख–दुःख कर्म ही के कारण होते हैं।"

"महाराज! पित्त के कुपित होने के तीन कारण हैं–(१) सर्दी, (२) गर्मी, और (३) बेवक्त भोजन करना। महाराज! कफ बढ़ जाने के तीन कारण हैं–(१) सर्दी, (२) गर्मी और (३) खाने–पीने में गोलमाल करना। इन तीनों दोषों में किसी के बिगड़ने से खास खास कष्ट होते हैं। ये भिन्न भिन्न प्रकार के कष्ट अपने कारणों से ही उत्पन्न होते हैं। महाराज! इस तरह, कर्म के फल से होने वाले कष्ट थोड़े हो हैं अधिक तो और दूसरे कारणों से होने वाले हैं। मूर्ख लोग सभी को कर्म के फल से ही होने वाले समझ लेते हैं। बुद्ध को छोड़ कोई दूसरा यह बता नहीं सकता कि किसी का कर्म फल कहाँ तक है।"

"महाराज! भगवान् का पैर जो एक पत्थर के टूकड़े से' कट गया था, उसका कष्ट न वायु के बिगड़ने से, न पित्त के प्रकोप से किंतु संयोगवश किसी घटना के घट जाने से ही हुआ था। महाराज! कई सौ और हजारों वर्षों से भगवान् के प्रति देवदत्त का वैर चला आता था। उस वैर के कारण उसने पहाड़ की ढ़ाल से एक बड़ी चट्टान भगवान् के ऊपर लुढ़का दी थी। किंतु बीच में दो दूसरी चट्टानों के पड़ जाने के कारण वह उसी से टकरा कर भगवान् तक पहुँचने के पहले ही रुक गई। उनके टक्कर खाने से एक पपड़ी छटकी और भगवान् के पैर में जा लगी जिससे खून बहने लगा।"

"महाराज! भगवान् का यह कष्ट या तो अपने कर्मफल के कारण या किसी के करने से हो हुआ होगा; तीसरी बात नहीं हो सकती। जैसे या तो जमीन

के अच्छी नहीं होने से या बीज ही में कोई दोष होने से पौधा नहीं उगता। अथवा, जैसे पेट में कुछ गड़बड़ होने या भोजन के बुरे होने से ही पचने में कुछ कसर होती है। महाराज! उसी तरह भगवान् का यह कष्ट या तो अपने कर्मफल के कारण या किसी के करने से ही हुआ होगा; तीसरी बात नहीं हो सकती है।"

"महाराज! कर्मफल के कारण या खाने-पीने में गड़बड़ होने के कारण भगवान् को कभी कष्ट नहीं हुआ था। हाँ, बाकी छः कारणों से उन्हें कभी कभी कष्ट हो जाया करता था। किन्तु उन कष्टों में इतना बल नहीं था कि भगवान् के प्राणों को भी हर लें। महाराज! चार महाभूतों से बने इस शरीर में सुख और दुःख तो होते ही रहते हैं।"

१-"महाराज! आकाश में ढ़ेला फेंकने से वह जमीन पर आ गिरता है। तो क्या वह पृथ्वी के पहले किये हुये कर्म के फल से ही उस पर इस तरह जोर से गिर पड़ता है?"

"नहीं भन्ते! उसके अच्छे या बुरे कर्म क्या रहेंगे, जिससे वह सुख या दुःख भोगेगा! वह पृथ्वी के कर्म के फल से नहीं किन्तु किसी के द्वारा ऊपर फेंके जाने से ही उस तरह आ गिरता है।"

"महाराज! इसी तरह भगवान् को पृथ्वी समझना चाहिये। जैसे पृथ्वी पर बिना किसी कर्मफल के कारण ही ढ़ेला आकर गिर पड़ता है, वैसे ही भगवान् के किसी कर्मफल के बिना ही उनके पैर पर वह पत्थर गिर पड़ा था।"

२-"महाराज! लोग पृथ्वी को कोड़ते और खनते हैं। तो क्या वह पृथ्वी अपने पूर्वकर्मों के फल से ही इस तरह कोड़ी और खनी जाती है?"

"नहीं भन्ते!"

"महाराज! इसी तरह, भगवान् के पैरों पर उस पत्थर के गिरने को भी समझना चाहिये। भगवान् को जो लाल आँव पडने लगा था वह भी उनके कर्मफल के कारण नहीं किंतु सन्निपात के हो जाने कारण। भगवान् को और भी जो दूसरे कष्ट हो गये थे वे सभी उनके कर्म-फल के कारण नहीं किंतु बाकी छः कारणों से ही हुए थे।"

"महाराज! संयुक्तनिकाय के मोलीयसीवक नामक श्रेष्ठ सूत्र में स्वयं देवाधिदेव भगवान् ने कहा है-"सीवक! संसार में कुछ कष्ट तो पित्त के कुपित हो जाने से होते हैं। स्वयं भी इसे जाना जा सकता है (कि कुछ कष्ट पित्त के कुपित हो जाने से होते हैं) और सभी लोग इसे मानते भी हैं। सीवक! जो श्रमण और ब्राह्मण ऐसा मानते और कहते हैं कि सभी सुखदुःख तथा अनुभव अपने

कर्मफल के ही कारण होते हैं वे अपने ज्ञान और लोगों की मानी हुई बात दोनों को टप जाते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि उनका ऐसा मानना गलत है। कफ, वायु, सन्निपात से होने वाले कष्टों के विषय में भी इसी तरह समझ लेना चाहिए। स्वयं भी उन्हें जान सकते हो और संसार में सभी लोग वैसा मानते भी हैं। सीवक ! जो श्रमण और ब्राह्मण ऐसा मानते और कहते हैं कि सभी अनुभव–सुख, दुःख या न सुख–न दुःख–अपने कर्मफल के ही कारण होते हैं, वे अपने ज्ञान और लोगों की मानी हुई बात दोनों को टप जाते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि उनका ऐसा मानना गलत है।"

"महाराज ! इससे सारांश यह निकलता है कि सभी कष्ट कर्मफल के कारण ही नहीं भोगने पड़ते। आप को पूरे विश्वास के साथ यह मान लेना चाहिए कि भगवान् ने बुद्ध होने के पहले अपने सभी पापों को जला दिया था।"

"बहुत अच्छा भन्ते ! ठीक है मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

१०. बुद्ध समाधि क्यों लगाते हैं ?

"भन्ते नागसेन ! आप लोग कहा करते हैं कि भगवान् को जो कुछ करना था सभी बोधि-वृक्ष के नीचे ही समाप्त हो चुका था[1]। उन्हें और कुछ करने को बाकी नहीं बच गया था; अपने किए हुए में कुछ और जोड़ने को नहीं रह गया था। साथ ही साथ ऐसा भी सुनने में आता है कि तीन महीनों तक के लिए उन्होंने समाधि लगा ली थी।"

"भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् ने बोधि-वृक्ष के नीचे ही अपना सब कुछ करना समाप्त कर डाला था, तो यह बात झूठी ठहरती है कि तीन महीनों तक उन्होंने समाधि लगा ली थी। और, यदि भगवान् ने यथार्थ में तीन महीनों तक समाधि लगा ली थी, तो यह बात झूठी ठहरती है कि बोधि वृक्ष के नीचे ही उन्होंने अपना सब कुछ करना समाप्त कर डाला था। यदि अपना सब कुछ करना समाप्त ही कर डाला था तो समाधि लगाने की क्या जरूरत पड़ती थी ? जिसके कुछ कर्म बाकी रह गए हैं उसी को तो समाधि लगाने को जरूरत है !"

"भन्ते ! जो रोगी है उसी को न दवाई की जरूरत होती है ! जो नीरोग है उसे दवाई से क्या प्रयोजन ? भूखे को ही न भोजन की जरूरत होती है ! जिसका पेट भरा है वह भोजन लेकर क्या करेगा ? भन्ते ! इसी तरह, जिसने अपना सब कुछ करना समाप्त कर डाला है उसे समाधि लगाने की क्या जरूरत पड़ेगी ? जिसके कुछ कर्म बाकी रह गए हैं उसी को समाधि लगाने की जरूरत हो सकती है।

१. परम बुद्धत्व की प्राप्ति कर ली थी।

यह भी दुबिधा आपके सामने रक्खी गई है। इसका आप उचित उत्तर दे कर समझावें।"

"महाराज! ये दोनों बातें ठीक हैं कि बोधिवृक्ष के नीचे भगवान् ने अपना सब कुछ करना समाप्त कर डाला था और यह भी कि तीन महीनों तक उन्होंने समाधि लगा ली थी।"

"महाराज! समाधि में बहुत गुण हैं। सभी भगवानों ने समाधि ही से बुद्धत्व की प्राप्ति की है। वे बुद्धत्व-प्राप्ति करने के बाद भी उसके अच्छे गुणों को याद करते हुए उसका प्रयोग किया करते हैं।"

"महाराज! कोई आदमी राजा की सेवा करे। उससे प्रसन्न हो राजा उसे कोई बड़ा इनाम दे दे। उस इनाम को याद कर वह आदमी राजा की सेवा और भी अधिक करे।—या, कोई रोगी आदमी वैद्य के पास जाय और अपना अच्छा इलाज कराने के लिए उसे बहुत इनाम बखसीस देकर उसकी सेवा करे। इलाज होने के बाद चंगा होकर भी वैद्य के किए गए उपकार को मान उसकी फिर भी सेवा करे। महाराज! उसी तरह, सभी भगवानों ने समाधि लगाकर ही बुद्धत्व-प्राप्ति की है, सो वे उसके गुणों को याद करके उसकी सेवा बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद भी करते हैं।"

"महाराज! समाधि के अठ्टाइस गुण हैं, जिनको देखते हुए सभी भगवान् उसका सेवन करते हैं। वे अठ्टाइस गुण कौन से हैं? वे ये हैं— (१) अपनी रक्षा होती है, (२) दीर्घ-जीवन होता है, (३) बल बढ़ता है, (४) सभी अवगुणों का नाश हो जाता है, (५) सभी अपयश दूर हो जाते हैं, (६) यश की वृद्धि होती है, (७) असंतोष हट जाता है, (८) पूरा संतोष रहता है, (९) भय हट जाता है, (१०) निर्भीकता आती है, (११) आलस्य चला जाता है, (१२) उत्साह बढ़ता है, (१३-१५) राग, द्वेष और मोह नष्ट हो जाते हैं, (१६) झूठा अभिमान चला जाता है, (१७) सभी संदेह दूर हो जाते हैं, (१८) चित्त की एकाग्रता होती है, (१९) मन बड़ा सुन्दर हो जाता है, (२०) मन सदा प्रसन्न रहता है, (२१) गम्भीरता होती है, (२२) बड़ा लाभ होता है, (२३) नम्रता आती है, (२४) प्रीति पैदा होती है, (२५) प्रमोद होता है, (२६) सभी संस्कारों की क्षणिकता का दर्शन हो जाता है, (२७) पुनर्जन्म से छुटकारा हो जाता है, और (२८) श्रमण भाव के यथार्थ—फल प्राप्त हो जाते हैं। महाराज! समाधि के इन्हीं अठ्टाइस गुणों को देखते हुए सभी भगवान् उसकी सेवा करते हैं। महाराज! अपनी इच्छाओं को नष्ट कर सभी भगवान् एकाग्रचित्त होने में जो प्रीति होती है उसी में लीन होने के लिए समाधि लगाते है।"

"महाराज ! चार कारणों से भगवान् समाधि लगाया करते हैं। कौन से चार कारण ? वे ये हैं:- (१) निरापद विहार, (२) सभी श्रेष्ठ गुणों का होना, (३) उच्च ध्येयों का एक मात्र मार्ग होना, और (४) सभी बुद्धों के द्वारा इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया जाना। इन्हीं कारणों से भगवान् इसका सेवन किया करते हैं।"

"महाराज ! इसलिये नहीं कि बुद्ध को कुछ करना बाकी रह गया है। किंतु इस (समाधि) के गुणों को देखते हुए ही वे इसका अभ्यास किया करते हैं।"

"भन्ते नागसेन ! आपने बिलकुल ठीक कहा, मुझे स्वीकार है।"

११. ऋद्धि-बल की प्रशंसा

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है-"आनन्द ! बुद्ध चारों ऋद्धिपादों की भावना कर चुके रहते हैं।उन्होंने चारों का पूरा पूरा अभ्यास कर लिया होता है। उनमें चारों का पूरा पूरा विस्तार हो गया होता है। चारों के आधार पर बुद्ध दृढ़ खड़े रहते हैं। चारों का अनुष्ठान किया रहता है। चारों अच्छी तरह परिचित रहते हैं और उनका ऊँचे से ऊँचा विकास हुआ रहता है। आनन्द ! यदि बुद्ध चाहें तो कल्प भर या बचे हुए कल्प तक रह सकते हैं।"

साथ ही साथ भगवान् ने यह भी कहा है-"आज से तीन महीनों के बीतने पर बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे।"

"भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् ने यह ठीक कहा कि बुद्ध कल्प भर रह सकते हैं, तो तीन महीनों की अवधि बांध देने वाली बात झूटी ठहरती है। और, यदि तीन महीनों की अवधि बाँध देने वाली बात सच्ची हैं तो यह बात झूठी ठहरती है कि वे कल्प भर तक ठहर सकते हैं। क्योंकि बुद्ध बिना किसी आधार के यों ही ड़ींग नहीं मारा करते; बुद्धों की बात कभी खाली नहीं जातीं; बुद्धों की बात हूबहू वैसी ही उतरने वाली होती है। यह भी एक गम्भीर दुविधा आपके सामने रक्खी गई है, जो बड़ी ही सूक्ष्म और कठिनता से समझी जाने वाली है। कुतर्क का खण्डन कर दें, एक नतीजा निकाल दें, विपक्ष वालों का मूँह तोड़ दें।"

"महाराज ! बुद्ध ने दोनों बातें ठीक कहीं हैं। वहाँ कल्प के माने आयु-कल्प (=पूरा जीवन) है। महाराज भगवान् ने ऐसा कह कर, अपनी डींग नहीं मारी है किंतु ऋद्धि-बल की यथार्थ प्रशंसा की है। महाराज ! बुद्ध चारों ऋद्धिपादों की भावना कर चुके रहते हैं; उन्होंने चारों का पूरा पूरा अभ्यास कर लिया होता है; उन में चारों का पूरा पूरा बिस्तार हो गया होता है; चारों के आधार पर वे दृढ़ खड़े रहते हैं; चारों का अनुष्ठान किये रहते हैं; चारों से अच्छी तरह परिचित

रहते हैं। और उनका ऊँचे से ऊँचा विकास हुआ रहता है। महाराज! यदि बुद्ध चाहें तो कल्प भर या बचे हुए कल्प तक रह सकते हैं।"

"महाराज! किसी राजा को एक बड़ा अच्छा घोड़ा हो। वह घोड़ा हवा से बातें करने वाला हो। राजा उसकी तेजी की प्रशंसा करते हुए और जानपद नौकरों, सिपाहियों, ब्राह्मणों, गृहपतियों और अपने अफसरों के खुले दर्बार में कहें-"यदि यह घोड़ा चाहे तो क्षण भर में समुद्र के किनारे किनारे सारी पृथ्वी भर चक्कर काट के यहाँ लौट आवे"-राजा यहाँ घोड़े की तेजी को दर्बार में दिखाने थोड़े ही जाता है! तो भी यथार्थ में घोड़ा तेज होता ही है।"

"महाराज! इसी तरह, भगवान् ने अपनी ऋद्धि के बल की प्रशंसा करते हुए वैसा कहा था। सो भी तीन विद्याओं को जानने वाले, छः अभिज्ञाओं (दिव्यशक्ति) से युक्त, शुद्ध और क्षीणास्रव अर्हतों, देवताओं और मनुष्यों के बीच कहा था--"आनन्द! बुद्ध चारों ऋद्धिपादों की भावना। आनन्द! यदि बुद्ध चाहें तो कल्प भर रह सकते हैं।"

"महाराज! भगवान् में वह शक्ति सचमुच थी कि वे कल्प भर रह सकते थे। किंतु उन्हें उन सभी को यह शक्ति दिखानी नहीं थी। महाराज! भगवान् की बने रहने की सभी इच्छायें (भव तृष्णा) नष्ट हो चुकी है, उन्होंने बार बार निन्दा की है। भगवान् ने कहा भी है-"भिक्षुओ! जैसे थोड़ी सी भी विष्टा दुर्गन्ध देने वाली होती है वैसे ही संसार में बने रहने की चुटकी भर भी इच्छा को मैं बुरा समझता हूँ।"

"महाराज! जब भगवान् ने संसार में बने रहने की इच्छा को विष्टा से भी नीचा बतलाया तो क्या स्वयं उसी इच्छा में और भी लिपटे रहेंगे?"

"नहीं भन्ते!"

"महाराज! तो भगवान् ने केवल ऋद्धि-बल के उत्कर्ष को दिखाने के अभिप्राय से ही वैसा कहा था।"

"ठीक है भन्ते नागसेन! मैं स्वीकार करता हूँ।"

पहला वर्ग समाप्त

(ख) योगिकथा

१२. छोटे-मोटे विनय के नियम संघ के द्वारा रद्द बदल किए जा सकते हैं

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है–"भिक्षुओ ! मैं स्वयं जानकर ही धर्म का उपदेश करता हूँ, बिना जाने नहीं[1] ।" साथ ही साथ विनय–प्रज्ञप्ति के समय भगवान् ने यह भी कहा है, "आनन्द ! मेरे उठ जाने के बाद यदि संघ उचित समझे तो छोटे मोटे नियमों को बदल सकता है[2] ।" भन्ते नागसेन ! तो क्या वे छोटे मोटे नियम बिना समझे बूझे ही बना दिये गए थे, या बिना किसी आधार के यों ही खड़ कर दिए थे जोकि भगवान् ने उन्हें बदल देने के लिए भी कह दिया ?"

१–"भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् ने यह ठीक कहा है कि मैं स्वयं जान कर ही धर्म का उपदेश करता हूँ, बिना जाने नहीं, तो यह बात झूठ ठहरती है कि कि उन्होंने अपने बताये छोटे मोटे नियमों को बदल देने की अनुमति दे दी थी । और, यदि उन्होंने ऐसी अनुमति को वस्तुत: दे दी थी तो यह बात झूठी ठहरती है कि वे स्वयं जान कर ही धर्म का उपदेश करते थे, बिना जाने नहीं ।"

"भन्ते ! यह भी दुविधा आपके सामने रक्खी जाती हैं, जो बड़ी सूक्ष्म, निपुण, गम्भीर और कठिनता से समझी जाने वाली है, । यहाँ भी आप अपने ज्ञान–बल का परिचय देते हुए इसे साफ कर दें ।"

"महाराज ! भगवान् ने ऊपर की दोनों बातें ठीक कहीं हैं । विनय–प्रज्ञप्ति के समय जो कहा है–"आनन्द ! मेरे उठ जाने के बाद यदि संघ उचित समझे तो छोटे मोटे निहमों को बदल सकता है"; सो भिक्षओं की परीक्षा करने के लिए कहा था–कि देखें ऐसा कहने से वे झट उन छोटे मोटे नियमों को उड़ा देते हैं या उन पर दृढ़ रहते हैं ।"

"महाराज ! कोई चक्रवर्ती राजा अपने पुत्रों से कहे–"प्यारे पुत्र ! यह बड़ा देश चारों ओर समुद्र तक फैला हुआ है । जितनी सेना हम लोगों के पास है उससे इतने बड़े देश को वश में रखना बड़ा कठिन है । सुनो, मेरे मरने के बाद सीमा पर के प्रान्तों को छोड़ देना । महाराज ! तो क्या वे राजकुमार अपने हाथों में आये हुए उन प्रान्तों को छोड़ देंगे ?"

---

१. धर्मचक्रप्रवर्तन-सूत्र, बुद्धचर्या, पृष्ठ २३ ।

२. देखो दीघनिकाय' में महापरि निर्वाण', बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४१ ।

"नहीं भन्ते ! राजकुमार तो बड़े लोभी होते हैं। बल्कि वे दुगने या तिगुने और प्रान्तों को भी दखल में कर लेंगे; हाथ में आए हुए को छोड़ना तो दूर रहा !"

"महाराज ! इसी तरह भगवान् ने भिक्षुओं की परीक्षा लेने के लिए ही वैसा कहा था। किंतु महाराज ! धर्म के लोभ से और दुःख से मुक्त होने के लिए बुद्ध-भिक्षु ढ़ाई सौ नियमों का पालन करेंगे; बताए गए नियमों का छोड़ना तो दूर रहा !"[1]

२–"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने जो कहा–'छोटे मोटे नियमों को' इसके समझने में लोगों को बड़ी कठिनाई होती है। लोग दुविधा में पड़ जाते हैं और इसका पता भी नहीं पा सकते कि कौन से नियम छोटे हैं और कौन से बड़े। लोगों को इस में बड़ा सन्देह होता है।"

"महाराज ! सभी दुक्कट आपत्तियाँ[2] (विनय का पारिभाषिक शब्द) छोटे और दुर्भाषित आपत्तियाँ[2] बड़े नियम हैं। यही दो छोटे मोटे नियम हैं। महाराज ! पहले के स्थविरों को भी धर्मसभा की बैठक में इसका पता लगाने में एक बार असमंजस में पड़ जाना हुआ था। वे भी इसका एक निर्णय नहीं कर सके थे। भगवान् ने इसे पहले ही जान लिया था कि यह प्रश्न आगे चल कर उठेगा।"

"भन्ते ! आज आपने संसार के सामने उसे साफ-साफ कर के दिखा दिया, जिसे भगवान् ने छिपाकर कहा था।"

भगवान् जानते थे कि आगे चलकर उस समय की परिस्थितियों से भिन्न ही परिस्थितियाँ आवेंगी, जिनमें उन छोटे नियमों के पालन करने का कोई अर्थ नहीं रह जायगा। भगवान् ने सारे भिक्षु-नियमों को उस समय के लोगों के रहन-सहन, देश और काल के अनुसार बनाया था। लोगों के रहन-सहन, देश और काल के बिलकुल भिन्न हो जाने पर वे नियम कैसे अनुकूल होंगे ? इसी को देखकर भगवान् ने छोटे मोटे नियमों को रद्द बदल करने की शक्ति संघ को आवश्यकता पड़ने पर दे दी थीं।"

१३. बिलकुल छोड़ देनेलायक प्रश्न

"भन्ते नागसेन ! भगवन् ने यह कहा है–"आनन्द ! धर्मोपदेश करने में दूसरे आचार्यों की तरह बुद्ध कुछ छिपा कर नहीं कहते हैं[3]।" तो भी, स्थविर

---

१. यह उत्तर संतोषजनक नहीं है। भगवान् ने परिनिर्वाण के समय यह बात कही थी। परिनिर्वाण पाने के बाद वह कैसे संघ की परीक्षा लेंगे ?"

२. देखो विनय पिटक।

३. देखो दीघनिकाय' में "महापरिनिर्वाण–सूत्र", बुद्धचर्या, पृष्ठ ५३२।

मालुङ्क-पुत्र के[1] प्रश्न करने पर भगवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया था। यह बात दो ही कारणों से समझी जा सकती है-(१) या तो उस प्रश्न का उत्तर नहीं जानने के कारण, (२) या जानते हुए भी उसे छिपाने की इच्छा के कारण।"

"भन्ते नागसेन ! यदि यह बात सच है कि बुद्ध बिना कुछ छिपाए हुए धर्मोपदेश करते हैं; तो मालुङ्क-पुत्र के प्रश्न का उत्तर नहीं जानने के कारण ही भगवान् चुप रह गए होंगे ! और, यदि उसका उत्तर जानने पर भी वे चुप रहे, तो उस बात को छिपा लेने का दोष उन पर आता है। भन्ते ! यह दुविधा भी आप के आगे रक्खी जाती है। आप इसको साफ कर दें।"

"महाराज ! भगवान् ने यथार्थ में आनन्द से कहा था कि बुद्ध बिना कुछ छिपाए धर्मोपदेश करते हैं, और यह भी बात सच है कि मालुङ्क-पुत्र के प्रश्न करने पर उन्होंने उसका कोई उत्तर नहीं दिया था। किंतु वह न तो नहीं जानने के कारण और न छिपाने की इच्छा के कारण। महाराज ! किसी प्रश्न का उत्तर चार प्रकार से दिया जा सकता है। किन चार प्रकार से ? (१) किसी प्रश्न का उत्तर तो सीधे तौर से साफ साफ दिया जाता है, (२) किसी प्रश्न का उत्तर विभाजित करके दिया जाता है, (३) किसी प्रश्न का उत्तर एक दूसरा ही प्रश्न पूछ कर दिया जाता है, और (४) किसी प्रश्न का उत्तर उसे बिलकुल छोड़ देने से ही दिया जाता है।"

१-"किस प्रकार का उत्तर सीधे तौर से साफ साफ दिया जाता है ? इन प्रश्नों का-क्या रूप अनित्य है ? क्या वेदना अनित्य है ? क्या संज्ञा अनित्य है ? क्या संस्कार अनित्य है ? क्या विज्ञान अनित्य है ?"

२-"किन प्रश्नों का उत्तर विभाजित करके दिया जाता है ? इन प्रश्नों का-क्या रूप, वेदना इस तरह अनित्य हैं ?"

३-"किन प्रश्नों का उत्तर दूसरा प्रश्न पूछ कर दिया जाता है ? इन प्रश्नों का-तो क्या आँख से सभी चीजें जानी जा सकती हैं ?"

४-"किन प्रश्नों का उत्तर उन्हें बिलकुल छोड़ कर ही दिया जाता है ? इन प्रश्नों का-क्या संसार नित्य है ? क्या संसार का अन्त हो जायगा ? क्या संसार का कहीं आखिर है ? क्या संसार का कहीं भी आखिर नहीं है ? क्या संसार का कहीं आखिर है भी और कहीं नहीं भी ? क्या संसार का न तो कहीं आखिर

---

१. देखो 'मज्झिम-निकाय' में 'मालुङ्क-सुत्तन्त', पृष्ठ २५१।

है और न नहीं है ? क्या जो जीव है वही शरीर है ? क्या जीव दूसरा है और शरीर दूसरा ? क्या बुद्ध मरने के बाद रहते हैं ? क्या बुद्ध मरने के बाद नहीं रहते ? क्या बुद्ध मरने के बाद रहते भी हैं और नहीं भी ? क्या बुद्ध मरने के बाद न रहते हैं और न नहीं रहते हैं ?"

"महाराज ! मालुङ्क्‌-पुत्र का प्रश्न ऐसा था कि उसे बिलकुल छोड़ कर ही उसका उत्तर अच्छा दिया जा सकता था। इसीसे उसके उत्तर में भगवान् ने कुछ नहीं कहा। और, वह प्रश्न ऐसा कैसे था कि उसका उत्तर उसे बिलकुल छोड़ कर ही दिया जा सकता था ? क्योंकि उसे बढ़ाने से कोई मतलब ही नहीं निकलता। इसलिये उसे बिलकुल छोड़ देना ही ठीक था। बुद्ध बिना किसी मतलब के बात नहीं बोला करते।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन ! यह बात ऐसी ही है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

१४. मृत्यु से भय

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने यह कहा है–"सभी लोग दण्ड से काँपते है, सभी लोगों को मरने से बड़ा डर लगता है।" साथ ही साथ उन्होंने यह भी कहा है–"अर्हत् सभी डर के भय से परे हो जाते हैं।" भन्ते ! क्या अर्हत् दण्ड से नहीं काँपता ? और क्या नरक में पड़े हुए जीव की आग में पकते हुए वहाँ मर कर छुटकारा पाने से भी डरते हैं ?"[1]

"भन्ते ! यदि भगवान् ने यह ठीक कहा है–"सभी लोग दण्ड से काँपते है; सभी लोगों को मरने से बड़ा डर लगता है"; तो यह बात झूठी ठहरती है कि "अर्हत् सभी डर भय से परे हो जाते हैं।" और, यदि यह बात सच है कि "अर्हत् डर भय से परे हो जाते है" तो यह नहीं कहा जा सकता है कि सभी लोग दण्ड से काँपते हैं।"

"भन्ते ! यह दुविधा भी आप के सामने रक्खी जाती है। आप इसको खोल कर समझावें।"

"महाराज ! भगवान् ने जो कहा था–"सभी लोग दण्ड से काँपते हैं।" इसमें उन्होंने अर्हतों को शामिल नहीं किया था। अर्हत् उस नियम के अपवाद हैं। उन्हें भला कैसे कोई डर हो सकता है। उनके तो डर के सभी कारण नष्ट हो गए रहते हैं। भगवान् ने यह केवल उन संसारी जीवों के विषय में कहा था जिनमें क्लेश लगे हैं, जो आत्मा के विश्वास अभी तक पड़े हैं तथा जो सुख और दुःख में

---

१. धम्मपद–दण्डवग्ग १।

गोते लगा रहे हैं। महाराज ! अर्हत् आवागमन से छूट जाते हैं, भिन्न भिन्न योनियों में उनका जाना रुक जाता है, वे फिर भी जन्म नहीं ग्रहण करते, उनके तृष्णा के खंभे खिसक पड़ते हैं, संसार में बने रहने की सारी इच्छायें चली जाती हैं, सभी संस्कार रुक जाते हैं, उनके लिए पाप और पुण्य का प्रश्न ही उठ जाता है, अविद्या मारी जाती है, विज्ञान में फिर भी उत्पन्न होने की शक्ति नहीं रहती, सभी क्लेश जल जाते हैं, संसार के विषयों में उनका घूमना रुक जाता है। इसी से, अर्हत् लोग सभी भय के इकट्ठे आने से भी नहीं डरते।"

१—"महाराज ! किसी राजा के चार अफसर हों, जो बड़े स्वामिभक्त; यशस्वी, विश्वास–पात्र हों, और ऊँचे पद पाये हों। उस समय कुछ काम आ पड़ने पर राजा अपने राज्य के सभी लोगों पर लागू होने वाला कोई हुक्म निकाल दे—"सभी लोग आकर मेरे सामने भेंट चढ़ावें" अपने चार अफसरों को इस बात की निगरानी रखने के लिए आज्ञा दे दे। महाराज ! तो क्या उन अफसरों को भेंट चढ़ाने की बात से भय उत्पन्न होगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"सो क्यों ?"

"भन्ते ! वे तो राज्य के सब से बड़े पद पर पहुँच चुके हैं। उन्हें भेंट चढ़ाना थोड़े ही है ! वे तो इस बात से छुट्टी पा चुके हैं। उनको छोड़कर और दूसरे लोगों के लिये वह हुक्म निकाला गया था—"सभी लोग आकर मेरे सामने भेंट चढ़ावें।"

"महाराज ! इसी तरह, भगवान् ने अर्हतों पर लागू होने के लिए यह बात नहीं कहीं थी कि, "सभी लोग दण्ड से काँपते हैं, सभी लोगों को मरने से बड़ा डर लगता है।" अर्हतों के भय के तो सभी कारण नष्ट हो गये रहते हैं। इस नियम से अर्हतों का अपवाद हुआ रहता है। यह तो उन्हीं लोगों के विषय में कहा गया है जिनके साथ क्लेश लगा है। अर्हत् को कभी भी डर नहीं होता।"

"भन्ते नागसेन ! किन्तु 'सभी लोग' जो शब्द कहा गया है वह किसी का भी अपवाद नहीं करता। इस शब्द के प्रयोग से एक भी नहीं छूटता। अपने कहे हुए को दृढ़ करने के लिए कुछ और प्रमाण दें।"

२—"महाराज ! किसी गाँव का जमीनदार अपने सिपाही से कहे,—"गाँव के सभी लोगों को मेरे सामने तुरन्त जमा कर दो" सिपाही जमीनदार की आज्ञा के अनुसार गाँव के बीच में जाय और तीन बार चिल्ला कर कहे—"गाँव के लोगों ! सभी मालिक के पास चलकर तुरन्त जमा होओ।" सिपाही के इस संदेश को सुन

सभी गाँव वाले जल्दी करते हुए जमीनदार के पास आकर जुटें और बोलें–'मालिक सभी लोग आ गए, आप अब जो करना चाहते हैं सो करें।'

"महाराज ! 'सभी लोग' से 'सभी सयाने और घर के अगुए' का ही अर्थ निकलता है। "सभी लोग आवें" कहने पर भी केवल गाँव के सयाने और अगुए ही आते हैं। जमीनदार को भी संतोष हो जाता है– इतने ही लोग मेरे गाँव में हैं। किंतु बहुत से लोग रहते हैं जो नहीं आते। स्त्रियाँ, पुरुष, दासी, नौकर, मजदूर, कमकर, बीमार, बैल, भैंस, भेंड़, बकरी और कुत्ते यद्यपि नहीं आते, तो भी उनकी गिनती नहीं होती। सयाने और घर के अगुए लोगों के ही विषय में आज्ञा दी गई रहती है।"

"महाराज ! इसी तरह, अर्हतों पर भी लागू करने के लिए भगवान् ने नहीं कहा था–"सभी लोग दण्ड से काँपते हैं; सभी लोगों को मरने से बड़ा डर होता है।" भय होने के सभी कारण अर्हतों में नष्ट हो गए रहते हैं।"

चार प्रकार की बातें

३–"महाराज ! किसी कही गई बात के अर्थ चार प्रकार से समझे सकते हैं–(१) कुछ ऐसी बातें होती हैं जो न तो व्यापक रूप से कही गई होती हैं, और न उनका अर्थ व्यापक रूप में समझा जाता है (२) कुछ ऐसी बातें होती हैं जो व्यापक रूप से कही तो नहीं जाती, किंतु उनका अर्थ व्यापक रूप से ही समझा है, (३) कुछ ऐसी बातें होती हैं जो व्यापक रूप से कही तो जाती हैं, किंतु उनका अर्थ व्यापक रूप से समझा नहीं जाता और (४) कुछ ऐसी बातें हैं जो व्यापक रूप से कही भी जाती हैं, और व्यापक रूप से समझी भी जाती हैं। सो किसी बात को समझने के पहले उसे उन उन अर्थों में बाँट लेना चाहिए।"

४–"महाराज ! किसी बात को उन उन अर्थों में बाँट लेने के पाँच प्रकार हैं–(१) कहने के आगे पीछे का सिलसिला देखकर, (२) कही गई बात को तौल कर, (३) कहने वाले के आचार्यों की परम्परा को देखकर, (४) कहने का उद्देश्य क्या है इसे समझ कर, और (५) उस बात के प्रमाणों को देखकर।"

१–'कहने के आगे पीछे का सिलसिला देखकर' का अर्थ है सूत्रों में वह बात कहाँ और कब कही गई, इसका ख्याल कर।

२–'कही गई बात को तौल कर' का अर्थ है, उसे दूसरे सूत्रों से मिलान कर।

३–'कहने वाले के आचार्यों की परम्परा देखकर'–क्योंकि भिन्न भिन्न परम्पराओं के भिन्न भिन्न सिद्धान्त चले आते हैं।

४–'कहने का उद्देश्य क्या है' इसे समझ कर' का अर्थ है, कहने वाला मनुष्य किस विचार से ऐसा कहता है, इसे समझ कर।

५–'बात के प्रमाणों को देख कर' का अर्थ है, ऊपर की चार बातों को दृष्टि में रख कर।

"बहुत अच्छा भन्ते नागसेन! आप जैसा कहते हैं मैं स्वीकार करता हूँ। अर्हत् उस नियम से अपवाद कर दिए जाते हैं इसे मान लेता हूँ। दूसरे लोगों को ही डर होता है।"

"भन्ते! अब बतावें कि क्या नरक में पड़े हुए जीव भी मरकर वहाँ से छुटकारा पाने में डरते हैं?–वे जीव जो नरक के तीखे कडुए दुःख को झेल रहे हैं, जिनके सभी अङ्ग प्रत्यङ्ग जल रहे हैं, अत्यन्त करुणा-पूर्वक रोने पीटने से जिनके मूंह लाल-पीले हो रहे हैं, जो अपने कड़े दुःख को सहने में असमर्थ हो रहे हैं, जिनका कोई त्राण नहीं है, जिनका कहीं बचाव नहीं है, जो अत्यन्त शोक में पड़े हैं, जिनकी और भी दुर्गति होने वाली है, जिन को केवल शोक ही शोक रह गया है, जो गर्म तीखे और तेज आग की लपटों में जलाए जा रहे हैं, जिस नरक में घोर भयङ्कर ऊँचे शब्द हो रहे हैं, जो आग की लपटों की माला से सभी ओर घिरे हैं–जिस आग का तेज चारों ओर सौ योजन तक फैला है।"

"हाँ महाराज! उन जीवों को भी मरने से डर होता है।"

"भन्ते नागसेन! नरक में तो दुःख ही दुःख भोगना निश्चय ही है। तब, वे जीव मरकर वहाँ से छुटकारा पाने में क्यों डरते हैं? क्या उन्हें नरक भी इतना प्यारा होता है?"

"नहीं महाराज! उन्हें नरक प्यारा नहीं होता। वे उससे छूटने के लिए बहुत चिन्तित होते रहते हैं। मृत्यु के नाम भर से ऐसा एक रोब छा जाता है, जिससे (उन्हें) बड़ा भय उत्पन्न होता है।"

"भन्ते नागसेन! मुझे यह बात नहीं जँचती कि वहाँ से छूटने के लिए बहुत चिन्तित होते हुए भी उन्हें मरने से डर लगता है। यह तो उनके लिए बड़े आनन्द की बात होनी चाहिए कि जो वे चाहते हैं वही मिल रहा है! मुझे कुछ दूसरा प्रमाण दे कर समझावें।"

(क) "महाराज! मृत्यु एक ऐसी चीज ही है जिससे अज्ञानी लोगों को सदा भय बना रहता है। इससे लोग डरकर घबरा जाते हैं। महाराज! जो लोग काले साँप से डरते हैं वह मृत्यु के भयसे ही, जो हाथी, सिंह, बाघ चीता, भालू,

तरक्षु, जंगली भैंसे, बैल, आग, पानी, काँटे बर्छे और तीर से डरते हैं, वह मृत्यु के भय से ही। महाराज ! मरने का ऐसा रोब ही है। उसी रोब में आकर वे लोग जिनके साथ क्लेश लगा है, मरने से इतना डरते हैं। इसी कारण से नरक में पड़े हुये जीव भी–जो वहां से छूटने के लिए सदा चिन्तित रहते हैं–मरने के नाम से डर जाते हैं।"

(ख) "महाराज ! किसी आदमी के शरीर पर पीब से भरा हुआ एक फोड़ा उठ जाय। वह उसकी पीड़ा से बहुत दुःखी हो इलाज कराने के लिए किसी वैद्य या जर्राह को बुलावे। वह वैद्य उसकी परीक्षा करके इलाज करने के लिए तैयारियाँ करने लगे–नस्तर देने की छूरी को साफ करने लगे, दागने के लिए सलाई को आग में तपाने लगे, या सिलौट पर खारे नमक के डलों को पिसवाने लगे। महाराज ! तो उस रोगी को नस्तर पड़ने, तपी सलाई से दागे जाने, और खारे नमक का छींटा पड़ने से डर होगा या नहीं ?"

"हाँ भन्ते ! अवश्य डर होगा।"

"महाराज ! अपने रोग का इलाज कराने की इच्छा रखते हुए भी उसे कष्ट होने से बड़ा डर लगता है। महाराज ! इसी तरह, नरक में पड़े हुए जीवों को–वहाँ से छुटकारा पाने के लिए चिन्तित रहने पर भी–मरने से भय बना रहता है।"

(ग) "महाराज ! कोई राज-अपराधी हथकड़ी और बेड़ी पहनाए जाकर काली कोठरी में बंद कर दिया जाय। उसे उस दण्ड से छूटने की बड़ी व्याकुलता हो। तब, छोड़ देने के लिए उसे जेलर बुला भेजे। तो क्या उस अपराधी को अपने अपराध की याद कर जेलर के पास जाने में डर नहीं लगेगा ?"

"हाँ भन्ते ! उसे डर लगेगा।"

"महाराज ! इसी तरह, नरक में पड़े हुए जीवों को–वहाँ से छुटकारा पाने के लिये चिन्तित रहने पर भी–मरने से भय बना रहता है।"

"भन्ते ! एक और उदाहरण दे कर समझावें कि मुझे बिलकुल साफ हो जाय।"

(घ) "महाराज ! किसी आदमी को एक जहरीला साँप कांट ले। उस विष के विकार से वह गिरे, पड़े और लोट पोट रहे। तब, कोई गुनी अपने मन्त्र के बल से उस साँप को वह विष चूस लेने के लिए बुलावे। महाराज ! दूसरी बार भी साँप को–अपने विष को चूस कर चंगा करने के ही लिए–आते देककर क्या उसे डर नहीं होगा ?"

"हाँ भन्ते ! अवश्य होगा।"

"महाराज ! इसी तरह, नरक में पड़े हुए जीवों को–वहाँ से छुटकारा पाने के लिए चिन्तित रहने पर भी–मरने से भय बना रहता है।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आपने जो कहा सो बिलकुल ठीक है।"

१५. मृत्यु के हाथों से बचना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है:–

"न ऊपर आकाश में, न नीचे समुद्र के बीच
न पर्वत की कन्दराओं में पैठ कर;
संसार में कहीं भी ऐसा स्थान नहीं,
जहाँ छिपकर मृत्यु के हाथों में पड़ने से बचा जा सके ॥[1]

साथ ही साथ भगवान् ने 'परित्राण' का भी उपदेश दिया है। जैसे (१) रत्नसुत्त, (२) खन्धपरित्त, (३) मोरपरित्त, (४) धजग्गपरित्त, (५) आटानाटियपरित्त, (६) अंगुलिमालपरित्त।

"भन्ते नागसेन ! यदि ऊपर आकाश में भी उठकर, नीचे समुद्र के बीच गोते लगाकर भी, बड़े बड़े प्रासाद के ऊपर चढ़कर भी, कन्दराओं में, गुहाओं में और पहाड़ के ढालों पर भी जाकर मृत्यु के हाथों से नहीं बचा जा सकता, तो परित्राण-देशना झूठी ठहरती है। और यदि परित्राण-देशना करने से मृत्यु के हाथों से छुट्टी मिल जाती है तो 'न ऊपर आकाश में' इत्यादि जो कहा गया, वह झूठा ठहरता है। यह भी दुविधा आप के सामने रखी है।"

"महाराज ! भगवान् ने यह यथार्थ में कहा है. . . .

"न ऊपर आकाश में, न नीचे समुद्र के बीच
न पर्वत की कन्दराओं में पैठ कर;
संसार में ऐसा कोई भी स्थान नहीं,
जहाँ छिपकर मृत्यु के हाथों में पड़ने से बचा जा सके ॥

१–"साथ ही साथ भगवान् ने परित्राण का भी उपदेश दिया है। किन्तु वह केवल उन लोगों के लिए है जिन्हें कुछ जीना और बाकी रह गया है, जिनकी काफी आयु है, जो बुरे कर्मों से अपने को रोक रखते हैं। महाराज ! जिनकी आयु समाप्त हो गई है उन्हें रोक रखने के लिए न कोई जोग है न टोटका। महाराज ! जैसे मरे,

---

१. धम्मपद, पापवग्ग १३।

सूखे, मुर्झाए, फीका पड़ गए और बिलकुल निर्जीव हो गये वृक्ष को हजार घड़े पानी से सींचकर भी हराभरा और पल्लवित नहीं किया जा सकता, वैसे ही या तो दवा करके या परित्राण-देशना करके आयु पुर गए लोगों को रोका नहीं जा सकता। महाराज ! संसार में जितनी जड़ी–बूटियाँ हैं सभी आयु पुर गये लोगों के लिए बेकार हैं। महाराज ! परित्राण उन्हीं लोगों के लाभ के लिए है जिन्हें कुछ जीना बाकी है, जिनकी काफी आयु है, और जो अपने को बुरे कर्मों से रोक रखते हैं। इसीलिए भगवान् ने परित्राण का उपदेश दिया था।"

२–"महाराज ! पककर सूख गए धान को किसान खलिहान में गंज लगा कर पानी पड़ने से बचाता है। किन्तु जब धान के खेत में हरे-हरे उगे मेघ छाए से दीख पड़ते हैं, तब किसान उन्हें पानी से बार बार सींचता है। महाराज ! उसी तरह, जिन की आयु पुर गई है उनके लिए परित्राण–देशना बेकार है; किन्तु जिन्हें अभी जीना और बाकी है तथा जिनकी काफी आयु है उनको परित्राण-देशना से अलबत्ता लाभ हो सकता है।"

"भन्ते नागसेन ! जिनकी आयु पूरी नहीं हुई है, वे तो रहेंगे ही; और जिनकी आयु पूरी हो गई है, वे तो मर ही जायेंगे। तो दवा या परित्राण बेकार सिद्ध होता है।"

"महाराज ! क्या आपने कभी किसी रोग को दवा से अच्छा होते देखा है ?"

"हाँ भन्ते ! सैकड़ों बार।"

"महाराज ! तो आप का यह कहना गलत है कि दवा या परित्राण बेकार हैं।"

"भन्ते ! वैद्यों को तो हम लोग दवा खिलाते और लेप चढ़ाते देखते हैं। उस इलाज से रोगी चंगा हो जाता है।"

"महाराज ! परित्राण–देशना किए जाने पर भी हम लोग शब्दों को सुनते हैं। जीभ सूख जाती है, हृदय की चाल धीमी पड़ जाती है, गला बैठ जाता है, इन सभी बातों को देखते हैं। इससे उनके सारे कष्ट दूर हो जाते हैं, सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं।"

"महाराज ! क्या आपने कभी साँप काटे हुए मनुष्य को झाड़ते, विष को दूर करते और पानी का छींटा देते हुए देखा है ?"

"हाँ भन्ते ! आजकल भी लोग ऐसा करते हैं।"

परित्राण का प्रताप

"महाराज ! तब यह बात झूठी ठहरती है कि दवा और परित्राण से कुछ होता जाता नहीं। महाराज ! परित्राण करने से काटने के लिये आया हुआ भी साँप नहीं कट सकता—उसका जबड़ा ही बैठ जाता हैं। चोरों की उठाई लाठी भी नहीं छूटती—वे लाठी को फेंककर प्रेम करने लगते हैं। बिगड़ा हुआ हाथी भी पास में आकर रुक जाता है। जलती हुई आग की ढ़ेर भी आकर बुझ जाती है। हलाहल विष भी पेट में पड़ जाने से कोई हानि नहीं करता, बलिक एक भोजन ही बन जाता है। जल्लाद मारने की इच्छा से आकर भी अपने नौकरों के ऐसा नम्र हो जाते हैं। जाल में पड़ जाने से भी नहीं फँसता।"

'मोरपरित्त' की कथा

"महाराज ! क्या आपने नहीं सुना है कि परित्राण करने के कारण सात सौ वर्षों तक भी व्याध एक मोर को अपने जाल में फँसा सके; किंतु परित्राण करना छोड़ देने पर उसी दिन वह जाल में फँस गया ?[1]

"हाँ भन्ते ! ऐसा सुना जाता है। उसकी ख्याति देवताओं के सहित सारे लोक में फैली हुई है।"

"महाराज ! तो आपका यह कहना झूठा ठहरता है कि दवा—दारु या परित्राण से कुछ होता जाता नहीं है।"

दावन की कथा

"महाराज ! क्या आपने कभी सुना है कि अपनी स्त्री को बचाकर रखने के लिए उसे एक पिटारी में बन्द कर दानव उसे निगल गया था और उसे अपने पेट में लिए फिरता था; तो भी एक विद्याधर उसके मूँह से भीतर जाकर उस स्त्री के साथ रति किया करता था; और दानव को यह पता लगते ही उसने पिटारी को उगल दिया और उसे खोल कर देखने लगा; पिटारी के खुलते ही विद्याधर भाग गया ?"

"हाँ भन्ते ! मैंने ऐसा सुना हैं। यह बात भी देवताओं के सहित सारे लोक मैं फैली हुई है।"

"महाराज ! परित्राण ही के बल से न वह विद्याधर पकड़े जाने से बच गया"

"हाँ भन्ते !"

---

१. देखो 'मोरपरित्त'।

विद्याधर की कथा

"महाराज ! तब परित्राण देशना करने से बड़ा फल होता है। महाराज ! क्या आपने यह भी सुना है कि एक दूसरा विद्याधर काशि-राज के अन्तःपुर में घुसकर पटरानी के साथ रति करते हुए पकड़ा गया था; और पकड़े जाने पर अपने मन्त्र-बल से गायब हो गया ?"

"हाँ भन्ते ! इस कथा को मैंने सुना है।"

"महाराज ! वह विद्याधर भी परित्राण ही के बल से न ऐसा भाग सका !"

"हाँ भन्ते !"

"महाराज ! तब परित्राण में अवश्य बल है।"

"भन्ते ! क्या परित्राण से सभी लोगों की रक्षा होती है ?"

"नहीं महाराज ! परित्राण से सभी लोगों की रक्षा नहीं होती है, बल्कि कुछ की होती है और कुछ की नहीं।"

"भन्ते नागसेन ! तब तो परित्राण सभी के लिए सिद्ध नहीं हुआ।"

"महाराज ! क्या भोजन सभी लोगों के प्राणों को बचा सकता हैं ?"

"भन्ते ! कुछ लोगों के प्राणों को बचा सकता है और कुछ लोगों के प्राणों को नहीं।"

"सों क्यों ?"

"भन्ते ! क्योंकि अति-भोजन के कारण भी हैजा हो जाने से बहुत लोग मर जाया करते हैं।"

"महाराज ! भोजन सभी को नहीं बचाता।"

"भन्ते नागसेन ! दो कारणों से भोजन मनुष्य के प्राणों को हरा लेता है-(१) मात्रा से अधिक खा लेने से, और (२) पाचन-शक्ति के मंद पड़ जाने से। भन्ते नागसेन ! जीवन देने वाला भोजन भी बुरे उपयोग से विष के तुल्य ही जाता है।"

परित्राण सफल होने के तीन कारण

"महाराज ! इसी तरह, परित्राण से सभी लोगों की रक्षा नहीं होती हैं, बल्कि कुछ की होती हैं और कुछ की नहीं। महाराज ! तीन कारणों से परित्राण रक्षा करने में सफल नहीं होता-(१) किसी कर्म-फल के बीच में विघ्न कर

देने से, (२) पाप का विघ्न पड़ जाने से (३) विश्वास नहीं होने से। महाराज ! लोगों की अपनी ही करनी से परित्राण में रक्षा-बल रहते हुए भी वह बेकार जाता है।"[1]

"महाराज ! माता पेट में आने पर बच्चे की रक्षा करती है। बड़ी देख-रेख और सावधानी के साथ उसे प्रसव करती है। गृह, मूत, नेटा सभी को साफ करके अच्छे अच्छे सुगन्धित पदार्थ शरीर में लगा देती है। यदि दूसरा कोई आदमी उस (लड़के) को डाँटता डपटता या पीटता हो, तो वह क्रुद्ध हो, उसे पकड़ कर गाँव के मालिक के पास ले जाती है। किन्तु यदि लड़का कोई शैतानी करता है, या देर करके आता है, तो वह उसे स्वयं दण्ड देती है। महाराज ! तो क्या वह भी उसके कारण पकड़ा कर मालिक के पास ले जाई जाती है ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्यों नहीं ?"

"भन्ते ! क्योंकि लड़के ने कसूर किया था।"

"महाराज ! उसी तरह, परित्राण रक्षा करने वाला होने पर भी उनकी अपनी ही करनी से वह उनका अहित करने वाला हो जाता है।"

"ठीक है भन्ते ! आपने साफ कर दिया; उलझन को सुलझा दिया; अंधेरे को उजाला कर दिया; मिथ्या सिद्धान्त मानने वालों के जाल को काट दिया। आप यथार्थ में सभी गणचार्यों से श्रेष्ठ हैं।"

१६. बुद्ध को पिण्ड नहीं मिला

"भन्ते नागसेन ! आप कहा करते हैं-"बुद्ध को चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लान-प्रत्यय-ये परिष्कार सदा प्राप्त होते थे।" फिर बुद्ध पञ्चशाल नामक ब्राह्मणों के गांव में भिक्षाटन करने के बाद कुछ भी न पाकर धुले धुलाये पात्र को लिए लौट आये।"

"भन्ते नागसेन ! यदि यह बात सच है कि भगवान् को सभी परिष्कार सदा प्राप्त होते थे तो यह बात झूठी ठहरती है कि पञ्चशाल नामक ब्राह्मणों के गाँव में भिक्षाटन करने के बाद बुद्ध को कुछ भी नहीं पाकर धुले-धुलाए पात्र को लिए लौट आना पड़ा था। और, यदि यह बात सचमुच ठीक है कि बुद्ध को उस तरह पञ्चशाल नामक गाँव से लौट आना पड़ा, तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्हें सभी परिष्कार सदा प्राप्त होते थे। भन्ते ! यह भी दुविधा।"

---

१. अन्धविश्वास बुद्ध-धर्म के अनुकूल नहीं है। भगवान बुद्ध ने 'अन्धविश्वास' की बार बार निन्दा की है।"

"महाराज ! यह ठीक है कि बुद्ध को सभी परिष्कार सदा प्राप्त होते थे। यह भी ठीक है कि पञ्चशाल नामक ब्राह्मणों के गाँव में भिक्षाटन करने के बाद कुछ भी नहीं पाकर धुले धुलाए पात्र को लिए उन्हें लौट आना पड़ा था। यह पापी मार के ऐसा करने से हुआ था।"[1]

"भन्ते ! तो क्या भगवान् का अनगिनत कल्पों से जमा किया हुआ पुण्य उस समय समाप्त हो गया था ? बिलकुल अभी ही उठें पापी मार ने क्या उस पुण्य के बल और प्रभाव को ढ़क दिया था ? भन्ते नागसेन ! यदि ऐसी बात है तो दो तरह से आक्षेप पड़ता है-पुण्य से पाप ही जबरदस्त है। भला वृक्ष के घड़ से ऊपर का हिस्सा कैसे भारी होगा ? अच्छे गुणों के समुदाय से पाप का बल कैसे तेज होगा ?"

"महाराज ! आप की दोनों बातें इससे सिद्ध नहीं होतीं। हाँ, यहाँ पर एक कारण दिखा देना है !"

राजा को भेंट

"महाराज ! कोई आदमी मधु, मधु का छत्ता, या ऐसी ही कुछ दूसरी चीज लेकर किसी चक्रवर्ती राजा के पास भेंट चढ़ाने के लिए आवे। द्वारपाल उस आदमी से कहे-"राजा से मिलने का यह समय नहीं है। सो, अपनी भेंट को लेकर जल्दी यहाँ से निकल जाओ नहीं तो राजा जी देखने से दण्ड देंगे।" तब वह आदमी डरकर घबड़ा जाय और अपनी चीज को लेकर वहाँ से झटपट निकल जाय। महाराज ! तो क्या इसीसे कि राजा उस दिन की भेंट को नहीं पा सका अपने द्वारपाल से कमजोर समझा जायगा ? या, राजा को फिर कभी भेंट मिलेगी ही नहीं ?"

"नहीं भन्ते ! अपने रूखे स्वभाव के कारण ही द्वारपाल ने उस आदमी को लौटा दिया। किंतु दूसरे दरवाजों से राजा को उससे सौ गुनी और हजार गुनी अधिक भेंट चढ़ेगी।"

"महाराज ! इसी तरह अपने बुरे स्वभाव के कारण पापी मार पञ्चशाल नामक गाँव के ब्राह्मणों में जाकर पैठ गया। किंतु दूसरे सैकड़ों और हजारों देवता दिव्य ओज वाले अमृत को लेकर आ उपस्थित हुए और भगवान् को देने के लिए हाथ जोड़ खड़े हो गए।"

"भन्ते नागसेन ! ऐसा हो सकता है कि बुद्ध को चारों प्रत्यय बड़े सुलभ थे तथा उन पुरुषोत्तम को देवताओं और मनुष्यों द्वार भक्ति-पूर्वक प्रदत्त सभी कुछ

---
१. देखो बुद्धचर्या ११३.

सदा प्राप्त होता था। तो भी पापी मार की यह इच्छा तो पूरी हो गई कि बुद्ध को वहाँ के ब्राह्मणों से कुछ मिलने न पाया ! भन्ते ! मेरी यह शङ्का दूर नहीं हुई। इसमें मेरी दुविधा बनी हुई है-संदेह लगा हुआ है। मार जैसा हीन, नीच, क्षुद्र, पापी और बुरा जीव भगवान् जैसे अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध, देवताओं और मनुष्यों के साथ इस लोक में सब से श्रेष्ठ, अच्छे पुण्यों के समूह के स्वरूप, अद्वितीय और अनुपमेय के भिक्षाटन में कैसे कुछ बाधा डाल सका ?"

दान में चार प्रकार की बाधायें

"महाराज ! बाधायें चार प्रकार की होती हैं-(१) बिना देखा हुआ, (२) उद्देश्य किया हुआ, (३) तैयार किया हुआ और (४) परिभोग के लिये उद्यत हुआ।

१-बिना देखा हुआ-बिना किसी खास व्यक्ति को देने के लिए तैयार किए हुए दान को देखकर कोई आदमी देने वाले को भड़का दे-अरे, इसे किसी दूसरे को देने से क्या लाभ ! और वह दान रुक जाय। यह बिना देखे हुए का अन्तराय है।"

२-उद्देश्य किया हुआ-किसी खास व्यक्ति को कोई दान देने की इच्छा करे। कोई दूसरा आदमी आकर उसे भड़का दे। तो यह उद्देश्य-अन्तराय कहा जाता है।

३-तैयार किया हुआ-कोई आदमी दान लेकर किसी को देने के लिए तैयार हो। उस समय कुछ ऐसी ही बाधा उपस्थित हो जाय जिससे दान नहीं दिया जा सके। तो यह तैयार किए हुए का अन्तराय कहा जाता है।

४-परिभोग के लिए उद्यत हुआ-दान दिए जा चुकने पर पाने वाला उसका उपभोग करने के लिए उद्यत हो। उस समय ऐसी ही कोई बाधा खड़ी हो जाय जिससे वह उपभोग नहीं कर सके। तो यह परिभोग के लिए उद्यत हुए का अन्तराय कहा जाता है।

"महाराज ! यही चार प्रकार के अन्तराय होते हैं। मार ने जो पञ्चशाल गाँव के ब्राह्मणों में पैठकर उन्हें किसी को कुछ दान करने से विमुख कर दिया था वह दूसरे, तीसरे या चौथे प्रकार का अन्तराय नहीं किंतु पहले प्रकार का, बिना देखे हुए का अन्तराय था। उस दिन जो दूसरे भी माँगने वाले उस गाँव में गए थे उन्हें भी कुछ नहीं मिला था।"

"महाराज ! देवताओं, मार, ब्रह्मा, श्रमण, ब्राह्मण तथा सभी जीवों के साथ इस सारे लोक में ऐसा कोई नहीं है जो बुद्ध के लिए उद्देश्य किए, तैयार किए

या उनके परिभोग करने के लिए उद्यत हुए में अन्तराय ला दे। यदि कोई द्वेष से अन्तराय करे तो उसका सिर सैकड़ों और हजारों खण्ड़ों में टूट जायगा।"

बुद्ध की चार बातें रोकी नहीं जा सकतीं

"महाराज ! बुद्ध में चार बातें हैं जिन्हें कोई रोक नहीं सकता। कौन सी चार ? (१) उनके लिए उद्देश्य किए हुए या तैयार किए हुए दान, (२) उनके शरीर से निकली हुई प्रभा का व्याम भर फैलना, (३) उनका सदा सर्वज्ञ होना, और (४) उनकी पूरी आयु तक जीना। महाराज ! बुद्ध-सम्बन्धी इन चार बातों को कोई रोक नहीं सकता। महाराज ! ये चारों बातें एक ही तरह की हैं। उनमें कुछ भी कमी नहीं है। उन्हें कोई भी हटा नहीं सकता। किसी भी तरह से वे बदली नहीं जा सकतीं। महाराज ! जब पापी मार पञ्चशाल नामक गाँव के ब्राह्मणों में पैठा था तब वह अदृश्य होकर वहाँ पड़ा था।"

"महाराज ! चोर और लुटेरे सीमा प्रान्त के बीहड़ स्थानों में छिपे रह कर राहगीरों को लूटते पीटते हैं। यदि राजा उन्हें देख ले तो क्या उनकी खैर है ?"

"नहीं भन्ते ! वह उन्हें तलवार से सौ और हजार टुकड़ों में कटवा दे सकता है।"

"महाराज ! इसी तरह, अदृश्य होकर मार उन ब्राह्मणों में पैठा हुआ था।"

"महाराज ! ब्याही हुई औरत छिपकर ही दूसरे पुरुष के पास जाती है। इसी तरह, अदृश्य होकर ही मार उन ब्राह्मणों में पैठा हुआ था। महाराज ! यदि वह औरत अपने पति को दिखाकर दूसरे पुरुष के पास जाय, तो क्या उसका कल्याण है ?"

"नहीं भन्ते ! ऐसा करने से उसका पति उसे मार पीटकर जान ले लेगा या दासी बना देगा।"

"महाराज ! इसी तरह, पापी मार अदृश्य। महाराज ! यदि मार बुद्ध के लिए उद्देश्य किए गए, या तैयार किए गए, या उनके पाये हुए दान में कुछ अन्तराय डालता तो उसके सिर के टुकड़े हो जाते।"

"हाँ भन्ते नागसेन ! आप ठीक कहते हैं। पापी मार ने चोर के ऐसा काम किया। वह अदृश्य होकर उन ब्राह्मणों में पैठा था। यदि वह बुद्ध के लिए। तो उसका शरीर एक मुट्ठी भुस्सा के ऐसा भहरा कर छितरा जाता। ठीक है भन्ते नागसेन ! जैसा आप कहते हैं उसे मैं स्वीकार करता हूँ।"

१७. बिना जाने हुए पाप और पुण्य

"भन्ते नागसेन ! आप लोग कहा करते हैं–"जो बिना जाने प्राणिहिंसा करता है उसे और भी अधिक पाप लगता है।" फिर भी भगवान् ने विनय-प्रज्ञप्ति के समय कहा है–"बिना जाने हुए का कोई दोष नहीं लगता ।"[1]

"भन्ते नागसेन ! यदि बिना जाने प्राणि-हिंसा करने से और भी अधिक पाप लगता है तो यह कहना गलत है कि बिना जाने हुए को कोई दोष नहीं लगता। यदि सचमुच बिना जाने हुए को कोई दोष नहीं लगता, तो यह बात झूठी ठहरती है कि बिन जाने प्राणि-हिंसा करने से और भी अधिक पाप लगता है। यह भी दुविधा है।"

"महाराज ! दोनों बातें ठीक हैं।"

किन्तु दोनों के अर्थ में थोड़ा फरक है। वह क्या ? कितने ऐसे दोष हैं जो बिना जाने किए जाते हैं और कितने ऐसे हैं जो जान कर किए जाते हैं। इन दोनों में पहले को ध्यान में रखते हुए भगवान् ने कहा था, बिना जाने हुए में कोई दोष नहीं लगता।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जैसा कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

१८. बुद्ध का भिक्षुओं के प्रति निरपेक्ष भाव होना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने यह कहा है–" आनन्द ! बुद्ध के मन में ऐसा कभी नहीं आता कि मैं ही भिक्षु-संघ का संचालन करता हूं या भिक्षुसंघ मेरा ही अनुसरण करे।"[2] साथ ही साथ मैत्रेय भगवान् के स्वाभाविक गुणों को दिखाते हुए उन्होंने यह भी कहा है–"वे हजारों भिक्षु-संघ का संचालन करेंगे जैसे अभी मैं सैकड़ों भिक्षु संघ का संचालन कर रहा हूं।"

"भन्ते नागसेन ! यदि सचमुच बुद्ध के मन में ऐसा कभी नहीं आता है कि मैं ही भिक्षु-संघ का संचालन करता हूं या भिक्षु-संघ मेरा ही अनुसरण करे, तो जो मैत्रेय भगवान् के विषय में कहा गया है वह झूठा ठहरता है। और यदि मैत्रेय भगवान् के विषय में जो कुछ कहा गया है वह सही है तो यह बात झूठी ठहरती हैं कि बुद्ध के मन में ऐसा कभी नहीं आता, कि मैं ही भिक्षु-संघ का संचालन करूं, या भिक्षु-संघ मेरा ही अनुसरण करे। यह भी दुविधा हैं।"

"महाराज ! भगवान् ने जो आनन्द को बुद्ध के विषय में और जो मैत्रेय भगवान् के स्वाभविक गुणों को दिखाते हूए कहा है दोनों ठीक हैं। महाराज !

---

१. 'अजानन्तस्स अनापत्ति'।

२. दीघनिकाय, 'महापरिनिर्वाण-सूत्र, बुद्धचर्या' पृष्ठ ५३२

किन्तु इस प्रश्न में एक अर्थ सावशेष[1] है और एक निरवशेष[2]। महाराज! बुद्ध किसी गिरोह के पीछे नहीं हो लेते, बल्कि गिरोह ही उनके पीछे चलता है। महाराज! यह लोगों की केवल समझ भर है कि "यह मैं हूं" या "यह मेरा है।" परमार्थ में ऐसी बात नहीं है महाराज! बुद्ध प्रेम के बन्धन से छूट गए हैं, उन्हें किसी के प्रति अपनेपन का भाव नहीं रहा। 'यह मेरा है' इसका भी भ्रम बुद्ध में नहीं है। तो भी, भिक्षु-संघ उन्हीं को अगुआ मानकर चलता है।"

"महाराज! पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीवों का आधार पृथ्वी होती है किन्तु उसे ऐसा कभी ख्याल नहीं होता कि "ये सभी मेरे ही हैं।" महाराज! इसी तरह, बुद्ध सभी जीवों के आधार होकर रहते हैं, सभी को अपना आश्रय देते हैं किन्तु उनके मन में कभी भी ऐसी अपेक्षा नहीं होती हैं कि "ये मेरे ही हैं।"

"महाराज! महा-मेघ बरसकर घास, पौधे, पशु तथा मनुष्यों की वृद्धि करता है; उनके सिलसिले को बनाए रखता है; उसके बरसने ही से ये सभी जीव जीते हैं। तो भी महा-मेघ को कभी भी ऐसी अपेक्षा नहीं होती है कि "ये सभी मेरे ही हैं।" महाराज! इसी तरह बुद्ध सभी को पुण्य में जीवन-दान करते हैं, और उन्हें पुण्य में बनाए रखते हैं। सभी जीवों को उन्हीं से पुण्य करना आता है। तो भी, बुद्ध के के मन में कभी भी ऐसी अपेक्षा नहीं होती है कि "ये मेरे ही हैं।"

"सो क्यों? क्योंकि बुद्ध में अपनेपन (आत्मानुदृष्टि) का सभी ख्याल उड़ गया है।"

ठीक है भन्ते नागसेन! आपने प्रश्न को अच्छा साफ कर दिया है। अनेक तर्कों को दिखाया है। अँधेरे को उजाला कर दिया। विपक्षवालों का मुँह तोड़ दिया। बुद्ध-श्रावकों को ज्ञान की आँखें दे दीं।"

१९. बुद्ध के अनुगामियों का नहीं बहकाया जाना

"भन्ते नागसेन! आप लोग कहा करते हैं कि बुद्ध के अनुगामी कभी भी बहक नहीं सकते। साथ ही साथ ऐसा भी कहते हैं कि देवदत्त एकसाथ पाँच सौ भिक्षुओं को लेकर चला गया था।"

"भन्ते नागसेन! यदि बुद्ध के अनुगामी वास्तव में कभी भी बहक नहीं सकते तो यह बात झूठी ठहरती है कि देवदत्त एकसाथ पाँच सौ भिक्षुओं को लेकर

---

१. सावशेष- जो बात कुछ पर लागू होती है और कुछ पर नहीं।

२. निरवशेष-जो बात व्यापक है-बिना किसी अपवाद के सभी पर लागू होती है।

चला गया था। और, यदि देवदत्त सचमुच एकसाथ पाँच सौ भिक्षुओं को ले गया था तो यह बात झूठी ठहरती है कि बुद्ध के अनुगामी कभी भी बहक नहीं सकते। यह भी एक दुविधा आप के सामने रक्खी जाती है। यह बड़ा गम्भीर है। इसका सुलझाना बड़ा कठिन है। भारी भूल भुलैया है। इसमें मनुष्य पड़कर फँस जाता है, बझ जाता है, घिर जाता है, ढ़क जाता है, और बँध जाता है। आप यहाँ पर विपक्ष के तर्क को काटने में अपना ज्ञान-बल दिखावें।"

"महाराज! यथार्थ में बुद्ध के अनुगामी कभी भी बहक नहीं सकते और साथ ही साथ यह भी सच है कि देवदत्त एकसाथ पाँच सौ भिक्षुओं को निकाल ले गया था। महाराज! बहकाने वाले को इतना बल रहने से बहका भी सकता है। महाराज! यदि बहकाने वाला इतना चालाक हो तो कोई भी ऐसा नहीं है जो बहकाया न जा सके। माता भी पुत्र से बहका दी जा सकती है; पुत्र भी माता से बहका दिया जा सकता है। पिता पुत्र से, या पुत्र पिता से बहका दिया सकता है; भाई बहन से बहका दिया जा सकता है, बहन भाई से बहका दी जा सकती है। मित्र भी मित्र से बहका दिया जा सकता है। नाव के सभी पटरे एकसाथ रहने पर भी पानी के तरंगों के वेग से एक दूसरे से बहका दिए जाते हैं। हवा के चलने से मीठे मीठे फलों वाला वृक्ष भी गिर पड़ता है। सोना भी लोहे की हथौड़ी से चूर चूर कर दिया जाता है। महाराज! किन्तु न तो यह विज्ञ पुरुषों की इच्छा रहती; न बुद्ध ही चाहते हैं और न पण्डित लोगों के ही मन में यह बात आती है कि बुद्ध के अनुगामी उनसे बहका दिए जायँ। महाराज! जो यह कहा जाता है कि बुद्ध के अनुगामियों को कोई भी बहका नहीं सकता, उसका कुछ विशेष कारण है।"

"वह कौन सा विशेष कारण है?"

"महाराज! बुद्ध के अपने कुछ करने, या डाँटने, या दुत्कारने, या कुछ ऊँचा-नीचा कह देने से उनके अनुगामी कभी भी उनसे बहक गए हों ऐसी बात कहीं नहीं सुनी जाती। इसी कारण से कहा जाता है कि बुद्ध के अनुगामी बहकाए नहीं जा सकते। महाराज! क्या आपने सुना है कि कभी भी बुद्ध के नव लोकों में किसी बोधिसत्व ने बुद्ध के अनुगामियों को बहका दिया हो?"

"नही भन्ते! न तो यह देखा जाता है और न सुना। ठीक है, आप जैसा कहते हैं मैं स्वीकार करता हूँ।"

दूसरा वर्ग समाप्त

२०. उपासक को सदा किसी भी भिक्षु का आदर करना चाहिए

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने यह कहा है-"वाशिष्ट ![1] संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, इस जन्म में और आगे चलकर भी।" फिर भी गृहस्थ उपासक स्रोत आपन्न, जिनका अब अपने मार्ग से च्युत होना सम्भव नहीं है, जिसने धर्म का पूरा पूरा ज्ञान पा लिया है तथा-बुद्ध के शासन को जिसने जान लिया है-ऐसा होनेपर भी अज्ञानी भिक्षु या श्रामणेर को प्रणाम तथा उठकर स्वागत करता है।"

"भन्ते नागसेन ! यदि यह बात ठीक है कि संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, तो स्रोत आपन्न गृहस्थ को अज्ञानी भिक्षु को प्रमाण करना नहीं चाहिए। और यदि स्रोत आपन्न गृहस्थ को भी अज्ञानी भिक्षु को प्रणाम करना यथार्थ में उचित है तो यह बात झूठी ठहरती है कि संसार में धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने यह ठीक कहा है कि संसार में धर्म ही सब से श्रेष्ठ है; और यह भी उचित है कि गृहस्थ उपासक स्रोत आपन्न होने पर भी किसी भी भिक्षु को प्रणाम करें और उठ कर स्वागत करे।

ऐसा करने के लिए कारण है।

"कौन सा कारण ?"

"महाराज ! श्रमण होने के लिए किसी में बीस गुण तथा दो बाहरी चिन्ह होने चाहिए, जिनसे लोग उसे प्रणाम तथा उठकर स्वागत करते हैं।"

"वे बीस गुण और दो बाहरी चिन्ह कौन से हैं ?"

श्रमण के गुण और चिन्ह

(१) "वे अरण्य, वृक्ष-मूल, तथा शून्यागार इन तीन श्रेष्ठ भूमियों में वास करते हैं, (२) वे सभी अच्छी बातों में आगे रहते हैं, (३) अच्छे नियमों में प्रतिष्ठित रहते हैं, (४) सदाचारी होते हैं, (५-६) शान्त और दान्त होकर विहार करते हैं, (७) संयमी होते हैं, (८) क्षान्ति (क्षमा) से युक्त होते हैं, (९) सुरत होते हैं (१०) श्रेष्ठ आचार-विचार वाले होते हैं, (११) ऊँची और पवित्र इच्छाओं वाले होते हैं, (१२) विवेक-सम्पन्न होते हैं (१३) पाप कामों से लज्जा और भय रखने वाले होते हैं, (१४) वीर्यवान होते हैं, (१५) अप्रमादी होते हैं, (१६) शिक्षापदों की आवृत्ति करने में सदैव उत्साह-शील रहते हैं, (१७) धर्म को जानने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं, (१८) शीलों के पालन करने में तत्पर रहते हैं, (१९) तृष्णा

१. दीघनिकाय के आग्गञ्ञ सुत्त से।

पर विजय पाने वाले होते हैं, और (२०) शिक्षापदों को पूरा करते हैं-ये उनके अपने बीस गुण होते हैं। (१) काषाय वस्त्र धारण करने वाले होते हैं, और (२) शिर मुड़ाते हैं-ये दो उनके बाहरी चिन्ह हैं।"

भिक्षु लोग ऊपर कहे गये धर्मों का पालन करके अर्हत्-पद भी पा लेते हैं। इसीलिए स्रोत आपन्न गृहस्थ उपासक किसी भी भिक्षु को प्रणाम करता है और उठकर स्वागत करता है। 'आस्रवों के क्षीण हो जाने से उसने श्रमण-भावों को ग्रहण किया है, मेरा वह समय अभी नहीं आया है'-ऐसा विचार कर भी स्रोत आपन्न गृहस्थ उपासक किसी भी भिक्षु को प्रणाम करता और उठकर स्वागत करता है। 'वह भिक्षु बनकर ऊँचे सन्त लोगों की मण्डली में मिल गया है; मेरा वह स्थान अभी नहीं है'-ऐसा विचार कर भी। 'वह प्रातिमोक्ष[1] उपदेशों को सुनने का अधिकारी है, मैं नही हूँ'-ऐसा विचार कर भी। 'वह दूसरों को प्रव्रज्या और उपसम्पदा देकर बुद्ध के शासन की वृद्धि कर सकता है, मैं नहीं कर सकता हूँ'-ऐसा विचार कर भी। 'वह बहुत से दूसरे शिक्षापदों का पालन करता है जिसका पालन मैं नहीं करता'-ऐसा विचार कर भी। 'उसने बुद्ध को अपना गुरु मानकर भिक्षुपन को धारण कर लिया है, मैंने अभी तक नहीं किया है' ऐसा विचार कर भी। 'उसकी कांख में बड़े बड़े बाल जम गए हैं, न वह अञ्जन लगाता है न कुछ दूसरा ठाट-बाट करता है, केवल शील रूपी गन्ध से युक्त है, और मैं तो अपने शरीर का ठाट-बाट किया करता हूँ" ऐसा विचार कर भी। महाराज ! और भी 'जो बीस गुण और दो बाहरी चिन्ह कहे गए हैं सभी भिक्षु में ही पाए जाते हैं। भिक्षु दूसरी भी अनेक शिक्षाओं का पालन करता है जिससे मेरा अभी कुछ सम्बन्ध नहीं है'-ऐसा विचार कर भी।"

"महाराज ! राजकुमार पुरोहित के पास सभी विद्याओं का अध्ययन करता है; क्षत्रिय को जो जो बातें सीखनी चाहिए सभी को सीखता है। वह राजकुमार बड़ा होकर उचित समय पर गद्दी पा लेता है, तो भी अपने आचार्य को प्रणाम करता है और उठकर स्वागत करता है। उसे यह ख्याल रहता है कि 'यह मेरे गुरु हैं।' महाराज ! इसी तरह भिक्षु शिक्षा देने वालों की पीढ़ी में है। स्रोत आपन्न गृहस्थ उपासक को किसी भी भिक्षु को उठकर स्वागत करना चाहिए और प्रणाम करना चाहिए।"

"महाराज ! इतने से आप समझ लें कि भिक्षु का दर्जा कितना बड़ा और ऊँचा है। महाराज ! यदि स्रोत आपन्न गृहस्थ उपासक अर्हत्-पद को पा लेता है

---

१. भिक्षु के नियम-देखो; विनयपिटक, पृष्ठ १-७०।

तो उसकी दो ही गतियाँ होती हैंतीसरी नहीं–(१) या तो उसी दिन उसका परिनिर्वाण हो जाता है, (२) या भिक्षु बन जाता है। वह भिक्षु–भाव अचल, उत्तम और श्रेष्ठ होता है।"

"भन्ते नागसेन! बात समझ में आ गई। आप जैसे बुद्धिमान पुरुष द्वारा यह प्रश्न अच्छी तरह बतलाया जा सकता है। आप को छोड़कर कोई दूसरा इस तरह नहीं बतला सकता।"

२१. बुद्ध सभी लोगों का हित करते हैं

"भन्ते नागसेन! आप लोग कहते हैं कि बुद्ध सभी जीवों के अहित को दूरकर हित करते हैं। साथ ही साथ ऐसा भी कहते हैं कि भगवान् के 'अग्निस्कन्धोपम' नामक धर्म–देशना करने पर साठ भिक्षुओं ने मुँह से गरम खून उगल दिया। भन्ते! यहाँ तो भगवान् ने उन साठ भिक्षुओं का हित करने के बदले में अहित ही कर डाला।"

"भन्ते नागसेन! यदि यह बात सच है कि बुद्ध सभी जीवों के अहित को दूर कर हित करते हैं तो 'अग्निस्कन्धोपम' नामक धर्मदेशना की बात झूठी ठहरती है। और, यदि 'अग्निस्कन्धोपम' नामक धर्म–देशना की बात सचमुच ठीक है तो यह बात झूठी ठहरती है कि बुद्ध सभी जीवों के अहित को दूर कर हित करते हैं। भन्ते! यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज! बुद्ध सभी जीवों के अहित को दूरकर हित करते हैं यह भी सच है और यह भी कि उन भिक्षुओं ने मुँह से गरम खून उगल दिया। उन भिक्षुओं ने मुँह से गरम खून उगल दिया इसमें भगवान् का कोई दोष नहीं बल्कि उनका ही दोष था।"

"भन्ते नागसेन! यदि भगवान् वह उपदेश नहीं करते तो उनके मुँह से खून निकलता ?"

"नहीं महाराज! भगवान् के धर्मोपदेश को सुनकर उन बुरे मार्ग में लगे भिक्षुओं के हृदय में एक जलन पैदा हुई, जिससे उनके मुँह से गरम खून निकल आया।"

दीयंड़ का साँप

"भन्ते नागसेन! तो बुद्ध के ऐसा करने से ही न उनके मुँह से गरम खून निकल आया? बुद्ध ही उन भिक्षुओं के अनिष्ट के कारण हुए। भन्ते कोई साँप

किसी दीयंड़ के बिल में ढुक जाय । तब, कोई आदमी मिट्टी लेने के लिए वहाँ आवे और दीयंड़ को फोड़ कर जितनी मिट्टी चाहे उतनी लेकर चला जाय। उससे दीयंड़ का बिल मुंद जाय और साँप उसके भीतर हवा न पा वहीं मर जाय। तो भन्ते ! वह साँप उसी आदमी के कारण न मर गया ?"

"हाँ महाराज !"

"भन्ते नागसेन ! इसी तरह, उन भिक्षुओं के नाश के कारण बुद्ध ही हुए।"

"महाराज ! किसी की खुशामद या किसी के द्वेष से बुद्ध धर्मोपदेश नहीं करते। वे बिना किसी ऐसे भाव के ही किसी को कुछ उपदेश देते हैं। इस तरह उनके धर्मोपदेश करने से जो अच्छे विचार वाले हैं उनको ज्ञान हो जाता है, किंतु जो बुरे विचार वाले वे हैं गिर जाते हैं।"

फलयुक्त वृक्ष का हिलना

"महाराज ! यदि कोई आदमी आम, जामुन या महुये के वृक्ष को पकड़कर हिलावे तो जितने पुष्ट ड़ंठल वाले अच्छे फल हैं सभी लगे ही रहते हैं, नहीं गिरते, किंतु जिन फलों के ड़ंठल सड़ गए हैं वे झट टपक पड़ते हैं। महाराज ! इसी तरह, बिना किसी खुशामद या द्वेष के भाव से बुद्ध धर्मोपदेश करते हैं। इस तरह उनके धर्मोपदेश करने से जो अच्छे विचार वाले हैं उनको ज्ञान हो जाता है, किंतु जो बुरे विचार वाले हैं, वे गिर जाते हैं।"

किसान का खेत जोतना

"महाराज ! कोई किसान धान रोपने के लिए खेत को जोतता है। उससे बहुत सी घासें उखड़कर मर जाती हैं। उसी तरह, बुद्ध पके विचार वालों को ज्ञान देने के लिए बिना किसी खुशामद या द्वेष–भाव के धर्मोपदेश करते हैं। इस तरह उनके धर्मोपदेश करने से जो अच्छे विचार वाले हैं उनको ज्ञान हो जाता है, किन्तु जो बुरे विचार वाले हैं, वे गिर जाते हैं।"

ईख का पेरना

"महाराज ! रस निकालने के लिए लोग ईख को कोल्हू में पेरते हैं। उसके साथ बहुत से कीड़े–मकोड़े भी, जो बीच में पड़ जाते हैं, पिस कर मर जाते हैं। महाराज ! इसी तरह, बुद्ध पके विचार वालों को ज्ञान देने के लिए।"

"भन्ते नागसेन ! तो भी, वे भिक्षु उसी धर्म–देशना के कारण गिरे न ?"

"महाराज ! क्या बढ़ई टेढ़ीमेढ़ी लकडी के पास चुपचाप खड़ा रह उसे सीधा, चिकना और काम के लायक बना सकता हैं ?"

"नहीं भन्ते ! उसे छील छालकर ही सीधा, चिकना और काम के लायक बनाता है।"

"महाराज ! इसी तरह, बुद्ध भिक्षुओं को यों ही देखते रह उन्हें रास्ते पर नहीं ला सकते। वे उन्हें बुरे विचार वाले भिक्षुओं से दूर हटा कर ही ज्ञान–मार्ग पर लाते हैं। महाराज ! अपनी ही करनी से बुरे विचार वाले गिर जाते हैं। महाराज ! जैसे केले का वृक्ष, बाँस और खच्चरी उसी के द्वारा नष्ट हो जाते हैं जिसको वे स्वयं पैदा करते हैं, वैसे ही जो बुरे विचारवाले हैं वे अपनी ही करनी से नाश को प्राप्त होते हैं। महाराज ! जैसे चोरों की अपनी ही करनी से उनकी आँखें निकाल ली जाती हैं, वे सूली पर चढ़ा दिए जाते हैं, या उनका सिर काट लिया जाता है, वैसे ही जो बुरे विचार वाले हैं वे अपनी ही करनी से नाश को प्राप्त होते हैं और बुद्ध धर्म से गर जाते हैं।"

"महाराज ! जो उन साठ भिक्षुओं को मुँह से गरम खून उगल देना पड़ा सो न भगवान् के कारण, और न किसी दूसरे के कारण किन्तु केवल अपनी ही करनी के कारण।"

अमृत का बाँटना

"महाराज ! कोई आदमी सभी लोगों को अमृत बाँटे। वे उस अमृत को पीकर निरोग, दीर्घ आयु तथा सभी कष्टों से रहित हो जायें किन्तु उसी अमृत को पीकर कोई पचा न सकने के कारण मर जाय। महाराज ! तो क्या अमृत देने वाले को कोई दोष लगेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह, बुद्ध इन दस हजार लोकों में देवताओं और मनुष्यों को समान रूप से धर्म रूपी अमृत का दान करते हैं। जो अच्छे लोग हैं उन्हें तो ज्ञान प्राप्त होता है, किन्तु बुरे लोग गिर ही जाते हैं।"

"महाराज ! भोजन सभी के प्राणों की रक्षा करता है, किन्तु हैजे का रोगी उसी को खाकर मर जाता है। महाराज ! तो क्या किसी भोजन बाँटने वाले दानी को उससे दोष लगेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह, बुद्ध इन दस हजार लोकों में।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूं।"

२२. वस्त्र-गोपन दृष्टान्त

"भन्ते ! भगवान् ने कहा है:–

> **"शरीर का संयम करना बड़ा भला है,**
> **बड़ा भला है बचन का संयम करना।**
> **मन का संयम करना बड़ा भला है, ।।**
> **बड़ा भला है सभी का संयम करना ।।"[1]**

"फिर भी बुद्ध ने चारों मण्डलियों के बीच में बैठकर देवता और मनुष्यों के सामने शैल नामक ब्राह्मण को अपना कोश से आच्छादित उपस्थ (पुरुषेन्द्रि) दिखा दिया।"[2]

"भन्ते ! यदि बुद्ध शरीर से संयम रखते थे तो शैल नामक ब्राह्मण को उन्होंने अपना उपस्थ दिखा दिया वह बात झूठी ठहरती है। और, यदि यह बात सच है कि उन्होंने शैल नामक ब्राह्मण को अपना उपस्थ दिखा दिया, तो यह बात झूठी ठहरती है कि वे शरीर से संयम रखते थे। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने सच कहा है–"शरीर से संयम करना बड़ा भला है"; और यह भी सच है कि उन्होंने शैल नामक ब्राह्मण को अपना उपस्थ दिखा दिया था। महाराज ! उसे बुद्ध के प्रति शंका उत्पन्न हो गई थी, जिसे दूर करने के लिए भगवान् ने ऋद्धि-बल से अपने शरीर को बिलकुल प्रकाशित कर दिया था। इस ऋद्धि–निर्मित शरीर के उपस्थ को केवल वही ब्राह्मण देख सका था।"

"भन्ते नागसेन ! भला इसे कौन विश्वास करेगा कि वहाँ सभी के बैठे रहेपर भी एक ही ने उनके उपस्थ को देख पाया दूसरों ने नहीं ? कृपाकर ऐसी अनहोनी बात के सम्भव होने का कारण दिखावें।"

रोगी अपने रोग को अपने ही जानता है

"महाराज ! आपने किसी रोगी को देखा है, जिसे घेरकर उसके सम्बन्धी और मित्र खड़े हों ?"

"हाँ भन्ते ! देखा है।"

---

१. धम्मपद, भिक्खु-वग्ग २।

२. देखो 'मज्झिम-निकाय' में 'सेल-सुत्तन्त', पृष्ठ ३८१।

"महाराज ! तो क्या दूसरे लोग उस कष्ट का अनुभव कर सकते हैं, जिसमें रोगी पीड़ित रहता है ?"

"नहीं भन्ते ! रोगी अकेला ही उस कष्ट का अनुभव करता है ।"

"महाराज ! इसी तरह, जिसे शङ्का उत्पन्न हुई थी उसी को बताने के लिए भगवान् ने ऋद्धि-बल से अपना उपस्थ दिखा दिया था ।"

भूत को वही देख सकता है जिसके ऊपर आता है

"महाराज ! यदि किसी आदमी के ऊपर भूत आवे, तो क्या दूसरे लोग उस भूत को आते देख सकते है ?"

"नहीं भन्ते ! वही अकेला देख सकता है, जिसके ऊपर भूत आता है ।"

"महाराज ! इसी तरह, जिसे शङ्का उत्पन्न हो गई थी उसी को बताने के लिए भगवान् ने ऋद्धि-बल से अपना उपस्थ दिखा था ।"

"भन्ते यह बड़ी विचित्र बात है कि उसे छोड़कर दूसरा कोई भी नहीं देख सका ।"

"महाराज ! भगवान् ने यथार्थ में उसे अपना उपस्थ नहीं दिखाया बल्कि ऋद्धि-बल से केवल उसकी छाया दिखा दी थी ।"

"भन्ते ! छाया दिखाने से भी तो दिखा देना ही हुआ, जिससे उस ब्राह्मण की शङ्का हट गई ।"

"हाँ महाराज ! भगवान् जिसे कुछ बताना चाहते थे, उसे बताने के लिए बड़ी बड़ी विचित्र लीलाएँ करते थे । यदि भगवान् किसी क्रिया को हलका कर देते तो लोग उसे झट नहीं समझ सकते । महाराज ! भगवान बड़े योगी थे । ज्ञान-पिपासा रखने वाले लोगों को बताने के लिए जिस जिस योग का अनुष्ठान करना आवश्यक होता, उसी योगबल का अनुष्ठान करके बताते थे ।"

"महाराज ! जिन जिन दवाइयों से रोगी चंगे हो सकते हैं, वैद्य उन्हें वही दवाइयां देते हैं-वमन करवाते हैं, जुलाब देते हैं, लेप चढ़ाते हैं, सेंकते माड़ते हैं । महाराज ! इसी तरह, ज्ञान-पिपासा रखने वाले लोगों को बताने के लिए भगवान् उसी योग-बल का अनुष्ठान करके बताते हैं ।"

"महाराज ! प्रसव के समय कुछ कष्ट आ जाने पर स्त्री वैद्य को अपना नहीं दिखाने लायक गुह्य अंग भी दिखा देती है । महाराज ! इसी तरह, जानने के लिए उत्सुक हुए मनुष्य को जानने के लिए बुद्ध ऋद्धि-बल से अपने गुह्येन्द्रिय की

छाया भी दिखा देते थे। महाराज ! वैसे व्यक्ति के लिए ऐसी कोई चीज नहीं है, जो दिखाई न जा सके। महाराज ! यदि कोई बुद्ध के हृदय को देखकर ही जान सके तो वे उसे योग-बल से हृदय खोल कर भी दिखा सकते थे। महाराज ! बुद्ध बड़े योगी और उपदेश करने में कुशल थे।"

नन्द की कथा

"महाराज ! नन्द स्थविर के चित्त की बात को जान भगवान् ने उन्हें देवलोक में ले जाकर देव-कन्याओं को दिखाया।[1] वे जानते थे कि स्थविर नन्द को उसी से ज्ञान प्राप्त हो जायगा। और यथार्थ में उन्हें उससे ज्ञान प्राप्त हो भी गया। अनेक प्रकार से सांसारिक सौन्दर्य में लिपट जाने की निन्दा करते हुए, उसे नीचा जतलाते हुए, तथा उसके दोषों को बतलाते हुए स्थविर नन्द को ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन अप्सराओं को दिखाया, जिनके तलवे मुर्गी के पैर की तरह लाल और सुकोमल थे।"

चुल्ल पन्थक

"महाराज ! फिर भी, चुल्ल पन्थक स्थविर को ज्ञान प्राप्त कराने के लिये भगवान् ने उन्हें एक बिलकुल फह-फह उजला रुमाल दे दिया था। उसीसे उन्हें ज्ञान हो गया था। महाराज, इस तरह भगवान् उपदेश करने में बड़े कुशल थे।"

मोघराज ब्राह्मण की कथा

"महाराज ! फिर, मोघराज नामक ब्राह्मण से तीन बार प्रश्न किए जाने पर भी भगवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया कि जिसमें उसका घमण्ड टूट जाय और वह नम्र बन जाय। उससे उसका घमण्ड टूट गया, और उसने छः अभिज्ञाओं पर अधिकार पा लिए। महाराज ! इस तरह, भगवान् उपदेश करने में कुशल थे।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आपने प्रश्न को अच्छा समझाया। अनेक तर्कों को दिखाया। उलझन को सुलझा दिया। अंधेरे को उजाला कर दिया। गाँठ को काट दिया। विपक्ष के कुतर्कों का खण्डन कर दिया। आपने बुद्ध-भिक्षुओं को नई आँखे दे दी। दूसरे धर्म वालों के मुंह को फीका कर दिया। आप यथार्थ में सभी गणाचार्यों के बीच श्रेष्ठ हैं।"

२३. बुद्ध के कड़े शब्द

"भन्ते नागसेन ! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा है-"आवुसो ! बुद्ध अपने भाषण में पूर्णतः सभ्य रहते हैं। बुद्ध के भाषण में ऐसा कोई भी दोष नहीं है

१. देखो "उदान"

जिसको दूसरों से छिपाने के लिए उन्हें सचेत रहना पड़ता हो"। फिर भी कलन्दपुत्र स्थविर सुदिन्न के अपराध करने पर पाराजिक की घोषणा करते हुए भगवान् ने उसे 'मोघपुरुष' (फजूल का आदमी) कह कर फटकारा था।[1] उससे स्थविर बहुत ही डर गए। उन्हें भारी पछतावा होने लगा, जिससे वे आर्य-मार्ग का भी लाभ नहीं कर सके।"

"भन्ते! यदि बुद्ध अपने भाषण में पूर्णतः सभ्य रहते हैं तो यह बात झूठी ठहरती हैं कि उन्होंने स्थविर सुदिन्न को फटकारा था और, यदि उन्होंने स्थविर सुदिन्न को ठीक फटकारा था तो वे अपने भाषण में सभ्य नहीं रहे। यह भी दुविधा है।"

"महाराज! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने जो कहा था कि बुद्ध अपने भाषण में पूर्णतः सभ्य रहते हैं सो सही है; और सुदिन्न के फटकारे जाने की बात भी ठीक है। उन्होंने जो सुदिन्न को फटकारा था सो कुछ बिगड़ कर नहीं, किंतु मन में बिना किसी क्रोध को लाए। सुदिन्न जैसे थे, वैसा ही उनको कहा।"

"जैसे थे वैसा ही इसके क्या माने?"

"महाराज! जिसे इसी जन्म में चारों आर्यसत्यों का बोध नहीं हो सका उसका मनुष्य होना फजूल (मोघ) ही है। इस तरह जो कुछ कहते हुए कुछ ही कर डालता है वह फजूल का आदमी (मोघ पुरुष) कहा जाता है। महाराज! सो भगवान् ने स्थविर सुदिन्न को वे जैसे थे वैसा ही कहा था। उन्होंने कुछ गलत बात तो नहीं कही।"

"भन्ते नागसेन! किंतु, यदि कोई सच्ची बात भी कहकर किसी दूसरे को ऊँचा नीचा कह देता हैं तो भी हम लोग उसे एक कहापण (उस समय का पैसा) जुरमाना कर देते हैं। क्योंकि वह भी तो अपराध हुआ। उसी को लेकर उनमें एक झगड़ा मजे में खड़ा हो सकता है।"

अपराधी पुरुष को दण्ड देना चाहिए

"महाराज! क्या आपने कभी सुना है कि लोग किसी अपराधी पुरुष को प्रणाम करते हों, या उठकर स्वागत करते हों, या सत्कार करते हों, या भेंट चढ़ाते हों?"

"नहीं भन्ते! यदि कोई कहीं भी किसी तरह का अपराध कर बैठता है, तो लोग उसकी खिल्ली उड़ाते हैं, उसे धमकाते हैं, यहाँ तक कि उसका सिर भी काट लेतें हैं उसे कष्ट देते हैं, बाँध देते हैं, जान से मार डालते हैं, उसके माल असबाब को जप्त कर लेते हैं।"

---

१. देखो 'विनयपिटक'-पाराजिक १।५।१ बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१६।

"महाराज ! तो भगवान् ने ठीक किया या बेठीक ?"

"भन्ते ! ठीक ही किया, जैसा करना चाहिए था। भन्ते ! इसे सुनकर देवता और मनुष्य सभी पाप करने से लजायेंगे, रुके रहेंगे तथा उसे देखकर ही भय मानेंगे। पाप के पास जाना और उसको करना तो दूर रहा !"

कड़वी दवा

"महाराज ! खाट पर गिर जाने और बीमार पड़ने पर वैद्य क्या मीठी मीठी दवाइयाँ देते है ?"

"नहीं भन्ते ! चंगा करने के लिए वह तेज और कड़वी दवाइयों को देता है।"

"महाराज ! उसी तरह, सभी पापों को दूर कर देने के लिए बुद्ध उपदेश देते हैं। उनके शब्द कभी कभी कड़े कड़े होते, हैं, किंतु वे भी मनुष्यों को शान्त और नम्र बना देने के लिए ही होते है।"

"महाराज ! पानी गर्म होकर भी नरम हो सकने वाली चीजों को नरम बना देता है। महाराज ! उसी तरह, बुद्ध के कड़े शब्द भी बड़े काम और करुणा से भरे होते हैं।"

"महाराज ! जैसे पिता के शब्द पुत्रों के लिए बहुत काम के और करुणा से भरे होते हैं, वैसे ही बुद्ध के कड़े शब्द भी बड़े काम के और करुणा से भरे होते हैं।"

"महाराज! बुद्ध के कड़े शब्द भी लोगों के पाप को दूर करने वाले होते हैं।"

गो-मूत्र की तरह

"महाराज ! जैसे बुरे स्वाद वाला गो-मूत्र बड़ी कठिनाई से पिया जाकर भी शरीर के रोगों को दूर करता है, वैसे ही बुद्ध के कड़े शब्द भी बड़े काम के और करुणा से भरे होते हैं।"

"महाराज ! जैसे रुई का एक बड़ा टुकड़ा भी शरीर पर गिरने से कोई घाव नहीं लगता, वैसे ही बुद्ध के शब्द कड़े होने पर भी उन से किसी को चोट नहीं पहुंचती।"

"भन्ते नागसेन ! आपने अनेक तर्क देते हुए प्रश्न को अच्छा समझाया। बहुत ठीक है। आप जैसा कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

२४. बोलता वृक्ष

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने यह कहा है–

"हे ब्राह्मण ! नहीं सुन सकने वाले और निर्जीव इस पलास को जानते हुए भी, नहीं जानने जैसे चलता पुर्जा और होशियार होते हुए भी तुम क्यों कुछ पूछ रहे हो ?"[1]

साथ ही साथ ऐसा भी कहा–"फन्द के वृक्ष ने उत्तर दिया–भारद्वाज ! मैं भी बोल सकता हूँ। सुनो ![2]

"भन्ते ! यदि वृक्ष को सचमुच जीव नहीं है तो फन्दन के उत्तर देने की बात झूठी ठहरती है। और, यदि फन्दन के उतर देने की बात ठीक है तो वृक्ष को जीव नहीं है, ऐसा नहीं हो सकता। यह भी दुविधा है।"

"महाराज ! दोनों बातें ठीक हैं। वृक्ष को ठीक में जीव नहीं होता। फन्दन ने भी ठीक में भारद्वाज को उत्तर दिया था। यह बात तो केवल लोगों को जतलाने के लिए कही गई थी। महाराज ! निर्जीव वृक्ष क्या बोल सकेगा ! उस पर रहने वाले देवता के बोलने से गाछ का बोलना कह दिया गया है।"

'धान की गाडी'

"महाराज ! गाड़ी पर धान लाद देने से लोग उसे 'धान की गाड़ी' ऐसा कहने लगते हैं। गाड़ी तो लकड़ी को बनी होती है, धान की नहीं; किंतु उस पर धान लदे रहने से लोग उसे 'धान की गाड़ी' ऐसा कहने लगते हैं। महाराज ! उसी तरह, असल में वृक्ष नहीं बोलता। उसे तो जीव ही नहीं है। उस पर रहने वाले देवता के बोलने से लोग वृक्ष बोलता है' ऐसा कह देते हैं।"

मट्ठा महता हूँ

"महाराज ! असल में तो लोग दही महते हैं, किंतु कहते हैं 'मट्ठा महता हूँ'। मट्ठा को तो वे महते नहीं हैं, महते तो हैं दही को। महाराज ! उसी तरह, असल में वृक्ष नहीं बोलता है। उसे तो जीव ही नहीं है। उस पर रहने वाले देवता के बोलने से लोग 'वृक्ष बोलता है' ऐसा कह देते हैं।"

फलानी चीज बना रहा हूँ

"महाराज ! लोग कहा करते हैं– 'मैं फलानी चीज बना रहा हूँ।" वह चीज तो अभी है ही नहीं, फिर उसे वे कैसे बनाएंगे ? किंतु लोगों के कहने का यही ढंग

१. 'जातक', ३-२४–भगवान् ने नहीं बोधिसत्व ने कहा था।

२. जातक, ४-२१०।

है। महाराज ! उसी तरह, असल में वृक्ष नहीं बोलता है। उसे तो जीव ही नहीं है। उस पर रहने वाले देवता के बोलने से लोग 'वृक्ष बोलता ह' ऐसा कह देते हैं।"[1]

"महाराज ! लोग जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, उसी भाषा में बुद्ध भी उन्हें धर्म का उपदेश देते हैं।"

"ठीक है भन्ते नागसेन !"

२५. बुद्ध का अन्तिम भोजन

"भन्ते नागसेन ! धर्मसङ्गीति[1] करने वाले स्थविरों ने कहा है, ।"

"सोनार चुन्द के दिए गए भोजन को खाकर–ऐसा मैंने सूना है–बुद्ध को वह कड़ारोग हो गया जिससे अन्त में मर ही गए ॥"

फिर भी, भगवान् ने यह कहा है–"आनन्द ! मुझको दी गई दोनों ही भिक्षाएँ बराबर पुण्य देने वाली हैं। दूसरे लोगों से दी गई भिक्षाओं की बनिस्बत वे ही दोनों सब से अधिक फल और पुण्य देने वाली हैं। कौनसी दो भिक्षाएँ ? (१) जिस भिक्षा को खाकर मैंने अलौकिक बुद्धत्व को पाया था, और (२) जिस भिक्षा को खाकर मैंने संसार से सदा से लिये छुट्टी मिल जाने वाले परिनिर्वाण को पाया। ये दोनों भिक्षायें बराबर पुण्य देने वाली हैं ॥।"[2]

"भन्ते ! यदि चुन्द की भिक्षा को खाकर भगवान् को ऐसा कड़ा रोग उठा जिससे मर ही गए, तो वह भिक्षा दूसरे लोगों से दी गई भिक्षाओं से बढ़ कर पुण्य देने वाली नहीं समझनी चाहिए। और यदि वह भिक्षा यथार्थ में दूसरे लोगों से दी गई भिक्षाओं से बढ़कर पुण्य देने वाली थी, तो यह नहीं हो सकता कि उसे खाकर भगवान् को ऐसा कड़ा रोग उठा जिससे उनकी मृत्यु ही हो गई। विष के समान काम करने वाली, रोग उत्पन्न कर देने वाली, तथा प्राणों को भी हर लेने वाली वह भिक्षा, जिसे खाकर भगवान् मृत्यु को प्राप्त हो गए क्योंकर दूसरे लोगों से दी गई भिक्षाओं से बढ़कर पुण्य देने वाली हो सकती है ? विपक्षी मतों के कुतर्क को रोकने के लिए आप इसका कारण बता दें। लोगों को यहां पर ऐसा भ्रम हो जाया करता है कि भगवान् ने लालच में आकर खूब ठूँस कर खा लिया होगा जिससे उन्हें लाल आँव पड़ने लगा। यह भी एक दुविधा है।"

---

१. भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके शिष्यों ने राजगृह में जमा होकर बुद्ध-उपदेशों का संग्रह किया था। इसे धर्मसंगीति कहते है। यह प्रथम धर्मसंगीति थी। विशेष देखो 'बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४८।

२. महापरिनिर्वाण-सूत्र (दीघनिकाय); बुद्धचर्या, पृष्ठ ५३६।

"महाराज ! धर्मसङ्गीति करने वाले महास्थविरों ने जो कहा है वह ठीक है कि चुन्द की भिक्षा को खाकर भगवान् को ऐसा कड़ा रोग उठा, जिससे वे मर गए। भगवान् ने जो कहा है वह भी ठीक है कि चुन्द की दी गई भिक्षा दूसरी भिक्षाओं से बढ़कर पुण्य देने वाली है।"

"महाराज ! देवता लोग भगवान् की इस अन्तिम भिक्षा पर आनन्द से फूल उठे थे। उन्होंने उस सूकर–मद्दव[1] में दिव्य ओज भर दिया था। इससे वह हलका, जल्दी पच जाने वाला, और खूब स्वादिष्ट हो गया था। इसके खाने के कारण उन्हें रोग नहीं उठा था; किंतु उनके बहुत कमजोर हो जाने और आयु पुरा हो जाने के कारण ही वह रोग हो गया था और हालत बुरी होती गई।"

"महाराज ! जैसे स्वयं ही जलती हुई आग में ईंधन दे देने से वह और भी तेज जल उठती है, वैसे ही भगवान् के बहुत कमजोर हो जाने और आयु पुरा हो जाने के कारण वह रोग बढ़ता ही गया।"[1]

"महाराज ! जैसे खूब वर्षा पड़ जाने पर कोई नदी और भी उमड़कर बहने लगती है; वैसे ही भगवान् के बहुत कमजोर हो जाने और आयु पुरा हो जाने के कारण वह रोग बढ़ता ही गया।"

"महाराज ! जैसे पेट में कमजोरी आने पर कुछ बे–पका अन्न खा लेने से और भी अधिक आँव हो जाता है, वैसे ही भगवान् के बहुत कमजोर हो जाने और आयु पुरा हो जाने के कारण वह रोग बढ़ता ही गया।"

"महाराज ! चुन्द की उस भिक्षा में कोई दोष नहीं था। उस पर भी कोई दोष नहीं लगाया जा सकता।"

"भन्ते ! वे दोनों भिक्षाएँ किस कारण से दूसरे लोगों से दी गई भिक्षाओं से बढ़कर पुण्य देने वाली समझी जाती हैं ?"

"महाराज ! क्योंकि उन दोनों भिक्षाओं को खाने के बाद ही उन्होंने धर्म की सब से बड़ी चीजों को पाया था।"

"भन्ते ! कौनसी धर्म की सबसे बड़ी चीज ?"

"महाराज ! नव आनुपूर्विक–विहार की समापत्ति का उलटे (–प्रतिलोम) और सीधे (अनुलोम) साक्षात्कार कर लेना।"[2]

---

१. सूकर-मद्दव-कितने लोगों का कहना है कि यह सूअर का माँस नहीं, किंतु एक प्रकार की खुखडी थी, जो विषैली होती है।

२. (१) प्रथम ध्यान, (२) द्वितीय ध्यान, (३) तृतीय ध्यान, (४) चतुर्थ ध्यान, (५-८) अरूप ध्यान, (९) सज्ञावेदयितनिरोध समापत्ति। विशेष देखो 'मज्झिम-निकाय' में 'अनुपद-सुत्तन्त', पृष्ठ ४६६।

"भन्ते ! क्या भगवान् ने बुद्धत्व–प्राप्ति और परिनिर्वाण दोनों समयों में उसका साक्षात्कार किया था ?"

"हाँ महाराज !"

"भन्ते ! बड़ा आश्चर्य है !! बड़ा अद्भुत है !!! कि बुद्ध को दी गई ये दोनों भिक्षायें सबसे अधिक गौरव की समझी जाती हैं। नव आनुपूर्विक–विहार की समापत्ति भी धन्य है जिसके कारण ये दो भिक्षायें इतने महत्व की हो गई। ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

२६. बुद्ध–पूजा भिक्षुओं के लिए नहीं है

भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है–"आनन्द ! तुम लोग बुद्ध की शरीर–पूजा में मत लगो।"[1] साथ ही साथ ऐसा भी कहा है –

"पूजो उस पूजनीय की धातु को।"

"ऐसा करते हुए यहाँ से स्वर्ग को जाओगे।"

"भन्ते ! यदि भगवान् ने आनन्द को बुद्ध की शरीर-पूजा करने से मना किया है तो "पूजो उस पूजनीय की धातु को इत्यादि" ऐसा कभी नहीं कहा होगा। और, यदि उन्होंने "पूजो उस पूजनीय की धातु को इत्यादि" ऐसा यथार्थ में कहा है, तो आनन्द को बुद्ध की शरीर–पूजा करने वाली बात झूठी ठहरती है। यह भी दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने दोनों बातें कहीं है। किंतु यह सभी के लिए नहीं, बल्कि केवल भिक्षुओं के लिए कहा था "आनन्द ! तुम लोग बुद्ध की शरीर–पूजा में मत लगो।"। महाराज ! पूजा करना भिक्षुओं का काम नहीं है। सभी संस्कारों को विनश्वरता को मन में लाना, ध्यानभावना का अभ्यास करना, सभी बातों से सत्य को निकाल लेना, क्लेशों के नाश करनें का प्रयत्न करना, और पवित्र कामों में लगे रहना–भिक्षुओं के ये ही कर्तव्य हैं। बाकी देवताओं और मनुष्यों के लिए अलबत्ता पूजा करना ठीक है।"

"महाराज ! हाथी, घोड़े, रथ, भाले और तीर चलाने की विद्याओं का सीखना, लिखना पढ़ना, हिसाब किताब देखना, क्षात्र धर्म का पालन करना, युद्ध करना, सेना संचालन करना–ये क्षत्रियों के कर्तव्य हैं और, वैश्य, शूद्र तथा दूसरे लोगों के काम खेती करना, तिजारत करना, पशु पालना, इत्यादि हैं। महाराज ! उसी तरह, पूजा करना भिक्षुओं का काम नहीं है। सभी संस्कारों की विनश्वरता को मन में लाना ही भिक्षुओं के कर्तव्य है। बाकी देवताओं और मनुष्यों के लिए अलबत्ता पूजा करना ठीक है।"

---

१. महापरिनिर्वाण-सूत्र दीघनिकाय; बुद्धचर्या, पृष्ठ ५३७।

"महाराज ब्राह्मण के लड़के को ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शरीर के लक्षण, इतिहास, पुराण, निघण्टु, कंटुभ, अक्षरप्रभेद, पद, व्याकरण, ज्योतिःशास्त्र, शकुन देखना, स्वप्नविद्या, निमित्त-विद्या, छः वेदाङ्ग, सूर्य और चन्द्र-ग्रहण की विद्या, राहु के आकाश में आ जाने के फल की विद्या, आकाश का गड़गड़ाना, नक्षत्रों के संयोग होने की विद्या, उत्कापात, भूकम्प, दिशा-दाह, आकाश और पृथ्वी पर के लक्षणों को देख कर फल बताना, गणित, वितरण, कुत्ता, मृग, चूहा, मिश्रकोत्पाद तथा पक्षियों की बोली को समझ लेने की विद्या को सीखना चाहिए। किंतु वैश्य, शूद्र तथा दूसरे लोगों के काम खेती करना, तिजारत करना और पशु पालना है। महाराज ! उसी तरह, पूजा करना भिक्षुओं काम नहीं है। सभी संस्कारों की विनश्वरता को मन में लाना ही भिक्षुओं के कर्तव्य हैं। बाकी देवताओं और मनुष्यों के लिए अलबत्ता पूजा करना ठीक है।"

"महाराज ! जिसमें भिक्षु लोग फजूल काम में न लगकर अपने कर्तव्यों में ही लगे रहें, इसीलिये भगवान ने कहा था-"आनन्द ! तुम लोग बुद्ध की शरीर-पूजा में मत लगो।"

"महाराज ! यदि भगवान ऐसा नहीं कह देते तो भिक्षु लोग अपने चीवर और पिण्डपात्र को रख कर बुद्ध की पूजा करने ही में लग जाते।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! जैसा कहते हैं, मैं स्वीकार करना हूँ।"

२७. बुद्ध के पैर पर पत्थर की पपड़ी का गिर पड़ना

"भन्ते नागसेन ! आप लोग कहा करते हैं कि 'भगवान् के चलने पर यह अचेतन पृथ्वी भी जहाँ नीची है वहाँ ऊंची और जहाँ ऊंची है वहाँ नीची हो जाती थी (अर्थात् बराबर हो जाती थी)।' साथ ही साथ ऐसा भी मानते हैं कि भगवान् के पैर एक बार पत्थर के टुकड़े से कट गए थे। जो पत्थर का टुकड़ा भगवान् के पैर पर आ गिरा था, वह उनके पैर से थोड़ा हट कर क्यों नहीं गिरा ?"

"भन्ते ! यदि भगवान् के चलने पर यह अचेतन पृथ्वी भी जहाँ नीची है वहाँ ऊँची और जहाँ ऊँची है वहाँ नीची हो जाती थी; तो यह कभी सम्भव नहीं हो सकता कि उनके पैर पर पत्थर गिर पड़े और घाव हो जाय। और, यदि यथार्थ में उनके पैर पत्थर गिर कर घाव हो गया था तो यह बात नहीं मानी जा सकती कि उनके चलने पर यह अचेतन पृथ्वी जहाँ नीची है वहाँ ऊँची और जहाँ ऊँची हैं वहाँ नीची हो जाया करती थी। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! दोनों बातें ठीक हैं, किंतु वह पत्थर का टुकड़ा अपने से नहीं देवदत्त के फेंकने से उनके पैर पर आ गिरा था। महाराज ! सैकड़ों और हजारों

जन्म से भगवान् के प्रति देवदत्त के मन में वैर भाव चला आ रहा था। उस वैर से उसने भगवान् के ऊपर एक चट्टान लुढ़का दी। किंतु पृथ्वी से निकली हुई दूसरी दो चट्टानों में आकर वह बीच ही में रुक गई। उन चट्टानों के टक्कर खाने से पत्थर की एक पपड़ी उड़ कर आई और भगवान् के पैर पर गिरी।"

"भन्ते! जैसे दो दूसरी चट्टानों ने आकर बीच में उस गिरती हुई चट्टान को रोक दिया वैसे ही पत्थर की उस पपड़ी को बीच में ही रुक जाना चाहिए था।"

चुल्लू का पानी

"महाराज! रोक देने से भी कुछ न कुछ खिसककर पानी नीचे चला ही आता है। महाराज! चुल्लू में पानी लेने से कुछ न कुछ पानी अंगुलियों के बीच से खिसक कर नीचे चला ही आता है। दूध, मठ्ठा मधु, घी, तेल, मछली या मांस का रस चल्लू में लेने से कुछ न कुछ अंगुलियों के बीच से खिसककर नीचे चला ही जाता है। उसी तरह, गिरती हुई चट्टान की दो दूसरी चट्टानों के बीच में आकर रोक देने से भी उनके टक्कर खाने से पत्थर की एक पपड़ी उड़कर आई और भगवान् के पैर पर गिरी।"

मुठ्ठी की धूल

"महाराज! मुठ्ठी में पतली चिकनी धूल भर लेने से कुछ न कुछ अंगुलियों के बीच से झर कर नीचे चली ही आती है। उसी तरह।"

मुंह का कौर

"महाराज! मुंह में कौर लेने से कुछ न कुछ टघर कर नीचे चला ही आता है। इसी तरह।"

"भन्ते नागसेन! अच्छा, मैं मान लेता हूँ कि चट्टान उस तरह आकर बीच में रुक गई; किंतु उस पत्थर की पपड़ी को महापृथ्वी के समान अवश्य भगवान् का गौरव मानना चाहिए था।"

महाराज! बारह प्रकार के लोग कोई गौरव नहीं मानते हैं।"

"कौन से बारह?"

(१) रागी पुरुष अपने राग में आकर गौरव नहीं करता, (२) द्वेषी पुरुष अपने द्वेष में आकर, (३) मोही पुरुष अपने मोह में आकर, (४) घमण्डी पुरुष अपने घमण्ड में आकर, (५) बुरा पुरुष अपनी बुराई के कारण, (६) जिद्दी पुरुष अपनी जिद्द में आकर, (७) नीच पुरुष अपने नीच स्वभाव के कारण, (८) गप्पी पुरुष अपनी ड़ींग में आकर, (९) पापी पुरुष अपनी क्रूरता के

कारण, (१०) सताया गया पुरुष सताए जाने के कारण, (११) लोभी पुरुष लोभ में आकर और (१२) संसारी पुरुष अपने अर्थ-साधन के फेर में गौरव नहीं करता। महाराज! ये बारह प्रकार के लोग कोई गौरव नहीं मानते। किंतु वह पत्थर की पपड़ी तो चट्टानों के टक्कर खाने से छिटकर बिना किसी खास निमित्त के यों ही उड़ती हुई भगवान् के पैर पर आ गिरी।"

"महाराज! जैसे हवा के चलने से पतली और चिकनी धूल बिना किसी मतलब के चारों ओर छितरा जाती है, वैसे ही वह पत्थर की पपड़ी चट्टानों के टक्कर खाने से छिटक कर बिना किसी खास निमित्त के यों ही उड़ती हुई भगवान् के पैर पर आ गिरी। महाराज! यदि वह पत्थर की पपड़ी चट्टान से नहीं फूटती तो वह भी ऊपर ही रुकी रहती। महाराज! यह पपड़ी न तो पृथ्वी पर और न आकाश में ठहरी थी, किंतु चट्टानों के टक्कर खाने से छिटक कर बिना किसी खास निमित्त के योंही उड़ती हुई भगवान् के पैर पर आ गिरी।"

"महाराज! बवंडर हवा के उठने पर सूखे पत्ते इधर उधर बिना किसी मतलब के बिखर जाते हैं वैसे ही वह पत्थर की पपड़ी चट्टानों के टक्कर खाने से छिटक कर बिना किसी खास निमित्त के यों ही उड़ती हुई भगवान् के पैर पर आ गिरी।"

"महाराज! सच पूछें तो नीच और अकृतज्ञ देवदत्त की बुरी करनी से ही वह पत्थर की पपड़ी भगवान् के पैर आ गिरी, जिससे उस (देवदत्त) को बड़ा दुःख उठाना पड़ा।"

"ठीक है भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

२८. श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ श्रमण

"भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है—"आस्रवों के क्षय करने से श्रमण होता है"। साथ ही साथ यह भी कहा है,

"चार धर्मों से युक्त जो हैं,
उस मनुष्य को लोग श्रमण कहते हैं"

वे चार धर्म (१) सहनशीलता, (२) अल्पाहारता, (३) वैराग्य और (४) कम आवश्यकताओं वाला होना: ये चार धर्म तो उनमें भी पाए जाते हैं जिनके आस्रव क्षय न होकर बने ही हैं।

"भन्ते! यदि आस्रवों के क्षय करने से ही श्रमण होता है तो यह बात झूठी ठहरती है कि इन चार धर्मों से युक्त होने वाले मनुष्य को श्रमण कहते हैं। और, यदि यह सच है कि इन चार धर्मों से युक्त होने वाले को श्रमण कहते हैं तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'आस्रवों के क्षय करने से श्रमण होता है।" यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने दोनों बातें ठीक ही कही हैं, और दोनों ही सच हैं। जो दूसरी बात है वह ऐसे वैसे लोगों के लिए कही गई है; किंतु पहली बात—आस्रवों के क्षय करने से ही श्रमण होता है—एक सामान्य रूप में कही गई है। जितने भिक्षु अपने क्लेश को जीतने के प्रयत्न में लगे हैं, सभी को साधारणतः श्रमण कहते हैं, किंतु उनमें जिन्होंने अपने क्लेश को बिलकुल जीत लिया है वे सभी में श्रेष्ठ हैं।"

"महाराज ! जैसे थल और जल में होने वाले सभी फूलों में वार्षिक फूल सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है, यद्यपि सभी फूलों को फूल के नाम से पुकारते हैं, वैसे ही जितने भिक्षु अपने क्लेश को जीतने के प्रयत्न में लगे हैं सभी को साधारण रूप से श्रमण कहते हैं, किंतु उनमें जिन्होंने अपने क्लेश को बिलकुल जीत लिया है वे सभी में श्रेष्ठ हैं।"

"महाराज ! ऐसे तो जितने अन्न हैं सभी काम के, खाने के लायक और शरीर को लाभ पहुँचाने वाले होते हैं, किंतु उनमें चावल ही सबसे प्रधान समझा जाता है, वैसे ही, जितने भिक्षु अपने क्लेशों को जीतने में लगे हैं सभी को साधारण रूप से श्रमण कहते हैं, किंतु उनमें जिन्होंने अपने क्लेश को बिलकुल जीत लिया है वे सभी में श्रेष्ठ हैं।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं, मैं उसे स्वीकार करता हूँ।"

२९. गुण का प्रकाश करना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है—"भिक्षुओं ! यदि दूसरे लोग मेरी, धर्म की, या संघ की बड़ाई करें तो तुम्हें आनन्द से भर कर फूल उठना नहीं चाहिए।"[1] तो भी शैल नामक ब्राह्मण के द्वारा अपनी सच्ची प्रशंसा की जाने पर स्वयं आनन्द से भरकर फूल उठे थे तथा अपने और और गुणों को दिखाते हुए बोले—

"मैं राजा हूँ, हे शैल ! अलौकिक धर्म-राजा,

धर्म से चक्के को घुमाता हूँ, जिसे कोई फेर नहीं सकता[2]।"

"भन्ते यदि भगवान् ने सचमुच कहा है—"भिक्षुओं ! यदि दूसरे लोग।' तो यह बात झूठी ठहरती है, कि शैल नामक ब्राह्मण के द्वारा अपनी सच्ची प्रशंसा की जानेपर भगवान् स्वयं आनन्द से भरकर फूल उठे थे। और, यदि यह ठीक है शैल नामक ब्राह्मण के द्वारा अपनी सच्ची प्रशंसा की जानेपर भगवान् स्वयं आनन्द से भरकर फूल उठे थे, तो यह बात झूठी ठहरती है, कि उन्होंने कहा हो—"भिक्षुओं !

---

१. देखो 'दीघनिकाय'—ब्रह्मजाल-सूत्र।

२. देखो 'सुत्तनिपात' सेल-सुत्तन्त ३।७।७।

यदि दूसरे लोग मेरी, धर्म की बड़ाई करें तो तुम्हें आनन्द से भरकर फूल उठना नहीं चाहिए।" यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने यथार्थ में कहा है, "भिक्षुओं ! यदि दूसरे लोग मेरी, धर्म की, या संघ की बड़ाई करें तो तुम्हें आनन्द से भरकर फूल उठना नहीं चाहिए।" और यह भी सच्ची बात है कि शैल नामक ब्राह्मण के द्वारा अपनी सच्ची प्रशंसा की जानेपर वे स्वयं आनन्द से भरकर फल उठे थे; तथा अपने और गुणों को दिखाते हुए बोले थे–

"मैं राजा हूँ, हे शैल ! अलौकिक धर्म-राजा,
धर्म से चक्के को घुमाता हूँ, जिसे कोई फेर नहीं सकता।"

"महाराज ! उन दोनों में पहली बात से भगवान् ने यह दिखाया है कि उनका बताया धर्म कितना स्वाभाविक सरल, जिसमें उलटा पलटा कुछ भी नहीं हो, ठीक, सच्चा और असल है। और, जो शैल नामक ब्राह्मण को कहा था– मैं राजा हूँ, हे शैल ! सो लाभ या यश पाने के लिए नहीं, न अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए, और न अपने चेलों की जमात बढ़ाने के लिए। उन्होंने उन तीन सौ विद्यार्थियों पर अनुकम्पा तथा करुणा करके उनकी भलाई ही के ख्याल से–कि उन्हें ऐसा कहने से धर्म का बोध हो जायगा–ऐसा कहा था।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

३०. अहिंसा का निग्रह

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने यह कहा है,
'किसी की हिंसा न करते हुए
प्यार से आपस में हिल मिलकर रहो[1]।"

'साथ ही साथ यह भी कहा है–'जो दण्ड दिए जाने के योग्य हैं उन्हें दण्ड दो; जो साथ दिए जाने के योग्य हैं उनका साथ दो।"

"भन्ते ! 'दण्ड देने' का अर्थ है, हाथ काट देना, पैर काट देना, मार डालना, जेल में डालना, मारना–पीटना, या देश-निकाला देना। भगवान् को यह बात नहीं कहनी चाहिए; और वे कह भी नहीं सकते।"

"भन्ते ! यदि भगवान् ने कहा है कि–
किसी को हिंसा न करते हुए
प्यार से आपस में हिलमिल कर रहो।"

१. जातक ५२।

तो वे यह नहीं कह सकते कि "जो दण्ड दिए जाने के योग्य हैं, उन्हें दण्ड दो"। और यदि उन्होंने यह ठीक कहा है कि–"जो दण्ड दिए जाने के योग्य हैं उन्हें दण्ड दो" तो यह कभी नहीं कहा होगा कि–

"किसी की हिंसा न करते हुए
प्यार से आपस में हिलमिल कर रहो।"

यह भी एक दुविधा है, जो आप के पास रक्खी जाती है। आप इसको साफ कर दें।

"महाराज! भगवान् ने ऐसा ठीक कहा है–'किसी की हिंसा न।" और यह भी कहा है कि–

"जो दण्ड दिये जाने के योग्य हैं उन्हें दण्ड दो,
जो साथ दिये जाने के योग्य हैं उनका साथ दो।
किसी की हिंसा न करते हुए,
प्यार से आपस में हिलमिकर रहो।"

"महाराज! सभी बुद्धों को यह उपदेश है, यह धर्म–देशना है। अहिंसा तो धर्म का प्रधान लक्षण है। बुद्ध के ये स्वाभाविक वचन हैं। महाराज! और जो उन्होंने कहा है–"जो दण्ड दिए जाने के योग्य।" उसका मतलब कुछ दूसरा ही है। महाराज! उसका मतलब यह है–उद्धत चित्त को दबाना चाहिए, शान्त हो गए चित्त को वैसा ही बनाए रखना चाहिए, बुरे विचारों को दबाना चाहिए, अच्छे विचारों को बनाए रखना चाहिए, बेठीक मन को दबाना चाहिए, ठीक मन को बनाए रखना चाहिए; झूठे सिद्धान्तों को दबाना चाहिए, सच्चे धर्म को बनाए रखना चाहिए; बुरों को दबाना चाहिए, भलों को बनाए रखना चाहिए, चोर को दबाना चाहिए, साधु को बनाए रखना चाहिए।"

"भन्ते नागसेन! हाँ, अब आप मेरी बात से पकड़े गए। मैं जो पूछना चाहता था वह अर्थ निकल आया। भन्ते! यह ठीक है कि चोर को दबाना चाहिए, किंतु कैसे?"

"महाराज! चोर को इस तरह दबाना चाहिए–यदि उसे डाँट डपट करना उचित हो तो डाँट डपट करना चाहिए, दण्ड देना उचित हो तो दण्ड देना चाहिए, देश से निकाल देना उचित हो तो देश से निकाल देना चाहिए, और यदि फाँसी दे देना उचित हो तो फाँसी दे देना चाहिए।"

"भन्ते! जो चोरों को फाँसी दे देने की बात है, वह क्या बुद्ध-धर्म के अनुकूल है?"

"नहीं महाराज !"

"तो बुद्ध-धर्म के अनुकूल चोरों को कैसे दबाना चाहिए ?"

"महाराज ! जो चोरों को फांसी दी जाती है वह बुद्ध-धर्म के आदेश करने से नहीं, बल्कि उनकी अपनी करनी से। महाराज ! क्या धर्म ऐसा आदेश करता है कि कोई बुद्धिमान किसी बेकसूर आदमी को बेवजह सड़क पर जाते हुए पकड़ कर जान से मार दे ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्यों नहीं ?"

"भन्ते ! क्योंकि उसने कोई कसूर ही नहीं किया है।"

"महाराज ! इसी तरह, बुद्ध-धर्म के आदेश करने से चोरों को फाँसी नहीं दी जाती, किंतु उनकी अपनी करनी से। तो क्या बुद्ध को इससे कोई दोष लग सकता है ?"

"नहीं भन्ते ! देखते हैं, बुद्धों के उपदेश सदा उपयुक्त ही होते हैं। ठीक कहा है भन्ते नागसेन ! मैं स्वीकार करता हूँ।"

३१. स्थविरों को निकाल देना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है-"मेरे मन में न कोई क्रोध है और न कोई डाह।"[1] फिर भी, उन्होंने स्थविर सारिपुत्र और मोग्गलान को उनकी सारी मण्डली के साथ अपनी जगह से निकाल दिया था। भन्ते ! क्या भगवान् ने क्रोध में आकर या संतोष से उन्हें निकाला था ? इसे बतावें।"

"भन्ते ! यदि उन्होंने क्रोध में आकर उनको निकाला था तो यह बात सिद्ध होती है कि बुद्ध भी क्रोध से बचे नहीं हैं। और यदि संतोष से उनको निकाला, तो इसका कुछ कारण ही नहीं था; योंही बिना समझे बूझे निकाल दिया। यह भी एक दुविधा है।"

पृथ्वी की उपमा

"महाराज ! भगवान् ने क्रोध में आकर उन्हें नहीं निकाला था। महाराज ! जब कोई जड़ में, ठूँठ में, पत्थर में, लकड़ी में या ऊँची नीची जमीन में ठेस खाकर गिर पड़ता है तो क्या महापृथ्वी ही क्रोध में आकर उसे गिरा देती है ?"

---

१. सुत्त-निपात-धनिय सुत्त १-२-२।

"नहीं भन्ते ! पृथ्वी को न तो क्रोध आता है और न प्रसन्नता होती है। पृथ्वी को न तो किसी से प्रेम है और न वैर। अपनी ही लापरवाही से वह ठेस खाकर गिर पड़ता है।"

"महाराज ! इसी तरह, बुद्ध को न तो क्रोध आता है और न प्रसन्नता होती है। बुद्ध प्रेम या वैर के प्रश्न से छूट गए हैं। उनके ससी क्लेश नष्ट हो चुके हैं। वे सम्यक् सम्बुद्ध हो गए हैं। भिक्षू लोग अपनी करनी से निकाल बाहर किए गये थे।"

समुद्र की उपमा

"महाराज ! महासमुद्र अपने में किसी लाश को नहीं रहने देता। यदि कोई लाश बीच समुद्र में पड़ जाती है तो वह उसे शीघ्र ही किनारे लाकर जमीन पर छोड़ देता है। महाराज ! तो क्या समुद्र क्रोध में आकर ऐसा करता है ?"

"नहीं भन्ते ! समुद्र को न क्रोध आता है और न प्रसन्नता होती है। समुद्र को न तो किसी से प्रेम है न किसी से वैर।"

"महाराज ! इसी तरह, बुद्ध को न तो क्रोध होता है और न प्रसन्नता होती है। बुद्ध प्रेम या वैर के प्रश्न से छूट गए हैं। उनके सभी क्लेश नष्ट हो चुके हैं। वे सम्यक् सम्बुद्ध हो गए हैं। भिक्षु लोग अपनी करनी से निकाल बाहर किए गये थे।"

"महाराज ! जैसे ठेस लगने से कोई गिर पड़ता है वैसे ही बुद्ध शासन में कुछ भूल चूक करने से वह निकाल दिया जाता है।"

"महाराज ! जैसे महासमुद्र अपने बीच में पड़ी हुई लाश को बाहर फेंक देता है; वैसे ही बुद्ध-शासन में कुछ भूल चूक करने से वह निकाल दिया जाता है।"

"महाराज ! जो भगवान् ने उन भिक्षूओं को निकाल दिया था सो उन्हीं की भलाई करने के ख्याल से, उन्हीं का हित करने के लिए, उन्ही के सुख के लिए, उन्हीं को पवित्र बनाने के लिए। ऐसा करने से मुक्त हो जायँगे—यही विचार कर भगवान् ने उन्हें निकाल दिया था।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

तीसरा वर्ग समाप्त

———

३२. मोग्गलान का मारा जाना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है–"भिक्षुओं ! मेरे ऋद्धिमान् भिक्षु श्रावकों में महामोग्गलान सबसे श्रेष्ट हैं।"[1] इस पर भी, वे (चोरों के बीच में पड़कर) डण्ड़ों से कूटे जाकर सिर फूट जाने, हड्डियों के चूर चूर हो जाने तथा माँस और नसोंके पिस जानेसे परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे।"[2]

"भन्ते ! यदि महामोग्गलान सचमुच बड़े ऋद्धिमान् भिक्षु थे तो यह हो नहीं सकता कि इस तरह डण्ड़ों से कूटे जाकर उनका परिनिर्वाण होता। और, यदि ठीक इस तरह डण्ड़ों से कूटे जाकर उनका परिनिर्वाण हुआ था तो यह हो नहीं सकता कि वे बहुत बड़े ऋद्धिमान् भिक्षु रहे। ऋद्धि-बल से तो कोई पुरुष देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार को शरण दे सकता है, तो भला उन्होंने ऋद्धि-बल से अपनी ही हत्या को भी क्यों नहीं रोक पाया ?"

"महाराज ! भगवान् ने ठीक कहा है–"भिक्षुओं ! मेरे ऋद्धिमान् भिक्षु श्रावकों में महामोग्गलान सब से श्रेष्ट हैं। और यह भी सत्य है कि वे डण्ड़ों से कूटे जाकर सिर फूट जाने, हड्डियों के चूर चूर हो जाने, तथा माँस और नसों के पिस जाने से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे। किंतु, यह उनके पूर्व कर्मों के फल से हुआ था।"

"भन्ते नागसेन ! ऋद्धिमान् पुरुष के ऋद्धि-बल और कर्मफल दोनों तो अचिन्तनीय हैं। तब, अचिन्तनीय से अचिन्तनीय को क्यों नहीं रोका जा सका ? भन्ते ! जैसे, एक कपित्थ फल को फेंककर वृक्ष से दूसरा भी गिराया जा सकता हैं; वैसे ही, अचिन्तनीय के बल से दूसरा अचिन्तनीय क्यों नहीं रोका जा सका ?"

१. बलशाली राजा

"महाराज ! अचिन्तनीय विषयों में भी एक दूसरे से अधिक बल वाला होता है। संसार के सभी राजा राजा तो कहलाते हैं किंतु उनमें एक दूसरों से अधिक बलशाली होता है; जो कि सभी को अपनी आज्ञा में ले आता है। उसी तरह सभी अचिन्तनीय विषयों के एक होने पर भी उनमें कर्म का फल सबसे अधिक प्रभाव रखता है; जो कि दूसरों को दबा कर अपने ही ऊँचा हो जाता है। कर्म–फल पुष्ट रहने से किसी दूसरे विषय की कुछ नहीं चलती।"

---

१. अंगुत्तर-निकाय १।१४।१ (बुद्धचर्या, पृष्ठ ४६९)।

२. देखो बुद्धचर्या, पृष्ठ ५१८।

२. अपराधी पुरुष

"महाराज ! एक आदमी कुछ अपराध कर बैठता हैं। तो, न उसके माता पिता, या भाई बहन, या बन्धुबान्धव उसे बचा सकते हैं। राजा ही केवल उसका कुछ न्याय कर सकता है। इसका क्या कारण है ?"

"उस आदमी का अपराधी बन जाना।"

"महाराज ! उसी तरह, सभी अचिन्तनीय विषयों के एक होने पर भी उनमें कर्म-फल सब से अधिक प्रभाव रखता है, जो दूसरों को दबाकर अपने ही ऊँचा हो जाता है। कर्म-फल पुष्ट रहने से किसी दूसरे विषय की कुछ नहीं चलती।"

जंगल की आग

"महाराज ! जंगल में आग लग जाने पर वह हजार घड़े पानी से भी नहीं बुझाई जा सकती। कुछ भी हो आग बढ़ती ही जाती है। इसका क्या कारण है ?"

"आग का अधिक तेज होना।"

"महाराज ! इसी तरह, सभी अचिन्तनीय विषयों के एक होने पर भी उनमें वह कर्म-फल सबसे अधिक प्रभाव रखता है, जो कि दूसरों को दबाकर अपने ही ऊँचा हो जाता है।"

"महाराज ! इसीलिये, अपने कर्म-फल के कारण डण्डों से कूटे जाने पर भी महामोग्गलान का ऋद्धि-बल यों ही पड़ा रहा।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! ऐसी ही बात है। मैं इसे मान लेता हूँ।"

३३. प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षु लोग आपस में छिपाकर क्यों करते हैं ?

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है-" (भिक्षुओं !) बुद्ध के धर्म और विनय खुलने ही पर चमकते हैं, छिपे रहने पर नहीं[1]।" फिर भी प्रातिमोक्ष का उपदेश छिपाकर ही किया जात है; सारे विनय-पिटक को छिपाकर ही रक्खा जाता है।[2] भन्ते नागसेन ! यदि बुद्ध-धर्म के युक्त और अनुकूल होकर देखा जाय तो विनय-प्रज्ञप्ति को खोल देना ही अच्छा होगा। सो क्यों ? क्योंकि उसमें केवल शिक्षा, संयम, नियम, शील, अच्छे अच्छे गुण तथा पवित्र आचार के सम्बन्ध में ही बातें कही गई हैं, जो बातें जँचने वाली हैं, धर्म सिखाने वाली हैं, और मुक्ति की ओर ले जाने वाली हैं।"

---

१. अंगुत्तरनिकाय ३।१२४।
२. विनय-पिटक, महावग्ग २।१६।८।

"भन्ते ! यदि भगवान् ने ठीक में कहा है–"भिक्षुओं ! बुद्ध के धर्म और विनय खुलने ही पर चमकते हैं, छिपाए जाने पर नहीं" तो प्रातिमोक्ष के उपदेश तथा विनय–पिटक को छिपाना झूठ है। और, यदि प्रातिमोक्ष के उपदेश तथा विनय–पिटक को छिपाना ठीक है तो भगवान् की कही हुई यह बात झूठी ठहरती है–"भिक्षुओं ! बुद्ध के धर्म और विनय खुलने ही पर चमकते हैं, छिपाये जाने पर नहीं"। यह भी एक दुविधा है।

महाराज ! भगवान् ने यह ठीक कहा है–"भिक्षुओं ! बुद्ध के धर्म और विनय खुलने ही पर चमकते हैं छिपाए जाने पर नहीं।" और, यह भी ठीक है कि प्रातिमोक्ष के उपदेश छिपा कर किए जाने चाहिएँ तथा विनय-पिटक को भी छिपाकर रखना चाहिए। किंतु, वह सभी से नहीं छिपाए जाते हैं, कुछ खास लोगों से ही।"

विनय-पिटक छिपाकर रक्खे जाने के कारण

"महाराज ! भगवान् ने तीन कारणों से उन लोगों से छिपाकर प्रातिमोक्ष उपदेश देने को अनुमति दी है:–क्योंकि (१) पूर्व के बुद्धों से ऐसी परिपाटी चली आ रही है, (२) धर्म के गौरव के विचार से, (३) भिक्षु पद के गौरव के विचार से।"

"पूर्व के बुद्धों से कैसी परिपाटी चली आ रही है जिसके कारण प्रातिमोक्ष के उपदेश कुछ लोगों के भीतर ही छिपाकर करने चाहिए ?"

१–"महाराज ! पूर्व के बुद्धों से ऐसी परिपाटी चली आ रही है कि प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस ही में छिपाकर करने चाहिए, दूसरों के सामने नहीं।"

"महाराज ! क्षत्रियों की माया क्षत्रियों में ही चलती है। संसार भर के क्षत्रियों में वह आम होती है, किंतु उसे कोई दूसरा जानने नहीं पाता। इसी तरह, पूर्व के बुद्धों से ऐसी परिपाटी चली आ रही है कि प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस ही में छिपाकर करने चाहिये, दूसरों के सामने नहीं।"

उस समय के सम्प्रदाय

"महाराज ! संसार में बहुत से सम्प्रदाय हैं; जैसे–मल्ल, पर्बत, धर्मगिरि, ब्रह्मगिरि, नटक, नृत्यक, लङ्छक, पिशाच, मणिभद्र, पूर्णचन्द्र, चन्द्र, सूर्य, श्रीदेवता, कलिदेवता, शैव, वासुदेव, धनिका, असिपाशं, भद्रीपुत्र। इन सभी में अपना कुछ न कुछ रहस्य रहता ही है, जिसे वे लोग आपस ही में छिपाकर रखते हैं, दूसरों को मालूम होने नहीं देते। महाराज ! इसी तरह, पूर्व के बुद्धों से ऐसी परिपाटी चली

आ रही है कि प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस ही में छिपाकर करने चाहिए, दूसरों के सामने नहीं।"

२—"धर्म के गौरव से प्रातिमोक्ष के उपदेशों को क्यों आपस में छिपा कर करना चाहिए ?"

"महाराज ! धर्म बड़ा गौरव–पूर्ण और भारी है। सो, कोई धर्म का जानने वाला किसी दूसरे को समझावे भी तो वह यदि उसके आगे और पीछे की बातों को नहीं जानता हो तो उसे पकड़ नहीं सकता। वही इन बातों को ठीक ठीक पकड़ सकता है जो आगे और पीछे की बातों को जानता हो। यह धर्म इतना सार–युक्त और ऊंचा होकर भी कहीं आगे और पीछे न जानने वालों के हाथ में पड़कर निन्दा और अपमान का भागी न हो जाय; कहीं लोग इसकी हँसी न उड़ाने लगें; कहीं लोग इसे बुरा और नीचा न बताने लग जावें ! यह धर्म इतना सार–युक्त और ऊँचा होकर भी कहीं दुर्जनों के हाथ में पड़कर निन्दा और अपमान का भागी न हो जाय; कहीं लोग इसकी हँसी न उड़ाने लगें; कहीं लोग इसे बुरा और नीचा न बतलाने लग जावें ! इस ख्याल से प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस ही में छिपाकर करने चाहिएँ, दूसरों के सामने नहीं।"

चाण्डाल के घर में चन्दन

"महाराज ! श्रेष्ठ, उत्तम, अप्राप्य, सुन्दर और अच्छी जाति का लाल चंन्दन भी चाण्डालों के गाँव में पड़कर निन्दित और अपमानित होता है; वे इसकी हँसी उड़ाते हैं, इसे तुच्छ और बेकार समझते हैं। महाराज ! इसी, तरह यह धर्म इतना सार–युक्त और ऊँचा होकर भी कहीं आगे और पीछे न जानने वालों के हाथ में पड़कर निन्दा और अपमान का भागी हो जाय; कहीं लोग इसकी हँसी न उड़ाने लगें; कहीं लोग इसे बुरा और नीचा न बताने लग जावें ! यह धर्म इतना सार–युक्त और ऊँचा होकर भी कहीं दुर्जनों के हाथ में पड़कर निन्दा और अपमान का भागी न हो जाय; कहीं लोग इसकी हँसी न उड़ाने लगें; कहीं लोग इसे बुरा और नीचा न बताने लग जावें इसी ख्याल से प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस ही में छिपाकर करने चाहिएँ, दूसरों के सामने नहीं।"

३—"भिक्षु–पद के गौरव के विचार से प्रतिमोक्ष के उपदेशों को क्यों आपस में छिपा कर करना चाहिए ?"

"महाराज ! भिक्षु–भाव अतुल्य, अत्यन्त श्रेष्ठ और अमूल्य है। कोई भी न तो इसको तोल सकता है, न इसका अन्दाजा लगा सकता है, और न इसका दाम लगा सकता है। 'कहीं यह भिक्षुक–भाव और लोगों की बराबरी में न चला जावे !' इस ख्याल से प्रातिमोक्ष के उपदेश भिक्षुओं को आपस ही में छिपाकर करने चाहिए, दूसरों के सामने नहीं।"

"महाराज ! सबसे अच्छी अच्छी चीजें–कपड़े, बिछौने, हाथी, घोड़े, रथ, सोने, चाँदी, मणि, मोती, स्त्री, रत्न इत्यादि, या सब से अच्छी सुरा राजाओं को ही मिलती हैं। महाराज ! इसी तरह, बुद्ध की बताई जितनी शिक्षायें है-आचार, संयम, शील, संवर, इत्यादि सद्गुण–सभी भिक्षु-संघ को ही प्राप्त होती हैं। इस तरह, भिक्षु–पद के गौरव के विचार से प्रातिमोक्ष का उपदेश भिक्षुओं को आपस में छिपाकर ही करना अच्छा है, दूसरों के सामने नहीं।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं मुझे स्वीकार है।"

३४. दो प्रकार के मिथ्या–भाषण

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है–"जान बूझकर झूठ बोलना[1] पाराजिक दोष है।" फिर ऐसा भी कहा है–[2]"जान बूझकर झूठ बोलने में थोडा दोष लगता है, जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिए। भन्ते नागसेन ! यहाँ कौनसी बात है, क्या कारण है, कि एक झूठ बोलने से तो संघ से निकाल दिया जाता है, और दूसरे झूठ बोलने से उसकी माफी भी मिल जाती है ?"

"भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् ने सचमुच में कहा है–"जान बूझकर झूठ बोलना पाराजिक दोष है," तो उनका यह कहा झूठा सिद्ध होता है कि, "जान-बूझकर झूठ बोलने में थोड़ा दोष लगता है, जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिए।" और यदि यह ठीक बात है कि, "जान बूझकर झूठ बोलने में थोड़ा दोष लगता है जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिए," तो यह बात झूठी ठहरती है कि, "जान बूझकर झूठ बोलना पाराजिक दोष है।" यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने ठीक कहा है–"जान बूझकर झूठ बोलना पाराजिक दोष है।" उन्होंने यह भी ठीक कहा है–"जान बूझकर झूठ बोलने में थोड़ा दोष लगता है जिसे किसी दूसरे भिक्षु के सामने स्वीकार कर लेना चाहिए।" दोनों ठीक है।"

"महाराज ! विषय के ख्याल से झूठ बोलना दो प्रकार का होता है–(१) भारी और (२) हलका।"

---

१. पाराजिक दोष–जिस दोष के करने से भिक्षु–भाव चला जाता है।

२. (विनय--पिटक, पृष्ठ २३) स्वीकार कर लेने से दोष हट जाता है।

साधारण आदमी को थप्पड़ मारना

"महाराज ! यदि कोई किसी को एक थप्पड़ या मुक्का मार दे तो आप उसे दण्ड देंगे।"

"भन्ते नागसेन ! यदि वह कहे–'मैं नहीं क्षमा करता', तो हम लोग उस पर एक कार्षापण (उस समय का पैसा) जुर्माना करेंगे।"

राजा को एक थप्पड़ मारना

"महाराज ! यदि वही आदमी आपको एक थप्पड या मुक्का मार दे तो उसे आप क्या दण्ड देंगे ?"

"भन्ते ! उसका हाथ कटवा लूंगा, पैर कटवा लूंगा, जीते जी खाल उतरवा लूंगा, उसका सब कुछ जब्त करवा लूंगा, उसके परिवार में दोनों ओर सात पीढ़ी तक जितने लोग हैं सभी को मरवा डालूंगा।"

"महाराज ! यहाँ कौनसी बात है, क्या कारण है कि एक जगह तो थप्पड़ मारने से केवल एक कार्षापण जुर्माना किया जाता है, और दूसरी जगह हाथ कटवा दिया जाता है, पैर कटवा दिया जाता है, जीते जी खाल उतरवा ली जाती है, उसका सब कुछ जप्त करवा लिया जाता है, उसके परिवार में दोनों ओर सात पीढ़ी तक जितने लोग हैं सभी मरवा दिये जाते हैं ?"

"भन्ते ! दोनों मनुष्यों में भेद होने कारण।"

"महाराज ! इसी तरह, विषय के ख्याल से झूठ बोलना दो प्रकार का होता है–(१) भारी और (२) हलका।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! मुझे स्वीकार है।"

३५. बोधिसत्व की धर्मता

"भन्ते नागसेन ! धर्म को बखानते हुए भगवान् ने धर्मता के विषय में कहा है–"बोधि-सत्व के माता-पिता पहले ही से निश्चित होते हैं। किस वृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त करेंगे यह भी पहले से निश्चित होता है। कौन प्रधान शिष्य होंगे यह भी पहले से निश्चित होता है, कौन पुत्र होगा यह भी पहले से निश्चित रहता है। और कौन भिक्षु सेवा टहल करने वाला होगा यह भी पहले से निश्चित होता है।"

साथ ही साथ आप लोग ऐसा भी कहते हैं–"तुषित लोक में रहते हो बोधिसत्व आठ बड़ी बड़ी बातों को देख लेते हैं–(१) मनुष्य लोक में जन्म लेने

का कौन उचित काल होगा, इसे देख लेते हैं, (२) किस द्वीप में जन्म लेना होगा, इसे भी देख लेते हैं, (३) किस जगह जन्म लेना होगा, इसे भी देख लेते हैं, (४) किस कुल में जन्म लेना होगा, इसे भी देख लेते हैं, (५) कौन माता होगी, इसे भी देख लेते हैं, (६) कितने समय तक गर्भ में रहना होगा, इसे भी देख लेते हैं, (७) किस महीने में जन्म होगा, इसे भी देख लेते हैं, और (८) कब घर छोड़कर निकल जाना होगा, इसे भी देख लेते हैं।"

"भन्ते नागसेन ! जब तक ज्ञान परिपक्व नहीं हो जाता, तब तक ऐसी कुछ बात मालूम नहीं होती। ज्ञान परिपक्व हो जाने पर एक पलक भर भी ठहरना नहीं होता। ऐसी कोई भी बात नहीं है जो ज्ञान परिपक्व हो जाने के बाद न जानी जा सके।"

तब, भला उनको यह काल देखने की क्या जरूरत होती है कि—मैं किस काल में जन्म लूंगा ?"

"ज्ञान के बिना परिपक्व हुए तो कुछ जाना ही नहीं जाता, और परिपक्व हो जाने पर पलक भर भी ठहरना नहीं होता। तब, उन्हें कुल देखने की क्या जरूरत होती है—मैं किस कुल में जन्म लूंगा ?"

"भन्ते ! यदि बोधिसत्व के माता-पिता पहले से ही निश्चित रहते हैं तो तो यह बात झूठी ठहरती है, कि वे कुल को देखते हैं कि किस कुल में जन्म लेना होगा। और, यदि वे सचमुच यह देखते हैं कि किस कुल में जन्म लेना होगा, तो यह बात झूठी ठहरती है कि उनके माता-पिता पहले से ही निश्चित होते हैं। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! बोधिसत्व के माता-पिता पहले से ही निश्चित होते हैं यह बात बिलकुल ठीक है ! और यह भी ठीक है कि वे (तुषित लोक में रहते ही) यह देखते हैं कि किस कुल में जन्म होगा—"कौन सा कुल है ? जो माता-पिता होंगे वे क्षत्रिय होंगे या ब्राह्मण ?" इस तरह कुल को देखते हैं।"

"महाराज ! आठ बातों को उनके होने से पहले ही देख लेना चाहिए। कौनसी आठ बातों को ? (१) बनिये को पहले से ही अपना सौदा देखभाल लेना होता है, (२) हाथी को पैर बढ़ाने के पहले सूंड़ से आगे की जमीन को देख लेना होता है, (३) गाड़ीवान को अनजान नदी पार करने के पहले ही उसे देख लेना होता है, (४) कर्णधार को किनारे पहुँचने के पहले ही तीर को देखभाल लेना होता है; उसके बाद अपनी नाव को उस ओर लगाना होता है, (५) वैद्य को चिकित्सा आरम्भ करने के पहले रोगी की आयु देख लेनी होती है, (६) बांस के पुल को

पार करने के पहले ही देख लेना होता है, कि वह काफी मजबूत है या नहीं, (७) भिक्षु को भोजन करने से पहले देख लेना होता है कि सूरज कहाँ तक चढ़ा है, और (८) बोधिसत्व को पहले ही कुल देख लेना होता है–ब्राह्मण का कुल या क्षत्रिय का ? महाराज ! इन आठ बातों को उनके होने से पहले ही देख लेना चाहिए।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।"

३६. आत्महत्या के विषय में

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने यह कहा है–'भिक्षुओं ! आत्महत्या नहीं करनी चाहिये। जो करेगा वह विनय के अनुसार दोषी ठहराया जायगा"। फिर भी, आप लोग कहते हैं–'अपने शिष्यों को भगवान् जिस किसी विषय पर उपदेश देते थे, सदैव अनेक प्रकार से जन्म लेने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने, और मरने से छूट जाने के लिए ही कहते थे, जो इनसे छूट जाते थे भगवान् उनकी बड़ी प्रशंसा करते थे'।

"भन्ते ! यदि भगवान् ने यथार्थ में आत्महत्या करने को मना किया था, तो यह बात झूठी ठहरती है कि अपने शिष्यों को जिस किसी विषय पर उपदेश देते थे, सदैव अनेक प्रकार से जन्म लेने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने और मरने से छूट जाने के लिए ही कहते थे। और, यदि यह ठीक है कि भगवान् अपने शिष्यों को जिस किसी विषय पर उपदेश देते थे, सदैव अनेक प्रकार से जन्म लेने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने, और मरने से छूट जाने के लिए ही कहते थे, तो यह बात झूठी ठहरती है कि उन्होंने आत्महत्या करने को मना किया हो। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने ठीक कहा है–"भिक्षुओं ! आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। जो करेगा वह विनय के अनुसार दोषी ठहराया जायगा"। हम लोगों का कहना भी ठीक ही है कि, 'अपने शिष्यों को भगवान् जिस किसी विषय पर उपदेश देते थे, सदैव अनेक प्रकार से जन्म लेने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने, और मरने से छूट जाने के लिए ही कहते थे'।

"महाराज ! भगवान् के इस तरह मना करने या बताने का कारण है।"

"भन्ते ! वहाँ कौनसा कारण है जिससे भगवान् ने एक को मना किया और दूसरे को बताया ?"

"महाराज ! प्राणियों के क्लेशरूपी विष को उतारने के लिए शीलवान होना सबसे अच्छा उपचार है। क्लेश–रूपी रोग को दूर करने के लिए शीलवान होना सबसे

अच्छी दवा है। क्लेशरूपी धूल को साफ करने के लिए शीलवान् होना सबसे अच्छा जल है। सभी सम्पत्तियों को दिला देने के लिए शीलवान् होना सबसे अच्छी मणि है। चार ओघों (काम, भव, अविद्या और मिथ्यादृष्टि) को पार करने के लिए शीलवान् होना सबसे अच्छी नाव है। आवागमन रूपी बड़ी मरुभूमि को पार करने के लिए शीलवान् होना सबसे अच्छा कारवाँ है। तीन प्रकार की आग (लोभ, द्वेष, मोह) के ताप को दूर करने के लिए शीलवान् होना सबसे अच्छी वायु है। मन को भर देने के लिए शीलवान् होना मेघ के समान है। अच्छी से अच्छी शिक्षाओं को देने के लिए शीलवान् होना आचार्य के समान है। निरापद मार्ग बताने के लिए शीलवान् होना पथप्रदर्शन है। महाराज! इस तरह, शीलवान् के गुण-समूह अनन्त हैं। शीलवान् सभी जीवों की वृद्धि करने वाला है। सबों पर बड़ी अनुकम्पा कर के भगवान् ने इस शिक्षा-पद का उपदेश दिया था- 'भिक्षुओं! आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। जो करेगा वह विनय के अनुसार दोषी ठहराया जायगा"। महाराज! यही कारण है जिससे भगवान् ने इसे मना किया था।"

"महाराज! परलोक के विषय में पायासिराजन्य को बताते हुए महावक्ता स्थविर कुमार काश्यप ने कहा है---"राजन्य! शीलवान् और धर्मात्मा श्रमण या ब्राह्मण जितना अधिक जीते हैं, लोगों के हित में लगे रहते हैं, लोगों को सुख का मार्ग बताते रहते हैं, लोगों के प्रति अनुकम्पा से भरे रहते हैं, तथा देवताओं और मनुष्यों के काम, हित और सुख में सहायक होते हैं।"[1]

"किस कारण से उन्होंने जन्म इत्यादि से छूट जाने को बताया है?"

"महाराज! जन्म लेना भी दुःख है। बूढ़ा होना भी दुःख है। बीमार पड़ना भी दुःख है। मरना भी दुःख है। शोक करना भी दुःख है। रोना पीटना भी दुःख है। दुःख भी दुःख है। दौर्मनस्य भी दुःख है। परेशानी भी दुःख है। अप्रिय से मिलना भी दुःख है। प्रिय से बिछुड़ना भी दुःख है। माता का मर जाना भी दुःख है। पिता का मर जाना भी दुःख है। भाई का मर जाना भी दुःख है। बहन का मर जाना भी दुःख है। पुत्र का मर जाना भी दुःख है। स्त्री का मर जाना भी दुःख है। बन्धु-बान्धवों पर कुछ आपत्ति पड़ जाना भी दुःख है। रोगसे पीड़ित रहना भी दुःख है। संपत्ति का नाश होना भी दुःख है। शील से गिर जाना भी दुःख है। सिद्धान्त से गिर जाना भी दुःख है। राजा से भय खाना भी दुःख है। चोर का डर भी दुःख है। शत्रुओं से डरा रहना भी दुःख है। अकाल पड़ जाने का डर भी दुःख है। घर में आग लग जाने का भय भी दुःख है। बाढ़ के चले आने का भय भी दुःख है। लहरों में पड़ जाने का भय भी दुःख है। भँवर में

१. देखो दीघनिकाय-'पायासिराजन्य'-सुत्र।

पड़ जानें का भय भी दुःख है। मगर से पकड़े जाने का भय भी दुःख है। घड़ियाल से पकड़े जाने का भय भी दुःख है। अपनी निन्दा हो जाना भी दुःख है। दूसरे किसी की निन्दा हो जानी भी दुःख है। दण्ड पाने का भय भी दुःख है। दुर्गति हो जाने का भय भी दुःख है। भरी सभामें घबड़ा जाना भी दुःख है। जीविका चलाने का भय भी दुःख है। मर जाने का भय भी दुःख है। बेंत से पीटा जाना भी दुःख है। चाबुक से पीटा जाना भी दुःख है। डण्डों से पीटा जाना भी दुःख है। हाथ काट लिया जाना भी दुख है। पैर काट लिया जाना भी दुःख है। हाथ-पैर दोनों का काट लिया जाना भी दुःख है। कान का काट लिया जाना भी दुःख है। नाक काट लिया जाना भी दुःख है। नाक-कान दोनों का लिया काट जाना भी दुःख है।[1] बिलङ्गथालिक भी दुःख है।[2] शङ्खमुण्डिक भी दुःख है।[3] राहुमुख भी दुःख है।[4] ज्योतिर्मालिका भी दुःख है।[5] हस्तप्रज्योतिका भी दुःख है।[6]एरकवर्तिका भी दुःख है।[7]चीरकवासिका भी दुःख है।[8]ऐणेयक भी दुःख है।[9]बलिसमंसिका भी दुःख है।[10]कार्षापणक भी दुःख है।[11]खारापतच्छिका भी दुःख है।[12]परिघपरिवर्तिक भी दुःख है।[13]पलातपीठक भी दुःख है। गर्म तेल का छिड़का जाना भी दुःख है। कुत्तों से नोचवाया जाना भी दुःख है। फांसी पर लटकाया जाना भी दुःख है। तलवार से शिर को काट लेना भी दुःख है। महाराज ! ऐसे ही और भी अनेक दुखों को संसार में रहकर लोग उठाते हैं।"

---

१. बिलङ्गथासिक-खोपड़ी हटा शिर पर तप्त लोहे का गोला रखना।

२. शखमुण्डिक-शिर का चमड़ा आदि हटा उसे शंख के समान बना देना।

३. राहुमुख-कानों तक मुंह को फाड़ देना।

४. ज्योतिर्मालिका-शरीर भर में तैल-सिक्त कपड़ा लपेट कर बत्ती जलाना।

५. हस्त-प्रज्योतिका-हाथ में कपड़ा लपेट कर जलाना।

६. एरकर्वितका-गर्दन तक खाल खींच कर घसीटना।

७. चोरक वासिका-ऊपर की खाल को खींच कर कमर पर छोड़ना, और नीचे की खाल को खींच कर घुट्टी पर छोड़ देना।

८. ऐणेयक-केहुनी और घुटने में लोहशलाका ठोंक उनके बल भूमि पर स्थापित कर आग जलाना।

९. बलिमंसिका-बंशी के तरह के लोह-अंकुशों को मुंह में डाल कर खींचना।

१०. कार्षापणक-पैसे पैसे भर के मांस के टुकड़ों को सारे शरीर से काटना।

११. खारापतच्छिका-शरीर में घाव कर नमक लगाना।

१२. परिघपरिवर्तिका-दोनों कानों से कीला पर कर, उसे जमीन में गाड़, पैर पकड़ उसी के चारों ओर घुमाना।

१३. पलालपीठक-मुंगरों से हड्डी को भीतर ही भीतर चूर कर, शरीर को मांसपुंज सा बना देना।

"महाराज ! हिमालय पहाड़ पर वृष्टि होने से जल की धारा वृक्ष और पत्थरों को गिराती पराती पार हो जाती है। उसी तरह संसार में जीव पाप में फँस कर अनेक दुःख उठाते हैं। संसार में बार–बार जन्म लेना बड़ा दुःख है। जन्म और मृत्यु के इस प्रवाह का रुक जाना यथार्थ में सुख है। इसी सिलसिले को रोकने का उपदेश करते हुए भगवान् ने जन्म लेना इत्यादि से छूट जाने को बताया है।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आपने दुविधा को खूब साफ कर दिया। अनेक तर्कों को दिखाया। आपने जो कहा मुझे स्वीकार है।"

३७. मैत्री भावना के फल

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा के–"भिक्षाओं ! चित्त को विमुक्त करने वाली मैत्री के अनुसार आचरण करते हुये उसकी भावना करने से, बार बार उसका अभ्यास करने से, अपने में उसका विस्तार करने से, उसी को आधार बना लेने से, उसका अनुष्ठान करने से, उसे अच्छी तरह सीख लेने से तथा उस में बिलकुल लग जाने से ग्यारह फल प्राप्त हो सकते हैं।"

"कौस से ग्यारह ?"

(१) सुख की नींद सोता है, (२) सुख-पूर्वक सोकर जागता है, (३) बुरे स्वप्नों को नहीं देखता, (४) मनुष्यों का प्रिय होता है, (५) अमनुष्यों का प्रिय होता है, (६) देवता उसकी रक्षा करते हैं,[1] (७) आग, विष, या हथियार से उसकी कभी भी कुछ हानि नहीं पहुंचती, (८) शीघ्र ही उसकी समाधि लग जाती है, (९) उसका आकार सदा प्रसन्न रहता है, (१०) बिना किसी घबड़ाहट के उसकी मृत्यु होती है, (११) यदि अर्हत्[2] पद तक नहीं पहुँच पाता, तो अवश्य ही ब्रह्मलोक में जन्म ग्रहण करता है।" तो भी, आप लोग कहा करते हैं–"साम कुमार मैत्री–भावना का अभ्यास करते हुए मृगों के साथ वन में विचरण करते थे। एक दिन पिलियक्ख नामक राजा के विष में बुझाए बाण के लग जाने से वे मूर्छित होकर गिर पड़े।"[3]

---

१. इसी फल को लक्ष्य करके साम कुमार के विषय में प्रश्न किया गया है।

२. अंगुत्तर निकाय, एकादस-निपात।

३. जातक ५४०।

"भन्ते ! यदि भगवान् ने ठीक में मैत्री-भावना के ये फल बताये हैं तो यह बात झूठी ठहरती है, साम कुमार मैत्री-भावना के अभ्यासी होते हुए भी बाण के लग जाने से मूर्छित होकर गिर पड़े थे। और, यदि यथार्थ में साम कुमार मैत्री-भावना के अभ्यासी होते हुए भी बाण के लग जाने से मूर्छित होकर गिर पड़े थे, तो ऊपर के बताये मैत्री-भावना के फल झूठे ठहरते हैं। यह भी एक दुविधा है जो बहुत सूक्ष्म और गम्भीर हैं। "भन्ते ! अच्छे अच्छे चालाक लोगों को भी इस प्रश्न के पूछने पर पसीना छूटने लगेगा सो यह प्रश्न आपके सामने रक्खा गया है। इस अत्यंत जटिल प्रश्न को सुलझा दें। भविष्य में होने वाले बौद्ध-भिक्षूओं को इसे साफ-साफ देखने के लिए आँख दे दें।

"महाराज ! भगवान् ने ठीक कहा है –"भिक्षुओं ! मैत्री का अभ्यास करने से उसे आग, विष, या हथियार कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकता।" और यह भी सत्य है कि साम कुमार मैत्री भावना का अभ्यास करते हुए मृगों के साथ बन में विचरण करते थे। एक दिन पिलियक्ख नामक राजा के विष में बुझाए बाण के लग जाने से वे मूर्छित होकर गिर पड़े।–"महाराज ऐसी बात हो जाने का एक कारण है।

"कौन सा कारण ?"

गुण मनुष्य के नहीं, मैत्री-भावना के है

"महाराज ! ऊपर कहे गए गुण किसी मनुष्य के नहीं, किंतु मैत्री-भावना के ही है। महाराज ! उस समय, घड़े उँड़ेलता हुआ साम कुमार मैत्री-भावना नहीं कर रहा था। महाराज ! जिस समय मनुष्य मैत्री-भावना से पूर्ण रहता है उस समय आग, विष या हथियार उस पर कुछ असर नहीं करते। महाराज ! उस समय यदि कोई उसका कुछ बुरा करने के लिए आवे तो उसे देख ही नहीं सकेगा और न उसका कुछ बिगाड़ने को उसे मौका मिलेगा। महाराज ! ऊपर के कहे गए गुण किसी मनुष्य के नहीं, किंतु मैत्री-भावना के ही हैं।"

कवच

"महाराज ! कोई लड़ाका सिपाही अभेद्य जालीदार कवच पहन कर मैदान में उतरे। उस पर जितने बाण गिरे सभी टकरा कर लौट जायें, उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकें। महाराज ! तो यह गुण उस सिपाही का नहीं समझा जायगा। यह गुण तो उसके अभेद्य कवच का ही है।

"महाराज ! इसी तरह, ये गुण किसी मनुष्य के नहीं किंतु मैत्री-भावना के ही हैं। महाराज ! जिस समय मनुष्य मैत्री-भावना से युक्त होता है उस समय न

आग, न विष और न हथियार उसकी कुछ हानि कर सकते है । उस समय यदि कोई उसका कुछ बुरा करने के लिए आवे तो उसे देख ही नहीं सकेगा; और न उसका कुछ बिगाड़ने का उसे मौका मिलेगा । "महाराज ! ये गुण किसी मनुष्य के नहीं किन्तु मैत्री-भावना के ही हैं ।"

जादू की जडी

"महाराज ! कोई आदमी हिकमत वाली जादू की जड़ी अपने हाथ में ले ले। उसको लेते ही वह गायब हो जाय और किसी मामूली आदमी की आँख से सुझे ही नही। "महाराज! तो यह गुण उस आदमी का नहीं किंतु उस हिकमत वाली जादू की जड़ी का समझा जायगा ।

"महाराज ! इसी तरह, ये गुण किसी मनुष्य के नहीं किंतु मैत्री-भावना के ही हैं । "महाराज ! जिस समय मनुष्य मैत्री-भावना से युक्त होता है उस समय न आग, न विष और न हथियार उसको कुछ हानि कर सकते है। उस समय यदि कोई उसका कुछ बुरा करने ने लिये आवे तो उसे देख ही नहीं सकेगा; और न उसका कुछ बिगाड़ने का उसे मौका मिलेगा । महाराज ! ये गुण किसी मनुष्य के नहीं किंतु मैत्री–भावना के ही हैं ।"

पर्वत-कन्दरा

"महाराज ! कोई आदमी एक अच्छी तरह बनाई गई पहाड़ की कन्दरा में पैठ जाय । तब, बाहर में मूसलधार पानी परबने से भी वह नहीं भीग सकता । महाराज ! इसमें उस आदमी का गुण नहीं, किंतु पहाड की कन्दरा ही है ।"

"महाराज ! इसी तरह, ये गुण किसी मनुष्य के नहीं किंतु मैत्री-भावना के ही हैं । "महाराज ! जिस समय मनुष्य मैत्री-भावना से युक्त होता है उस समय न आग, न विष और न हथियार उसकी कुछ हानि कर सकते हैं । उस समय यदि कोई उसका कुछ बुरा करने के लिये आवे तो उसे देख ही नहीं सकेगा; और न कोई उसका कुछ बिगाड़ने का उसे मौका मिलेगा । महाराज ! ये गुण किसी मनुष्य के नहीं किंतु मैत्री-भावना के ही हैं ।"

"भन्ते नागसेन ! आश्चर्य है !! अद्भुत है !!! सभी पापों को दूर करने के लिए मैत्री–भावना है । मैत्री-भावना से सारे पुण्य मिलते हैं ।"

"महाराज ! जो हित या अहित है। सभी के प्रति मैत्री–भावना करनी चाहिए । संसार में जितने जीव हैं सभी के बीच मैत्री–भावना के महान् फल को बाँट लेना चाहिए ।"

३८. पाप और पुण्य के विषय में

"भन्ते नागसेन! पुण्य करने वाले और पाप करने वाले दोनों के फल समान ही होते हैं या भिन्न-भिन्न ?"

"महाराज! पुण्य करने वाले के फल से पाप करने वाले का फल दूसरा ही होता है। महाराज ! पुण्य करने वाला सुख पाता है और स्वर्ग को जाता है; पाप करने वाला दुःख पाता है और नरक को जाता है।"

"भन्ते नागसेन ! आप लोग कहते है कि देवदत्त का हृदय बिलकुल काला था; बुरे से बुरे गुणों से भरा था और बोधिसत्व का हृदय बिलकुल स्वच्छ था; भले से भले गुणों की वे खान थे। तो भी अनेक जन्मों में देवदत्त बोधिसत्व के समान ही या उनसे बढ़ कर यश पाने वाला हुआ था। उसका पक्ष भी सदा पुष्ट ही रहता था।"

"भन्ते ! जब देवदत्त बनारस में राजा ब्रह्मदत्त के पुरोहित का पुत्र था, तो बोधिसत्व जादू और टोना फेकने वाले एक नीच जाति के ड़ोम थे, जो अपने मन्त्र के बल से बिना मौसिम के भी आम फला देते थे।[1] यह एक उदाहरण है जिसमें बोधिसत्व देवदत्त से जाति और यश दोनों में हीन थे।

"भन्ते! और फिर जब देवदत्त एक बहुत बड़ा राजा था, जिसे कामभोग की सभी वस्तुयें प्राप्त थीं, तब बोधिसत्व उसकी सवारी के हाथी थे, जिनमें सभी अच्छे अच्छे लक्षण वर्तमान थे। उस (हाथी) के भाव और भड़क को देख कर राजा (देवदत्त) मन ही मन जल उठा था। उसने उस (हाथी) को मरवा देने की इच्छा से पीलवान को कहा–"पीलवान! यह हाथी अच्छी तरह सिखाया नहीं गया है; उसे आकाश-गमन नामक की चाल चलाओ तो सही।" यहाँ भी बोधिसत्व देवदत्त से जाति में नीच थे पशु-योनि में जन्म लिए थे।"

"और फिर, जब देवदत्त मनुष्य हो जंगलों में व्याधा के ऐसा घूमता फिरता था, तब बोधिसत्व महापृथ्वी नाम के एक वानर थे। यहाँ भी मनुष्य और पशु में कितना भारी अन्तर है। यहाँ भी बोधिसत्व देवदत्त से जाति में नीच थे।

"और फिर, जब देवदत्त शोणोत्तर नाम का अत्यन्त बलिष्ट निषाद था तब बोधिसत्व छद्दन्त नाम के हस्ति-राज थे। तब एक दिन उस निषाद ने छद्दन्त नाम हस्ति-राज को मार डाला। इस जन्म में भी देवदत्त ही बोधिसत्व से बढ़कर था।

---

१. अम्बजातक, ४७४। २. दुम्मेध-जातक, १२२।

"और फिर, जब देवदत्त मनुष्य होकर बिना किसी घर के बन बन घूमता था, तो बोधिसत्व तित्तिर पक्षी थे, और वेद मन्त्रों को पढ़ा करते थें। उस जन्म में भी उस वनचर ने उस तित्तिर पक्षी को मार डाला था।[1] यहाँ भी देवदत्त बोधिसत्व से ऊँचा ही ठहरा।

"और फिर, जब देवदत्त कलाबु नाम का काशिराज था, तब बोधिसत्व क्षान्ति का प्रचार करने वाले तपस्वी थे। तब, वह राजा उन तपस्वी से क्रुद्ध होकर उनके हाथ पैर को बाँस की तरह कटवा दिया था। उस जन्म में भी देवदत्त ही बोधिसत्व से ऊँची जाति का और अधिक यशस्वी था।"[2]

"और फिर जब देवदत्त मनुष्य होकर वनचर था, तब बोधिसत्व नन्दिय नाम के वानरों के राजा थे। वहाँ भी वनचर ने वानर को माँ और छोटे भाई के साथ मार डाला। यहाँ भी देवदत्त ही बोधिसत्व से बड़ा हुआ।"[3]

"और फिर जब देवदत्त कारम्भिय का नंगा साधु था, तब बोधिसत्व पण्डरक नाम के सर्पराज थे। यहाँ भी देवदत्त ही ऊँचा हुआ।"

"और फिर जब देवदत्त जंगल में रहने वाला जटाधारी साधु था, तब बोधिसत्व तच्छक नाम के एक बड़े सूअर थे।[4] यहाँ भी देवदत्त ही ऊँचा हुआ।"

"और फिर जब देवदत्त चेतियों में सुरपरिचर नाम का राजा था जिसमें ऐसी शक्ति थी कि एक पोरसा ऊपर आकाश में चल-फिर सकता था, तब बोधिसत्व कपिल नाम के एक ब्राह्मण थे। यहाँ भी देवदत्त ही जाति और यश दोनों में बड़ा था।"[5]

"और फिर जब देवदत्त साम नाम का एक मनुष्य था तब बोधिसत्व रुरु नाम के मृगों के राजा थे।[6] यहाँ भी देवदत्त ही ऊँचा हुआ।"

"और फिर जब देवदत्त वनचर व्याधा था, तब बोधिसत्व हाथी थे। वनचर व्याधे ने सात बार हाथी के दाँत को तोड़ लिया था।[7] यहाँ भी देवदत्त ही जाति में ऊँचा हुआ।

"और फिर देवदत्त एक समय बड़ा लड़ाका और बहादुर सिपाही था। उसने भारत वर्ष के सभी राजाओं को अपने वश में कर लिया था। तब, बोधिसत्व विधुर नाम के एक पण्डित थे। यहाँ भो, देवदत्त ही यश में बढ़ा चढ़ा था।

---

१. तित्तिर-जातक ···।
२. खान्तिवादी-जातक, ३१३।
३. चूलनन्दिय-जातक, २२२।
४. तच्छ-सूकर-जातक, ४९२।
५. सुरपरिचर-जातक, ४२२।
६. रुरु-जातक, ४८२।
७. सीलवा नाग-जातक, ७२।

"और फिर, जब देवदत्त ने हाथी होकर लटुकिका पक्षी के बच्चों को मार डाला था, तब बोधिसत्व भी एक गजराज थे।[1] यहाँ दोनो ही बराबर थे।

"और फिर, जब देवदत्त 'अधर्म' नाम का एक यक्ष था, तब बोधिसत्व भी धर्म नाम के एक यक्ष थे। यहाँ भी दोनों बराबर हुए।

और फिर, जब देवदत्त पाँच सौ मल्लाह कुलों का सरदार था तब बोधिसत्व भी दूसरे पाँच सौ मल्लाह कुलों के सरदार थे। यहाँ भी दोनों बराबर थे।

"और फिर, जब देवदत्त पाँच सौ गाडियों वाला बनजारा था, तब बोधिसत्व भी दूसरे पाँच सौ गाड़ियों वाले बनजारे थे। यहाँ भी दोनों बराबर थे।[2]

"और फिर, जब देवदत्त साख नाम का मृगराज था, तब बोधिसत्व निग्रोध नाम के मृगराज थे। यहाँ भी दोनों बराबर थे।

"और फिर, जब देवदत्त साख नाम का सेनापति था, तब बोधिसत्व निग्रोध नाम के राजा थे।[3] यहाँ भी दोनों बराबर थे।

"और फिर, जब देवदत्त खण्डहाल नाम का ब्राह्मण था, तब बोधिसत्व चन्द नाम के राजकुमार थे। यहाँ तो खण्डहाल ही ऊँचा था।"

"और फिर, जब देवदत्त ब्रह्मदत्त नाम का राजा था, तब बोधिसत्व उसके पुत्र थे जिनका नाम कुमार महापदम था। वहाँ राजा ने अपने पुत्र को सात बार पहाड़ से गिरवा दिया था, जहाँ से गिरवा कर चोर मार डाले जाते थे।[4] पिता अपने पुत्र से बड़ा होता ही है, अतः यहाँ भी देवदत्त ही बड़ा था।

"और फिर, जब देवदत्त महाप्रताप नाम का राजा हुआ था, तब बोधिसत्व उसके पुत्र कुमारधर्मपाल थे। राजा ने अपनें पुत्र के हाथ, पैर और शिर को कटवा लिया था।[5] यहाँ भी देवदत्त ही बड़ा था।

और फिर, इस जन्म में दोनों शाक्य-कुल ही में उत्पन्न हुए। और बोधिसत्व सर्वज्ञ संसार के नायक बुद्ध हुए। देवदत्त ने भी प्रव्रजित हो कर उन देवातिदेव बुद्ध के शासन को ग्रहण किया। जब उसने बड़ी ऋद्धियाँ पा लीं तो उसके मन में भी बुद्ध बन बैठने की उत्सुकता पैदा हुई।"

---

१. जातक, ३५७।
२. अपण्णक-जातक, ४५७।
३. निग्रोधमिग-जातक, १२।
४. महापदुम-जातक, ४७२।
५. जातक, ३५८।

"भन्ते नागसेन ! देखें मैंने जो कुछ कहा है वह ठीक या बेठीक ?"

"महाराज आपने जो कुछ भी कहा हैं, सभी बिलकुल ठीक हैं, बेठीक नहीं।"

"भन्ते नागसेन ! तो इससे यही पता चलता है कि हृदय का काला होना और हृदय का साफ होना दोनों ही बराबर हैं, उनके फल समान ही होते हैं।"

"नहीं महाराज ! पुण्य और पाप के फल समान नहीं होते। महाराज ! देवदत्त के पक्ष में लोग नहीं रहते थे। बोधिसत्व के विरुद्ध कोई नहीं होता था। देवदत्त के मन में बोधिसत्व के प्रति जो वैर भाव था, वह हर एक जन्म में पकता ही गया और उसके फल भी मिलते गए। महाराज ! देवदत्त भी ऐश्वर्य प्राप्त करके लोगों को रक्षा करता था; पुल, न्यायसभायें और धर्मशालायें बनवाता था। वह श्रमण, ब्राह्मण, दरिद्रो, मुसाफिर और अनाथों को उनकी आवश्यकता के अनुसार दान देता था। वह उसी के फल से हर एक जन्म में सम्पत्तिशाली होता रहा।"

"महाराज ! कौन ऐसा कह सकता है कि कोई बिना दान, दाम, संयम और उपोसथ–कर्मों के सम्पत्ति पा सकता है !

"महाराज ! जो आप ऐसा कहते हैं कि देवदत्त और बोधिसत्व दोनों साथ ही जन्म लेते आए सो केवल कुछ सैकड़ों या हजारों जन्म से ही नहीं किन्तु अनादि काल से। महाराज ! भगवान् ने जैसे मनुष्यत्व प्राप्त करने की कोशिश करने वाले काने कछुए की बात कही हैं, वैसे ही इन दोनों का साथ जन्म लेते आना समझना चाहिए। महाराज ! बोधिसत्व को केवल देवदत्त के साथ भेंट होती नहीं आई थी किंतु स्थविर सारिपुत्र भी अनेक सैकड़ों और हजारों में बोधिसत्व के पिता हुए थे; बड़े चचा हुए थे, छोटे चचा हुए थे, भ्राता हुए थे, पुत्र हुए थे, बहनोई हुए थे, मित्र हुए थे। महाराज ! बोधिसत्व भी अनेक सैकड़ों और हजारों जन्मों में स्थविर सारिपुत्र के पिता हुए थे, बड़े चचा हुए थे, छोटे चचा हुए थे, भ्राता हुए थे, पुत्र हुए थे, बहनोई हुए थे, मित्र हुए थे।"

"महाराज ! नाना प्रकार के जितने जीव हैं जो संसार की धारा में बह रहे हैं, इसके वेग में पड़कर प्रिय और अप्रिय दोनों प्रकार के साथियों से मिलते हैं–जैसे, पानी धारा में आकर अच्छी और बुरी सभी प्रकार की चीजों से आ मिलता है।"

"महाराज ! देवदत्त ने पापी यक्ष होकर अनेक लोगों को पाप में लगा दिया था। इससे वह बहुत काल तक नरक में पचता रहा। किंतु, बोधिसत्व ने बड़े पुण्य-शील यक्ष होकर लोगों को पुण्य में लगाया था। इससे वे बहुत काल तक स्वर्ग के सुखों को भोगते रहे। और इस जन्म में बुद्ध पर घात लगाने तथा संघ को फोड़ने

के पास देवदत्त जमीन में धँस गया। बुद्ध ने जानने योग्य सभी बातों को जानकर बुद्धत्व प्राप्त कर लिया, और जीवन को बनाए रखने के जितने कारण हैं सभी का नाश कर परम निर्वाण को पा लिया।"

"ठीक है भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मुझे स्वीकार है।"

३९. अमरादेवी के विषय में

"भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है,–

"यदि अवकाश और एकान्त–स्थान पावें
तथा किसी बदमाश को भी पावें,
तो सभी स्त्रियाँ व्यभिचार कर सकती हैं
यदि और कोई नहीं मिले तो निकम्मे लूँझ के साथ ही।"[1]

"फिर ऐसा भी कहा जाता है–महोसध की भार्या अमरा नाम की स्त्री पति के विदेश चले जाने पर गाँव में अकेली और एकान्त में रहकर भी अपने पति को अपना सर्वस्व मानती हुई हजारों रुपयों के प्रलोभन दिए जाने पर भी पाप करने के लिए राजी नहीं हुई।[2]"

"भन्ते नागसेन! यदि भगवान् का कहना ठीक है तो अमरादेवी वाली बात अवश्य झूठी होगी। और यदि अमरादेवी इतनी पति–व्रता रह सकी तो भगवान् की कही हुई बात झूठी सिद्ध हो जाती है। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज भगवान् ने स्त्रियों के विषय में वैसा यथार्थ में कहा है। लोग जो अमरादेवी के विषय में कहते हैं वह भी ठीक ही है।"

"महाराज! वह ऐसा पाप-कर्म करे या न करे इसकी तो तब परीक्षा हो सकती थी, जब उसे उपयुक्त अवकाश, एकान्त स्थान और उपयुक्त दुष्ट पुरुष मिलते। महाराज! अमरादेवी को वैसा उपयुक्त अवकाश एकान्त–स्थान और पुरुष ही नहीं मिले।"

संसार में निन्दा की जाने के भय से उसने उचित अवकाश नहीं देखा। मरने के बाद नरक में जाने के भय से भी उसने उचित अवकाश नहीं देखा। पाप

---

१. रीस डेविड्स लिखते हैं–

"बुद्ध ने यह गाथा कहीं नहीं कही। ग्रन्थ-कर्ता ने प्रमाद से ऐसा लिख दिया होगा। यह गाथा जातक, ५३६ में आती है। वहाँ भी बुद्ध के उपदेश के रूप में नहीं, किंतु एक लोकोक्ति की तरह।

२. उम्मग्ग-जातक, ५४६।

का फल बुरा होता है—इस विचार से भी उसने उचित अवकाश नहीं देखा। अपने प्रिय पति को छोड़ देना उसे सह्य नहीं था—इससे भी उसने उचित अवकाश नहीं देखा। अपने स्वामी की इज्जत का ख्याल करके भी उचित अवकास नहीं देखा। धर्म का ख्याल करके भी उसने उचित अवकाश नहीं देखा। बुरे काम से घृणा करती हुई भी उसने उचित अवकाश नहीं देखा। कहीं मेरा व्रत न टूट जाय—यह विचार कर भी उसने उचित अवकाश नहीं देखा। इसी तरह के और भी बहुत से कारणों से अमरदेवी ने उचित अवकाश नहीं देखा।"

"मनुष्यों से न छिपा सकने के भय से उसने पाप नहीं किया। यदि मनुष्यों से बात छिप भी जाय, तो अमनुष्यों से नहीं छिप सकती। यदि अमनुष्यों से बात छिप भी जाय तो दूसरों के चित्तको जान लेने वाले भिक्षुओं से नहीं छिप सकती। यदि भिक्षुओं से बात छिप भी जाय, तो दूसरों के चित्त को जान लेने वाले देवताओं से नहीं छिप सकती। यदि देवताओं से भी बात छिप जाय, तो अपने मन में ही खटकती रहेगी। यदि मन में नहीं भी खटके, तो भी अधर्म होगा। इस प्रकार के अनेक कारणों से एकान्त (रहस्य) न पा सकने के कारण अमरादेवी ने पाप नहीं किया।"

"बहकाने वाले भी ऐसे योग्य पुरुष को न पाकर अमरा ने पाप नहीं किया। महाराज! महोसध नाम का पण्डित अट्ठाइस गुणों से युक्त था।"

"किन अट्ठाइस गुणों से युक्त था?"

"महाराज! महोसध पण्डित (१) सूर, (२) नम्र, (३) पाप कर्मो से संकोच करने वाला, (४) बहुत से साथियों वाला, (५) अनेक मित्रों वाला, (६) क्षमा-परायण, (७) शीलावान (८) सत्यवादी, (८) पवित्र, (९) क्रोध-रहित, (१०) घमण्ड-रहित, (११) द्वेष-रहित, (१२) वीर्यवान्, (१३) अच्छे कामों में लगा रहने वाला, (१४) लोक-प्रिय, (१५) आपस में बाँट कर किसी चीज का भोग करने वाला, (१६) मित्रता का व्यवहार करने वाला, (१७) तड़क-भड़क से दूर रहने वाला, (१८) लगाव बझाव न रखने वाला, (१९) निष्कपट, (२०) बुद्धिमान् (२१) सम्पत्तिशाली, (२२) यशस्वी, (२३) विद्याओं को जानने वाला, (२४) अपने पास आए हुए लोगों की भलाई चाहने वाला, (२५) सभी लोगों से प्रशंसित, (२६) भगवान् (२७) यशस्वी, (२८)[1] था। महाराज! महोसध पण्डित में ये अट्ठाइस गुण थे।—सो अमरादेवी ने ऐसे (गुणों वाले) किसी दूसरे बहकाने वाले को न पाकर पाप नहीं किया।"

"ठीक है भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं, मुझे स्वीकार है।"

---

१. मूल पाठ में एक गुण घटता है।

४०. क्षीणास्रव लोगों का अभय होना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है-"अर्हत् लोग डर और भय से छूट जाते हैं।" फिर भी, राजगृह नगर में धनपाल नाम के हाथी[1] को भगवान् पर टूटते देखकर पाँच सौ क्षीणास्रव भिक्षु बुद्ध को छोड़, अपनी जान ले जिधर तिधर भाग खड़े हुए-केवल स्थविर आनन्द रह गये। भन्ते नागसेन ! यह क्यों ? क्या वे डर कर भाग गए थे ? अथवा, भगवान् को अकेले मर जाने के लिए यह सोच कर कि-बुद्ध को स्वयं मालूम होगा-वे भाग गए थे ? अथवा, भगवान् कैसे अपना अनन्त बल दिखाते हैं, इसे देखने के लिए वे भाग गए थे ?"

"भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् ने ठीक ही कहा है-"अर्हत् लोग डर और भय से छूट जाते हैं" तो धनपाल हाथी की बात झूठी ठहरती है। और, यदि धनपाल हाथी के टूटने पर क्षीणास्रव भिक्षु सचमुच भाग गए थे, तो भगवान् का यह कहना झूठा सिद्ध होता है कि "अर्हत् लोग डर और भय से छूट जाते हैं।" यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने यथार्थ ही में कहा है-अर्हत् लोग डर और भय से छूट जाते हैं।" और यह बात भी सत्य है कि राजगृह नगर में धनपाल नाम के हाथी को भगवान् पर टूटते देखकर पाँच सौ क्षीणास्रव भिक्षु बुद्ध को छोड़ अपनी जान ले जिधर तिधर भाग खड़े हुए-केवल स्थविर आनन्द रहे गये।"

किंतु, न तो वे भय से और न भगवान् को अकेले मरने देने की इच्छा से उन्हें छोड़ कर भाग गए थे। अर्हत् लोग में भय के जितने कारण हैं सभी नष्ट हो गए रहने हैं। अतएव, वे डर और भय से छूट जाते हैं।

"महाराज ! जब कोई मनुष्य जमीन खोदता है तो क्या पृथ्वी डर जाती है ? क्या बड़े बड़े समुद्र और पर्वतों के भार को सहने में पृथ्वी डर जाती है ?"

"नहीं भन्ते।"

"क्यों नहीं ?"

"क्योंकि महापृथ्वी में डर या भय के कोई कारण नहीं हैं।"

"महाराज ! उसी तरह, अर्हत् में ऐसे कोई कारण ही नहीं रहते हैं जिससे उसे डर या भय हो।"

---

१. चुल्लवग्ग (विनयपिटक, पृष्ठ ४८६) में यह कथा आती है, किंतु हाथी का नाम 'धनपाल' नहीं बल्कि 'नालागिर' था। वहाँ अर्हतों के भागने का भी जिक्र नहीं है।

"महाराज ! क्या बड़े बड़े पहाड को टूट जाने का, या भहरा जाने का, या गिर पड़ने का, या जल जाने का डर होता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्यों नहीं ?"

"क्योंकि उनमें डर या भय के कोई कारण ही नहीं हैं।"

"महाराज ! अर्हतों के साथ भी वही बात होती है। यदि संसार भर में जितने नाना रूप के जीव हैं सभी एकसाथ ही किसी अर्हतों को डरा देना चाहें तो उसके हृदय में किसी प्रकार का विकार नहीं ला सकते। सो क्यों ? क्योंकि डर उत्पन्न होने के कोई हेतु या प्रत्यय उसके चित्त में नहीं रह गए हैं।"

"महाराज ! उन अर्हतों के मन में ये विचार आए थे–आज नरश्रेष्ठ तथा जितेन्द्रियों के अगुए बुद्ध के नगरों में श्रेष्ठ राजगृह में प्रवेश करने पर सामने की सड़क से धनपाल नाम का हाथी टूटेगा। देवातिदेव उन बुद्ध की सेवा टहल में रहने वाले स्थविर आनन्द उन्हें कभी छोड़ नहीं सकते। यदि हम लोग हट नहीं जायँ तो स्थविर आनन्द का गुण प्रगट नहीं होगा, और न बुद्ध के पास हाथी पहुँच सकेगा। इसलिये अच्छा हो यदि हम लोग हट जायँ। इस तरह, बहुत से लोग क्लेश के बन्धन से छूट जायेंगे, और चारों ओर स्थविर आनन्द के गुण भी प्रकट हो जायेंगे।' इसी के ख्याल से वे हट गए।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आपने अच्छा समझाया। बात यथार्थ में ऐसी ही हैं। अर्हतों को डर या भय नहीं हुआ था। अच्छी बात को विचार कर ही वे चारों ओर भाग गए थे।"

४१. सर्वज्ञता का अनुमान करना

"भन्ते नागसेन ! आप लोग कहा करते हैं–"बुद्ध सर्वज्ञ हैं।" फिर भी कहा जाता है कि सारिपुत्र और मोग्गलान के मण्डली के साथ निकाल दिये जाने पर चातुमा के शाक्य और ब्रह्मा सहम्पति भगवान् के पास गए। उन्होंने बीज और बछड़े की उपमा देकर भगवान् को समझाया और क्षमा करवा दिया।"[1] भन्ते नागसेन ! भगवान को क्या वे उपमायें मालूम नहीं थी कि उसे सुनकर वे मान गए और उन्होंने क्षमा कर दिया ?"

"भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् को वे उपमायें मालूम नहीं थीं तो उनकी सर्वज्ञता पर आक्षेप आता है। और, यदि उनको ये उपमायें मालूम थी, तो यों ही

१. मज्झिम-निकाय–'चातुमा-सुत्तन्त', पृष्ठ २६७। देखो बोधिनी २ परि. ६६

बिना समझे बूझे कर्कशता के कारण उनको जाँचने के लिए निकाल दिया था; इस तरह, उनकी करुणा पर आक्षेप आता है। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! बुद्ध सर्वज्ञ थे, तो भी उपमाओं से प्रसन्न हो कर मान गए और उन्होंने क्षमा कर दिया।

"महाराज ! बुद्ध धर्म के गुरु हैं। वे दोनों उपमायें उन्हीं के द्वारा पहले बताई जा चुकी थीं।"

पति की अपनी ही चीजों से

"महाराज ! पति की अपनी ही चीजों से स्त्री उसे प्रसन्न कर देती है और मना लेती है; और वह कुछ भी स्वीकार कर लेता। महाराज ! इसी तरह, चातुमा के शाक्य और ब्रम्हा सहम्पति ने भगवान् को अपनी ही बताई हुई उपमाओं से प्रसन्न कर के मना लिया था। भगवान् ने भी 'बहुत अच्छा' कह कर अपनी स्वीकृति दे दी थी।"

राजा की अपनी कंघी से

"महाराज ! राजा की अपनी ही कंघी से नाई उनके बालों को सवाँर उन्हें प्रसन्न कर देता है। राजा 'बहुत अच्छा' कह अपनी स्वीकृति प्रगट कर देता है, तथा नाई को मुँह-माँगा इनाम देता है। महाराज ! इसी तरह, चातुमा के शाक्य और ब्रम्हा सहम्पति ने भगवान् को अपनी ही बताई हुई उपमाओं से प्रसन्न करके मना लिया था। भगवान् ने भी 'बहुत अच्छा' कह अपनी स्वीकृति दे दी थी।"

उपाध्याय के अपने ही पिण्डपात से

"महाराज ! सेवा टहल करने वाला श्रामणेर अपने उपाध्याय के ही लाये गये पिण्डपात्र से भोजन को निकाल सामने ठीक से परोस देता है, जिससे वह (उपाध्याय) प्रसन्न हो 'बहुत अच्छा' कह अपनी स्वीकृति प्रगट कर देता है। महाराज ! इसी तरह, चातुमा के शाक्य और ब्रम्हा सहम्पति ने भगवान् को अपनी ही बताई उपमाओं से प्रसन्न कर के मना लिया था। भगवान् ने भी 'बहुत अच्छा' कह अपनी स्वीकृति दे दी थी।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जैसा कहते हैं मैं स्वीकार कर लेता हूँ।"

चौथा वर्ग समाप्त

---

१. अंगुत्तर-निकाय, ४।१३।

४२. घर बनवाना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने यह कहा है–

"मित्रता जड़ने से भय उत्पन्न होता हैं,
घर गृहस्थी में पड़ने से राग बढ़ता है,
न मित्रता का जोड़ना और न घर गृहस्थी में पड़ना,
मुनि लोग यही चाहते हैं।"[1]

साथ ही साथ यह भी कहा है–"सुन्दर विहारों को बनवा उनमें विद्वानों को बसावे।"[2]

"भन्ते ! यदि भगवान् ने ठीक कहा है, "मित्रता जोड़ने से" तो यह बात झूठी ठहरती है कि "सुन्दर विहारों को बनवा उनमें विद्वानों को बसावे।" और यदि यह ठीक है कि "सुन्दर विहारों को बनवा उनमें विद्वानों को बसावे।" तो यह बात झूठी ठहरती है कि "मित्रता जोड़ने से।" यह भी एक दुविधा है।

"महाराज ! भगवान् ने यथार्थ में कहा है–
मित्रता जोड़ने से भय उत्पन्न होता है,
घर गृहस्थी में पड़ने से राग बढ़ता है।
न मित्रता का जोड़ना और न घर गृहस्थी में पड़ना,
मुनि लोग यही चाहते हैं।"

"और, यह भी ठीक ही है कि, "सुन्दर विहारों को बनवा उनमें विद्वानों को बसावे।"

"महाराज ! भगवान् ने जो कहा है, "मित्रता जोड़ने से" सच्ची ही बात है। इसमें कुछ भी छोड़ा नहीं गया हैं। इस पर कुछ और टीका टिप्पणी नहीं चढ़ाई जा सकती है। यह भिक्षुओं के लिये बिलकुल उपयुक्त हैं, बिलकुल योग्य है, उचित है.......।"

"महाराज! जंगल का मृग बिना घर का स्वच्छन्द घूमता है; जहां चाहता हैं, वहीं होता है। महाराज ! इसी तरह, यह भिक्षु के लिये एकदम ठीक समझाना चाहिए:–

"मित्रता जोड़ने से भय उत्पन्न होता हैं,
घर गृहस्थी में पड़ने से राग बढ़ता है।

---

१. सुत्तनिपात–'मुनि-सुत्त' की पहली गाथा।
२. चुल्लवग्ग–४–१–५।

न मित्रता का जोड़ना और न घर गृहस्थी में पड़ना,
"मुनि लोग यही चाहते हैं।"

"महाराज ! भगवान् ने जो कहा है, "सुन्दर विहारों को बनवा कर उनमें विद्वानों को बसावे" सो दो बातों को दृष्टि में रख कर कहा है। कौनसी दो बातों को ? (१) विहार दान करने को सभी बुद्धों ने सराहा है, उसकी अनुमति दी है, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है, तथा उसे बड़ा ही प्रशस्त बताया है। इस तरह, विहार दान करने से जन्म ग्रहण करने, बूढ़े होने, बीमार पड़ने और मरने से बच जाता है। विहार दान करने का यह पहला फल है।--फिर भी, (२) विहार बने रहने से भिक्षुओं को टिकने की जगह मिल जायगी। जो भिक्षुओं का दर्शन करना चाहेंगे उनके लिये बड़ी आसानी होगी। यदि भिक्षुओं के रहने का कोई विहार बना न हो तो उनसे मिलना बड़ा कठिन हो जायगा। विहार दान करने का यह दूसरा फल है। इन्हीं दो बातों को दृष्टि में रखकर भगवान् ने कहा है, "सुन्दर विहारों को बनवा उनमें विद्वानों को बसावे।" इसका अर्थ यह नहीं है कि भिक्षु लोग विहार को अपना घर ही बना लें।

"ठीक है भन्ते नागसेन ! मैं मान लेता हूँ।"

४३. भोजन में संयम

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है, 'जागो, आलस्य मत करो; भोजन करने में संयम रक्खो।" उन्होंने यह भी कहा है, "उदायि ! कभी कभी मैं इस पात्र से भर कर या उससे भी अधिक खाता हूँ।"[1]

"भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् ने ठीक में कहा है, 'जागो, आलस्य मत करो; भोजन करने में संयम रक्खो" तो यह बात झूठी ठहरती है कि वे पात्र से भर कर या उससे भी अधिक खाते थे। और, यदि यह ठीक बात है कि भगवान् पात्र से भर कर या उससे अधिक खाते थे तो उन्होंने ऐसा कभी नहीं कहा होगा, "जागो; आलस्य मत करो; भोजन करने में संयम रक्खो।" यह भी एक दुविधा है।"

'महाराज ! भगवान् ने यथार्थ में कहा है 'जागो; आलस्य मत करो; भोजन करने में संयम रक्खो।" और यह भी कहा है, "उदायि! कभी कभी मैं इस पात्रसे भर कर या उससे भी अधिक खाता हूँ।"

"महाराज ! भगवान् ने जो कहा है, "जागो, आलस्य मत करो; भोजन करने में संयम करो" सो बिलकुल सच्ची बात है। इसमें कुछ झूठा नहीं है। हमेशा लागू होने वाली यह बात है। इस पर और कुछ टीका-टिप्पणी नहीं चढ़ाई जा सकती हैं। बात ऐसी है। एकदम सत्य है। जैसा कहना चाहिये था वैसा ही कहा

१. मज्झिम निकाय--'महा उदायि-सुत्तन्त,' ७७

गया है। इसको कोई उलट नहीं सकता। यह ऋषि की कही गई बात है, मुनि की०, भगवान् की०, अर्हत् की०, प्रत्येक बुद्ध की०, जिन की०, सर्वज्ञ की०, बुद्ध की०, सम्यक् सम्बुद्ध की कही गई बात है। महाराज! भोजन में संयम नहीं रखने से हिंसा भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्री-गमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, शराब भी पीता है, माता को भी मार डालता है, अर्हत् को भी मार डालता है, संघ को भी फोड़ देता है, दुष्ट चित्त से बुद्ध को लहू भी बहा देता है। महाराज! भोजन में संयम नहीं करने के कारण ही देवदत्त ने संघ को फोड़ दिया था जिससे एक कल्प तक रहने वाले कर्म को पाया। इनको और ऐसी ही दूसरी बहुत सी बातों का ख्याल करके बुद्ध ने कहा था, "जागो; आलस्य मत करो; भोजन करने में संयम रक्खो।"

"महाराज! जो भोजन करने में संयम रखता है उसे चार आर्यसत्यों का ज्ञान प्राप्त होता है; ब्रह्मचर्य-वास के चार बड़े-बड़े फल को पा लेता है;[1] चार प्रतिसम्भिदाओं में, आठ समापत्तियों में तथा छः अभिज्ञाओं में पूर्णता पा लेता है; सारे श्रमण धर्मों का पालना कर लेता है।

"महाराज! क्या उस सुग्गे ने भोजन में संयम करके तावतिंस तक सारे लोगों को कँपा कर देवेन्द्र को भी अपनी सेवा में नहीं लगा दिया था! महाराज! इसे और इसी तरह दूसरी भी बहुत सी बातों का विचार कर ही भगवान् ने कहा था, "जागो; आलस्य मत करो; भोजन में संयम रक्खो।"

"महाराज! और, जो भगवान् ने कहा था, "उदायि! मैं कभी कभी इस पात्र से भरकर या इससे अधिक भी खाता हूँ" सो तो उन्हीं की बात थी, जिन्होंने जो कुछ करना था सभी को समाप्त कर डाला था, जिनने परम फल पा लिया था, जिनका ब्रह्मचर्य सफल हो गया था, जिनमें से सभी मल हट गये थे, जो सर्वज्ञ थे, स्वयंभू थे, बुद्ध थे।

"महाराज! जिसे वमन करवाया जा रहा है, जिसे जुलाब दिया गया है या जिसे कोई तेज खुराक दी गई है वैसे रोगी को परहेज से रखना चाहिए। वैसे ही, जिसके साथ क्लेष लगा है, जिसने सत्य का साक्षात्कार नहीं किया है उसे भोजन में संयम करना चाहिये।

"महाराज! चमकते हुये, अच्छी जाति के साफ मणिरत्न को माँजना, घासना या धोना नहीं होता। महाराज! वैसे ही, सम्यक्-सम्बुद्ध 'क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित है' इस प्रश्न से ऊपर उठ जाते हैं।"

"ठीक है भन्ते नागसेन मुझे स्वीकार है।"

---

१. स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्।

४४. भगवान् का नीरोग होना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है, "भिक्षु ! मैं ब्राह्मण हूँ, आत्मत्यागी, आचरण में संयत, अन्तिम शरीर धारण करने वाला और अलौकिक वैद्य या जर्राह ।" उन्होने यह भी कहा है, "भिक्षुओं ! मेरे श्रावक भिक्षुओं में सबसे नीरोग रहने वाला बक्कुल है ।"[1] ऐसा देखा जाता है कि भगवान् अनेक बार अस्वस्थ हो हो गये थे ।"

"भन्ते ! यदि भगवान् सचमुच अलौकिक थे तो स्थविर बक्कुल के विषय में जो कहा गया है वह झू ा ठहरता है । और यदि स्थविर बक्कुल यथार्थ में सबसे अधिक नीरोग थे तो भगवान् का अलौकिक होना झूठा ठहरता है । यह भी एक दुविधा है ।"

"महाराज ! भगवान ने यथार्थ में कहा हैं, "भिक्षुओं ! मैं ब्राह्मण हूँ, आत्मत्यागी, आचरण में संयत, अन्तिम शरीर धारण करने वाला, अलौकिक वैद्य या जर्राह।" उन्होने यह भी ठीक ही में कहा है, "भिक्षुओ ! मेरे श्रावक भिक्षुओं में सब से नीरोग रहने वाला बक्कुल है ।"

किंतु, यह उन भिक्षुओं को लक्ष्य करके कहा गया था जो भगवान् के उपदेशों को कण्ठ करके उनमें अपनी ओर से भी कुछ मिलाकर आगे की पीढी में बढ़ा देते थे । महाराज! भगवान् के श्रावक भिक्षुओं में से कितने ऐसे थे जो दिन रात खड़े-खड़े या चङ्क्रमण करते ही भावना में बिता देते थे । किन्तु, भगवान् तो खड़े भी रहते थे, चङ्क्रमण भी करते थे, बैठ भी जाते थे, और लेट भी जाते थे । इस तरह, वे इस बात में भगवान् से भी टप जाते थे ।

"महाराज! भगवान् के श्रावक भिक्षुओं में से कितने ऐसे थे जो केवल एक ही बार भोजन करते थे । वे प्राणों के चले जाने पर भी दूसरी बार भोजन ग्रहण नहीं करते थे । महाराज ! और, भगवान् तो दो बार भी, तीन बार भी भोजन कर लेते थे । इस तरह, वे इस बात में भगवान् से भी टप जाते थे ।

"महाराज ! ऐसे ही, भिन्न भिन्न श्रावकों के विषय में भिन्न भिन्न बातें कही जाती हैं । महाराज ! किंतु, भगवान् तो सबों से अलौकिक थे-शील में, समाधि में, प्रज्ञा में, वैराग्य में, मोक्ष के साक्षात्कार करने में, दस बलों में, चार वैशारद्यों में, अट्ठारह बुद्ध के गुणों में, छः असाधारण ज्ञानों में और बुद्ध ही में पाये जाने वाले सभी गुणों में । उसी के विषय में कहा गया है:-

---

१. अंगुत्तर निकाय-१-१४-४ ।

"भिक्षुओं ! मैं ब्राह्मण हूँ, आत्मत्यागी, आचरण में संयत, अन्तिम शरीर धारण करने वाला और अलौकिक वैद्य या जर्राह।"

"महाराज ! मनुष्यों में कोई तो ऊँचे कुल का होता है, कोई धनवान् होता है, कोई विद्यावान् होता है, कोई कारीगर होता है, कोई बहादुर होता है, और कोई अत्यन्त चालाक होता है। किंतु राजा सभी से सभी बातों में बढ़ चढ़ कर होता है। महाराज ! इसी तरह, भगवान् सभी के अगुये हैं, सभी से बड़े हैं, और सभी से अच्छे हैं। जो आयुष्मान् बक्कुल नीरोग थे सो अपने एक अभिनीहार (संकल्प) के कारण। महाराज ! जब भगवान् अनोमदस्सी को वात-रोग हो गया था और, फिर भी जब भगवान् विपस्सी अपने अड़सठ हजार शिष्यों के साथ तृण पुष्पक रोग से पीड़ित हो गये थे तब उसने (बक्कुल) एक तपस्वी हो, अनेक दवाइयों से उन्हें चंगा कर दिया था।[1] इसीलिये कहा गया है, "मेरे श्रावक भिक्षुओं में बक्कुल सब से नीरोग है।"

"महाराज ! बीमारी होने या नहीं होने, अथवा धुताङ्ग का पालन करने या नहीं करने से भी भगवान् के बराबर दूसरा कोई नहीं है। महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने संयुक्त निकाय में कहा भी है—"भिक्षुओं ! जितने जीव हैं—बिना पैर के, दो पैर वाले, चार पैरों वाले, अनेक पैरों वाले, रूप वाले, बिना रूप वाले, संज्ञा वाले, संज्ञा-रहित, न संज्ञा वाले और न संज्ञा से रहित,—सभी में बुद्ध ही अगुये गिने जाते हैं, जो अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध हैं।[2]

"ठीक है भन्ते नागसेन ! ऐसी ही बात है।"

४५. अनुत्पन्न मार्ग को उत्पन्न करना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है, "भिक्षुओं ! अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं जो दूसरों को मालूम नहीं रहता।"

साथ ही साथ यह भी कहा है:—

"भिक्षुओं ! मैं ने उस सनातन-मार्ग को देख लिया है जिस पर पहले से बुद्ध चलते आये हैं।"

"भन्ते नागसेन ! यदि बुद्ध उस मार्ग का पता लगाते हैं जो दूसरों को मालूम नहीं था तो उनका यह कहना झूठा ठहरता है कि मैंने सनातन-मार्ग को देख लिया जिस पर पहले से बुद्ध चलते आये हैं। और, यदि उनने सनातन-मार्ग को ही देखा

---

१. जातक, ५४१।

२. संयुत्त-निकाय, ४४-१०३।

४/५/४५

है तो यह बात झूठी ठहरती है कि बुद्ध उस मार्ग का पता लगाते हैं जो दूसरों को मालूम नहीं था। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज भगवान् ने यथार्थ में कहा है, "भिक्षुओं! अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं जो दूसरों को मालूम नहीं रहता।" उन्होंने यह भी ठीक ही में कहा है, 'भिक्षुओं! मैं ने उस सनातन-मार्ग को देख लिया है जिस पर पहले से बुद्ध चलते आये हैं।"

"महाराज! ये दोनों ही सच्ची बातें हैं। महाराज! पहले के बुद्धों के परिनिर्वाण पा लेने तथा शासन के उठ जाने से मार्ग का लोप हो गया था। उस लोप हो गये सनातन-मार्ग को अपनी प्रज्ञा-चक्षु से बुद्ध ने देख लिया था। इसी से उन्होंने कहा है, "भिक्षुओं! मैंने उस सनातन-मार्ग को देख लिया है जिस पर पहले से बुद्ध चलते आये हैं।"

"महाराज! पहले के बुद्धों के परिनिर्वाण पा लेने, तथा शासन के उठ जाने से मार्ग का लोप हो गया था। वह मार्ग छिप गया था= भुला गया था= खो गया था। उस मार्ग को बुद्ध ने फिर भी नई तरह से ढूढ़ लिया। इसी से उन्होंने कहा है, 'भिक्षुओं! बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं जो किसी दूसरे को मालूम नहीं रहता।"

चक्रवर्ती राजा का मणि-रत्न

"महाराज! चक्रवर्ती राजा के मर जाने पर मणिरत्न भी पहाड़ की चोटी पर अन्तर्धान हो जाता हैं। यदि दूसरा चक्रवर्ती राजा सभी व्रतों को पूरा करता है तो फिर भी प्रगट हो जाता है।[1] महाराज! तो क्या आप कहेंग कि उसने मणिरत्न को उत्पन्न कर दिया?"

"नहीं भन्ते! वह मणिरत्न तो पहले ही से वर्तमान था। उसने हाँ, उसे दूसरी बार प्रकट कर दिया।"

"महाराज! उसी तरह, जो पहले बुद्धों का असल अत्यन्त श्रेष्ठ अष्टाङ्गिक मार्ग था, और जो शासन न रहने से लुप्त हो गया था, उसे भगवान ने अपनी प्रज्ञा-चक्षु से फिर भी खोज निकाला है। इसी लिये कहा है, 'भिक्षुओं! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते है जो दूसरों को मालूम नहीं रहता।"

---

१. देखो दीर्घनिकाय-चक्रवर्ती सूत्र

माता का बच्चा पैदा करना

"महाराज ! माता की कोख में बच्चा वर्तमान तो रहता ही है। उसके बाहर आने पर लोग कहते है– माता ने बच्चा पैदा किया। महाराज ! उसी तरह, पहले का ही मार्ग जो शासन के न रहने से लुप्त हो गया था उसे भगवान ने अपनी प्रज्ञाचक्षु से फिर भी खोज निकाला है। इसी लिये कहा है, "भिक्षुओं! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं जो दुसरों को मालूम नहीं रहता।"

खोई हुई वस्तु को निकालना

"महाराज! किसी खोई हुई चीज को जब कोई देख कर पा लेता है तो लोग कहते हैं-इसने इस चीज को निकाला है। महाराज ! उसी तरह; पहले का ही मार्ग, जो शासन के न रहने से लुप्त हो गया था, उसे भगवान् ने अपनी प्रज्ञा-चक्षु से फिर भी खोज निकाला है। इसी लिये कहा है, "भिक्षुओ ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं जो दूसरों को मालूम नहीं रहता।"

जंगल काटकर जमीन बनाना

"महाराज ! यदि कोई जंगल काटकर साफ करता है तो लोग कहते हैं—उसने यह जमीन बनाई है। यथार्थ में, जमीन पहले ही से बनी थी; वह आदमी केवल उसे काम में लाने वाला होता है। महाराज ! इसी तरह, पहले का ही मार्ग जो शासन के न रहने से लुप्त हो गया था, उसे भगवान ने अपनी प्रज्ञा-चक्षु से फिर खोज निकाला। इसी लिये कहा है, "भिक्षुओं ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध उस मार्ग का पता लगा लेते हैं जो दूसरों को मालूम नहीं रहता।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है मैं स्वीकार हूँ।"

४६. लोमस काश्यप के विषय में

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है, "पूर्व के मनुष्य-जन्मों में ही मैंने अहिंसा का अभ्यास कर लिया था।"

साथ ही साथ यह भी कहा है, "लोमस काश्यप नामका ऋषि होकर मैंने शतशः प्राणियों का वध कराके बाजपेय्य नामका महा-यज्ञ किया था।"[1]

"भन्ते नागसेन ! यदि भगवान् ने यह ठीक में कहा है, "पूर्व के मनुष्य-जन्मों में ही मैंने अहिंसा का अभ्यास कर लिया था", तो उनका यह कहना झूठा ठहरता हैं कि, लोमस काश्यप नाम का ऋषि होकर मैंने शतशः प्राणियों का वध करा के बाजपेय्य नाम का महा-यज्ञ किया था।" और यदि उन्होने यह सत्य कहा है कि, "लोमस काश्यप नाम का ऋषि हो कर शतशः प्राणियों का वध करा के बाजपेय्य

---

१. लोमस कस्सप जातक ४३३।

नाम का महायज्ञ किया था" तो उनकी कही हुई यह बात झूठी ठहरती है कि "पूर्व के मनुष्य-जन्मों में ही मैंने अहिंसा का अभ्यास कर लिया था।" यह भी एक दुविधा है।

"महाराज! भगवान् ने यह यथार्थ में कहा है, "पूर्व के मनुष्य-जन्मों में ही मैंने अहिंसा का अभ्यास कर लिया था।" उन्होंने यह भी ठीक कहा है, लोमस काश्यप नामका ऋषि होकर शतशः प्राणियों का वध करा के वाजपेय्य नामका महा-यज्ञ किया था।" किंतु यह तो उन्होंने राग के वश में अपने को भूल कर किया था ठंडी बुद्धि से सोच-विचार कर नहीं।"

"भन्ते नागसेन! आठ प्रकार के लोग जीव-हिंसा करते है।"

"कौनसे आठ?"

(१) रागी अपने राग के वश में आकर जीव-हिंसा करता है, (२) द्वेषी अपने द्वेष के वश में आकर जीव-हिंसा करता है, (३) मूढ़ अपने मोह के वश में आ कर जीव-हिंसा करता है, (४) घमण्डी अपने घमण्ड के वश में आ कर जीव-हिंसा करता है, (५) लोभी अपने लोभ के वश में आकर जीव-हिंसा करता है, (६) निर्धन अपनी जीविका के लिये जीव-हिंसा करता है, (७) मूर्ख लोग खेल समझ कर जीव-हिंसा करते हैं, और (८) राजा दण्ड देने के लिये जीव-हिंसा करता है। भन्ते! यही आठ प्रकार के लोग जीव-हिंसा करते हैं। भन्ते नागसेन! किंतु शायद बोधि-सत्व ने (बिना इन कारणों के) स्वाभाविक तौर पर ही जीव-हिंसा की होगी?"

"नहीं महाराज! बोधि-सत्व ने स्वाभाविक तौर पर जीव-हिंसा नहीं की थी। महाराज! यदि बोधिसत्व स्वाभाविक तौर से महा-यज्ञ करना चाहते तो यह नहीं कहे होते:-

"समुद्र तक फैली हुई
चारों ओर सागर से घिरी हुई पृथ्वी को
निन्दा के साथ लेना मैं नहीं चाहता
सय्ह! ऐसा समझो॥"[1]

"महाराज! ऐसा कहने पर भी बोधिसत्व चन्द्रावती राजकुमारी को देखते ही उसके प्रेम में पड़ कर मन के बेकाबू हो जाने से अपने को भूल गये थे। उसकी उत्कण्ठा तथा विह्वलता से पागल या किसी भूले भटके के ऐसा ही बड़ी

१. सय्ह जातक ३१०।

जल्दबाजी में उनने महायज्ञ किया था। पशुओं की गर्दन कटने से लहू की धार बह चली थी।

"महाराज! पागल, जिसका मिजाज सनक गया है जलती आग को भी पकड़ लेता है, खिसियाये साँप को भी धर लेता है, पागल हाथी के पास भी चला जाता है, जिसके किनारे का पता नहीं है ऐसे समुद्र में भी कूद पड़ता है, गढ़हे, कुएँ में भी घुस जाता है, कँटीली जगह में भी चला जाता है, पहाड़ की ऊँची ढ़ाल से भी कूद पड़ता है, मैला भी खाने लगता है, सड़कों पर नंगे भी घूमता है, और भी तरह-तरह की लीलायें करता है महाराज! इसी तरह, बोधिसत्व चन्द्रावती राजकुमारी को देखते ही उसके प्रेम में पड़ कर मन के बेकाबू हो जाने से अपने को भूल गये थे। उसकी उत्कण्ठा तथा विव्हलता से पागल या किसी भूले भटके के ऐसे ही बड़ी जल्दी बाजी में उन्होने महायज्ञ किया। यज्ञ में बहुत से पशुओं का वध किया गया था। पशुओं की गर्दन कटने से लहू की धार बह चली थी।

"महाराज! राज-दण्ड विधान के अनुसार भी सनके हुये लोगों के अपराध उतने बड़े नहीं समझे जाते हैं। परलोक की बातों में भो वैसा ही है।"

'महाराज! यदि कोई पागल किसी को जान से मार दे तो आप उसे क्या दण्ड देंगे?"

"भन्ते! पागल को क्या दण्ड देना है? उसे पीट पाटकर छोड़ दिया जाता है। उसके लिये बस यही दण्ड है।"

"महाराज! ठीक में पागल के लिये कोई दण्ड नहीं है। पागल का अपराध कोई अपराध नहीं; उसे क्षमा कर दिया जाता है। महाराज! इसी तरह, बोधिसत्व चन्द्रावती राजकुमारी को देखते ही उसके प्रेम में पड़ कर मन के बेकाबू हो जाने से अपने को भूल गये थे। उसकी उत्कण्ठा तथा विव्हलता से पागल या किसी भूलेभटके के ऐसा हो बड़ी जल्द-बाजी में उन्होने महायज्ञ किया। यज्ञ में बहुत से पशुओं का वध किया गया था। पशुओं की गर्दन कटने से लहू की धार वह चली थी।

जब उनका नशा उतर गया और वे आपे में आये तो प्रव्रजित हो, पाँच अभिज्ञाओं को प्राप्त कर ब्रह्मलोक चले गये।"

"ठीक है भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं मैं मानता हूँ।"

४७. छद्द न्तऔर ज्योतिपाल के विषय में

"भन्ते नागसेन! भगवान् ने गजराज छद्दन्त के विषय में कहा है—"

 ४/५/४७

"इसे मार डालूंगा--ऐसा विचार करते काषाय वस्त्र को देखा जो ऋषियों की ध्वजा है। बहुत दुःख पाते हुये भी उनके मन में यह बात आई--साधुशील अर्हत वध करने योग्य नहीं है[1]।"

"साथ ही साथ ऐसा भी कहा है, जोतिपाल माणवक हो उन्होंने अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध भगवान् काश्यप को 'मथमुण्डा,' 'नकली साधु' इत्यादि अनुचित और रुखे शब्दों से चिढ़ा कर अपमानित करना चाहा था[2]।"

"भन्ते! यदि बोधिसत्व ने पशु-योनि में जन्म लेकर भी काषाय वस्त्र की प्रतिष्ठा स्वीकार की थी तो जोतिपाल माणवक की बात झूठी ठहरती है। और, यदि जोतिपाल माणवक ने सचमुच काश्यप भगवान् को 'मथमुण्डा,' 'नकली साधु' इत्यादि अनुचित और रुखे शब्दों से चिढ़ा कर अपमानित करना चाहा था तो छद्दन्त गजराज के विषय में जो कुछ कहा गया है वह झूठा ठहरता है। यदि पशु योनि में जन्म लेकर बोधिसत्व ने कड़े दुःख को सहते हुये भी काषाय वस्त्र की प्रतिष्ठा की थी, तो पके ज्ञानवाला मनुष्य हो कर काश्यप भगवान् के साथ ऐसा बर्ताव क्यों किया, जो अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, दशबल, लोकनायक तथा प्रतापी थे, जिनके चारों और पोरसा भर दिव्य तेज छिटका करता था, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ थे और जो सुन्दर बनारसी चीवर को धारण किये हुये थे। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज! भगवान् ने छद्दन्त नामक गजराज के विषय में ठीक ही कहा है:-"

"इसे मार डालूंगा-ऐसा विचार करते काषाय वस्त्र को देखा जो ऋषियों की ध्वजा है। बहुत दुःख पाते हुये भी उनके मन में यह बात आई--साधुशील अर्हत् वध करने के योग्य नहीं है।

"और उन्होंने यह कहा है-

"जोतिपाल माणवक होकर उन्होने अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध काश्यप भगवान् को 'मथमुण्डा', 'नकली साधु' इत्यादि अनुचित और रुखे शब्दों में चिढ़ा कर अपमानित करना चाहा था।"

"किंतु जोतिपाल ने अपनी जाति और अपने कुल के वश से वैसा किया था। महाराज! जोतिपाल जिस कुल में पैदा हुआ था उसमें श्रद्धा या धर्म की ओर झुकाव कुछ भी नहीं था। उसके माँ-बाप, भाई-बहन, दाई, नौकर, मजदूर तथा

---

१. छद्दन्त जातक--५१४।
२. मज्झिम निकाय-घटिकार सुत्तन्त।

परिवार के सभी लोग ब्रह्मा के उपासक थे, ब्रह्मा की पूजा किया करते थे। ब्रह्मा ही सबसे श्रेष्ठ और उत्तम हैं-ऐसा मानकर और, साधुओं को नीच और घृणित समझते थे। उन्हीं लोगों की बात को बार-बार सुनते रहने के कारण भगवान् (काश्यप) से मिलने के लिये घटीकार नामक कुम्हार के द्वारा बुलाये जाने पर जोतिपाल ने कहा था, "उस मथमुण्डे नकली साधु को देखने से क्या लाभ ?"

"महाराज ! अमृत भी विष के साथ मिला देने से तीता होता है। ठंडा पानी भी आग पर चढ़ा देने से खौलने लगता है। इसी तरह, जोतिपाल माणवक जिस कुल में पैदा हुआ था उसमें श्रद्धा या धर्म की ओर झुकाव कुछ भी नहीं था; सो उसने अपने कुल के विचारों में पड़ मानों अन्धे होकर बुद्ध के प्रति निन्दा और अपमान के शब्द कहे थे।"

"महाराज ! लपटें मार मार कर बहुत तेज जलती हुई आग की ढ़ेर भी पानी पड़ जानेसे बुझ जाती है; उसकी सारी चकम चली जाती है; ठंड़ी हो जाती है; और पके हुये निग्गुण्ठि फल के समान काली कोयले की ढेरी हो जाती है। महाराज। इसी तरह, जोतिपाल माणवक पुण्यवान्, श्रद्धालु और अत्यन्त ज्ञानी होने पर भी उसने श्रद्धा और धर्म से रहित कुल में उत्पन्न हो उसी कुल के विचारों में पड़ मानों अन्धा बन बुद्ध के प्रति निन्दा और अपमान के शब्द कहे थे।

"किंतु, जब वह उनके पास गया तो बुद्ध के गुणों को जान उनका क्रीत-दास सा बन गया। बुद्ध-धर्म के अनुसार प्रव्रजित हो उसने अभिज्ञा और समापत्तियों को प्राप्त कर लिया था। मरने के बाद सीधे ब्रह्मलोक चला गया।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं, मैं स्वीकार करता हूँ।

४८. घटीकार के विषय में

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है:– "घटीकार कुम्हार का घर पूरे तीन महीनों तक बिना छप्पर का पड़ा रहा, किंतु पानी नहीं बरसा[1]।"

साथ ही साथ ऐसा भी कहा जाता है :–

"भगवान काश्यप की कुटी पर वृष्टि हुई थी।"[1]

"भन्ते नागसेन ! यह कैसी बात है कि बुद्ध जैसे पुण्यात्मा की कुटी पर वृष्टि हुई थी ? बुद्ध का तेज भी वैसा ही होना चाहिये था !"

"भन्ते ! यदि भगवान् ने ठीक में कहा है, "घटीकार कुम्हार का घर पूरे तीन महीनों तक बिना छप्पर का पड़ा रहा, "किंतु पानी नहीं बरसा," तो यह बात

---

१. मज्झिम निकाय–'घटीकार-सुत्तन्त'।

झूठी ठहरती है कि, भगवान् काश्यप की कुटी पर वृष्टि हुई थी और यदि भगवान् काश्यप की कुटी पर सत्य में वृष्टि हुई थी तो भगवान् की यह बात झूठी ठहरती है कि, "घटीकार कुम्हार का घर पूरे तीन महीनों तक बिना छप्पर का पड़ा रहा, किंतु पानी नहीं बरसा।" यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने यह ठीक ही में कहा है, "घटीकार कुम्हार का घर पूरे तीन महीनों तक बिना छप्पर का पड़ा रहा, किंतु पानी नहीं बरसा।" यह भी सत्य है कि भगवान् काश्यप की कुटी पर वृष्टि हुई थी।"

"महाराज ! घटीकार कुम्हार शीलवान्, धार्मिक और पुण्यवान् था। वह अपने बूढे और अन्धे माता-पिता का पालन-पोषण कर रहा था। उस के कहीं दूसरी जगह गए रहने पर बिना उसे पूछे ही लोगों ने उसके छप्पर को उजाड़ कर उस से बुद्ध की कुटी को छा दिया था। छप्पर के उस तरह उजड़ जाने से उसके हृदय में कुछ भी दुःख या क्षोभ नहीं हुआ; बल्कि उल्टे बड़ी प्रीति-उत्पन्न हो गई। अत्यन्त आनन्दित होकर उसके मन में यह बात आई, "अहो ! लोक में उत्तम भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों" उस पुण्य का फल उसे यहीं मिल गाय।"

"महाराज ! बुद्ध उतनी बात से चञ्चल नहीं होते हैं। महाराज ! पर्वतराज सुमेरू कड़ी से कड़ी आँधी आने पर भी नहीं हिलता। अनगिनत बड़ी-बड़ी नदियों के गिरने पर भी महासागर न तो भर जाता है और न उस में बाढ़ आती है। महाराज ! इसी तरह, बुद्ध उतनी बात से चञ्चल नहीं होते।

बुद्ध के हृदय में संसार के लोगों के प्रति जो अनुकम्पा थी उसी से उनकी कुटी पर वृष्टि हुई थी। महाराज ! दो बातों को ध्यान में रख कर बुद्ध अपने योग-बल से किसी चीज को उत्पन्न करके उसे काम में नहीं लाते। कौनसी दो बातों को ? (१) देवता और मनुष्य बुद्ध को उनकी आवश्यक चीजों का दान कर के उस पुण्य से आवागमन के दुःखमय जंजाल से छूट जायेंगे; और (२) कहीं दूसरे लोग ताना न मारने लग जावें—ऋद्धि बल के सहारे वे अपनी जीविका चलाते हैं। इन्हीं दो बातों को ध्यान में रख बुद्ध अपने योग—बल से किसी चीज को उत्पन्न करके उसे काम में नहीं लाते।"

"महाराज ! यदि देवेन्द्रया स्वयं ब्रह्मा उनकी कुटी पर वृष्टि नहीं होने देते तो वह भी बुरा और निन्दनीय होता। क्योंकि, तो भी लोग ऐसा कह सकते थे—ये बुद्ध अपनी माया फैला कर संसार को मोह लेते हैं और अपने वश में कर लेते हैं। इस लिये, वहाँ पर उन्हें कुछ न करना ही अच्छा था। महाराज ! बुद्ध अपने लिये किसी चीज की कभी सिफारिश नहीं करते, इसी से उन पर कोई अंगुली नहीं उठा सकता।"

"ठीक है "भन्ते नागसेन आप जो कहते हैं मैं मानता हूँ।"

४९. बुद्ध की जात

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है, "भिक्षुओं ! आत्म-यज्ञ करने वाला मैं ब्राह्मण हूँ।"

साथ ही साथ साथ यह भी कहा है, शैल ! मैं राजा हूँ।"[1]

"भन्ते यदि भगवान् ने ठीक में कहा है, "भिक्षुओं ! आत्म-यज्ञ करने वाला मैं ब्राह्मण हूँ" तो उन्होने यह झूठ कहा कि, "शैल ! मैं राजा हूँ।" और, यदि यह यथार्थ में कहा कि, "शैल ! मैं राजा हूँ ।" तो यह झूठ ठहरता है कि वे आत्म-यज्ञ करने वाले ब्राह्मण थे। वे या तो क्षत्रिय होंगे या ब्राह्मण-दोनों हो नहीं सकते। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज भगवान् ने ठीक में कहा है, "भिक्षुओं ! आत्म-यज्ञ करने वाला मैं ब्राह्मण हूँ।" और यह भी कहा है, "शैल ! मैं राजा हूँ।" एक कारण ऐसा है जिससे बुद्ध ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों हो सकते है।"

"भन्ते नागसेन ! भला वह कारण कौनसा है जिससे बुद्ध ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही ठहराये जा सकते हैं ?"

बुद्ध ब्राह्मण हैं

"महाराज ! जितने पाप और जितनी बुराइयाँ हैं सभी बुद्ध से बाहर हो चुकी हैं, नष्ट हो चुकी हैं, दूर चली गई हैं, कट गई हैं, क्षीण हो गई हैं, बन्द हो गई हैं, शान्त हो गई हैं। इसी से बुद्ध ब्राह्मण कहे जा सकते हैं। ब्राह्मण उसी को कहते हैं जिसने सारे संशयों को हटा दिया है, भ्रम को दूर दिया है। बुद्ध सत्य में ऐसे हैं-इसीलिये वे ब्राह्मण कहे जाते हैं।"

"महाराज ! ब्राह्मण उसी को कहते हैं जिसकी तृष्णा मिट गई है, जो आवागमन से छूट गया हैं, जो फिर जन्म ग्रहण नहीं करेगा, जो बुरे विचार और राग को नष्ट कर बिलकुल शुद्ध हो गया हैं, और जो बिना किसी दूसरे पर भरोसा किये अपने पर निर्भर रहता हैं। बुद्ध सत्य में ऐसे हैं-इसलिये वे ब्राह्मण कहे जाते हैं।"

"महाराज ! ब्राह्मण उसी को कहते हैं जो ऊँची, श्रेष्ठ, सुन्दर और दैवी भावनाओं में विहार करता रहता है। बुद्ध सत्य में ऐसे हैं-इस लिये वे ब्राह्मण कहे जाते हैं।"

---

१. मज्झिम निकाय-सेल सुत्तन्त।

"महाराज ! ब्राह्मण उसी को कहते। हैं जो स्वयं अध्ययन-शील रह दूसरों को भी विद्या-दान करता है, दान ग्रहण करता है, अपनी इन्द्रियों को वश में लाता है, आत्म-संयम करता है, कर्तव्य-परायण रहता है, कर्तव्य-परायण रहता है, और जो वंश के अच्छे सिलसिलों को बनाये रखता है। बुद्ध सत्य में ऐसे हैं-इस लिये वे ब्राह्मण कहे जाते हैं।"

"महाराज ! ब्राह्मण उसी को कहते हैं जो ब्रह्म-विहार (समाधि की एक अवस्था) में संलग्न रहता है। बुद्ध सत्य में ऐसे हैं-इस लिये वे ब्राह्मण कहे जाते हैं।"

"महाराज ! ब्राह्मण उसी को कहते हैं जो अपने पूर्व जन्मों की बातों को पूरा-पूरा जानता है। बुद्ध सत्य में ऐसे हैं-इस लिये वे ब्राह्मण कहे जाते हैं।"

"महाराज ! भगवान् को "ब्राह्मण"-ऐसा नाम न माता ने दिया था, न पिता ने, न भाई ने, न मित्र और साथियों ने, न बन्धु-बान्धवों ने, न श्रमण और ब्राह्मणों ने और न देवताओं ने। विमोक्ष पा लेने से ही उनको यह नाम दिया जाता हैं। बोधिवृक्ष के नीचे मारसेना को हरा, तीनों काल के पापों को बाहर कर, सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने से ही उनका नाम ब्राह्मण पड़ा था।"

"महाराज ! इसी कारण से बुद्ध ब्राह्मण कहे जाते हैं।"

"भन्ते नागसेन ! और; किस कारण से बुद्ध राजा हुये ?"

बुद्ध राजा हैं

"महाराज ! राजा उसी को कहते हैं जो राज-पाट चलाता है और सभी जगह सल्तनत बनाये रखता है। महाराज ! बुद्ध भी दश हजार लोकों पर धर्म से राज करते हैं; देवता, मार, ब्रह्मा, श्रमण और ब्राह्मणों के साथ सारे संसार में सल्तनत बनाये रखते हैं। इसलिये बुद्ध राजा हुये।"

"महाराज ! राजा उसी को कहते हैं जो सभी लोगों को अपने वश में ले आता है, अपने बन्धु-बान्धवों को राजी खुशी बनाये रखता है, शत्रुओं को सताता है, जिसका नाम और यश बहुत फैला हो, जो अत्यन्त बल-सम्पन्न हो, और जो अपने निर्मल स्वेत-छत्र को ऊँचा उठाता है। महाराज ! भगवान् भी दुष्ट मार-सेना को सता कर देवताओं और मनुष्यों को आनन्दित करते हैं, दश हजार लोकों में अपने महान् यश को फैलाते हैं, शान्ति-बल से दृढ़ रहते हैं, सभी ज्ञान से युक्त होते हैं, स्वेत, निर्मल और श्रेष्ठ विमुक्तीरूपी स्वेत छत्र को ऊँचा उठाते हैं। इसलिये बुद्ध राजा हुये।"

"महाराज ! राजा उसी को कहते हैं जो भेंट करने के लिये आये हुये लोगों से वन्दनीय होता है। महाराज ! भगवान् भी सभी आये हुये लोगों से वन्दनीय होते हैं। इसलिये बुद्ध राजा हुये।"

"महाराज ! राजा उसी को कहते हैं जो प्रसन्न कर देने वालों को मुंहमाँगा वर देकर सन्तुष्ट कर देता है। महाराज ! भगवान् भी मन, वचन और कर्म से प्रसन्न करने वालों को दुःख से मुक्त कर देने वाले निर्वाण-फल को देते हैं जो संसार के सभी इनामों से बढ कर है। इस लिये बुद्ध राजा हुये।"

"महाराज ! राजा उसी को कहते हैं जो राज-न्याय के विरुद्ध आचरण करने वालों को झिड़कियाँ बताता है, जरमाना करता है, या और भी अनेक प्रकार के दण्ड देता है। महाराज ! उसी तरह, भगवान् जो निर्लज्ज और असन्तुष्ट हो कर बुद्ध की प्रज्ञप्तियों के विरुद्ध आचरण करता है, उसे निन्दित करते हैं, अपमानित करते हैं और शासन से निकाल बाहर भी करते हैं। इसलिये बुद्ध राजा हुये।"

"महाराज ! राजा उसी को कहते हैं जो पूर्व काल से धार्मिक राजाओं बताये गये न्याय और नियमों को लागू करता है, धर्म-पूर्वक शासन करके लोगों का बड़ा प्रिय बना रहता है तथा धर्म-बल से अपने वंश को चिर काल के लिये गद्दी पर बनाये रखता है। महाराज ! उसी तरह, भगवान् पूर्व के बुद्धों के बताये गये नियमों और न्याय को कहते हैं, संसार के धर्म-गुरु बने रहते हैं, देवताओं और मनुष्यों के प्रिय होते हैं, तथा अपने धर्म-बल से शासन को चिर काल तक बनाये रखते हैं। इस लिये बुद्ध राजा हुये।"

"महाराज ! यही कारण है कि बुद्ध ब्राह्मण और राजा दोनों हो सकते हैं। इन कारणों गिनती चतुर से चतुर भिक्षु कल्प भर में भी नहीं कर सकता। अब मेरे अधिक कहने से क्या मतलब ! मैंने जो संक्षेप में कहा है उसी से आप समझ लें।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं मैं मानता हूँ।"

५०. धर्मोपदेश करके भोजन करना नहीं चाहिए।

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा हैं, "धर्मोपदेश करके भोजन नहीं करना चाहिए।"

"ब्राह्मण ! ज्ञानी लोग ऐसा नहीं किया करते।
धर्मोपदेश करने के लिये कुछ ग्रहण करने में बुद्ध सहमत नहीं होते।
ब्राह्मण ! धर्मानुकूल आचरण करने पर ऐसी ही बात होती है॥"[1]

---

१. सुत्तनिपात, १।४।६

"फिर भी, लोगों को धर्मोपदेश करते समय भूमिका में भगवान् पहले पहल दान देने की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे, और उसके बाद ही शील के विषय में कुछ कहते थे। सर्वलोकेश्वर उन भगवान् की बात को सुन देवता और मनुष्य सभी खूब दान करने थे। उनके लाये हुये दान को भिक्षु लोग ग्रहण किया करते थे।"

"भन्ते ! यदि भगवान् ने यथार्थ में कहा है, "धर्मोपदेश करके भोजन नहीं करना चाहिये" तो यह बात झूठी ठहरती है कि धर्मोपदेश करते समय भगवान् पहले पहल दान देने की प्रशंसा करते थे। और, यदि ठीक में धर्मोपदेश करते समय भगवान् पहले पहल दान देने की प्रशंसा करते थे तो ऐसा वे नहीं कह सकते कि, "धर्मोपदेश करके भोजन नहीं करना चाहिये।" सो कैसे ! भन्ते ! जो यथार्थ में दान का पात्र है यदि वह गृहस्थों के सामने दान देने की प्रशंसा करे तो उसके उपदेश से वे श्रद्धा में आ कर और भी अधिक दान देंगे। और, जो भी उस दान को ग्रहण करेंगे वह सभी धर्मोपदेश करने के कारण ही कहा जायगा। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने यथार्थ में कहा है, "धर्मोपदेश कर के भोजन नहीं करना चाहिए, ब्राह्मण ! ज्ञानी लोग ऐसा नहीं किया करते। धर्मोपदेश करने के लिये कुछ ग्रहण करने में बुद्ध सहमत नहीं होते। ब्राह्मण ! धर्मानुकूल आचरण करने पर ऐसी ही बात होती ॥"

लड़के को खिलौना

"और, यह भी सत्य है कि भगवान् पहले पहल दान की प्रशंसा करते हैं। सभी बुद्धों की यही चाल है–दान की प्रशंसा से पहले उनसे चित्त को खींच कर बाद में शील-पालन का उपदेश देते है। महाराज ! छोटे लड़कों को लोग पहले-पहल कुछ खिलौना देते हैं–जैसे बंकुली, गुल्ली दण्डा, घिरनी, खेलने का पैला, खेलने की गाड़ी, धनुही–उसके बाद उससे जो चाहते हैं करवा लेते हैं। महाराज ! इसी तरह बुद्ध दान की प्रशंसा करके पहले उनके चित्त को खींच लेते हैं बाद में शील-पालन का उपदेश देते हैं।

रोगी को तेल

"महाराज ! वैद्य रोगी को पहले चार पाच दिनों तक तेल पिलवाता है। उससे उसका शरीर चिकना जाता है और उसे कुछ ताकत आ जाती है। बाद में जुलाब दिया जाता है। महाराज ! इसी तरह, बुद्ध दान की प्रशंसा करके पहले उनके चित्त को खींच लेते है। बाद में शीलपालन का उपदेश देते हैं।"

"महाराज! दान करने वाले दाताओं का चित्त बड़ा कोमल और मृदु होता हैं। वे दानरूपी पुल या नाव पर चढ़ कर संसार-सागर के पार चले जाते हैं। इसी कारण से भगवान् पहले पहल उनकी अपनी कर्मभूमि का उपदेश देते हैं। इसके माने यह नहीं है कि वे उनसे उलटें या सीधे दान मांगते हैं।"

दान कैसे मांगा जाता है ?

"भन्ते ! तो उलटे या सीधे कैसे दान माँगा जाता हैं ?"

"महाराज ! दो प्रकार से–(१) कर के, और (२) कह के। सो, एक प्रकार 'कर के उलटे या सीधे दान माँगना' अच्छा है और दूसरे प्रकार का बुरा; एक प्रकार का 'कह कर उलटे या सीधे दान माँगना' अच्छा है और दूसरे प्रकार का बुरा।"

(क) कर के बुरा माँगना

"कौनसा 'कर के उलटे या सीधे दान माँगना बुरा' है ?"

"कोई भिक्षु गृहस्थ के घर पर जा अनुचित स्थान में खड़ा हो जाता हैं। यह बुरा 'कर के उलटे या सीधे दान माँगना' है। अच्छे भिक्षु इस तरह, 'कर के उलटे या सीधे दान माँग कर' नहीं ग्रहण करते। जो व्यक्ति ऐसा करता हैं। वह बूद्ध शासन में निन्दित, बुरा, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह बुरी जीविका वाला जाना जाता हैं।"

"महाराज ! फिर भी, कोई भिक्षु भिक्षाटन के लिये निकल किसी गृहस्थ के दरवाजे पर अनुचित स्थान में खड़ा हो, मोर की तरह गर्दन लम्बी कर इधर-उधर ताकता है–जिसमें लोग मुझे देख लें और आकर भिक्षा दें। यह भी बुरा करके उलटे या सीधे दान माँगता है। अच्छे भिक्षु इस तरह 'कर के उलटे या सीधे दान माँग कर' नहीं ग्रहण करते। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह बुद्ध-शासन में निन्दित, बुरा, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह बुरी जीविका वाला जाना जाता है।"

"महाराज ? फिर भी, कोई भिक्षु ठुड्डी हिला, भौं चला, या अंगुली से इशारा कर के भिक्षा माँगता है। यह भी बुरा कर के उलटे या सीधे दान माँगना' है। जो अच्छे भिक्षु हैं वे इस तरह, 'कर के उलटे या सीधे दान माँग कर' नहीं ग्रहण करते। जो व्यक्ति ऐसा करता है। वह बुद्ध-शासन में निन्दित, बुरा, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह बुरी जीविका वाला जाना जाता हैं।"

"कौनसा 'कर के उलटे या सीधे दान माँगना' अच्छा कहा जाता है ?"

(ख) भला माँगना

"महाराज ! कोई भिक्षु भिक्षाटन के लिये निकल गृहस्थ के दरवाजे पर उचित स्थान में खड़ा होता है, सावधान, शान्त और सतर्क रहता। यदि कोई देना

चाहता हैं तो खड़ा रहता है, नहीं तो आगे बढ़ जाता है। यह अच्छा 'कर के उलटे या सीधे माँगना' है। जो अच्छे भिक्षु हैं वे इस तरह ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति ऐसा करता हैं वह बुद्ध-शासन में प्रशंसित, भला, ऊँचा और उचित समझा जाता है। वह अच्छी जीविका वाला जाना जाता हैं। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है:-

"ज्ञानी लोग माँगते नहीं हैं. आर्यजन माँगना बुरा समझते हैं। आर्य लोग भिक्षा के लिये चुपचाप खड़े हो जाते हैं, यही उनका माँगना है[1]।"

(क) कह के बुरा माँगना

"कौनसा 'कह के उलटे या सीधे दान माँगना बुरा समझा जाता है?"

"महाराज! कोई भिक्षु खुल्लम-खुल्ला कह कर शिफारिश करता है-'मुझे चीवर, पिण्डपात, शायनासन, या ग्लानप्रत्यय चाहिए।' इस तरह, माँगना बुरा होता है। जो अच्छे भिक्षु हैं वे इस तरह ग्रहण नहीं करने। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह बुद्ध-शासन में निन्दित, बुरा, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह बुरी जीविका वाला जाना जाता है।"

"महाराज कोई भिक्षु दूसरों को सुनाते हुये कहता है-'मुझे फलानी चीज चाहिये।' इस तरह दूसरों से माँग-माँगकर वह लोभी हो जाता है। इस तरह माँगना भी बुरा होता है। जो अच्छे भिक्षु है वे इस तरह ग्रहण नहीं करते। जो व्यक्ती ऐसा करता है वह-बुद्ध शासन में निन्दित, बुरा, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह बुरी जीविका वाला जाना जाता है।

"महाराज! फिर भी, कोई भिक्षु बाते करते हुये लोगों को सुना देता है 'भिक्षुओं को इस तरह दान देना चाहिये'। उसे सुन कर लोग वही लाते है जिसे उसने कहा था। इस तरह भी 'उलटे या सीधे माँगना बुरा है।' जो अच्छे भिक्षु है वे इस तरह ग्रहण नहीं करते। जो व्यक्ती ऐसा करता है वह बुद्ध-शासन में निन्दित बुरा, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह बुरी जीविका वाला जाना जाता है।

"महाराज! एक बार स्थविर सारीपुत्र सूरज डूब जाने पर रात के समय बीमार हो गये। तब, स्थविर महामोग्गलान ने उनसे पूछा कि कौनसी दवा चाहिये। इस पर स्थविर सारिपुत्र ने कह दिया। उनके कहने पर वह दवा लाई गई। किंतु स्थविर सारिपुत्र को ख्याल हो आया, "अरे! मैंने माँग कर वह दवा ली है। यह बुरी बात है। ऐसा करने से मेरी जीविका बुरी हो जायगी।" सो उनने यह दवा नहीं

१. जातक, ३५४।

खाई। इस तरह भी 'उलटे या सीधे माँगना' बुरा है। जो अच्छे भिक्षु है वे इस तरह ग्रहण नहीं करते जो व्यक्ती ऐसा करता है वह बुद्ध-शासन में निन्दित। बुरा, पतित और अनुचित समझा जाता है। वह बुरी जीविका वाला जाना जाता है।"

(ख) भला माँगना

"कौन-सा 'कह के उल्टे या सीधे माँगना' अच्छा समझा जाता है।"

"महाराज! किसी भिक्षू को आवश्यकता पड़ जाने पर अपने बन्धु-बांधवों को या वर्षा-वास के लिये जिन लोगों ने निमन्त्रण दिया है, उनको सूचित करता है। यह 'कह के उल्टे या सीधे माँगना' अच्छा समझा जाता है। जो अच्छे भिक्षु हैं वे इस तरह ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ती ऐसा करता है वह बुद्ध-शासन में प्रशंसित, भला, ऊँचा और उचित समझा जाता है। वह अच्छी जीविका वाला जाना जाता है। भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध ने भी इसकी अनुमति दी है। महाराज! किसी भारद्वाज ब्राह्मण के निमंत्रण को जो भगवान् ने अस्वीकार कर दिया था सो इस लिये, कि वह तीर-खींच कर उनसे झूठा तर्क कर के उनमें दोष निकालना चाहता था। इसलिये भगवान् ने उस निमंत्रण को स्वीकार ही नहीं किया।"

भगवान् के भोजन में देवताओं का दिव्य ओज भर देना

"भन्ते! भगवान् के भोजन में देवता लोग क्या सदा ही दिव्य ओज भर देते थे या केवल सूअर के माँस और मधुपायस इन्ही दो भोजनों में [1]?

"महाराज! सदा ही भगवान् के हर एक कौर उठाने पर देवता लोग उसमें दिव्य ओज भर देते थे। ठीक वैसे ही जैसे राजा का रसोइयाँ उनके हर एक कौर उठाने पर सूप देता जाता है। वेरञ्जा में भी सूखे यव के धान को खाते समय भी देवताओं ने उसे दिव्य ओज से बार-बार भिगो दिया था। उससे भगवान् का शरीर पुष्ट बना रहा।"

"भन्ते धन्य हैं वे देवता जो बुद्ध के शरीर की पुष्टि के लिये हर घड़ी और हर जगह तत्पर रहते है। ठीक है। भन्ते नागसेन! मैंने समझ लिया।

५१. धर्मदेशना करने में बुद्ध का अनुत्सुक हो जाना

"भन्ते नागसेन! आप लोग कहते है, बुद्ध चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे-धीरे अपने ज्ञान को बढ़ाते हुये अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो गये।"

---

१. सूअर के माँस (=सूकर मद्दव)- देखो महापरिनिर्वाण सूत्र। 'चुन्द' के दिये गये इस भोजन को खाकर भगवान् की मृत्यु हो गई थी।

मधुपायास-(=दूध की खीर)-देखो महावग्ग ....। इस भोजन को खाने के बाद भगवान् का बुद्धत्व को लाभ हुआ था।

जैसे कोई धनुर्धर

किन्तु सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने पर धर्मोपदेश करने के लिये नहीं किंतु शान्त रहने की उनकी इच्छा होने लगी [1]। भन्ते नागसेन ! जैसे कोई धनुर्धर या उसका शिष्य लडाई में जाने के लिये बहुत दिनों से सीख–सीख कर तैयार हो जाये किंतु ठीक मौके में जब लड़ाई छिड़ जाय तब अपने घसक दे, वैसे ही बुद्ध चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे–धीरे अपने ज्ञान को बढ़ाते हुये अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो जानें के बाद धर्मदेशना करने से घसक गये।

जैसे कोई कुस्तीबाज

"भन्ते नागसेन! जैसे कोई कुस्तीबाज या उसका शिष्य बहुत दिनों से कुस्ती के सारे दाँव-पेच को सीख कर तैयार हो जाय, किंतु जिस दिन कुस्ती की बाजी लगे उस दिन घसक जाय, वैसे ही बुद्ध चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे–धीरे अपने ज्ञान को बढ़ाते हुये अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो जाने के बाद धर्मदेशना करने से घसक गये।

"भन्ते नागसेन! बुद्ध क्या भय से घसक गये, या समझा न सकने से, या अपनी कमजोरी से, या यथार्थ में सर्वज्ञता न प्राप्त करने से ? क्या कारण था ? कृपया समझा कर मेरा संदेह दूर करें !

'भन्ते यदि यह बात सच है कि ' बुद्ध चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे–धीरे अपने ज्ञान को बढ़ाते हुये अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो गये' तो यह बात झूठी ठहरती है कि 'सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने पर धर्मोपदेश करने के लिये नहीं किंतु शांत रहने की उनकी इच्छा होने लगी।' और, यदि यह बात ठीक है कि, सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने पर धर्मोपदेश करने के लिये नहीं किंतु शांत रहने के की उनकी इच्छा होने लगी' तो यह बात झूठी ठहरती है कि, बुद्ध चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे-धीरे अपने ज्ञान को बढ़ाते हुये अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो गये।' यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! दोनों बाते ठीक है। बुद्ध यथार्थ में चार असंख्य एक लाख कल्पों से संसार के उद्धार के लिये धीरे–धीरे अपने ज्ञान को बढ़ाते हुये अन्त में बुद्धत्व प्राप्त कर सर्वज्ञ हो गये। किंतु, सर्वज्ञता प्राप्त कर लेने पर ठीक में धर्मोपदेश नहीं करके केवल शान्त रहने की उनकी इच्छा होने लगी। ऐसी इच्छा होने का कारण यह था कि पहले तो उहोंने धर्म को इतना गम्भीर, सूक्ष्म, दुर्ज्ञेय और दुर्बोध देखा; और दुसरे, संसार के लोगों को कामवासनाओं में बेत रह लगा हुआ, तथा

---

१. देखो विनय पिटक, पृष्ठ ७७।

झूठी सत्कायदृष्टि[1] से जकड़ा पाया। यह देख उनके मन में छः पांच होने लगा—"किसे मैं सिखाऊँगा ? किस तरह मैं सिखाऊँगा ?" लोगों की कमजोर समझ को वे देखने लगे।

कोई वैद्य

"महाराज ! कोई वैद्य या जर्राह अनेक रोगों से पीड़ित किसी बीमार के पास जा कर विचारता है—किस इलाज से, किस दवाई से इसके रोग दूर होंगे ? उसी तरह, पहले तो बुद्ध ने धर्म को इतना गम्भीर देखा और दूसरे, संसार के लोगों को कामवासनाओं में बेतरह लगा हुआ, तथा झूठी सत्काय-दृष्टि से जकड़ा पाया। यह देख उनके मन में छः पाँच होने लगा—"किसे मैं सिखाऊँगा ? किस तरह मैं सिखाऊँगा ?" लोगों की कमजोर समझ को वे देखने लगे।

कोई राजा

"महाराज ! कोई क्षत्रिय राजा गद्दी पा अपने द्वारपाल, शरीर-रक्षक, सभासद, नागरिक, सिपाही, सेना, खजाना, अफसर, मातहत के राजा और भी दूसरों को देखकर विचारता है—कैसे, किस तरह इनका संचालन करूँ ! उसी तरह, पहले तो बुद्ध ने धर्म को इतना गम्भीर देखा और दूसरे, संसार के लोगों को कामवासनाओं में बेतरह लगा हुआ; तथा झूठी सत्काय-दृष्टि से जकड़ा हुआ देखा। यह देख उनके मन में छः पाँच होने लगा—"किसे मैं सिखाऊँगा ? किस तरह मैं सिखाऊगा ? लोगों की कमजोर समझ को वे देखने लगे।"

सभी बुद्धों की यही चाल रही है

"महाराज ! और, सभी बुद्धों की भी यही चाल है कि वे ब्रह्मा से प्रार्थना किये जाने के बाद ही धर्मोपदेश करते हैं। इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि उस समय सभी लोग-क्या तपस्वी, क्या परिव्राजक, क्या श्रमण और क्या ब्राह्मण-ब्रह्मा के उपासक होते हैं, ब्रह्मा ही को मानते हैं, ब्रह्मा ही की पूजा करते हैं। उस बली, यशस्वी, विख्यात, ज्ञानी, अलौकिक और सबके अगुये ब्रह्मा के झुक जाने से देवताओं के साथ सारा लोक झुक जाता है, धर्म को मान लेता और ग्रहण कर लेता है। महाराज ! यही कारण है कि बुद्ध ब्रह्मा से प्रार्थना किये जाने के बाद ही धर्मोपदेश करते हैं।"

जैसे राजा किसी पुरुष की खातिरदारी करे

"महाराज ! कोई राजा या राज-मन्त्री किसी पुरुष को बड़ी खातिरदारी करे। उसके ऐसा करने से प्रजायें भी उसकी खातिरदारी में लग जाती हैं। महाराज !

---

१. सत्काय-दृष्टि (शरीर में एक नित्य आत्मा होने का भ्रम)—देखो मज्झिमनिकाय-'महा-पुराणम-सुत्तन्त'।

इसी तरह, बुद्ध के सामने ब्रह्मा के झुक जाने से देवताओं के साथ सारा लोक झुक जायगा। जिसकी पूजा होती है उसी की पूजा संसार करता है। इसी कारण से ब्रह्मा स्वयं ही सभी बुद्धों को धर्मोपदेश करने के लिये प्रार्थना करता है। इस तरह, ब्रह्मा से प्रार्थना किये जाने पर ही बुद्ध धर्मोपदेश करते हैं।"

"ठीक है भन्ते नागसेन! आपने अच्छा समझाया। खूब कहा है। मैं मान लेता हूँ।"

पाँचवाँ वर्ग समाप्त

---

५२. बुद्ध के कोई आचार्य नहीं

"भन्ते नागसेन! भगवान् ने कहा है–

"न मेरा कोई आचार्य है।
न मेरे समान दूसरा कोई है।
देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार में।
मेरा जोड़ा कोई नहीं है॥"[1]

साथ ही साथ यह भी कहा है, "भिक्षुओं! आलार कालाम मेरा गुरु था और मैं उसका शिष्य। तो भी उसने मुझे अपनी बराबरी की जगह में बैठाया और बड़ा सम्मान किया।"[2]

"भन्ते नागसेन! यदि भगवान् ने ठीक में कहा है–

"न मेरा कोई आचार्य है।
न मेरे समान दूसरा कोई है।
देवताओं औप मनुष्यों के साथ सारे संसार में
मेरा जोड़ा कोई नहीं है॥"

तो उनका यह कहना झूठा ठहरता है कि, "भिक्षुओं! आलार कालाम मेरा गुरु था और मैं उसका शिष्य। तो भी उसने मुझे अपनी बराबरी की जगह में

---

१. बुद्धत्व प्राप्ति के बाद जब भगवान् धर्मचक्रप्रवर्तन के लिये काशी जा रहे थे तो रास्ते में उन्हें 'उपक' नाम का एक परिव्राजक मिला। उसने पूछा, 'मित्र! आप का गुरु कौन है?' इस पर भगवान् ने यह गाथा कही थी। देखो विनय पिटक, पृष्ठ ७९।

२. देखो मज्झिम निकाय, 'बोधिराज-कुमार-सुत्तन्त ८५।

बैठाया और बड़ा सम्मान किया।" और, यदि उन्होंने यह यथार्थ में कहा हैं कि "भिक्षुओं ! आलार कालाम मेरा गुरु था," तो उनका यह कहना झूठा ठहरता है कि, "न मेरा कोई आचार्य है। यह भी एक दुविधा है।"

"महाराज ! भगवान् ने यह ठीक में कहा है–

"न मेरा कोई आचार्य है।

न मेरे समान दूसरा कोई हैं।

देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार में

मेरा जोड़ा कोई नहीं है।"

उन्होने यह भी सत्य में कहा हैं–'भिक्षुओं ! आलार कालाम मेरा गुरु था–और मैं उसका शिष्य। तो भी उसने मुझे अपनी बराबरी की जगह में बैठाया और बड़ा सम्मान किया।" किंतु, वह तो उन्होंने बुद्ध होने के पहले की बात को कहा था। उस समय तो वे सम्यक् सम्बुद्ध नहीं हुये थे, बोधि–सत्व ही थे। यह उस समय के आचार्य होने की बात है।"

"महाराज ! सम्यक्–सम्बुद्ध होने के पहले, बोधिसत्व रहने के समय उनके पाँच आचार्य हो चुके थे जिनके साथ सीखते हुये उन्होंने अपना समय बिताया था।"

"कौन से पाँच ?"

(१) महाराज ! वे आठ ब्राह्मण जिन्होंने बोधिसत्व के जनमते ही आकर, उनके लक्षणों को बताया था। उनके नाम–(राम) (२) धज, (३) लक्खण (४) मन्ती, (५) यज्ञ, (६) सुयाम, (७) सुभोज और (८) सुदत्त। इन लोगों ने उनमी स्वस्ति को बता कर उनकी रखवाली कर दी थी। वे उनके पहले आचार्य हुये।

(२) महाराज ! उनका दूसरा आचार्य सब्बमित्त नाम का ब्राम्हण था। वह बड़ा कुलीन, उदिच्च के ऊँचे घर का शब्द–शास्त्र का, जाननेवाला, वैयाकरण और वेद के छः अङ्गों का पण्डित था। पिता शुद्धोदन ने उन्हें बहुत धन दे तथा सोने की झारी से संकल्प कर कुमार सिद्धार्थ को विद्याध्ययन के लिये सौंप दिया था। वह उनका दूसरा आचार्य हुआ।

(३) महाराज ! उनका तीसरा आचार्य वह देवता था जिसने उनके हृदय को ज्ञान की खोज में चल पड़ने के लिये उत्सुक बना दिया, और जिसकी बात को सुन कर वे महल में नहीं रह सके–घर से निकल गये थे। वह देवता उनका तीसरा आचार्य हुआ।

(४) महाराज ! उनका चौथा आचार्य यही आलार कालाम था।

(५) महाराज ! और रामपुत्र उद्दक उनका पाँचवा आचार्य हुआ।

"महाराज ! सम्यक् सम्बुद्ध होने के पहले, बोधिसत्व–रहते ही रहते उनके ये पाँच आचार्य हुये थे। किंतु, ये सभी उनको लौकिक बात सिखाने के आचार्य थे। महाराज ! लोकोत्तर धर्म में सर्वज्ञ बुद्ध को सिखाने पढ़ाने वाला कोई नहीं है। महाराज ! बुद्ध ने स्वयं ही बुद्धत्व प्राप्त किया था–उनका इस विषय में कोई दूसरा आचार्य नहीं था। इसी लिये बुद्ध ने स्वयं कहा है–"

"न मेरा कोई आचार्य है,
न मेरे समान दूसरा कोई है।
देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार में
मेरा जोड़ा कोई नहीं है॥"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! मैंने समझ लिया।"

५३. संसार में एकसाथ दो बुद्ध इकट्ठे नहीं हो सकते

"भन्ते नागसेन ? भगवान् ने कहा है–"भिक्षुओं ! यह बात हो नहीं सकती, यह सम्भव नहीं कि संसार में एकसाथ दो अर्हत, अपूर्व, सम्यक् सम्बुद्ध इकठ्टे उत्पन्न हों। ऐसा न कभी हुआ है और न हो सकता है[1]।"

और, भन्ते नागसेन ! सभी बुद्ध बुद्धत्व पाने के लिये सैंतीस बातों को बताते हैं; चार आर्य–सत्यों[2] को कहते हैं; तीन शिक्षाओं[3] का उपदेश करते हैं; और सदा कर्तव्य में डटे रहने की शिक्षा देते हैं।

"भन्ते नागसेन ! यदि सभी बुद्ध एक ही राह बतातें हैं; एक ही बात कहते हैं, एक ही उपदेश देते हैं, और एक शिक्षा देते हैं, तो संसार में एकसाथ दो बुद्धों के इकठ्टे होने में क्या आपत्ति है ? एक बुद्ध के होने से संसार प्रकाश से भर जाता है। यदि एकसाथ दो बुद्ध उत्पन्न हो जायँ तो दोनों के प्रकाश से उजाला और भी तेज रहेगा। वे दोनों बुद्ध सुखपूर्वक उपदेश दें, शिक्षा दें। आप कृपया इसका कारण बतावें जिससे मेरी शंका दूर हो।"

"महाराज ! यह लोक एक ही बुद्ध को एक बार धारण कर सकता है। एक से अधिक के गुणों को सम्हाल नहीं सकता। यदि एक दूसरे भी बुद्ध उत्पन्न हो

---

१. अगुत्तर निकाय–१–१५–१०।

२. दु:ख, दु:ख समुदय, दु:ख निरोध, दु:ख निरोध–गामिनी प्रतिपदा।

३. तीन शिक्षा–अधिशील, अधिचित्त, अधिप्रज्ञा।

जायँ तो न सम्हाल सकने के कारण यह लोक हिलने लगे, डोलने लगे, नव जाय, झुक जाय, धस जाय, छितरा जाय, टूक टूक हो जाय, और बिलकुल नष्ट हो जाय।"

नाव

"महाराज ! एक ही आदमी का बोझा सम्हाल सकने वाली कोई नाव हो। एक आदमी उस पर चढ़ कर पार उतर सकता हो। तब कोई दूसरा आदमी भी वहाँ आ पड़े, जो आयु, वर्ण · · प्रमाण, तथा सभी तरह से उसी नाव पर सवार हो जाय। महाराज ! तब क्या नाव ठहरेगी ?"

"नहीं भन्ते ! हिलने लगेगी, डोलने लगेगी, नव जायगी, झुक जायगी, धस जायगी, छितरा जायगी, फट जायगी और पानी में डूब कर नष्ट हो जायगी।"

"महाराज ! वैसे ही, यह लोक एक ही बुद्ध को एक बार धारण कर सकता है। एक से अधिक के गुणों को सम्हाल नहीं सकता। यदि एक दूसरे भी बुद्ध उत्पन्न हो जायें तो न सम्हाल सकने के कारण यह लोक हिलने लगे, डोलने लगे, नव जाय, झुक जाय, धस जाय, छितरा जाय, टूक टूक हो जाय और बिलकुल नष्ट हो जाय।"

दुबारा ठूंस कर खा ले

"महाराज ! कोई आदमी मन भर भोजन कर ले। उसका पेट कण्ठ तक पूरा पूरा भर जाय। वह संतुष्ट हो कर बड़ा प्रसन्न हो। उसके पेट में कुछ और अँटने की जगह नहीं बची हो। वह डण्डा के ऐसा बिलकुल टाँट हो जाय। इसके बाद फिर भी दुबारा ठूँस ठाँस कर उतना ही भोजन खा ले। महाराज ! तो क्या वह आदमी सुखी होगा ?"

"नहीं भन्ते ! अपने खा कर मर जायगा।"

"महाराज ! वैसे ही यह लोक एक ही बुद्ध को एक बार धारण कर सकता है। एक से अधिक के गुणों को सम्हाल नहीं सकता। यदि एक दूसरे भी बुद्ध उत्पन्न हो जायँ तो न सम्हाल सकने के कारण यह लोक हिलने लगे, नव जाय, झुक जाय, धस जाय, छितरा जाय, टूक टूक हो जाय, और बिलकुल नष्ट हो जाय।

"भन्ते ! किंतु, धर्म के भार अधिक होने से यह पृथ्वी हिलने डोलने क्यों लगती है ?"

दो गाडी का भार एक ही पर

"महाराज ! बहुमूल्य रत्नों से दो गाड़ियाँ पूरी पूरी भरी हों। उनके बाद एक पर के रत्नों को ले कर लाद दिया जाय।

"महाराज ! तो क्या वह एक गाड़ो दो के बोझ को सम्हाल सकेगी ?"

"नहीं भन्ते ! उसकी नाभी भी फट जायगी। उसके अरे भी टूट जायेंगे। उसकी नेमि भी धस जायगी। अक्ष भी टूट जायगा।"

"महाराज ! तो क्या अधिक रत्नों के भार से गाड़ी टूट जायगी ?"

"हाँ भन्ते ! अवश्य टूट जायगी।"

"महाहाज ! इसी तरह, धर्म का भार अधिक होने से यह पृथ्वी हिलने, ड़ोलने लगती है। और भी जहाँ बुद्ध केवल बताये गये है वहाँ यह बात भी दिखा दी गई है। एक और भी अच्छे कारण को सुनें जिससे संसार में दो बुद्ध एकसाथ इकठ्टे नहीं उत्पन्न हो सकते–

शिष्यों में झगड़ा हो जायगा

"महाराज ! यदि एकसाथ दो बुद्ध उत्पन्न हों तो उनके शिष्यों में झगड़ा खड़ा हो जायगा–तुम्हारे बुद्ध ! मेरे बुद्ध ! !–और दो दल हो जायेंगे; वैसे ही जैसे दो मंत्रियों के दल हो जाया करते हैं। महाराज ! यह एक कारण है जिससे एकसाथ दो बुद्ध इकठ्टे नहीं उत्पन्न होते।"

"महाराज ! एक और भी कारण सुनें जिससे संसार में एकसाथ दो बुद्ध इकठ्टे उत्पन्न नहीं होते–

बुद्ध सबसे अग्र होते हैं

"महाराज ! यदि ससार में एकसाथ दो बुद्ध इकठ्टे उत्पन्न हो जायँ तो यह बात झूठी हो जायगी कि बुद्ध सब के अग्र होते हैं; यह बात झूठी हो जायगी कि बुद्ध सब से बड़े होते हैं; यह बात झूठी हो जायगी कि बुद्ध सब से श्रेष्ठ होते हैं; यह बात झूठी हो जायगी कि बुद्ध अपने ही विशेष होते हैं; यह बात झूठी हो जायगो कि बुद्ध उत्तम होते हैं; यह बात झूठी हो जायगी कि बुद्ध प्रवर होते हैं; यह बात झूठी हो जायगी कि बुद्ध के समान दुसरा कोई नहीं होता है; यह बात झूठी हो जायगी कि बुद्ध अप्रतिपुद्गल होते हैं। महाराज ! इसे भी आप एक कारण समझें जिससे संसार में एकसाथ दो बुद्ध एकठ्टे उत्पन्न नहीं होते।

"महाराज ! और भी, बुद्धों की ऐसी ही चाल हैं, उनका ऐसा स्वभाव ही है कि दो इकठ्टे नहीं उत्पन्न होते।"

"सो क्यों ?"

बड़ी चीज एक बार एक ही होती है

"क्योंकि सर्वज्ञ बुद्ध के गुण इतने बड़े होते हैं। महाराज! संसार में और भी जितनी बडी–बड़ी चीजें हैं एक बार एक ही होती हैं। महाराज ! पृथ्वी बड़ी है, वह एक ही है। सागर बड़ा है, वह एक ही है। सुमेरु पर्वतराज बड़ा है, वह एक ही है। आकाश बड़ा है, वह एक ही है। देवेन्द्र बड़े हैं, वे एक ही हैं। मार बड़ा है, वह एक ही है। महाब्रह्मा बड़े हैं, वे एक ही हैं। अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् बड़े हैं, इस लिये वे संसार में एक ही हैं। महाराज ! इस लिये, जो कहा गया है कि अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् एक बार एक ही उत्पन्न होते हैं सो ठीक ही कहा गया है।"

"भन्ते नागसेन! उपमाओं को दे कर आपने प्रश्न को अच्छा समझाया। मूर्ख आदमी भी ऐसे सुनकर समझ ले सकता है, मुझ जैसे बुद्धिमान् का तो कहना ही क्या है? ठीक है भन्ते नागसेन! आपने जो कहा मैं मानता हूँ।"

५४. महाप्रजापति गौतमी का वस्त्रदान करना

"भन्ते नागसेन! जब भगवान् की मौसी महाप्रजापति गौतमी उन्हें वर्षावास के लिये चीवर देने आई थी तो उन्होंने कहा था, "गौतमी! इसे संघ को दान कर; उसी से मेरी पूजा हो जायगी और साथ साथ संघ की भी।"[1]

"भन्ते! किंतु क्या भगवान् स्वयं संघ-रत्न से बढ़ कर भारी और पूजनीय नहीं हैं जो उन्होंने अपनी मौसी महाप्रजापति गौतमी के लाये हुये वस्त्र को अपने न लेकर संघ को दिलवा दिया। वह वस्त्र भी कैसा था–जिसे उसने अपने हाथों से रुई को तून, बैठा और काट कर बुना था।"

"भन्ते नागसेन! यदि बुद्ध संघ-रत्न से बढ़कर अपने को ऊँचा समझते, तो ऐसा अवश्य जनाते कि 'मुझे देने से अधिक फल होगा'; और तब वे उस वस्त्र को अपने न लेकर संघ को नहीं दिलवा देते। भन्ते! बुद्ध ने यही सोच कर न उस वस्त्र को दिलवा दिया था कि मुझे यह लेना नहीं जँचता है, ठीक नहीं हैं?"

"महाराज! यह सत्य हैं कि जब भगवान् की मौसी महाप्रजापति गौतमी उन्हे वर्षावास[2] के लिये चीवर देने आई थी तो उन्होने कहा था, "गौतमी! इसे संघ को दान कर; उसी से मेरी पूजा हो जायगी और साथ साथ संघ की भी।"

---

१ मज्झिम निकाय–'दक्खिणविभंग–सुत्तन्त' १४२।

२ वर्षावास–देखो विनय पिटक-बोधिनी भी।

"ऐसा उन्होने इसलिये नहीं किया था कि अपने को उस वस्त्र पाने का योग्य पात्र नहीं समझा, न इसलिये कि संघ से वे कम महत्व रखते थे। उन्होने संघ को प्रतिष्ठित करने के लिये ही वैसा किया था, जिसमें आगे चल कर लोग संघ को बड़ा समझना सीखें।

पिता अपने पुत्र की तारीफ करता है

"महाराज! पिता अपनी जिन्दगी में ही अफसर, सिपाही, सेना के बीच तथा राजा के पास अपने पुत्र के गुणों की तारीफ करता है कि इस तरह वह कुछ स्थान पा कर भविष्य में लोगों से सम्मानित हो सकेगा। महाराज! इसी तरह, लोगों के प्रति अनुकम्पा करके उनकी भलाई के लिये बुद्ध ने अपने जीवन काल ही में संघ को सम्मानित कर दिया जिससे वे भविष्य में भी संघ को बड़ा समझना सीखें। इसी से उन्होंने कहा था—"गौतमी! इसे संघ को दान कर; उसी से मेरी भी पूजा हो जायगी और संघ की भो।" महाराज! केवल वह वस्त्र संघ को दिला देनेसे संघ बुद्ध से बड़ा और ऊँचा नहीं हो जाता।"

माता-पिता बच्चों को नहाते है

"महाराज! माता-पिता अपने बच्चों को नहाते हैं, धोते हैं, साफ करते हैं और मलते हैं। तो क्या उससे बच्चे अपने माता-पिता से ऊँचे और बड़े हो जाते हैं?"

"नहीं भन्ते! अपनी इच्छा से ही माता-पिता वैसा करते है—चाहे बच्चा चाहे या नहीं।"

"महाराज! इसी तरह, केवल वह वस्त्र संघ को दिला देनें से संघ बुद्ध से बड़ा और ऊँचा नहीं हो जाता। इच्छा से ही उन्होंने वह वस्त्र संघ को दिलवा दिया था—चाहे संघ चाहता या नहीं।"

राजा की भेंट

"महाराज! कोई आदमी राजा की सेवा में कुछ भेंट चढ़ावे। राजा वह भेंट किसी दूसरे को—सिपाही को, या दूत को, सेनापति को, या पुरोहित को दे दे। तो क्या वह दूसरा व्यक्ति केवल उस भेंट को पाने मात्र से राजा से बड़ा ऊँचा समझा जाने लगेगा?"

"नहीं भन्ते! वह राजा से ऊँचा कैसे होगा? वह तो राजा की ओर से वेतन पाता है जिससे उसकी जीविका चलती है। राजा ही उसको उस स्थान में रख कर अपनी भेंट उसे दे देता हैं।"

"महाराज ! इसी तरह, केवल वह वस्त्र संघ को दिला देने से संघ बुद्ध से बड़ा और ऊँचा नहीं हो जाता। संघ तो मानो बुद्ध का सेवक है, जो उन्हीं को अपना स्वामी समझता है। बुद्ध ही ने संघ को उस स्थान में रख कर उसे यह वस्त्र दिला दिया था।"

"महाराज! बुद्ध के मन में ऐसा ख्याल आया–'संघ सदा पूजित होने के योग्य हैं, अपने पाये हुये दान से मैं संघ ही को पूजित होने दूं'। इसी से उन्होंने संघ को दिलवा दिया। महाराज ! बुद्ध अपने प्रति किये गये सत्कार की ही प्रशंसा नहीं करते, बल्कि संसार में जितने भी योग्य व्यक्ति हैं सभीके प्रति किये गये सत्कार की प्रशंसा करते हैं। महाराज ! मज्झिम-निकाय में देवातिदेव भगवान् ने 'धम्मदायाद' नामक सूत्र का उपदेश करते समय अल्पेच्छता की बढ़ाई करते हुये कहा हैं–"भिक्षुओं वही सबसे बढ़ कर पूज्य और प्रशंसनीय है।" महाराज ! सारे संसार में ऐसा कोई नहीं है जो बुद्ध से अधिक पूजनीय बड़ा या ऊँचा हो। बुद्ध ही सबसे बड़े हैं, अधिक हैं, और ऊँचे हैं। महाराज ! देवताओं और मनुष्यों के बीच भगवान् के सामने खड़ा होकर माणवगामिक नामक देवपुत्र ने संयुक्त-निकाय में कहा है :–

"राजगृह के पहाड़ों में विपुल सबसे श्रेष्ठ हैं।
हिमालय के पहाड़ में सेत, तारों में सूर्य।
जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ हैं, नक्षत्रों में चन्द्रमा;
देवताओं के साथ सारे संसार में बुद्ध ही अग्र कहे जाते हैं॥"[1]

"महाराज ! माणवगामिक देवपुत्र ने यह ठीक ही कहा है बेठीक नहीं, भगवान् ने भी इसे स्वीकार किया था।"

"महाराज ! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने भी कहा है–
"मार-सेना को दमन करने वाले बुद्ध
एक ही के प्रति श्रद्धा रखना, एक ही की शरण में जाना,
या एक ही को प्रणाम करना।
भवसागर से तार सकता है॥"

देवातिदेव भगवान् ने भी कहा है, 'भिक्षुओं ! लोगों के हित के लिये, लोगों के सुख के लिये, लोगों की अनुकम्पा के लिये तथा देवताओं और मनुष्यों की भलाई के लिये एक ही व्यक्ति का उत्पन्न होना सार्थक होता है। किस व्यक्ति का ? अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत का।"[2]

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आपने जैसा बताया उसे मैं मानता हूँ।"

---

१. संयुक्त–निकाय–३-२-१०।
२. अंगुत्तर–निकाय–१-१३-१।

५५. गृहस्थ रहना अच्छा है या भिक्षु बन जाना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है–"भिक्षुओं ! गृहस्थ हो या भिक्षु, किसी के भी ठीक राह पर आ जाने की मैं बढ़ाई करता हूँ। भिक्षुओं ! चाहे गृहस्थ हो या भिक्षु, यदि ठीक राह पर आ गया है तो वह समान रूप से ज्ञान, धर्म और पुण्य का भागी हो सकता है।"[1]

"भन्ते ! उजले कपड़े पहनने वाले, विषयों का भोग करने वाले, स्त्री तथा बाल-बच्चों के झंझट में पड़े रहने वाले, काशी के सुगन्धित चन्दन को लगाने वाले, माला, गन्ध और उबटन का प्रयोग करने वाले, रुपये पैसे के फेर में पड़े रहने वाले तथा अपनी पगड़ी में मणि इत्यादि को सजाने वाले, गृहस्थ भी ठीक राह पर पहुँच जाते हैं और ज्ञान, धर्म तथा पुण्य के भागी होते हैं। शिर मुड़ाने वाले, काषाय वस्त्र पहनने वाले, भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करने वाले, चार शील समूहों को पूरा करने वाले, ढ़ाईसौ-शिक्षापदों[2] को मानने वाले तथा तेरह धुतगुणों के अनुसार रहने वाले प्रव्रजित भिक्षु भी ठीक राह पर पहुँच जाते हैं और ज्ञान, धर्म तथा पुण्य के भागी होते हैं। तो भन्ते ! गृहस्थ और भिक्षु में क्या भेद हुआ ? फिर, तप का करना बेकार है। भिक्षु बनाने का कोई मतलब नहीं। शिक्षापदों के पालन करने का कोई फल नहीं। धुतगुणों के अनुसार रहना फजूल है। दुःख उठाने की क्या जरूरत है यदि आसानी ही से निर्वाण मिल सकता है ?"

"महाराज ! भगवान् ने यथार्थ में कहा है–"भिक्षुओं ! गृहस्थ हो या भिक्षु, किसी के भी ठीक राह पर आ जाने की मैं बड़ाई करता हूँ। भिक्षुओं ! चाहे गृहस्थ हो या भिक्षु, यदि वह ठीक राह पर आ गया है तो समान रूप से ज्ञान, धर्म और पुण्य का भागी हो सकता है।" महाराज ! यह ठीक है। जो राह पर आ गया वही बड़ा है। महाराज ! यदि प्रव्रजित इसी में फूल जाय कि 'मैं प्रव्रजित हूँ' और उचित उद्योग न करे तो उसका भिक्षु बनना बेकार हैं, सारे ज्ञान को प्राप्त करने का कोई फल नहीं। उजले कपड़े पहनने वाले गृहस्थों की बात ही क्या ? महाराज ! गृहस्थ भी ठीक राह पर आ ज्ञान, धर्म और पुण्य का भागी बन सकता है। महाराज ! प्रव्रजित भी ठीक राह पर आ ज्ञान, धर्म और पुण्य का भागी बन सकता है।

"महाराज ! तो भी, भिक्षु ही त्याग का अधिपति है। महाराज ! प्रव्रज्या में बहुत गुण हैं, अनेक गुण हैं, अथाह गुण हैं। प्रव्रज्या के गुणों का अन्दाजा नहीं

---

१. संयुक्त–निकाय–४४-२४।

२. प्रातिमोक्ष के २२७ ही शिक्षापद हैं, २५० क्यों कहा गया मालूम नहीं (सर्वास्तिवाद के अनुसार)।

लगाया जा सकता। महाराज ! जैसे यथेच्छ वर देने वाले मणिरत्न के मूल्य का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता, वैसे ही प्रव्रज्या के बहुत गुण हैं, अनेक गुण हैं, अथाह गुण है; प्रव्रज्या के गुणों का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता।

"महाराज जैसे महासमुद्र के तरङ्गों को नहीं गिना जा सकता, वैसे ही प्रव्रज्या के बहुत गुण हैं, अनेक गुण हैं, अथाह गुण हैं; प्रव्रज्या के गुणों का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता।

"महाराज ! प्रव्रजित जो कुछ करना चाहता है वह अत्यन्त शीघ्र ही पूरा हो जाता है, देर नहीं लगती। सो क्यों ? महाराज ! क्योंकि प्रव्रजित अल्पेच्छ होता है, संतुष्ट होता है, विरागी होता है, संसार के लगाव-बझाव में नहीं पड़ता, उत्साही होता है, बिना घर का होता है, बिना मकान का होता है, शीलों को पूरा करने वाला होता है, साफ आचरण का होता है, धुताङ्गों को धारण करने वाला होता है। महाराज ! इन कारणों से प्रव्रजित जो कुछ करना चाहता है वह अत्यन्त शीघ्र ही पूरा हो जाता है, देर नहीं लगती।"

"महाराज ! जैसे, बिना गाँठ का, बराबर, अच्छी तरह माँजा, सीधा और साफ तीर ठीक से छोड़ने से खूब उड़ता है; वैसे ही प्रव्रजित जो कुछ करना चाहता है वह अत्यन्त शीघ्र ही पूरा हो जाता है, देर नहीं लगती।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! मैं मानता हूँ।"

५६. दुःखचर्या के दोष

"भन्ते नागसेन ! जो बोधिसत्व ने [1]दुःखचर्या (दुखःमय तपस्या) की थी वैसा उद्योग, वैसा उत्साह, वैसा क्लेशों से युद्ध, वैसा मार-सेना का हरा-देना, वैसा आहार का संयम, वैसी कठिन व्रत-चर्या और किसी ने नहीं की थी। किंतु, इस प्रकार की चर्या में कोई फल निकलता न देख उन्होंने उस विचार को छोड़ कर कहा —"इस कठिन दुःखचर्य्या से भी मैं उस मनुष्योत्तर धर्म को नहीं प्राप्त कर सका हूँ जिससे सत्य का दर्शन हो। ज्ञान प्राप्ति का क्या कोई दूसरा मार्ग है ?[1]"

उस दुःखचर्या से हार उन्होंने दूसरे मार्ग से सर्वज्ञता प्राप्त की थी। फिर अपने श्रावकों को उस मार्ग का उपदेश करते हुये कहा :—

"ढ़ाढ़स करो, जोर लगावो, बुद्ध-धर्म में लग जावो। सिरकी के झोपड़े को जैसे हाथी, वैसे ही मार-सेना को तितर बितर कर दो।"

---

१. देखो मज्झिम निकाय, बोधिकुमार सुत्त २४७।

"भन्ते नागसेन ! जिस मार्ग से अपने हार कर हट गये थे उसी में भगवान् अपने श्रावकों को क्यों लगने का उपदेश करते हैं ?"

"महाराज ! तब भी और अब भी, मार्ग वही है। उसी मार्ग पर चल कर बोधिसत्व ने सर्वज्ञता प्राप्त की थी। महाराज ! फिर भी, अत्यन्त परिश्रम करते हुये बोधिसत्व ने अपने आहार को बिल्कुल बन्द कर दिया। वैसा करने से उनका चित्त बहुत दुर्बल हो गया। बहुत दुर्बल हो जाने के कारण सर्वज्ञता नहीं प्राप्त कर सके। उसके बाद धीरे धीरे भोजन करना आरम्भ किया और स्वस्थ हो सर्वज्ञता को पा लिया। महाराज ! सभी बुद्धों के बुद्धत्व पाने का यही मार्ग है।

"महाराज ! जैसे सभी जीवों का आधार आहार है, आहार ही के बल पर सभी जीव सुख से रहते हैं, वैसे ही सभी बुद्धों के बुद्धत्व पाने का यही मार्ग है।"

"महाराज ! यह न तो उद्योग का दोष था, न जोर लगाने का दोष था, और न क्लेशों से युद्ध करने का दोष था, जो भगवान् उस समय सर्वज्ञता नहीं पा सके। यह दोष तो केवल आहार के बिलकुल बन्द कर देने का था। वह मार्ग तो सदा ठीक ही है।

जोर से दौडे

"महाराज ! कोई आदमी रास्ते पर बहुत जोर से दौड़ने लगे। वह गिर पड़े। उसे लकवा मार दे या वह लूंझ हो जावे। तो क्या इसमें पृथ्वी का कोई दोष था जिससे उसे ऐसा कष्ट भोगना पड़ा ?"

"नहीं भन्ते ! पृथ्वी तो हमेशा तैयार ही है। भला उसका दोष कैसा ? आदमी का अपना ही दोष था कि इतनी जोर दौड़ने लगा—जिससे वह गिर पड़ा।"

"महाराज ! उसी तरह, यह न तो उद्योग का दोष था, न जोर लगाने का दोष था, और न क्लेशों से युद्ध करने का दोष था, जो भगवान् उस समय सर्वज्ञता नहीं पा सके। यह दोष तो केवल आहर के बिल्कुल बन्द कर देने का था। वह मार्ग तो सदा ठीक ही है।"

मैली धोती पहने

"महाराज ! कोई आदमी मैली धोती पहने रहे। उसे धुलवाये नहीं। तो उसमें पानी का क्या कसूर ? पानी तो सदा तैयार ही है। उस आदमी का अपना ही दोष है। महाराज ! उसी तरह, यह दोष तो केवल आहार के बिलकुल बन्द कर देने का था। इसलिये बुद्ध अपने श्रावकों को उसी मार्ग में लगने का उपदेश देते हैं। महाराज ! इस प्रकार वह मार्ग सदा ही उचित और उत्तम है।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं मैं उसे स्वीकार करता हूँ।"

---

१. मज्झिम-निकाय-'महासीह-नाद-सुत्तन्त' १२।

५७. भिक्षु के चीवर छोड़ देने के विषय में

"भन्ते नागसेन ! बुद्ध का धर्म महान् हैं, सारतः सत्य है, उत्तम है, श्रेष्ठ है, बड़ा ऊँचा है, अनुपमेय है, परिशुद्ध है, विमल है, स्वच्छ है और दोषरहित है। इस धर्म के अनुसार गृहस्थ को यों ही प्रव्रजित कर देना अच्छा नहीं। गृहस्थ-काल में ही उसे तब तक सिखाना चाहिये जब तक स्त्रोतापत्ति फल को प्राप्त न कर ले। फिर, वह चीवर छोड़ कर लौट नहीं सकता। इसके बाद मजे में उसे प्रव्रजित करे।"

"सो क्यों ?"

"क्योंकि कितने बुरे लोग इस विशुद्ध धर्म में प्रव्रजित हो बाद में चीवर छोड़ गृहस्थ बन जाते है। उनके ऐसा करने से लोगों को यह समझने का मौका मिल जाता है कि, 'श्रमण गौतम का धर्म अवश्य भला नहीं होगा जिससे इतने लोग लौट जाते हैं।' इसी कारण से मेरा यह प्रस्ताव है।"

तालाब की उपमा

"महाराज ! पवित्र, निर्मल और शीतल पानी से लबालब भरा कोई तालाब हो। कोई कीचड़ और गन्दगी में लिपटा हुआ आदमी उस तालाब के पास जाय और बिना नहाये धोये लौट आवे। महाराज ! तो लोग, किस पर दोष लगावेंगे उस आदमी पर या तालाब पर ?"

"भन्ते ! लोग उस आदमी पर ही दोष लगावेंगे-यह तालाब के पास जाकर भी बिना नहाये धोये लिपटा ही लिपटा लौट आया। नहीं इच्छा होने से क्या तालाब उसे पकड़ कर नहला देता ! भला इसमें तालाब का क्या दोष ?"

"महाराज ! वैसे ही, बुद्ध ने विमुक्ति-रूपी सुन्दर जल से पूर्ण सद्धर्मरूपी तालाब को तैयार किया है; कि जो लोग क्लेश की गन्दगी में लिपटे हैं वे इसमें नहा कर अपने सारे क्लेश को धो ड़ाले ! यदि कोई आदमी उस तालाब के पास जाकर भी बिना नहाये-धोये क्लेशों से लिपटे हुये ही लौट आवे और गृहस्थ बन जाय तो उसमें उसी का अपना दोष है। लोग उसी को दोषी ठहरा कर कहेंगे- 'यह बुद्ध-धर्म में प्रव्रजित हो वहाँ न टिकने के कारण फिर लौट कर गृहस्थ हो गया।' अपने उद्योग नहीं करने से क्या बुद्ध-धर्म उसे पकड़ कर जबरदस्ती शुद्ध कर देगा ! भला इसमें बुद्ध-धर्म का क्या दोष ?"

वैद्य की उपमा

"महाराज ! कोई पुरुष कठिन रोग से पीड़ित हो एक वैद्य को देखे, जो रोग पहचानने में बड़ा होशियार हो तथा इलाज करने में जिसका हाथ बड़ा साफ हो। देख कर भी वह न तो उसके पास जाय और अपनी दवा करवावे, रोगी ही रोगी लौट आवे। महाराज ! तो लोग किसको दोषी ठहरावेंगे वैद्य को या रोगी को ?"

"भन्ते ! रोगी को ही लोग दोषी ठहरावेंगे-इतने अच्छे वैद्य के पास जाकर भी यह बिना दवा करवाये रोगी ही रोगी लौट आया। उसकी अपनी इच्छा नहीं होने से क्या वैद्य उसे पकड़ कर जबरदस्ती दवा करता ! भला इसमें वैद्य का क्या दोष ?"

"महाराज ! वैसे ही, बुद्ध ने अपने धर्म-रूपी बक्स में सारे क्लेशों के भयंकर रोग की सबसे अजूक दवा रख छोड़ी है। जो चतुर और बुद्धिमान हैं वे उस दवा को पीकर क्लेश-रोग से छूट जायेंगे। यदि कोई उस दवा को बिना पिये अपने क्लेशों के लिये ही लौट कर गृहस्थ हो जाय तो लोग उसी पर दोष लगावेंगे—यह बुद्ध-धर्म प्रव्रजित हो वहाँ न टिकने के कारण लौट आया और गृहस्थ हो गया। उसके अपने उद्योग नहीं करने से क्या बुद्ध-धर्म उसे पकड़ कर जबरदस्ती शुद्ध कर देता ! भला इसमें बुद्ध-धर्म का क्या दोष ?"

लङ्गर की उपमा

"महाराज ! कोई भूखा आदमी किसी पुण्यार्थ चलने वाले बड़े लंगर में जाय, किंतु बिना कुछ खायें भूखा लौट जावे। तो लोग किसको दोषी ठहरावेंगे—भूखे को या पुण्यार्थ चलने वाले लङ्गर को ?"

"भन्ते ! भूखे ही को लोग दोषी ठहरावेंगे—वह भूख से व्याकुल होकर भी पुण्यार्थ दिये गये भोजन को बिना खाये भूखा ही लौट आया। अपने नहीं खाने से क्या भोजन उसके मुंह में उड़ कर चला जाता ! भला इसमें भोजन का क्या दोष ?

"महाराज ! वैसे ही, बुद्ध ने अपनी धर्म-रूपी थाली में अत्यन्त श्रेष्ठ, शान्त, शिव, प्रणीत और अमृत के ऐसा मीठा 'कायगत-स्मृति'[1] रूपी भोजन परोस दिया हैं। जो चतुर सुजन हैं वे अपने क्लेशों तथा अपनी तृष्णा की व्याकुलता से छूटने के लिये इस भोजन को खाकर काम-भव, रुप-भव और अरूप-भव की भूख (तृष्णा) को दूर कर लें। यदि कोई उस भोजन को बिना खाये तृष्णा से व्याकुल ही लौट आवे और गृहस्थ ही जावे तो लोग उसीं पर दोष लगावेंगे—वह बुद्ध-धर्म में प्रव्रजित हो वहाँ न टिकने के कारण लौट आया और गृहस्थ हो गया। उसके अपने उद्योग नहीं करने से क्या बुद्ध-धर्म उसे पकड़कर जबरदस्ती शुद्ध कर देता ! भला इसमें बुद्ध-धर्म का क्या दोष ?"

---

१. अपने शरीर पर ही मनन-भावना करना। देखो दीर्घनिकाय, महासतिपट्ठान सुत्त।

"महाराज ! यदि बुद्ध गृहस्थों को पहले प्रथम-फल[1] पर प्रतिष्ठित करा के बाद में ही प्रव्रजित करते तो यह कहने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता कि प्रव्रज्या मनुष्य के क्लेशों को दूर करके शुद्ध कर देती है। (फिर तो) प्रव्रज्या का कोई मतलब ही नहीं रह जाता !"

तालाब

"महाराज! कोई आदमी सैकड़ों मजदूरों को लगा कर एक तालाब खुदवाये। तालाब तैयार हो जाने के बाद ऐसी सूचना लगा दे—कोई मैला या गन्दा आदमी इस तालाब में न जाय; धो-धा कर जो साफ सुथरा हो चुका है वही जाय। महाराज ! तो क्या उन धो-धा कर साफ सुथरा हो गये लोगों का तालाब से कोई मतलब निकलेगा ?"

"नहीं भन्ते ! जिस काम के लिये वे तालाब के पास जाते वह तो उन्होंने पहले ही कहीं दूसरी जगह समाप्त कर लिया हैं। उनको अब तालाब से क्या मतलब ?"

"महाराज ! वैसे ही, यदि बुद्ध गृहस्थों को प्रथम-फल पर प्रतिष्ठित कराके ही प्रव्रजित करते तो इसका कोई माने ही नहीं रहता, क्योंकि अपने कामको तो उन्होंने पहले ही कर लिया था। उनको प्रव्रज्या से क्या मतलब ?"

वैद्य

"महाराज ! एक वैद्य हो जो पुराने सभी ऋषियों का अध्ययन कर लिया हो, जो सूत्र तथा मंत्रों के पद को ठीक-ठीक जानता हो, जिसकी सारी हिचक टूट गई हो, जिसको रोग की पहचान बड़ी बारीक हो, और जिसका इलाज कभी खाली नहीं जाता हो। वह सारे रोगों की अचूक दवाइयों की ले आवे और ऐसी सूचना लगा दे—मेरे पास कोई रोगी न आने पावे ; जो नीरोग और चंगा हैं वही आवे। महाराज ! तो क्या उन नीरोग, चंगे और हट्टे-कट्टे लोगों का उस वैद्य से कोई प्रयोजन रहेगा ?"

"नहीं भन्ते ! जिस काम के लिये वे उस वैद्य के पास जाते उसे तो उन्होंने कहीं दूसरी जगह पा लिया हैं। उस वैद्य से उनका अब क्या मतलब ?"

"महाराज ! वैसे ही, यदि बुद्ध गृहस्थों को प्रथम-फल पर प्रतिष्ठित करा के ही प्रव्रजित करते तो इसका कोई माने हो नहीं रहता, क्योंकि अपने काम को तो उन्होंने पहले ही कर लिया था। उनको प्रव्रज्या से क्या मतलब ?"

---

१. प्रथम-फल—स्रोतआपत्ति-फल।

सैकडों थाली भोजन

"महाराज ! कोई आदमी सैकड़ों थाली भोजन परोसवा कर ऐसी सूचना लगा दे—इस लङ्गर में कोई भूखा आदमी न आने पावे; जो अच्छी तरह खा चुका है, तृप्ति हो गया है और जिसका पेट भर गया है वही आवे। तो महाराज ! क्या उन पेट भरे लोगों का उस भोजन से कोई प्रयोजन सिद्ध होगा ?"

"नहीं भन्ते ! जिसके लिये वे उस लङ्गर में जाते उसे तो उन्होंने कहीं दूसरी ही जगह पूरा कर लिया है। उस लङ्गर से उनका अब क्या मतलब ?"

"महाराज ! वैसे ही, यदि बुद्ध गृहस्थों को प्रथम–फल पर प्रतिष्ठित करा के ही प्रव्रजित करते तो इसका कोई अर्थ ही नहीं रहता, क्योंकि अपने काम को तो उनने पहले ही कर लिया था। उनको प्रव्रज्या से क्या मतलब ?"

"महाराज ! बल्कि वे जो चीवर छोड़ कर लौट भी जाते हैं बुद्ध-धर्म में पाँच अतुल्य गुणों को देखते हैं। कौन से पाँच गुणों को ? (१) यह देख लेते हैं कि प्रव्रज्या-भूमि कितनी महान है, (२) यह देख लेते हैं कि प्रव्रज्या कैसी शुद्ध और विमल है, (३) यह देख लेते हैं कि मलसहित रहने वाले लोगों का प्रव्रजित रहना संभव नहीं, (४) यह देख लेते हैं कि प्रव्रज्या का गौरव साधारण लोगों की पहुँच के के परे है, और (५) यह देख लेते हैं कि प्रव्रजित को कितना अधिक संयम रखना होता है।"

(१) प्रव्रज्या-भूमि कितनी महान् है इसे कैसे देख लेते हैं ?"

बेवकूफ आदमी गद्दी पर

"महाराज ! यदि छोटी जात के किसी गरीब और बेवकूफ आदमी को एक बड़े राज्य की गद्दी पर बैठा दिया जाय तो वह शीघ्र ही अपने पद को सम्हाल न सकने के कारण गिर जायगा, गद्दी पर बना नहीं रह सकता। इसका क्या कारण है ? इसका कारण उस पद का उतना महान् होना है।"

"महाराज ! इसी तरह, जिनका पुण्य अधिक नहीं है, जिनमें कोई विशेषतायें नहीं हैं और जो बुद्धिहीन हैं; वे बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो तो जाते हैं किंतु उस पद के महान् गौरव को सह नहीं सकते, अपने को वहाँ सम्हाल नहीं सकते, गिर जाते हैं और चीवर छोड़ कर फिर गृहस्थ हो जाते हैं। सो क्यों ? क्योंकि प्रव्रज्या-भूमि इतनी महान् है। इस तरह वह प्रव्रज्या-भूमि के महान् पद को देख लेते हैं।"

(२) प्रव्रज्या कैसी शुद्ध और विमल है इसे कैसे देख लेते हैं ?"

कमल के दल पर पानी

"महाराज ! कमल के दल पर पानी नहीं ठहरता, ढुलक कर गिर जाता है, बिखर जाता है और उस पर कुछ भी लगा नहीं रहता। सो क्यों ? क्योंकि कमल इतना परिशुद्ध और मलरहित है।"

"महाराज! इसी तरह, जो शठ, कपटी, टेढ़े, कुटिल और बुरे विचार वाले हैं वे तो प्रव्रजित हो जाते हैं किंतु बुद्ध-शासन के इतना परिशुद्ध, मलरहित, निष्कण्टक, साफ और स्वच्छ होने के कारण शीघ्र ही गिर जाते हैं, और चीवर छोड़ कर गृहस्थ हो जाते हैं। वे वहाँ टिक नहीं सकते; उसमें लगे नहीं रह सकते। सो क्यों ? क्योंकि बुद्ध का शासन (=धर्म) उतना परिशुद्ध और विमल है। इस तरह, वह यह देख लेते हैं कि प्रव्रज्या कैसी शुद्ध और विमल है।"

(३) मल-सहित रहने वालों का प्रव्रजित रहना सम्भव नहीं इसे कैसे देख लेते हैं ?"

महासमुद्र में मुर्दा

"महाराज ! महासमुद्र में मरा मुर्दा नहीं रह सकता। महासमुद्र में जो मरा मुर्दा पड़ जाता है वह शीघ्र ही किनारे लग जमीन पर आ जाता है। सो क्यों ? क्योंकि महासमुद्र का स्वभाव महापुरुष के ऐसा होता है।"

"महाराज ! इसी तरह, जो पापी, सुस्त, निर्वीर्य, काम से पीड़ित, मैले हृदय वाले और बुरे लोग हैं, वे बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो तो जाते हैं किंतु अर्हत्, विमल, क्षीणाश्रव इत्यादि महापुरुषों के बीच नहीं रह सकने के कारण शीघ्र ही वहाँ से निकल जाते हैं और चीवर छोड़ कर गृहस्थ बन जाते हैं। सो क्यों ? क्योंकि बुद्ध-शासन में मल-सहित (पुरुष) का प्रव्रजित रहना सम्भव नहीं। इस तरह, वह यह देख लेते हैं कि मलसहित रहने वालों को बुद्ध-शासन में प्रव्रजित रहना सम्भव नहीं है।"

(४) यह कैसे देख लेते हैं कि प्रव्रज्या का गौरव साधारण लोगों की पहुँच के परे है ?"

अजान आदमी का तीर चलाना

"महाराज ! जो अजान (=अकुशल), अशिक्षित और चञ्चल बुद्धि वाले हैं तथा जिन्हों ने कोई हुन्नर नहीं सीखा है वे तीर चला कर बाल नहीं बेध सकते। उनका तीर निशाने से उलटा सीधा इधर उधर बहक जायगा। तो क्यों ? तीर चला कर बाल बींधने के लिये बड़ी निपुणता की जरूरत है।"

"महाराज ! इसी तरह, जो दुष्प्रज्ञ, जड़, बेवकूफ, मूढ़ और भद्दे हैं वे बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो तो जाते हैं किंतु चार आर्य-सत्यों की सूक्ष्म और ऊँची बातों

को नहीं समझने के कारण वहाँ नहीं टिक सकते, शीघ्र ही बिलग हो जाते हैं, और चीवर छोड़ कर गृहस्थ बन जाते हैं। सो क्यों ? क्योंकि आर्य-सत्य की बातें बहुत सूक्ष्म और ऊँची हैं। इस प्रकार यह देख लेते हैं कि प्रव्रज्या का गौरव साधारण लोगों की पहुँच के बाहर है।"

(५) यह कैसे देख लेते हैं कि प्रव्रजित को कितना अधिक संयम रखना होता है ?"

बडी लड़ाई

"महाराज ! कोई आदमी किसी बड़ी लड़ाई में जा शत्रुओं से आगेपीछे और अगल-बगल घिर जाय। उन्हें तीर-बर्छी उठाये अपनी ओर आते देख कर डर जाय, घबडा जाय और भाग जाय। सो 'क्यों ! क्योंकि लड़ाई में अपने को चारों तरफ से बचाना होता है।"

"महाराज ! इसी तरह, जो अपने स्वभाव से संयम-शील नहीं हैं, जिन्हें कोई पाप कर बैठने में लाज नहीं लगती, जो सुस्त हैं, जिनमें धैर्य नहीं है, जो चञ्चल स्वभाव के हैं, जहाँ तहाँ फिसल जाते हैं और मूर्ख हैं, वे बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो तो जाते हैं, किंतु यह देख कर कि प्रव्रजित को इतना अधिक संयम रखना होता है, वे घबड़ा जाते हैं और वहाँ टिक नहीं सकने के कारण चीवर छोड़कर गृहस्थ बन जाते हैं। सो क्यों ? क्योंकि बुद्ध-शासन में प्रव्रजित होकर बहुत संयम रखना होता है। इस तरह वह यह देख लेते हैं कि बुद्ध-शासन में प्रव्रजित को कितना अधिक संयम रखना होता है।"

फूल की झाडी में कीडे

"महाराज ! फूलों में जो सबसे उत्तम फूल बेला है उसकी झाड़ी में भी कभी-कभी कीड़े लग जाते हैं और एक दो फूल को काट कर गिरा देते हैं। किंतु, उन एक दो के गिर जाने से बेला की झाड़ी की सुन्दरता नहीं चली जाती। उस में जो बचे हुये अच्छे फूल हैं वे ही अपनी सुगन्धि से दिशा विदिशा को मह मह किये रहते हैं।"

"महाराज ! उसी तरह, जो बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो बाद में चीवर छोड़ गृहस्थ बन जाते हैं वे उन फूलों के समान हैं जो कीड़ा लग जाने से सौन्दर्य और सुगन्धि से रहित गिर जाते हैं। उनके इस तरह लौट जाने से बुद्ध-धर्म पर कुछ कलङ्क नहीं आता, क्योंकि शासन में जो भिक्षु बने रहते हैं उन्हीं के शील की सुगन्धि से देवताओं और मनुष्यों के साथ सारा लोक व्याप्त रहता है।

करुम्भक पौधे

"महाराज ! जैसे उपद्रवरहित लाल शाली = धान के खेत में करुम्भक नाम के पौधे उग कर बीच ही में मुर्झा जाते हैं, किंतु उससे खेत की शोभा में कोई बट्टा नहीं लगता। जो धान खड़े रहते हैं उन्हीं की शोभा बहुत रहती है।"

'महाराज ! वैसे ही, जो बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो बाद में चीवर छोड़ देते हैं वे लाल शाली धान के खेत में उगे करुम्भक पौधों की तरह हैं। उनके इस तरह चीवर छोड़ कर चले जाने से भिक्षु-संघ की शोभा में कोई कमी नहीं होती। जो भिक्षु बने रहते हैं वे अर्हत्-पद पाने के भी योग्य हो जाते हैं।"

रत्न का रूखा भाग

'महाराज! यथेच्छ फल देने वाले रत्न के भी एक भाग में रूखापन चला आ सकता है। उससे रत्न का मूल्य कुछ कम नहीं हो जाता। रत्न का जो भाग स्वच्छ है उसी से काफी चमक होती है जिसे देख लोगों को बड़ा आनन्द आता हैं।

"महाराज ! वैसे ही, जो बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो बाद में चीवर छोड़ देते है वे रत्न के रूखे भाग की तरह हैं। किंतु, उनके इस तरह चीवर छोड़ कर चले जाने से बुद्ध-शासन में कुछ कलङ्क नहीं आता। जो भिक्षु बने रहते हैं वे ही देवताओं और मनुष्यों को प्रसन्न करते हैं।"

चन्दन का सडा भाग

"महाराज ! अच्छी जाति के लाल चन्दन में भी कहीं-कहीं सड़ जाने से सुगन्धि नहीं रहती। उससे लाल चन्दन कुछ बुरा नहीं हो जाता। जो अच्छे भाग हैं उन्हीं को सुगन्धि इतनी रहती हैं कि पास-पड़ोस मह-मह करता रहता है।

"महाराज ! वैसे ही, जो बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो बाद में चीवर छोड़ देते हैं वे चन्दन के सड़े भाग की तरह हैं। उनके इस तरह चीवर छोड़ कर गृहस्थ बन जाने से बुद्ध-धर्म पर कुछ कलङ्क नहीं लगता। जो भिक्षु बने रहते है उनके शील-रूपी चन्दन के सुगन्ध से देवताओं और मनुष्यों के साथ सारा लोक भर जाता है।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! एक पर एक अच्छे उदाहरणों और उपमाओं को देकर आपने बुद्ध-शासन की शुद्धता को अच्छी तरह दिखा दिया। यथार्थ में चीवर छोड़ कर चले जाने वाले भी देख लेते हैं कि बुद्ध-शासन कितना श्रेष्ठ है।"

५८. अर्हत् को शारीरिक और मानसिक वेदनायें

"भन्ते नागसेन ! आप लोग कहते है कि, "अर्हत् को एक ही वेदना होती है–शारीरिक, मानसिक नहीं।" भन्ते ! शरीर के अनुभवों पर क्या अर्हतृ का अधिकार नहीं रहता ?"

"हाँ महाराज ! ऐसी बात है।"

"भन्ते ! यह तो ठीक नहीं कि अर्हत् अपने ही शरीर पर होने वाले अनुभवों पर अधिकार नहीं कर सकता। एक चिड़िया भी तो अपने घोसले पर अधिकार रखती है।

"महाराज ! ये दस गुण है जो जन्म जन्म में शरीर के साथ लगे रहते है। कौन से दस ? (१) सर्दी, (२) गर्मी, (३) भूख, (४) प्यास, (५) पाखाना, (६) पेशाब, (७) थकावट, (८) बुढ़ापा (९) रोग और (१०) मृत्यु। इन बातों पर अर्हत् का कोई अधिकार या वश नहीं चलता।"

"भन्ते ! क्या कारण है कि अपने शरीर की इन बातों पर अर्हत् का कोई अधिकार नहीं चलता ? कृपा कर मुझे समझावें।"

"महाराज ! पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीव इसी पर चलते फिरते और अपना काम–काज करते है। महाराज ! तो क्या उन सभी का पृथ्वी पर अपना वश या अपनी हुकूमत चलती है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! उसी तरह, अर्हत् का चित्त शरीर के आधार पर प्रव्रजित तो होता है किंतु उसकी उस पर हुकूमत नहीं चलती।"

"भन्ते ! क्या कारण है कि साधारण जन शारीरिक और मानसिक दोनों वेदनाओं का अनुभव करते है ?"

"महाराज ! साधारण लोगों का चित्त भावना द्वारा वश में नहीं कर लिया गया है। इसी लिये वे शारीरिक और मानसिक दोनों वेदनाओं का अनुभव करते है।"

भूखा बैल

"महाराज ! भूख का मारा हुआ बैल एक छोटी सी कमजोर घास की रस्सी या लता से बाँध दिया जा सकता है। किंतु यदि भड़क (परिकुपित) जाय तो रस्सी को तोड़ ताड़ कर भाग जा सकता है। महाराज ! इसी तरह, जो अभावित चित्त है वह वेदना से चञ्चल कर दिया जाता है। चित्त के चञ्चल हो जाने से शरीर

छटपटाने और लोटने लगता हैं। अभावित चित्त होनेसे काँपता, चिल्लाता और कराहें लेता है। महाराज ! यही कारण है जिससे साधारण जन को शारीरिक और मानसिक दोनों वेदनायें होती हैं।"

"भन्ते नागसेन ! तब, अर्हत् को एक शारीरिक वेदना ही क्यों होती है, मानसिक क्यों नही ?"

"महाराज ! अर्हत् अपने मन को भावना के अभ्यास से बिलकुल वश में कर लेता है। उसका मन उसके पूरे अधिकार में रहता है। वह अपने मन को जैसे चाहे घुमा सकता है। जब उसे कोई दुःख होता हैं तो संसार की अनित्यता का ख्याल दृढ़तापूर्वक करता है, समाधिरूपी खूंटे में मानो अपने चित्त को बाँध देता है। इस तरह उसका चित्त चञ्चल नहीं हो सकता; वह स्थिर और दृढ़ रहता है। पीड़ा से भले ही उसका शरीर छट पट करे या लोटे पोटे। महाराज ! इस तरह, अर्हत् को एक शारीरिक वेदना ही होती है, मानसिक नहीं।"

"भन्ते नागसेन ! यह तो एक बहुत बड़ी बात है कि पीडा से शरीर के छट पट करतें रहने पर भी चित्त स्थिर और दृढ़ बना रहे। कृपया एक उपमा दे कर समझावें।"

वृक्ष के धड के समान योगी का चित्त

"महाराज ! जैसे एक बहुत बड़ा हरा भरा वृक्ष हो। उसका धड बहुत मोटा हो। उसकी शाखायें भी लम्बी-लम्बी फैली हों। कभी जोर की हवा चले और वे शाखायें आगे पीछे हिलने लगे। महाराज ! तो क्या उसका मोटा धड़ भी हिलने लगेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! अर्हत् के चित्त को ठीक उसी धड़ के ऐसा समझ ले।"

"भन्ते नागसेन ! आश्चर्य है, अद्भूत हैं। इस प्रकार सदा जलते रहने वाले धर्म-प्रदीप को मैंने कभी नहीं देखा था।"

५९. गृहस्थ का पाप

"भन्ते नागसेन कोई गृहस्थ पाराजिक पाप किये हुये हो। वह बाद में प्रव्रजित हो जाय। उसे अपने भी ख्याल नहीं हो कि मैं ने अपने गृहस्थ-काल में पाराजिक पाप किया था और न कोई दुसरा ही उसे ख्याल करवावे। वह अर्हत्-पद पाने का उद्योग करे। तो क्या उसमें उसकी सफलता होगी ?"

"नहीं महाराज !"

"भन्ते ! सो क्यों ?"

"सत्य-पथ पर आने का जो उसमें हेतु था वह नष्ट हो गया है। इस लिये उसकी सफलता नहीं होगी।"

"भन्ते नागसेन ! आप लोग कहते है कि–"अपने पाप की याद आने से अनुताप होता है। अनुताप होने से चित्त ढ़क जाता है। चित्त ढक जाने से सत्य की ओर गति नहीं होती। यदि ऐसी बात है तो पाप की याद नहीं आने से अनुताप भी नहीं होगा, और तब चित्त भी नहीं ढ़क जायगा। चित्त के नहीं ढ़कने से सत्य की ओर गति क्यों नहीं होगी ? इस दुविधा के दो उल्टे परिणाम निकलते है। इसे जरा सोच कर उत्तर दे।"

बीज को खेत में बोना और चट्टान पर बोना

"महाराज ! अच्छी तरह जोते और सींचे किसी उपजाऊ खेत में पुष्ट बीज को बो देने से जमेगा या नहीं ?"

"भन्ते ! अवश्य जमेगा।"

"महाराज! यदि उसी बीज को किसी बड़ी चट्टान के ऊपर फेंक दिया जाय तो वहाँ जमेगा !"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! क्या कारण है कि वही बीज जोते और सींचे खेत में तो जम जाता है किंतु चट्टान पर नहीं जमता ?"

"भन्ते ! क्योंकि चट्टान पर बीज जमने के साधन (= हेतु) नहीं है। बिना साधन के बीज जम नहीं सकता।"

"महाराज ! उसी तरह, सत्य की ओर गति होने के जो साधन थे सो उसमें नष्ट हो गये हैं। बिना साधन के सत्य की ओर गति नहीं हो सकती।"

लाठी हवा में नहीं टिकती

"महाराज ! लाठी, ढेला, छड़ी और मुगदर क्या हवा में वैसे ही टिक सकते हैं जैसे पृथ्वी पर ?"

"नही भन्ते !"

"महाराज ! क्या कारण है कि वे पृथ्वी पर तो कि जाते हैं किंतु हवा में नहीं टिकते ?"

"भन्ते ! उनके हवा में टिकने के कोई साधन ही नहीं हैं। बिना साधन के कैसे टिक सकते हैं ?"

"महाराज ! वैसे ही, सत्य की ओर गति होने के जो साधन थे सो उसमें नष्ट हो गये हैं। बिना साधन के सत्य की ओर गति नहीं हो सकती।"

पानी पर आग नहीं जलती

"महाराज ! क्या पानी पर भी आग वैसे ही जल सकती है जैसे पृथ्वी पर?"

"नहीं भन्ते !"

"क्यों नहीं ?"

"भन्ते! क्योंकि पानी पर आग जलने के जो साधन हैं वे नहीं हैं। बिना उन हेतु के आग नहीं जल सकती।"

"महाराज ! वैसे ही, सत्य की ओर गति होने के जो साधन थे सो उसमें नष्ट हो गये हैं। बिना साधन के गति नहीं हो सकती।"

"भन्ते नागसेन ? इस पर थोड़ा और विचार करें। आपकी बातें मुझे नहीं जँच रही हैं। अपने पाप को बिना याद किये तो अनुताप ही नहीं होता—फिर रुकावट कैसी ?"

बिना जाने विष को खा ले

"महाराज ! क्या हलाहल विष को बिना जाने कोई खा ले तो नहीं मरेगा ?"

"भन्ते ! अवश्य मर जायगा।"

"महाराज ! वैसे ही, उस बड़े पाप को न भी याद करे तो भी बाधा चली आती है।"

बिना जाने आग पर चढ़ जाय

"महाराज ! बिना जाने कोई आग पर चढ़ जाय तो नहीं जलेगा ?"

"भन्ते ! अवश्य जलेगा।"

"महाराज ! वैसे ही, उस बड़े पाप को न भी याद करे तो भी बाधा चली जाती है।"

बिना जाने साँप काट दे

"महाराज ! यदि विषधर साँप किसी आदमी को बिना उसके जाने काट दे तो वह क्या नहीं मर जायगा ?"

"भन्ते अवश्य मर जायगा।"

"महाराज ! वैसे ही, उस बड़े पाप को न भी याद करे तो भी बाधा चली आती।"

कलिंग का राजा

"महाराज ! क्या आपको यह मालूम नहीं है कि कलिंग का राजा सात रत्नों के साथ अपने हाथी पर चढ़ कर जब किसी सम्बन्धी से मिलने जा रह था तो बोधिवृक्ष के ऊपर नहीं जा सका, यद्यपि उसे मालूम नहीं था ! ठीक वैसे ही अपने पाप को न याद करने पर भी सत्य की ओर उसकी गति नहीं हो सकती।"

"भन्ते ! ठीक है। बुद्ध की बताई हुई बात को कोई उलट नहीं सकता। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

६०. गृहस्थ और भिक्षु की दुःशीलता में अन्तर

"भन्ते नागसेन ! एक गृहस्थ के दुःशील (= दुराचारी) होने और एक भिक्षु के दुःशील होने में क्या अन्तर है, क्या भेद है ? क्या दोनों का दुःशील होना एक ही समान है ? क्या दोनों का फल बराबर ही होता है, अथवा दोनों में कोई भेद है ?"

"महाराज ! भिक्षु के दुःशील होने में गृहस्थ के दुःशील होने से ये दश गुण अधिक है, विशेष हैं। दश बातों से यह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता हैं।"

"वे कौन दश गुण हैं जो भिक्षु के दुःशील होने में गृहस्थ से दुःशील होने से अधिक होते हैं ?"

"महाराज ! (१) भिक्षु दुःशील होकर भी बुद्ध के प्रति श्रद्धा रखता है, (२) धर्म के प्रति श्रद्धा रखना है, (३) संघ के प्रति श्रध्दा रखता हैं, (४) गुरु-भाइयों के प्रति श्रध्दा रखता है, (५) धार्मिक चर्चा में लगा रहता हैं, (६) विद्वान होता है, (७) सभा में शिष्ट रहता है, (९) उन्नति की ओर लगे रहने की उसकी कोशिश होती हैं, (१०) दूसरे भिक्षुओं के साथ रह कर यदि कुछ पाप करता भी है तो बहुत छिपा कर।"

"महाराज ! जैसे ब्याही स्त्री बहुत छिप कर ही कोई पाप करती है, वैसे ही दुःशील भिक्षु बहुत छिप कर कुछ बुरा काम करता है। महाराज ! ये दश गुण हैं जो भिक्षु के दुःशील होने में गृहस्थ के दुःशील होने से अधिक होते हैं।"

"किन ऊपर की दश बातों से वह अपनी दक्षिणा (=दान) को शुद्ध कर देता है ? (१) भिक्षु-वेश धारण करके वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है, (२) ऋषियों के समान शिर मुड़वा कर वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है, (३) भिक्षु-संघ में शामिल होकर वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है, (४) बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में आकर वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेला है, (५) अर्हत्-पद पाने के लिये उद्योग करने की उचित परिस्थिति में रह कर वह अपनी

दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है. (६) बुद्ध-धर्म की ऊँची बातों की खोज में लगा रह कर वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है, (७) अच्छी-अच्छी धर्मदेशनाओं को दे कर भी वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है, (८) धर्म को प्रकाश में ला कर वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है, (९) बुद्ध को सबसे श्रेष्ठ मान कर भी वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है, (१०) उपोसथ-व्रत रख कर भी वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है। महाराज ! ऊपर की इन दश बातों से वह अपनी दक्षिणा को शुद्ध कर लेता है।"

"महाराज! भिक्षु दुःशील होकर भी इस तरह लगा रह दायकों द्वारा दी गई दक्षिणा (=दान) को सफल बना देता हैं। महाराज ! कितनी भी अधिक गंदगी, कीचड़, धूली और मैला क्यों न हो वह पानी से धो दिया जा सकता है। उसी तरह, भिक्षु दुःशील होने से भी अच्छी तरह लगा रहकर दायकों द्वारा दी गई दक्षिणा को को सफल बना देता है।"

"महाराज ! खौलता हुआ गरम पानी भी जलती आग की बढ़ी ढ़ेरी को बुझा देता है। उसी तरह, भिक्षु दुःशील होने से भी अच्छी तरह लगा रहकर दायकों द्वारा दी गई दक्षिणा को सफल बना देता है।"

"महाराज ! भोजन स्वादिष्ट नहीं होने पर भी भूख को दूर कर देता है। उसी तरह, भिक्षु दुःशील होने से भी अच्छी तरह लगा रह कर दायकों द्वारा दी गई दक्षिणा को सफल बना देता है।"

"महाराज मज्झिम निकाय में 'दक्षिणा–विभङ्ग' नामक धर्मोपदेश करते समय देवातिदेव भगवान् ने कहा :–

"धर्म और श्रद्धा से युक्त हो
जो शीलवान् दुःशीलों को दान देता है
वह बड़े अच्छे कर्म–फल को पाता है
दायक की वह दक्षिणा हो शुद्ध जाती है"

"भन्ते नागसेन ! आश्चर्य !! अद्भुत है !!! मैं ने आपको एक छोटा सा प्रश्न पूछा था, किंतु आपने उसे उपमाओं और तर्कों से इतना खुलासा कर दिया कि यह अब सुनने में अमृत के ऐसा मीठा जान पड़ता है।"

"भन्ते ! कोई अच्छा बावर्ची थोड़ा सा मांस पाता है, किंतु नमक, मसाले लगा कर उसे ऐसा स्वादिष्ट बना देता है कि राजा भी उसे चाव से खाते हैं। उसी तरह, मैंने आप को एक छोटा सा प्रश्न पूछा था, किंतु आपने उसे उपमाओं और तर्कों से इतना खुलासा कर दिया कि यह अब सुनने में अमृत के ऐसा मीठा जान पड़ता है।"

६१. जल में प्राण है क्या ?

"भन्ते नागसेन ! आग के ऊपर पानी रखने से 'बुल बुल,' 'खल खल,' ऐसे अनेक प्रकार के शब्द होते हैं। भन्ते ! क्या पानी में भी जीव है ? अथवा, यह यों ही खेल में शब्द करता है ? अथवा दुःख दिये जाने के कारण वह शब्द करता है ?"

"महाराज ! पानी में जीव या प्राण नहीं है। बल्कि, आग की अधिक गर्मी से पानी में एक हरकत पैदा हो जाती है जिससे वह 'बुल बुल', 'खल खल' इत्यादि अनेक शब्द करने लगता है।"

"भन्ते नागसेन ! कितने ही दूसरे मत वाले ऐसा मानते हैं कि पानी में जान है। वे इसी से ठंढ़ा पानी छोड़ कर गर्म पानी ही पीते हैं। वे आप बौद्धों की निन्दा करते हैं–ये बौद्ध भिक्षु एक इन्द्रिय वाले जीव को नाश करने वाले हैं। सो आप कृपया इस निन्दा का उचित उत्तर दे उन्हें चुप कर दें।"

"महाराज ! पानी में जीव या प्राण नहीं है। बल्कि, आग की अधिक गर्मी से पानी में एक हरकत पैदा हो जाती है; जिससे वस 'बुल बुल', 'खल खल' इत्यादि अनेक शब्द करने लगता है। महाराज ! गढ़े, सरोवर, दह, तालाब, कन्दरा, प्रदर और कुएँ का पानी कभी कभी बहुत बड़ी आँधी चलने से उड़कर सूख जाता है। तब, क्या उस समय भी वह अनेक प्रकार के शब्द करता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! यदि जल में जीव रहता तो उस समय भी अवश्य शब्द करना चाहिए था। महाराज ! इतने से भी समझ ले कि पानी में जीव या प्राण नहीं। बल्कि, आग की अधिक कर्मी से पानी में एक हरकत पैदा हो जाती है; जिससे वह 'बुल बुल,' 'खल खल' इत्यादि अनेक प्रकार के शब्द करने लगता है।

"महाराज ! पानी में जीव या प्राण नहीं है, इसका एक और कारण सुने–महाराज ! यदि चावल के साथ पानी डाल कर किसी हुंड़ी में बन्द कर दें–आग पर नहीं चढावें–तो वह शब्द करेगा या नहीं ?"

"नहीं भन्ते ! तब इसमें कोई हरकत पैदी नहीं होगी; यह चुप रहेगा।"

"महाराज यदि उसी हंड़ी को वैसे ही उठा कर चूल्हें पर रख दिया जाय और आँच लगा दी जाए तो क्या वह चुप रहेगा ?"

"नहीं भन्ते यह बलबलाने और खोलने लगेगा। सारी हुंड़ी खदखद हो जाएगी। तरङ्गे उठने लगेंगी। फेन पर फेन छूटना शुरू होगा। चावल के दाने ऊपर नीचे, तले ऊपर होने लगेंगे।"

"महाराज ! वही ठंडा रह कर ऐसा चञ्चल क्यों नहीं हो जाता ? शान्त क्यों बना रहता है ?"

"भन्ते ! आग की अधिक गर्मी से ही वह ऐसा बिखरने और खौलने लगता है।"

"महाराज ! इस प्रकार भी समझ लें कि पानी में जीव नहीं है।

"महाराज ! उसका एक और भी कारण सुनें। क्या घर घर में मुँह ढ़क कर पानी के घड़े रक्खे नहीं रहते हैं ?"

"हाँ भन्ते ! रहते हैं ?"

"महाराज ! उनका पानी भी क्या खौलता, बिखरता और उबलता रहता है ?"

"नहीं भन्ते ! उन घड़ों का पानी शान्त और स्वाभाविक रहता है।"

"महाराज ! क्या आप ने सुना है कि समुद्र का पानी चञ्चला रहता है, लोट पोट होता रहता है, लहराता है, ऊपर नीचे और तले ऊपर होता रहता है, टकराता रहता है, फेनाता रहता है, किनारे से टकराता रहता हैं, सदा 'हा हा' शब्द करता रहता है ?"

"हाँ भन्ते ! मैंने सुना है, और स्वयं देखा भी है। महासमुद्र का पानी एक सौ हाथ और दो सौ हाथ भी ऊपर उछल जाता है।"

"महाराज ! क्या कारण है कि घड़े का पानी न तो उछलता है और न शब्द करता है, किंवा समुद्र का पानी सदा उछलता रहता है और शब्द करता रहता है ?"

"भन्ते ! हवा के बहुत जोर से चलने में ही समुद्र का पानी उछलता रहता है और शब्द भी करता रहता है। घड़े के पानी को कोई हिलाता डुलाता नहीं इसी से शान्त रहता है और न कोई शब्द करता है।"

"महाराज ! जैसे हवा के चलने से पानी उछलने लगता है वैसे ही आग की गर्मी से भी पानी में एक हरकत पैदा हो जाती है जिससे वह उबलने तथा खलखलाने लगता है।"

क्या नगाडे में भी जान है ?

"महाराज ! लोग सूखे-साखे नगाड़े को सूखे गाय के चाम से मढ़ देते हैं न ?"

"हाँ भन्ते !"

"महाराज ! क्या नगाड़े में भी जीव या प्राण है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! तब नगाड़ा गड़गड़ाता क्यों है ?"

"भन्ते ! किसी स्त्री या पुरुष के चोट देने से।"

"महाराज ! जैसे किसी स्त्री या पुरुष के चोट देने से नगाड़ा गड़गड़ा उठता है वैसे ही आग की अधिक गर्मी से पानी खौलने और खलखलाने लगता है। महाराज ! इस प्रकार भी आप समझ लें कि पानी में जीव या प्राण नहीं है।"

"महाराज ! मुझे भी कुछ पूछना बाकी है जिससे यह दुविधा बिलकुल साफ हो जायगी —महाराज ! क्या सभी बर्तनों में पानी को गरम करने से शब्द होता है या किसी खास बर्तन में ?"

"नहीं भन्ते ! सभी बर्तन में पानी गरम करने से शब्द नहीं होता, कुछ ही बर्तनों में होता है।"

"महाराज ! आपने अपनी बात को छोड़ दी। आप मेरे पक्ष में आ गये। पानी में जीव या प्राण नहीं है। महाराज ! यदि सभी बर्तनों में पानी गरम करने से शब्द करता तो कह सकते थे कि पानी जीता है। महाराज ! पानी दो प्रकार का तो हो नहीं सकता–(एक) जो शब्द करता है वह जीता है; (दूसरा) और जो शब्द नहीं करता वह जीता नहीं है।"

बडे बडे जीवों का पानी पीना

"महाराज ! बड़े-बड़े मस्त हाथी पानी को सूँड से खींचकर अपने शरीर पर फेंक देते हैं या मुँह में डालकर पी जाते हैं। यदि पानी में जीव रहता तो उसे उनके दाँतों के बीच पिस कर शब्द करना चाहिये था। समुद्र में तिमि, तिमिङ्गिल इत्यादि अनेक मछलियाँ रहती हैं। वे भी पानी को अपने भीतर और बाहर करती हैं। उनके दाँतों से भी पिस कर पानी को शब्द करना चाहिये था। महाराज ! इतने बड़े-बड़े प्राणियों से भी पिस कर पानी शब्द नहीं करता–इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि पानी में जीव या प्राण नहीं है। महाराज ! इस प्रकार भी आप समझ लें कि पानी में जीव या प्राण नहीं है।"

"भन्ते नागसेन ! आपने, प्रश्न का विश्लेषण करके उसे अच्छा किनारे लगा दिया। चालाक जौहरी के हाथ में ही आकर अच्छे रत्नों की प्रतिष्ठा होती है; मोतिहर के हाथ में ही आकर सच्चे मोती की प्रतिष्ठा होती है; बजाज के हाथ में ही आकर सच्चे दुशालों की प्रतिष्ठा होती है; गन्धी के हाथ में ही आकर लाल चन्दन की प्रतिष्ठा होती है। उसी तरह, आपने इस प्रश्न का उत्तर दिया।"

छठा वर्ग समाप्त

६२. प्रपञ्च से छूटना

"भन्ते नागसेन ! भगवान् ने कहा है–

"भिक्षुओं ! प्रपञ्च में मत पड़ो; प्रपञ्च से दूर रहो।"

सो वह प्रपञ्च के बिना रहना क्या है ?

"महाराज ! स्रोतापत्ति के फल में प्रपञ्च (= झंझट) नहीं है, सकृदागामी के फल में प्रपञ्च नहीं है, अनागामी के फल में प्रपञ्च नहीं है और अर्हत् के फल में प्रपञ्च नहीं है।"

"भन्ते नागसेन ! यदि ऐसी बात है, तो भिक्षु लोग इन बातों की झंझट में क्यों पड़ते है; जैसे–सूत्र, गाथा, व्याकरण, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत धर्म (= विचित्र घटनायें), और बेदल्ल ? इन बातों को क्यों पढ़ाते हैं और स्वयं आपस में उनकी चर्चा करते हैं ? नये नये विहार बनवाने, दान देने और पूजा कराने के फेर में क्यों पड़ते हैं ? (इस प्रकार) क्या वे बुद्ध के मना किये गये कामों को नहीं करते ?"

"महाराज ! वे इन बातों को प्रपञ्च से छूटने के लिये ही करते हैं। महाराज ! जो अपने पूर्व-जन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं वे शीघ्र ही सारे प्रपच्च से छूट (अर्हत् हो) जाते हैं। और, जिन भिक्षुओं में अभी तक राग लगा है वे इन्हीं उपायों से धीरे-धीरे प्रपच्च से छूट सकते हैं।"

"महाराज कोई आदमी खेत में बीज बोकर बिना किसी बाड़ को बाँधे अपने बल और वीर्य से फसल निकाल लेता है। दूसरा आदमी जंगल से लकड़ी और शाखाओं को काट कर लाता है और खेत के चारों ओर बाड़ बाँधता है; उसके बाद ही बीज बोकर फसल उगाता है। (यह) जो दूसरे आदमी का बाड़ बाँधने के लिये प्रयत्न करना है सो फसल उगाने ही के लिये है।"

"महाराज ! वैसे ही, जो अपने पूर्व-जन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं वे शीघ्र ही–बिना बाड़ को बाँधे फसल निकालने वाले पुरुष की तरह–सारे प्रपञ्च से छूट जाते हैं। और, जिन भिक्षुओं में अभी तक राग लगा है वे धीरे-धीरे–बाड़ बाँध कर फसल उगाने वाले पुरुष की तरह–प्रपञ्च से छूट सकते हैं।"

वृक्ष के ऊपर फलों का गुच्छा

"महाराज ! जैसे आम के किसी ऊँचे वृक्ष पर फलों का एक गुच्छा लगा हो। कोई ऋद्धिमान् पुरुष चाहे तो सहज ही उसे ले सकता है; किंतु साधारण आदमी को वृक्ष के ऊपर जाने के लिये लकड़ियों को काट कर एक निसेनी बाँधनी

पड़ेगी। यहाँ भी, जो दूसरे पुरुष का निसेनी तैयार करना है वह फल को लेने ही के लिये।"

"महाराज ! वैसे ही, जो अपने पूर्व-जन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं वे शीघ्र ही–ऋद्धिमान पुरुष के फल लेने की तरह सारे प्रपञ्च से छूट जाते हैं। और जिन भिक्षुओं में अभी तक राग लगा है; वे इन्हीं उपायों से धीरे-धीरे निसेनी बाँधने वाले पुरुष की तरह–प्रपञ्च से छूट सकते हैं।"

चालाक आदमी

"महाराज ! कोई चलता-पुर्जा चालाक आदमी अकेला ही राजा के पास जा कर अपना काम निकाल लेता है। दूसरा कोई धनवान आदमी अपने धन के कारण राजा के पास किसी काम से एक बड़ी मण्डली लेकर जाता है। यहाँ, उसका जो बड़ी मण्डली का बटोरना है वह काम निकालने के ही लिये है।"

"महाराज ! वैसे ही, जो अपने पूर्व-जन्मों की अच्छी वासनाओं से शुद्ध हो चुके हैं वे शीघ्र ही–उस चालक आदमी की तरह-सारे प्रपञ्च से छूट जाते हैं। और, जिन भिक्षुओं में अभी तक राग लगा है वे इन्ही उपायों से धीरे-धीरे–उस धनवान आदमी की तरह–प्रपञ्च से छूट सकते हैं।

"महाराज ! धर्म-ग्रन्थों का पाठ करना बहुत अच्छा है, धर्म-चर्चा करना भी बहुत अच्छा है, नये विहार बनवाना भी बहुत अच्छा है तथा दान-पूजा करना भी बहुत अच्छा है। उनसे बड़ा उपकार होता है।

"महाराज ! राजा के बहुत से नोकर होते हैं, जैसे-अफसर, सिपाही, दूत, चौकीदार, शरीर-रक्षक तथा सभासद। राजा को कुछ काम आ पड़ने पर सभी कुछ न कुछ उपकार करते हैं। महाराज ! वैसे ही, धर्म-ग्रन्थों का पाठ करना, धर्म-चर्चा, नये विहार बनवाना तथा दानपूजा करना सभी बहुत उपकार के हैं।"

"महाराज ! यदि सभी लोग स्वयं ही शुद्ध होवें तो उपदेश देने वाले की जरूरत ही न पड़े।

"महाराज ! किंतु ऐसी बात नहीं है। शिष्य बनने की बडी आवश्यकता है। स्थविर सारिपुत्र ने अनन्त कल्पों से बहुत पुण्य कमाया था और प्रज्ञा की चरम सीमा को पा लिया था। किंतु अर्हत् पद पाने के लिये उन्हें भी गुरु करना पड़ा। महाराज ! इस तरह, शिष्य बनने में बड़ा उपकार है; धर्म-ग्रन्थों को सुनना, उनका पाठ करना और उनके विषय में चर्चा करना, सभी से बड़ा उपकार होता है। इसलिये, जो भिक्षु इनमें लगे रहते हैं वे धीरे-धीरे प्रपञ्च से छूट जाते हैं।"

'ठीक है भन्ते नागसेन ! मैं स्वीकार करता हूँ।"

६३. गृहस्थ का अर्हत् हो जाना

"भन्ते नागसेन ! आप लोग कहते हैं–"जो गृहस्थ रहते-रहते अर्हत्पद पा लेता है उसके लिये दो ही बातें हो सकती हैं, तीसरी नहीं। या तो वह उसी दिन प्रव्रजित हो जाता है, या परिनिर्वाण पा लेता है। (ऐसा किये बिना) उस दिन को वह बिता नहीं सकता।"

"भन्ते ! यदि उस दिन उसे आचार्य, उपाध्याय, पात्र और चीवर नहीं मिलें तो वह क्या करेगा ? वह क्या अर्हत् हो बिना उपाध्याय के अपने आप को प्रव्रजित कर लेगा ? अथवा एक दिन तक ठहर जायगा अथवा कोई दूसरा ऋद्धिमान अर्हत् आ उसे प्रव्रजित कर देगा ? अथवा परिनिर्वाण पा लेगा ?"

"महाराज ! वह अर्हत् हो बिना उपाध्याय के अपने आप को प्रव्रजित नहीं कर लेगा। स्वयं प्रव्रजित कर लेने से चोरी का दोष लगेगा।[1] वह एक दिन ठहर भी नहीं सकता। दूसरे अर्हत् आवें या नहीं वह उसी दिन परिनिर्वाण पा लेगा।"

"भन्ते नागसेन! तब तो अर्हत् का शान्तभाव नहीं रहता; क्योंकि उसमें जीवन का हरण किया जाता है।"

"महाराज! गृहस्थ रहना अर्हत् के अनुकुल नहीं है। इसी से गृहस्थ अर्हत् होते या प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है। अर्हत् के शान्त भाव में कोई दोष नहीं हैं। गृहस्थ रहने के अनुकुल नहीं होना ही यहाँ कारण है। गृहस्थ के वेश में इतना बल नहीं कि अर्हत्व को संभाल सके।

कमजोर पेट में भोजन

"महाराज! भोजन सभी जीवों का पालन करता है; सभी जीवों के प्राण की रक्षा करता है। किंतु, वही भोजन पेट में रोग हो जाने या अग्नि के मंद पड़ जाने से जान भी ले लेता है। महाराज ! इसमें भोजन का दोष नहीं है बल्कि पेट की कमजोरी और अग्नि के मंद पड़ जाने का ही दोष है। महाराज! उसी तरह गृहस्थ रहना अर्हत् के अनुकूल नहीं है। इसी से गृहस्थ अर्हत् होते या प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है। अर्हत् के शांत भाव में कोई दोष नहीं है। गृहस्थ रहने के अनुकूल होना ही यहाँ कारण हैं। गृहस्थ के वेश में इतना बल नहीं कि अर्हत्व को संभाल सके।

एक तिनके के ऊपर भारी पत्थर

"महाराज! यदि एक छोटे से तिनके के ऊपर एक भारी पत्थर रख दिया जाय तो वह कमजोर होने के कारण टूट जायगा और कुचल जायगा। महाराज !

---

१. क्योंकि वह बिना अधिकार पाये ही भिक्षु-वेष को धारण करता है।

उसी तरह, गृहस्थ का वेश अर्हत्व को नहीं सम्भाल सकता। गृहस्थ अर्हत् होते या तो प्रव्रजित हो जाता हैं, या परिनिर्वाण पा लेता है।"

बेवकूफ आदमी राजगद्दी पर

"महाराज! यदि छोटे जात के किसी गरीब और बेवकूफ आदमी को भारी राज्य की गद्दी पर बैठा दिया जाय तो वह उसे सम्हाल सकेगा नहीं महाराज! उसी तरह, गृहस्थ का वेश अर्हत्व को नहीं सम्हाल सकेगा? गृहस्थ अर्हत् होते या तो प्रव्रजित हो जाता है या परिनिर्वाण पा लेता है।"

"ठीक है भन्ते नागसेन! आप जो कहतें है उसे मैं मानता हूँ।"

६४–अर्हत् के दोष

"भन्ते नागसेन! क्या अर्हत् कभी भी अपने ख्याल से उतर जाता है?"

"महाराज! अर्हत् कभी भी अपने ख्याल से नहीं उतरता। उसका चित्त कभी भी अनवहित नहीं होता।"

"भन्ते! क्या अर्हत कभी कोई दोष कर सकता हैं?"

'हाँ महाराज! कर सकता है।"

"भन्ते! वह किस तरह?"

"कुटी बनवाने ,में सच्चरित्रता में, विकाल को उचित काल समझ लेने में, प्रवारित को अप्रवारित समझ लेने में, जो अतिरिक्त नहीं है उसे अतिरिक्त समझ लेने में।"

"भन्ते नागसेन! कोई दोष करने के दो ही कारण हो सकते है––

(१) असाबधानी, या (२) अज्ञता। क्या असावधानी के कारण अर्हत् दोष करता है?"

"नहीं महाराज।"

"तो अवश्य अपने ख्याल से उतर जाने के कारण ही वह दोष करता होगा।"

"नहीं महाराज! यद्यपि वह दोष करता है तो भी अपने ख्याल नहीं उतरता!"

"भन्ते! यह कैसे हो सकता है? कृपया कारण दिखा कर मुझे समझावें।"

"महाराज! दोष दो प्रकार के होते हैं:– (१) जो बुरा काम करना है, और (२) जो भिक्षु-नियम के विरुद्ध आचरण करना है।"

१–"बुरा काम क्या है?"

दस प्रकार के पाप:– (१) जीव–हिंसा, (२) चोरी करना, (३) व्यभिचार (४)झूठ बोलना, (५) चुगली खाना, (६) कडा बोलना, (७) गप्पें मारना,

(८) लोभ करना, (९) द्वेष करना और (१०) मिथ्यादृष्टि (=झूठी धारणा) ये बुरे काम है।"

२—"भिक्षु—नियम के विरुद्ध आचरण करना क्या है?"

"जो भिक्षु के लिये बुरा समझा जाता हो किंतु साधारण लोगों के लिये नहीं— वे नियम जिन्हें भगवान् ने भिक्षुओं को जन्मभर पालन करने का कहा है। महाराज! गृहस्थों के लिये दोपहर के बाद भोजन करने में कोई दोष नहीं, किंतु भिक्षु ऐसा नहीं कर सकते। फूल—पत्तों को तोड़ने में गृहस्थों के लिये कोई दोष नहीं; किंतु भिक्षु ऐसा नहीं कर सकते। जलक्रीड़ा करने में गृहस्थों के लिये कोई दोष नहीं, किंतु भिक्षु ऐसा नहीं कर सकते। महाराज! इसी तरह, और भी कितनी बातें है जिनको करने में गृहस्थों के लिये कोई दोष नहीं है किंतु भिक्षु नहीं कर सकते। महाराज! इन्हीं को भिक्षु—नियम के विरुद्ध आचरण करना कहते है।

"महाराज! जो बुरे काम हैं उन दोषों को अर्हत् कभी नहीं कर सकता है, किंतु हाँ, कभी कभी बिना जाने भिक्षु-नियमों के विरुद्ध कर सकता है। सभी अर्हत् सभी बातों को नहीं जान सकते। उनका ऐसा बल नहीं है कि सभी कुछ जान लें। स्त्री—पुरुषों के नाम और गोत्र को भी अर्हत् नहीं जान सकता है। किसी खास सड़क का भी उसे पत्ता नहीं हो सकता है। किंतु अर्हत् मुक्ति को तो अवश्य जानता है, छः अभिज्ञाओं की सारी बातों को अर्हत् अवश्य जानता है। महाराज! सर्वज्ञ बुद्ध ही सब कुछ जानते हैं।"

"ठीक है भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं मैं उसे मानता हूँ।"

६५. नास्ति-भाव

"भन्ते नागसेन! संसार में बुद्ध देखे जाते है, प्रत्येक बुद्ध देखे जाते हैं, बुद्ध के श्रावक देखे जाते है, चक्रवर्ती राजा देखे जाते हैं, छोटे—बड़े राजा देखे जाते है, देवता और मनुष्य देखे जाते है, धनी लोग देखे जाते है, निर्धन लोग देखे जाते हैं, अच्छी तरक्की करते हुये लोग देखे जाते है, बुरी अवस्था में गिरते लोग देखे जाते हैं, पुरुष को स्त्री-लिङ्ग उत्पन्न होते देखा जाता है, स्त्री को पुरुष—लिङ्ग उत्पन्न होते देखा जाता है, अच्छे काम को बिगड़ जाते देखा जाता है, पाप और पुण्य के फल भोगते हुये लोग देखे जाते है।

संसार में कितने जीव अण्डज है, कितने जरायुज, कितने संस्वेदज और कितने औपपातिक। कितने जीव बिना पैर वाले है, कितने दो पैर वाले, कितने चार पैर वाले और कितने अनेक पैर वाले। संसार में यक्ष भी है, राक्षस भी है, कूभाण्ड भी है, असुर भी है, दानव भी है, गन्धर्व भी है, प्रेत भी है, पिशाच भी है, किन्नर भी है, बड़े बड़े साँप भी है, नाग भी हैं, गरुड़ भी है,

सिद्ध भी हैं, विद्याधर भी हैं, घोड़े भी है, हाथी भी हैं, गाय भी हैं, भैंस भी हैं, ऊँट भी हैं, गदहे भी हैं बकरे भी हैं, भेंड़ भी हैं, मृग भी हैं, सूअर भी हैं, सिंह, भी हैं, बाघ भी हैं, चीते भी हैं, भालू भी हैं, भेड़िये भी हैं, तड़ख भी हैं, कुत्ते भी हैं, सियार भी हैं, अनेक प्रकार के पक्षी भी हैं; सोना भी हैं, चाँदी भी है, मोती भी है, मणि भी है, मसारगल्ल[1] भी है, वैदूर्य (=हीरा) भी है, वज्र भी हैं, स्फटिक भी हैं, लोहा भी हैं, ताँबा भी है, पीतल भी है, काँसा भी हैं, क्षौम वस्त्र भी है, काषाय वस्त्र भी हैं, सूती कपडा भी हैं, टाट भी हैं, सन का कपडा भी हैं, कम्बल भी हैं; शाली भी हैं, धान भी हैं, जौ भी हैं, प्रियङ्गु (कागुन) भी हैं, कुद्रूस (कोदो) भी हैं, वरका भी हैं, गेहू भी हैं, मुँग भी हैं, उड़द भी हैं, तिल भी हैं, कुलत्थ भी है। मूल का गन्ध भी है, सार (हीर) का गन्ध भी है, पपड़ी का गन्ध भी है, छाल का गन्ध भी है, पत्ते का गन्ध भी है, फूल का गन्ध भी हैं, फल का गन्ध भी है, तथा और भी तरह तरह के गन्ध है। घास भी है, लता भी है, तरु भी है, वृक्ष भी है, औषधि भी हैं, वनस्पति भी है। नदी भी है, समुद्र भी है, मछली और कछुये भी हैं—संसार में सब कुछ है।"

"भन्ते ! जो संसार में नहीं है उसे कृपा कर बतावें"

"महाराज ! संसार में तीन चीजें नहीं है।"

"वे तीन चीजें कौनसी ?"

"महाराज ! (१) संसार में अजर, अमर सचेतन वा अचेतन कोई भी नहीं, (२) संस्कारों की नित्यता नहीं है और (३) परमार्थतः कोई जीव या आत्मा (ऐसी वस्तु) नहीं है। महाराज ! संसार में ये तीन चीजें नहीं है।"

"ठीक है, भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है उसे मैं मानता हूँ।"

६६. निर्वाण का निर्गुण होना

"भन्ते नाससेन ! संसार में कुछ तो कर्म के कारण उत्पन्न होते देखे जाते है, कुछ हेतु के कारण और कुछ ऋतु के कारण। भन्ते ! जो न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता हैं, उसे बतावें।"

"महाराज ! संसार में ऐसी दो ही चीजें हैं जो न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होती हैं।"

"कौनसी दो चीजें ?"

"महाराज ! (१) आकाश न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण होता है; (२) निर्वाण न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु

१ एक प्रकार की मणि।

के कारण उत्पन्न होता है। महाराज ! ये ही दो चीजें न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होती हैं।"

"भन्ते नागसेन ! बुध्द की बात को मत उलटें बिना बूझे उत्तर मत दें।"

"महाराज ! मैंने क्या कहा कि आप यह उलहना दे रहे हैं ?"

"भन्ते नागसेन ! यह कहना ठीक हो सकता है कि आकाश न कर्म के कारण, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण उत्पन्न होता है। किंतु भन्ते नागसेन ! सैकड़ों तरह से भगवान् ने अपने श्रावकों को निर्वाण के साक्षात् करने का मार्ग बतलाया है। इस पर भी आप कैसे कह सकते हैं कि निर्वाण बिना हेतु का होता है ?"

"महाराज ! यह सच है कि भगवान् ने सैकड़ों तरह से अपने श्रावकों को निर्वाण का साक्षात् करने का मार्ग बतलाया है। किंतु, उन्होंने निर्वाण को पैदा करने के किसी हेतु को नहीं कहा है।"

"भन्ते नागसेन ! यह तो और भी गड़बड़-घोटाला हो गया। प्रश्न और भी जटिल हो गया। यदि निर्वाण के साक्षात् करने का हेतु है तो यह कैसे हो सकता है कि उसके उत्पन्न करने के लिये हेतु न हो ? यदि निर्वाण के साक्षात् करने का हेतु है तो उसके उत्पन्न करने का भी अवश्य हेतु होना चाहिये।"

"भन्ते नागसेन ! पुत्र का पिता होता है; इसलिये पिता का भी पिता होना चाहिये। चेले का गुरु होता है; इसलिये उसका भी गुरु होना चाहिये। अंकुर का बीज होता है; इसलिये उस बीज का भी बीज होना चाहिये। भन्ते नागसेन ! उसी तरह यदि निर्वाण साक्षात् करने का हेतु है तो उसके उत्पन्न करने का भी हेतु होना चाहिये।"

"भन्ते नागसेन ! वृक्ष या लता की यदि चोटी होती तो है, उसके मध्यभाग और मूल भी होते हैं। भन्ते ! उसी तरह, यदि निर्वाण के साक्षात् करने का हेतु है, तो उसके उत्पन्न करने का भी हेतु होना चाहिये।"

"महाराज ! निर्वाण उत्पन्न नहीं किया जाता; इसी से उसका कोई हेतु भी नहीं कहा गया है।"

"भन्ते नागसेन ! अच्छा, तो कारण दे कर मुझे समझावें कि कैसे निर्वाण साक्षात् करने के हेतु होते हुये भी उसके उत्पन्न करने के हेतु नहीं होते।"

हिमालय को कोई बुला नहीं सकता

"बहुत अच्छा ! तो कान लगा कर सुनें, मैं उसके कारण को कहूँगा—महाराज ! कोई आदमी अपनी प्राकृतिक शक्ति से यहाँ से पर्वतराज हिमालय पर जा सकता है ?"

"हाँ भन्ते ! जा सकता है।"

"महाराज ! किंतु क्या वह अपनी प्राकृतिक शक्ति से पर्वतराज हिमालय को यहाँ ले आ सकता है ?"

"नहीं भन्ते ! नहीं ला सकता है।"

"महाराज ! इसी तरह, निर्वाण साक्षात् करने का मार्ग तो बताया जा सकता है किंतु उसके उत्पादक हेतु को कोई नहीं दिखा सकता।"

उस पार को इस पार नहीं लाया जा सकता

"महाराज ! क्या कोई आदमी अपनी साधारण शक्ति से नाव पर चढ़ कर समुद्र के पार उतर सकता है ?"

"हाँ भन्ते ! पार उतर सकता है।"

"महाराज ! किंतु क्या वह अपनी साधारण शक्ति से उस पार को इस पार ले आ सकता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"बस, ठीक वैसे ही निर्वाण साक्षात् करने का मार्ग तो बताया जा सकता है किंतु उसके उत्पादक हेतु को कोई नहीं दिखा सकता।"

"क्यों नहीं"

क्योंकि निर्वाण निर्गुण है।"

"भन्ते ! निर्वाण निर्गुण है ?"

"हाँ महाराज ! निर्वाण निर्गुण है, किसी ने इसे बनाया नहीं है। निर्वाण के साथ उत्पन्न होने और न उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता। उत्पन्न किया जा सकता है अथवा नहीं–इसका भी प्रश्न नहीं आता। निर्वाण वर्तमान, भूत और भविष्यत तीनों कालों के परे है। निर्वाण न आँख से देखा जा सकता है, न कान से सुना जा सकता है, न नाक से सूंघा जा सकता है, न जीभ से चखा जा सकता हैं, और न शरीर से छूआ जा सकता है।"

"भन्ते ! इस तरह आप तो यही बता रहे है कि निर्वाण क्या नहीं है। असल में निर्वाण कुछ हैं ही नहीं।"

"महाराज ! निर्वाण है। निर्वाण मन से जाना जा सकता हैं। अर्हत्पद को पा कर भिक्षु विशुद्ध, प्रणीत, ऋजु, तथा आवरणों और सांसारिक कामों से रहित मन से निर्वाण को देखता है।"

"भन्ते ! वह निर्वाण कैसा है ? उपमाओं और कारणों को दे कर — साफ साफ समझावें।"

हवा की उपमा

"महाराज ! हवा नाम की कोई चीज है ?"

"हाँ भन्ते ! है।"

"महाराज ! कृपा कर उसे मुझको दिखा दें। उसके रंग और आकार कैसे है ? क्या पतली है या मोटी ? या छोटी है या बड़ी ?"

"भन्ते नागसेन ! हवा को इस तरह नहीं दिखाया जा सकता। वह ऐसी चीज नहीं है कि हाथ में लेकर दबाई जा सके। तो भी वह ठहरती अवश्य है।"

"महाराज ! यदि आप हवा को उस तरह नहीं दिखाते तो वैसी कोई चीज ही नहीं है।"

"भन्ते नागसेन ! मैं जानता हूँ हवा कोई चीज है। मुझे पूरा विश्वास है कि हवा नाम की चीज है, किंतु मैं उसे आपको दिखा नहीं सकता।"

"महाराज ! वैसे ही, निर्वाण हैं, किंतु रंग या रूप से दिखाया नहीं जा सकता।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! मैं समझ गया।"

६७. उत्पत्ति के कारण

"भन्ते नागसेन ! कौन कर्म के कारण उत्पन्न होते है, कौन हेतु के कारण ? और कौन ऋतु के कारण ? कौन न कर्म के कारण उत्पन्न होते है, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण है ?"

"महाराज ! जितने सचेतन जीव हैं सभी कर्म के कारण उत्पन्न होते है। आग और बीज-से-उगने वाले हेतु के कारण उत्पन्न होते है। पृथ्वी, पर्वत, जल, वायु इत्यादि ऋतु के कारण उत्पन्न होते है। आकाश और निर्वाण न कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं, न हेतु के कारण और न ऋतु के कारण।

"महाराज ! यह नहीं कहा जा सकता कि निर्वाण कर्म से उत्पन्न होता है, न यह कि हेतु से उत्पन्न होता है, और न यह कि ऋतु से उत्पन्न होता है। न यह कहा जा सकता कि निर्वाण उत्पन्न होता है, न यह कि निर्वाण नहीं उत्पन्न होता है और न यह कि निर्वाण उत्पन्न किया जा सकता है। न यह कहा जा सकता है कि निर्वाण भूतकाल में था, न यह कि वर्तमान काल में है, और न यह कि भविष्यत्

काल में होगा। निर्वाण न आँख से देखा जा सकता है, न कान से सुना जा सकता है, न नाक से सूंघा जा सकता है, न जीभ से चखा जा सकता है, और न शरीर से छूआ जा सकता है।

"महाराज! निर्वाण को तो मन से ही जान सकते हैं। अर्हत्-पद पा आर्यश्रावक विशुद्ध ज्ञान से निर्वाण को देखता है।"

"भन्ते ! इस मनोहर प्रश्न को आपने अच्छा हल कर दिया। संशय को हटा दिया है। बात बिल्कुल साफ हो गई। आप जैसे गणाचार्यों में श्रेष्ठ के पास आ कर मेरी शंका मिट गई।"

६८. यक्षों के मुर्दे

"भन्ते ! नागसेन ! क्या समसुच में यक्ष होते हैं?"

"हाँ महाराज ! सचमुच में यक्ष होते हैं।"

"भन्ते ! यक्ष लोग उन योनि से क्या मर भी जाते हैं?"

"हाँ महाराज ! यक्ष लोग उन योनि से मर भी जाते हैं।"

"भन्ते नागसेन ! तो उनके मुर्दे क्यों नहीं देखने में आते हैं। उनके मरे शरीर की बदबू भी कभी नहीं आती है।

"महाराज ! मरे यक्ष के मुर्दे देखने में आते हैं। उनकी बदबू भी आती है। महाराज ! मरे यक्ष के शरीर कीड़ों के रूप में, पिल्लू के रूप में, चींटी के रूप में, पतङ्ग के रूप में, साँप के रूप में, बिच्छू के रूप में, कनखजूरे के रूप में, चिड़ियों के रूप में, और जंगली जानवरों के रूप में देखे जाते हैं।"

"भन्ते ! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ भला और कौन दूसरा इस प्रश्न का उत्तर दे सकता ?"

६९. सारे शिक्षा-पद को भगवान् ने एक ही बार क्यों नहीं बना दिया था ?

"भन्ते नागसेन ! वैद्यक-शास्त्र के जो पुराने आचार्य हो गये हैं-नारद, धन्वन्तरी, अङ्गिरस, कपिल, कण्डरग्गिसाम, अतुल और पूर्वकात्यायन- सभी ने अपने स्वयं अनुभव कर कर के अपने शास्त्रों को लिखा था, क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं थे।

"भन्ते ! किंतु बुद्ध तो सर्वज्ञ थे। अपनी सर्वज्ञता से वे आगे पीछे की बातों को ठीक ठीक जान लेते थे। सो उन्होंने पहले ही एक बार विनय के सभी नियमों को क्यों नहीं बना दिया था जो आगे चल कर उचित स्थान में लागू किया जा सकते ? रह रह कर जब अवकाश आता गया तब तब ही क्यों नियम बनाते गये ? भिक्षुओं के पाप को फैलने देने की क्यों प्रतीक्षा की ? लोगों को खिसियाने और झिझकने का क्यों अवसर दिया ?

"महाराज ! भगवान् को मालूम था कि धीरे-धीरे जैसे जैसे समय आवेगा मुझे ढ़ाई सौ विनय के नियम[1] बनाने पड़ेंगे। उन्होंने देखा कि यदि पहले ही एक बार में सारे नियमों को लागू कर दूं तो लोग देख कर घबड़ा जायेंगे। जो भिक्षु बनना चाहता हैं वे भी हिचक जायँगे और 'कहेंगे-ओह! इतने नियमों को पालन करना होगा !! श्रमण गौतम के शासन में भिक्षु बनना कितना कड़ा है !!' उकना दिल नहीं जमेगा। और, वे धर्म को ग्रहण न कर बार बार जन्म ले दुःख भोगेंगे। इसलिए, जैसे जैसे समय आवेगा, दोषों के प्रगट होने पर ही धर्म का उपदेश करते हुये नियमों को लागू करूँगा।"

"भन्ते ! आश्चर्य है !! अद्भुत है !!! बुद्धों की बातें ऐसी ही होती है। बुद्ध की सर्वज्ञता कितनी ऊँची होती है ! भन्ते नागसेन! ऐसी ही बात है। बात समझ में आ गई। यह ठीक है कि पहले ही सभी नियमों को सुन कर लोग डर जाते। कोई भी भिक्षु बनने की हिम्मत नहीं करता। मैं इसे मानता हूँ।"

७०. सूरज की गरमी का घटना

"भन्ते नागसेन ! क्या सूरज हमेशा धधकता रहता है या मन्द भी पड़ जाता है ?"

"महाराज ! सूरज हमेशा धधकता रहता है, कभी मन्द नहीं पड़ता।"

"भन्ते ! यदि सूरज हमेशा धधकता रहता है तो यह कैसी बात है कि कभी उसकी गर्मी बढ़ जाती है और कभी घट जाती है ?"

"महाराज ! सूरज में चार दोष हुआ करते हैं। इनमें किसी एक के आने से इनकी गर्मी कम हो जाती है।"

"वे चार दोष कौनसे है ?"

"महाराज ! (१) पहला दोष बादल का छा जाना है, जिसके होने से सुरज की गर्मी कम हो जाती हैं, (२) दूसरा दोष कुहरे का छा जाना है, जिसके होने से सूरज की गर्मी कम हो जाती है, (३) तीसरा दोष धूली या धूयें का छा जाना है, जिसके होने से सूरज की गर्मी कम हो जाती है, (४) चौथा दोष राहु का लग जाना है, जिसके होने से सूरज की गर्मी कम हो जाती है। महाराज ! सूरज में यही चार दोष हुआ करते हैं। इनमें किसी के होने से इसकी गर्मी कम हो जाती हैं।"

"भन्ते नागसेन ! बडा आश्चर्य है ! बड़ा अद्भुत है !! सूरज जैसे तेजस्वी में भी दोष चले आते हैं ! तो दूसरे जीवों की बात क्या? भन्ते! आप जैसे बुद्धिमान् को छोड़ कर इसे दूसरा कोई नहीं समझा सकता।"

---

१. स्थविरवाद में २२७ ही हैं।

७१. हेमन्त में ग्रीष्म की अपेक्षा सूरज की चमक अधिक क्यों रहती है ?

"भन्ते नागसेन ! ग्रीष्म में सूरज की चमक जैसी नहीं होती है वैसी हेमन्त में क्यों होती ?"

"महाराज ग्रीष्म काल में आकाश धूली गर्द से भरा रहता है, आँधी से जमीन आकाश एक हो जाता है, आकाश में बादल छाये रहते हैं, दिन रात हवा चलती रहती है। ये सभी मिल कर सूरज को किरणों को रोक सकते हैं। महाराज ! इसी से ग्रीष्म में सूरज की चमक कम रहती है।

"महाराज ! और हेमन्त काल में पृथ्वी शान्त रहती है। आकाश के बादल भी लुप्त रहते है। धूली और गर्द का पता नहीं रहता। रेणु आकाश में धीरे धीरे उड़ती रहती है। आकाश साफ रहता है। हवा मन्द मन्द बहती है। महाराज ! इन बातों से सूरज की किरणें खूब चमकती हैं और गर्म भी होती हैं। महाराज ! यही कारण है कि ग्रीष्म में सूरज की चमक जैसी नहीं होती है वैसी हेमन्त में होती है।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! सभी बाधाओं से रहित होने के कारण हेमन्त में सूरज की चमक अधिक होती है; और धूली, मेघ इत्यादि से आकाश छाये रहने के कारण ग्रीष्म में चमक कम हो जाती है।"

सातवाँ वर्ग समाप्त

---

७२. वेस्सन्तर राजा का दान

"भन्ते नागसेन ! क्या सभी बोधिसत्व अपनी स्त्री और बच्चों को दान कर देते हैं या केवल वेस्सन्तर राजा ने ही किया था ?"

"महाराज ! सभी बोधिसत्व अपनी स्त्री और बच्चों को दान कर देते हैं; केवल वेस्सन्तर राजा ने ही नहीं किया था।"

"भन्ते ! क्या वे उनकी राय ले कर उन्हें दान कर देते है, या बिना उनकी राय लिये ही ?"

"महाराज! उनकी स्त्री तो सहमत हो गई थी, किंतु बच्चे अबोध होने के कारण विलखने लगे थे। यदि उनको समझ रहती तो वे भी सहमत हो जाते।"

"भन्ते नागसेन ! बोधिसत्व ने बड़ा दुष्कर काम किया था जो अपने जनमे प्यारे बच्चों को ब्राह्मण का गुलाम बनने के लिये दे दिया।"

"इस पर भी इस से बढ़ कर दूसरा दुष्कर काम तो उन्होंने यह किया था कि अपने उन कोमल सुकुमार बच्चों को जंगल की लता से बाँध ब्राह्मण को दे दिया; और लता का छोर पकड़ ब्राह्मण के द्वारा बच्चों को खींच जाते देख मन में कुछ भी विकार आने नहीं दिया।

इस पर भी इससे बढ़ कर तीसरा दुष्कर काम तो उन्होंने यह किया था कि अपने बल से लता को तोड़ जब बच्चे भाग आये थे तो फिर भी वैसे ही बाँध कर लौटा दिया।

"इस पर भी इससे बढ़ कर चौथा दुष्कर काम तो उन्होंने यह किया था कि "बाबूजी ! यह यक्ष हम लोगों को खा जाने के लिये ले जा रहा है" कह-कह कर रोते उन बच्चों को इतना भी कह कर ढाढ़स नहीं दिया कि 'मत डरो।

"इससे बढ़ कर पाँचवाँ दुष्कर काम तो उन्होंने यह किया था कि पैरों पर रोते हुये गिर कर 'जालि' कुमार की इस विनती को भी "बाबूजी ! मैं इस यक्ष के साथ जाता हूँ, मुझे यह भले ही खा ले किंतु कृष्णाजिना (उसकी छोटी बहन) को छोड दे"—नहीं माना।

"इससे बढ़कर छठा दुष्कर काम तो उन्होंने यह किया था कि जब जालि कुमार रो-रो कर यह कह रहा था,—"बाबू जी! आपका कलेजा क्या पत्थर का है कि हम लोगों को इस यक्ष द्वारा घोर जंगल में लिये जाते देख कर भी आप नहीं बचाते है"—तो भी मन में मोह आने नहीं दिया।

"इससे बढ़कर सातवाँ दुष्कर काम तो उन्होंने यह किया था कि उन ब्राह्मण के निर्दयतापूर्वक बच्चों को घसीटते हुये आँखों के परे ले जाते देख उनका हृदय भी या हजार टुकड़ों में टूट नहीं गया।"

"भन्ते ! इस तरह, अपने पुण्य कमाने के लिये दूसरों को सताना अच्छा है ? इससे तो अच्छा था कि अपने ही को दे डालते।"

"महाराज ! बोधिसत्व के इस दुष्कार काम करने से उनकी कीर्ति दस हजार लोक के देवताओं और मनुष्यों में फैल गई थी। देवता लोग देवलोक में उनकी प्रशंसा करने लगे; असुर लोग असुरलोक में उनकी प्रशंसा करने लगे; गरुड गरुड़लोक में उनकी प्रशंसा करने लगे। इसी सिलसिले में उनकी कीर्ति आज हम लोगों तक पहुँची हुई है जिससे इस बात की चर्चा हो रही है कि उनका यह दान उचित था या नहीं

"महाराज ! इस कीर्ति से उन निपुण, विज्ञ और शान्त चित्त वाले बोधिसत्वों के दश गुण जाने जाते हैं।"

"कौनसे दश गुण ?"

"महाराज ! (१) निर्लोभ, (२) साँसारिक वस्तुओं से प्रेम न करना, (३) त्याग, (४) वैराग्य, (५) संकल्प से न गिर जाना, (६) सूक्ष्मता, (७) महानता, (८) दुरनुबोधता, (९) दुर्लभता और (१०) बुद्ध-धर्म की असदृशता। इस कीर्ति से उन निपुण, विज्ञ और शान्त चित्त वाले बोधिसत्वों के ये ही दश गुण जाने जाते हैं ?"

"भन्ते नागसेन ! जो दूसरों को सता कर दान दिया जाता है क्या उसका फल अच्छा होता है, क्या उससे स्वर्ग मिलता है ?"

"हाँ महाराज ! इसमें कहना क्या है !!"

"भन्ते नागसेन ! कृपया कारण दिखा कर इसे समझावें।"

रोगी को गाडी पर चढ़ा कर ले जाय

"महाराज ! कोई धर्मात्मा श्रमण या ब्राह्मण बड़ा शीलवान् (सदाचारी) हो। उसे लकवा मार दे, वह लूला हो जाय, या इसी तरह की कोई दूसरी बीमारी उसे हो जाय। उसे कोई दूसरा पुण्यवान पुरुष अपनी गाड़ी पर चढ़ा जहाँ वह जाना चाहे वहाँ ले जाय। महाराज ! तो क्या उस पुरुष को स्वर्ग देने वाला अच्छा फल मिलेगा ?"

"हाँ भन्ते ! इसमें कहना क्या है ! इस पुण्य के फल से उसे सवारी के लिये हाथी भी मिल सकता है, घोड़ा भी मिल सकता है, रथ भी मिल सकता है, पृथ्वी पर चलने के लिये पृथ्वी पर चलने वाली सभी सवारियाँ मिल सकती हैं, पानी पर जाने के लिये नाव, जहाज सभी कुछ मिल सकते हैं, देवताओं के देवयान भी मिल सकते हैं, और मनुष्य-यान भी मिल सकते हैं। जन्म जन्म में उसका कल्याण होगा। बड़ा सुख मिलेगा। उसकी बड़ी अच्छी गति होगी। उस कर्म के फल से ऋद्धि-यान पर चढ़ सबों के वाञ्छित निर्वाणरुपी नगर को पहुंच जायगा।"

"महाराज ! इससे तो यही पता चलता है कि दूसरों को दुःख देकर जो दान किया जाता है उससे भी स्वर्ग देने वाला अच्छा फल मिलता है। वह मनुष्य गाड़ी के बैलों को दुःख देकर ही पुण्य कमाता है और सुख पाता है।"

"महाराज ! एक और कारण सुनें कि कैसे दूसरों को दुःख दे कर जो दान दिया जाता है उसका भी स्वर्ग देने वाला अच्छा फल मिलता है।

राजा का दान देना

"महाराज ! कोई राजा उचित प्रकार से कर ले, और बाद में लोगों को दान करावे। महाराज ! तो क्या उसे इससे अच्छा फल मिलेगा ? इस दान देने से उसे क्या स्वर्ग मिलेगा ?"

"हाँ भन्ते ! इसमें कहना क्या है ! उसके पुण्य से राजा को उसका सौ और हजार गुना अधिक प्राप्त होगा। राजाओं में महाराज हो जायगा; देवों में महादेव हो जायगा; ब्रह्माओं में महाब्रह्मा हो जायगा; श्रमणों में श्रेष्ठ श्रमण हो जायगा; ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हो जायगा; अर्हतों में श्रेष्ठ अर्हत् हो जायगा।"

"महाराज ! इससे तो यही पता चलता है कि दूसरों को दुःख देकर जो दान किया जाता है उससे भी स्वर्ग देने वाला अच्छा फल मिलता है। राजा अपनी प्रजा से कर लेकर ही तो इस प्रकार का यश और सुख पाता है।"

"भन्ते नागसेन ! वेस्सन्तर राजा ने दान देने में अति कर दिया था। यहाँ तक कि अपनी स्त्री को दूसरे की स्त्री बन जाने के लिए दे डाला ! अपने जनमे बच्चों तक को ब्राह्मण के गुलाम बनने के लिये दान कर दिया। भन्ते नागसेन ! दान में अति कर देने की भी बुद्धिमान् लोग निन्दा करते हैं।"

अधिक से हानि

"भन्ते नागसेन ! अधिक भार लाद देने से गाड़ी का धुर टूट जाता है; अधिक भार लाद देने से नाव बैठ जाती है; अधिक भोजन कर लेने से पचने में कसर हो जाती है; अधिक वर्षा होने से धान गल जाता है; अधिक दान दे देने से दरिद्र हो जाना होता है; अधिक गर्मी होने से जल जाता है; अधिक प्रेम होने से पागल हो जाता है; अधिक द्वेष से बड़ा अपराध हो जाता है; अधिक मोह होने से बुरी अवस्था को प्राप्त हो जाता है; अधिक लोभ करने से चोरों से पकड़ा जाता है; अधिक भय से घबड़ा जाता है; अधिक पानी आने से नदी में बाढ़ आ जाती है; अधिक हवा चलने से बिजली गिर जाती है; अधिक आँच देने से भात उफन जाता है; अधिक दौड़ धूप करने से बहुत नहीं जीता। भन्ते नागसेन ! इसी तरह, दान में भी अति कर देने को बुद्धिमान् लोग निन्दा करते हैं। भन्ते ! वेस्सन्तर राजा ने भी दान देने में अति कर दी थी। उसका कुछ अच्छा फल नहीं हो सकता।"

"महाराज ! बुद्धिमान् लोग अधिक दान देने की प्रशंसा करते हैं, बढाई करते हैं, और उसे अच्छा बताते हैं। जो जिस किसी तरह का दान दे सकता है, अधिक दान करने वाला संसार में कीर्ति पाता है।"

अधिक से लाभ

"महाराज ! दिव्य शक्ती वाली जंगल की बूटी को हाथ में कस कर पकड़ रखने से अपने हाथ के पास बैठे हुये आदमी से भी नहीं देखा जा सकता; अधिक शक्ती वाली जड़ी-बूटी पीड़ा को शान्त करती और रोग को दूर कर देती हैं। अधिक गर्म होने कारण आग जलती हैं; और अधिक ठंडा होने कारण पानी आग को बुझा

सकता हैं। मणि अधिक गुणों वाला होने से मुँह माँगा वर देती हैं। वज्र अधिक तीक्ष्ण होने से हीरा, मोती और पत्थर को काट सकता है। पृथ्वी अधिक बड़ी होने से मनुष्य, साँप, मृग, पक्षी, जल, चट्टान, पर्वत, वृक्ष सभी को धारण करती है। बहुत बड़ा होने कारण समुद्र कभी नहीं भरता। सुमेरु पर्वत अधिक भारी होने के कारण अचल है। आकाश अधिक फैले रहने कारण अनन्त है। सूरज अधिक चमकने के कारण अंधेरे को दूर कर देता हैं। सिंह ऊँची जात का होने के कारण निर्भय रहता हैं। पहलवान् अधिक बल रहने से दूसरे पहलवान को तुरन्त पटक देता है। राजा अपने अधिक पुण्य के कारण सभी का मालिक हो कर रहता है। भिक्षु अधिक शीलवान् होने के कारण नाग, यक्ष, मनुष्य और मार सभी के नमस्कार का पात्र होता है। बुद्ध अधिक श्रेष्ठ होने के कारण अनुपम होते हैं।

"महाराज ! इसी तरह, बुद्धिमान् लोग अधिक दान देने की प्रशंसा करते हैं, बड़ाई करते हैं, और उसे अच्छा बताते हैं। जो जिस किसी तरह का दान दे सकता है, अधिक दान देने वाला संसार में कीर्ति पाता है। महाराज ! अधिक दान देने कारण वेस्सन्तर राजा दस हजार लोक में प्रशंसित हुये, उनकी बड़ी बड़ाई हुई। उसी अधिक दान को दे कर वेस्सन्तर राजा आज बुद्ध हो गये—देवताओं और मनुष्यों के साथ इन लोक में सब के अग्र हो गये।"

"महाराज ! संसार में क्या ऐसी भी कोई चीज है जिसे दान पाने का अधिकारी रहते हुए भी नहीं देना चाहिये।"

"हाँ भन्ते ! ऐसी दस चीजें हैं जिन्हें कभी भी दान नहीं करना चाहिये। जो उसका दान करता है वह नरक को जाता है।"

"कौन-सी दस चीजें हैं ?"

दान नहीं करने योग्य वस्तु

"भन्ते ! (१) शराब और ताड़ी का दान कभी नहीं करना चाहिये; जो उनका दान करता है वह नरक को जाता है; (२) नाच बाजा में दान कभी नहीं करना चाहिये; जो दान करता है वह नरक को जाता है, (३) भन्ते ! स्त्री का दान कभी नहीं करना चाहिये; जो दान करता है वह नरक को जाता है; (४) बैल का दान कभी नहीं करना चाहिये; जो दान करता है वह नरक को जाता है, (५) चित्रकर्म का दान कभी नहीं करना चाहिये; जो दान करता है वह नरक को जाता है, (६) हथियार का दान कभी नहीं करना चाहिये; जो दान करता है वह नरक को जाता है; (७) विष का दान कभी नहीं करना चाहिये, जो दान करता है वह नरक को जाता है, (८) जंजीर का दान कभी नहीं करना चाहिये, जो दान करता है वह नरक को जाता है, (९) मुर्गी और सूअर का दान कभी

नहीं करना चाहिये, जो दान करता है वह नरक को जाता है, (१०) जाली पैला या बटखरा नहीं दान करना चाहिये, जो दान करता है वह नरक को जाता है। भन्ते नागसेन! इन दस चीजों का दान कभी नहीं करना चाहिये, जो दान करता है वह नरक को जाता है।"

"महाराज! मैं यह नहीं पूछता कि किन दानों को नहीं देना चाहिये। मेरा पूछना यह है कि, महाराज! क्या संसार में कोई ऐसी चीज है जिसे दान पाने का अधिकारी रहने पर भी न देकर रोक रखना चाहिये?"

"नहीं भन्ते! संसार में कोई भी ऐसी चीज नहीं है जिसे दान पाने का अधिकारी रहने पर भी न दे कर रोक रखना चाहिये। खुश हो कर कोई दान पाने के अधिकारी को भोजन देते हैं, कोई कपड़ा देते हैं, कोई खाट देते हैं, कोई घर—बाड़ी देते हैं, कोई ओढ़ना—बिछौना देते हैं, कोई दाई नौकर देते हैं, जगह जमीन देते हैं, कोई द्विपद (पक्षी) और चतुष्पद (चौपाये जानवर) देते हैं; कोई सौ, हजार या लाख देते हैं, कोई राज—पाट तक दे देते हैं; कोई अपनी जान तक देते हैं।"

"महाराज! यदि कोई अपनी जान तक दे डालते हैं तो आप दानपति वेस्सन्तर राजा के अपनी स्त्री और बच्चों के दान कर देने पर क्यों आक्षेप कर रहे हैं? महाराज! क्या संसार में बहुधा ऐसा नहीं देखा जाता; कि पिता अपना ऋण चुकाने के लिये या जीविका के लिये अपने पुत्र को गिरवी रख देता है या बेच भी देता है!"

"हाँ भन्ते! ठीक बात है।"

"बस, वैसे ही वेस्सन्तर राजा भी सर्वज्ञता न पाने के कारण चिन्तित और दुःखित थे; सो उन्होंने धर्म कमाने के लिये अपनी स्त्री और बच्चों को दे डाला। महाराज! इस तरह, वेस्सन्तर राजा ने वही दिया जो लोग देते हैं; वही किया जो लोग करते हैं। महाराज! तब आप उन दानपति वेस्सन्तर राजा पर क्यों आक्षेप कर रहे हैं?"

"नहीं भन्ते मैं उनको दोष नहीं दे रहा हूँ, किंतु अपनी स्त्री और बच्चों को दे डालने के बदले उन्होने अपने ही को दे देना चाहिये था।"

"महाराज! स्त्री और बच्चों के माँगने पर अपने को दे देना तो उचित काम नहीं होता। जिस चीज को माँगता हैं उसी चीज को तो देना चाहिये। अच्छे लोग ऐसा ही किया करते हैं।

"महाराज! कोई आदमी किसी से पानी माँगे और वह उसे भोजन परोस दे तो क्या वह उसकी इच्छा को पूरा करता है?"

"नहीं भन्ते ! जो वह माँगता है उसी को देने से उसकी इच्छा को पूरा कर सकता है।"

"महाराज ! इसीलिये जब ब्राह्मण ने स्त्री और बच्चों को माँगा था तब वेस्सन्तर राजा ने उन्हीं को दे डाला। महाराज ! यदि ब्राह्मण उन के अपने शरीर को माँग बैठता, तो वे अपने को कभी रोक नहीं रखते, न काँपते और न मोह करते; वे अपने शरीर को भी दे डालते। महाराज ! यदि कोई वेस्सन्तर राजा से उनकी गुलामी माँगता तो उसे भी बिना किसी हिचक के वे देने को तैयार थे।"

"महाराज ! वेस्सन्तर राजा ने यथार्थ में अपना शरीर लोगों में बाँट दिया था। जब घर में माँस तैयार होता है तो सभी बाँट कर खाते हैं। जब वृक्ष फलों से लद जाता है तो सभी पक्षी उसे बाँट कर खाते हैं। महाराज ! उसी तरह, वेस्सन्तर राजा को अपने शरीर पर ममता नहीं थी, मानो उन्होंने अपना शरीर लोगों में बाँट दिया था। सभी को आराम देने के लिये वे तैयार रहते थे।"

"ऐसा क्यों ?"

"इस विचार से कि मैं इस प्रकार उदार हो कर बुद्धत्व पा सकूँगा।"

"महाराज ! निर्धन मनुष्य धन कमाने के लिये धन की खोज में कहाँ कहाँ नहीं दौड लगाते, कैसे-कैसे बीहड़ रास्तों को लाँघ जाते हैं ! जल पर और थल पर व्यापार करते हैं। शरीर, बचन और मन तीनों से केवल धन ही धन की खोज में लगे रहते हैं। महाराज ! इसी तरह, दानपति वेस्सन्तर ने बुद्ध-धन से निर्धन हो सर्वज्ञता-रत्न की प्राप्ति के लिये याचकों को धन-धान्य, दाई-नौकर, गाड़ी-सवारी, अपनी, स्त्री और बच्चों यहाँ तक कि अपने शरीर को दे डाला। बुद्धत्व प्राप्त करने ही के लिये उन्होंने ऐसा किया था।"

"महाराज ! अफसर तरक्की पाने के लिये अपने पास जो कुछ धनदौलत है सभी को दे सकता है। ऊँचे ओहदे पाने की जी-जान से कोशिश करता है। महाराज ! इसी तरह, वेस्सन्तर राजा अपने बाहर और भीतर के सभी धन का दान दे अपने को भी दान कर बुद्धत्व की खोज कर रहे थे।"

महाराज ! इसके अलावे, दानपति राजा वेस्सन्तर के मन में ऐसा हुआ—"यह ब्राह्मण जो माँगता है उसी का दे कर मैं उसकी इच्छा को पूरा कर सकूँगा।" यह विचार कर उन्होंने उसे अपनी स्त्री और बच्चों को भी दे दिया। महाराज ! उन्होंने उन्हें उनसे डाह रखने के कारण नहीं दे डाला था, न उन को न देखा जा सकने के कारण, न उनको बोझा समझ कर और न उनको अप्रिय समझ कर उनसे छुटकारा पाने के लिये। बल्कि, सर्वज्ञता-रत्न को पा कर बुद्ध बन जाने की ही इच्छा से वेस्सन्तर

राजा ने अपने उन अतुल्य, अलौकिक प्रिय–मनाप और प्राणों के से लाड़ले बच्चों तक को दान कर दिया।"

"महाराज ! चर्यापिटक में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है–

"अपने दोनों बच्चों से मुझे डाह नहीं थी,
रानी माद्री से भी मुझे डाह नहीं थी।
सर्वज्ञता प्राप्त करने का मार्ग मुझे प्यारा था,
इस लिये मैं ने उन प्यारों को दे डाला ॥"

"महाराज ! वेस्सन्तर राजा इस दान के बाद पर्णशाला (पत्तों की बनी झोपड़ी) में जा कर बैठ गये। एक बार उनके प्रेम की याद कर विव्हल हो उठे। उनका कलेजा तक सूख गया। गरम साँस नाक में भर मुँह से आने–जाने लगी। आँख से खून के आँसू चलने लगे। महाराज अपने दान पर डटे रहने के लिये उन्होंने इस दुःख को सह कर भी उनका दान कर दिया था।

"महाराज ! और भी दो बातों के खयाल से उन्होंने अपने दो बच्चों को दान कर दिया था।"

"किन दो बातों के खयाल से ?"

(१) "मेरा दान–व्रत नहीं टूटेगा और (२) जंगल के फल–फूल को ही खा कर रहने से मेरे पुत्रों को जो दुःख है उस से वे छूट जायेंगे।"

"महाराज ! वेस्सतन्र राजा को यह मालूम था कि मेरे पुत्रों को कोई गुलाम बनाकर नहीं रह सकता। उनका दादा उन्हें छुड़ा लेगा, और फिर भी वे मेरे ही पास आवेंगे। महाराज ! इन्हीं दो बातों के ख्याल से उन्होंने अपने दो बच्चों को दान कर दिया था।

"महाराज ! वेस्सन्तर राजा को यह भी मालूम था यह ब्राह्मण बड़ा बूढ़ा और बहुत कमजोर हो गया है; इसकी नस–नस ढ़ीली पड़ गई है, लाठी के सहारे बड़ी कठिनता से चलता फिरता है, इसका पुण्य बहुत थोड़ा हैं, और इसकी आयु पूरी हो चली है। यह इन बच्चों को गुलाम नहीं बना सकता।

"महाराज ! इतने तेजस्वी और प्रतापी इन चाँद–सूरज को कोई पकड़ बक्से में बन्द कर उनकी सारी चमक हटा क्या थाली के ऐसा उनको काम में ला सकता ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह, सूरज चाँद से प्रतापी वेस्सन्तर राजा के बच्चों कोई गुलाम नहीं बना सकता।"

"महाराज ! एक और भी कारण सुनें जिससे वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई गुलाम बना कर नहीं रख सकता। महाराज ! चक्रवर्ती राजा का मणिरत्न जो उज्ज्वल, अच्छी जाति वाला, अठपहलू, अच्छी तरह काटा—छाँटा, चार हाथ के घेरे वाला और गाड़ी की नाभी के बराबर होता है; उसे कोई कुल्हाड़े बसूला तेज करने के लिए चिथड़ों से लपेट छिपा कर नहीं रख सकता। महाराज ! उसी तरह चक्रवर्ती राजा के मणि-रत्न के समान तेजस्वी वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई गुलाम बना कर नहीं रख सकता।

"महाराज ! एक और भी कारण सुनें जिससे वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई गुमाम बना कर नहीं रख सकता। महाराज ! हस्ति—राज उपोसथ जो बिलकुल सफेद, तीनों स्थान से मंद चलने वाले, सातों प्रकार से प्रतिष्ठित, आठ हाथ ऊँचे, नव हाथ लम्बे, सुन्दर और देखने ही लायक होते है; उन्हें कोई सूप या कलछी से ढक कर नहीं रख सकता, या उन्हें कोई गाय के बछड़ों के साथ हाँक कर नहीं ले जा सकता। महाराज ! उसी तरह, हस्तिराज उपोसथ के साथ समान प्रतापी वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई गुलाम बना कर नहीं रख सकता।

"महाराज ! एक और भी कारण सुनें जिससे वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई गुलाम बना कर नहीं रख सकता। महाराज ! यह समुद्र बड़ा लम्बा चौड़ा फैला हुआ है, अत्यन्त गम्भीर है, अनन्त है, अपरम्पार है, अथाह है और खुला है। कोई उसे चारों ओर से बाँध कर एक ही घाट से काम लिये जानेलायक नहीं बना सकता। महाराज ! इसी तरह, महासमुद्र के समान गौरवशील वेस्सतन्र राजा के बच्चों को कोई गुलाम बना कर नहीं रख सकता।

"महाराज ! एक और भी कारण सुनें जिससे वेस्सन्तर राजा के बच्चों को कोई गुलाम बना कर नहीं रख सकता। महाराज ! पर्वतराज हिमालय पाँच सौ योजन ऊँचा आकाश में उठा हुआ है, तीन हजार योजन के घेर में फैला है; चौरासी हजार चोटियों से सजा हुआ है, इससे पाँच सौ बड़ी बड़ी नदियाँ निकलती हैं, बड़े बड़े जीवों का यह घर है, इसमें अनेक प्रकार के ग्रन्थ हैं, सैकड़ों दिव्य औषधियों से यह भरा है और यह आकाश में उठे हुये मेघ की तरह दिखाई देता है। महाराज ! इसी तरह, हिमालय पर्वतराज के समान गौरव वाले वेस्सन्तर राजा के बच्चों को को कोई गुलाम बना कर नहीं रख सकता।"

"महाराज ! एक और भी कारण सुनें। महाराज ! रात के अन्धेरे में पहाड़ के ऊपर जलती हुई आग का ढ़ेर बहुत दूर से भी देखा जा सकता है। उसी तरह, वेस्सतन्र राजा की कीर्ति दूर दूर तक चली गई थी। उनके बच्चों को कोई गुलाम बना कर नहीं रख सकता।"

"महाराज ! एक और भी कारण सुनें। महाराज ! हिमालय पहाड़ पर जब नाग फूल फूलता है तो हवा के धीरे धीरे चलने पर दस-बारह योजन को मह मह कर देता है। महाराज ! इसी तरह, वेस्सन्तर राजा की कीर्ति हजारों योजन तक फैल बीच के असुरलोक, गरुड़लोक, गन्धर्वलोक, यक्षलोक, सर्पलोक, किन्नरलोक और इन्द्रलोक को पार कर अकनिष्टलोक (अन्तिम देव लोक) तक पहुंच गई थी। ये सभी लोक उनके शील की गन्ध से भर गये थे। तो भला उनके बच्चों को कौन गुलाम बना कर रख सकता !"

"महाराज ! वेस्सन्तर राजा ने अपने पुत्र जालि कुमार को बता दिया था—तात ! तुम्हारे दादा यदि ब्राह्मण को धन दे कर छुड़ा लेना चाहें तो तुम्हारे लिए एक सहस्र निष्क और तुम्हारी बहन कृष्णाजिना के लिये सौ दास, सौ दासी, सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ गाय, सौ भैंस और सौ निष्क दे कर छुड़ावें। तात ! यदि तुम्हारे दादा जबर्दस्ती बिना कुछ दिये, अपनी हुकूमत चला कर ब्राह्मण के हाथ से तुम्हें छुड़ा लेना चाहें तो उनकी बात को न मानना, ब्राह्मण के पास ही रहना। ऐसा कह कर वेस्सतन्र राजा ने उन्हें भेजा था। तब, जालि कुमार ने वहाँ जा अपने दादा से पूछे जाने पर कहा था:—

"तात ! हजार का दाम लगा के मेरे पिता ने
मुझे इस ब्राह्मण को दिया था,
और सौ हाथी का दाम लगा कर बहन कृष्णाजिना को।"

"भन्ते नागसेन ! आपने ठीक समझाया। झूठे पक्ष को काट दिया। विपक्ष के वाद को बिलकुल दबा दिया। अपनी बात को साफ कर दिया ! उद्धरण के सच्चे भाव को निकाल दिया। प्रश्न का बड़ा सुन्दर विश्लेषण कर दिखाया। आपने जो समझाया है मैं उसे मानता हूँ।"

७३. गौतम की दुःख-चर्या के विषय में

"भन्ते ! क्या सभी बोधिसत्व दुःख-चर्या करते हैं या केवल गौतम ने की थी ?"

"महाराज ! सभी बोधिसत्व दुःख-चर्या नहीं करते केवल गौतम ही ने की थी।"

"भन्ते ! यदि ऐसी बात है तो एक बोधिसत्व का दूसरे से भिन्न होना ठीक नहीं।"

"महाराज ! चार स्थानों (=बातों) में एक बोधिसत्व दूसरे से भिन्न होते है।"

"किन चार स्थानों में ?"

"महाराज ! (१) कुल में, (२) स्थान और समय में, (३) आयु में, और (४) ऊँचाई में–इन चार स्थानों में एक बोधिसत्व दूसरे से भिन्न होते हैं। महाराज ! किंतु सभी बोधिसत्व रूप, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति–ज्ञान के साक्षात्कार, [1]चार वैशारद्य, [2]दस बुद्ध–बल, छः असाधारण, ज्ञान, चौदह बुद्ध–ज्ञान, अट्ठारह बुद्ध–धर्म और बुद्ध की दूसरी बातों में समान ही होते हैं। सभी बुद्ध बुद्ध-के गुणों में बराबर होते हैं।"

"भन्ते ! यदि सभी बुद्ध बुद्ध–के गुणों में समान होते हैं; तो बोधिसत्व गौतम ने अकेले दुःख–चर्या क्यों की ?"

"महाराज ! बोधिसत्व गौतम (चार आर्य–सत्यों के) ज्ञान और प्रज्ञा को पाने के पहले ही घर छोड़ कर निकल गये थे। अपने अधकच्चे ज्ञान को पूरा करने की धुन में ही उन्होंने दुःख–चर्या की थी।"

"भन्ते ! ज्ञान के बिना पके हुये बोधिसत्व गौतम घर छोड़ कर क्यों निकल गये ? अपने ज्ञान को पहले ही पका कर पके ज्ञान का बन क्यों नहीं घर से निकले ?"

"महाराज ! [3] नाचने वाली स्त्रियों की उचटा–देने वाली अवस्था को देखकर उनका मन फिर गया था। मन फिर जाने से उन्हें वैराग्य हो आया। उनके चित्त को वैराग्य से भरा देख किसी मारकायिक देवपुत्र ने यह सोचा, ठीक यही समय है

---

१. चतुवेसारज्जः–उन्हें इसका विश्वास होता है कि कोई श्रमण, ब्राह्मण, देव या मार उनकी ओर अंगुली उठा कर यह नहीं कह सकता कि (१) आपके बताये बुद्ध में पाये जाने वाले गुणों को आपने नहीं पा लिया है; या (२) जिन क्लेशों को आप अर्हत् में क्षीण हो जाना बताते हैं वे आप में क्षीण नहीं हुये हैं; या (३) ऊपर की अवस्था में जिन बातों को आप अन्तराय बताते हैं वे उनके अभ्यास करने वालों के लिये वैसे नहीं हैं, या (४) लोगों के सामने आप जिस उद्देश्य को रख कर धर्म्मोपदेश करते हैं वह उसके अनुसार चलने वालों को दुःख से मुक्त नहीं कर सकता।–अंगुत्तर निकाय, ४–८ से उद्धृत।

२. (१) स्थानास्थान-ज्ञान बल, (२) कर्मविपाक-ज्ञान-बल, (३) नानाधिमुक्ति-ज्ञान बल, (४) नानाधातु-ज्ञान बल, (५) इन्द्रिय-परापर ज्ञानबल (६) सर्वत्रगामिनी प्रतिपद् (७) संक्लेशव्यवदान व्युत्थान, (८) पूर्वनिवासानुस्मृति, (९) च्युति-उत्पत्ति, (१०) आस्रवक्षय।

३. देखो जातक, १–६१। यही कथा महावग्ग (विनयपिटक) १–७ में यशकुलपुत्र के विषय में कही गई।

कि मैं उनके वैराग्य को तोड़ दूँ।" आकाश में प्रकट होकर उसने कहा—"मार्ष ! मार्ष ! ! आप इस तरह मत घबड़ा जायँ। आज के सातवे दिन आपको[1] दिव्य चक्र-रत्न-हजार अरों वाला, नेमी के साथ, नाभी के साथ और सभी गुणों से भरा प्रगट होगा। पृथ्वी और आकाश के जितने रत्न हैं सभी स्वयं ही आपके पास चले आवेंगे। दो हजार छोटे-मोटे द्वीपों के साथ चार महाद्वीपों में आपकी एकमात्र हुकुमत चलेगी। हजार तक आपके—सूर, वीर, शक्तिशाली और शत्रुओं की सेना को तहस-नहस करने वाले पुत्र होंगे। उन पुत्रों के साथ [2] सात रत्न से यक्त हो चारों द्वीप पर आप राज करेंगे।"

'महाराज ! सारे दिन जलती हुई आग में जैसे लाल की गई लोहे की छड़ी को कोई कान में घुसावें ; वैसे ही बोधिसत्व को ये वचन लगे। एक तो अपने ही बोधिसत्व को विराग हो रहा था ; दूसरे मार के इस वचन को सुन कर उनका मन और भी संवेग से भर आया। महाराज ! जैसे कोई जलती हुई आग की बढी ढ़ेरी लकड़ी से ढक दिये जाने से और भी धधक उठती है, वैसे ही एक तो अपने ही बोधिसत्व को विराग हो रहा था; दुसरे मार के इस वचन को सुन कर उसका मन और भी सवेग से भर आया। महाराज ! जैसे कोई अपने ही घास से पात से भरी कीचड़ हुई दलदल जमीन खूब पानी बरस जाने के बाद और भी कीचड़ हो जाती है; वैसे ही एक तो अपने ही बोधिसत्व को विराग हो रहा था, दूसरे मार के इस वचन को सुन कर उनका मन और भो संवेग से भर आया।"

'भन्ते नागसेन ! यदि सातवे दिन सचचुच दिव्य चक्र-रत्न उनके सामने प्रगट हो जाता तो क्या वे उसे लौटा देते ?"

" नहीं महाराज ! सातवे दिन बोधिसत्व के सामने दिव्य चक्र-रत्न के प्रगट होने की कोई बात नहीं थी ; उस देवता ने केवल उन्हें लुभाने के लिये ऐसा झूठ कह दिया था। महाराज ! यदि सातवे दिन सचमुच बोधिसत्व के सामने दिव्य-रत्न प्रगट हो जाता; तो भी वे लौट नहीं सकते थे।"

'सो क्यों ?"

"महाराज ! क्योंकि संसार की अनित्यता उनके हृदय में गहरी धँस गई थी, संसार दुःख ही दुःख है यह बात भी उनके हृदय में गहरी धँस गई थी, और संसार में कोई सार (=आत्मा) नहीं है। यह बात भी उनके हृदय में गहरी धँस गई थी। इस प्रकार, संसार के प्रति उनकी सारी लिप्सा नष्ट हो गई थी।"

१-२ चक्रवर्ती राजा के सात रत्न होते हैं; दीघनिकाय के 'चक्रवर्ती लक्षण सूत्र' में इन रत्नों का पूरा वर्णन देखो।

"महाराज ! अनोतत्त दह (अनवतप्त-हृद) का पानी गङ्गा नदी में बहता है, गङ्गा नदी में बह कर समुद्र में गिरता है, और समुद्र से पाताल में चला जाता है। महाराज ! तो क्या वही पानी फिर भी पाताल से समुद्र में समुद्र से गंगा नदी में और गंगा नदी से अनोतत्त दह में लौट आ सकता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! इसी प्रकार, इस अंतिम जन्म तक पहुँचने के लिये ही बोधिसत्व चार असंख्य एक लाख कल्पों से पुण्य इकट्ठा कर रहे थे। सो वे वहाँ पहुँच गये। परम-ज्ञान चरम सीमा तक पहुँच गया था। छः वर्षों में वे बुद्ध सर्वज्ञ और नरोत्तम होने वाले ही थे। तो क्या वे चक्र-रत्न के लिये लौट जाते ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! यह महापृथ्वी बड़े बड़े जंगल और ऊँचे-ऊँचे पर्वत के साथ उलट जाती तो उलट जाती ; किंतु बोधिसत्व बिना सम्यक् सम्बोधि (पूर्ण बुद्धत्व) पाये कभी नहीं लौट सकते थे महाराज गंगा नदी भले ही उलटी धार बहने लगती, किंतु बोधिसत्व बिना सम्यक् सम्बोधि पाये कभी नहीं लौट सकते थे। महाराज ! गोपद[1] के जल के समान यह अथाह और अगाध समुद्र भले ही सुख जाता, किंतु बोधिसत्व बिना सम्यक् सम्बोधि पाये कभी नहीं लौट सकते थे। महाराज ! सुमेरु पर्वतराज सैकड़ों और हजारों टुकड़ों में भले ही टूट जाता, किंतु बोधिसत्व बिना सम्यक् सम्बोधि पाये कभी नहीं लौट सकते थे। महाराज ! डले की तरह सूरज, चाँद और सभी तारे पृथ्वी पर ही गिर पड़ते, किंतु बोधिसत्व बिना सम्यक् सम्वोधि पाये कभी नहीं लौट सकते थे। महाराज ! चटाई की तरह सारे आकाश कोई भी भले ही लपेट लेता, किंतु बोधिसत्व बिना सम्यक् सम्बोधि पाये कभी नहीं लौट सकते थे।"

"सो क्यों ?"

"क्योंकि संसार के सभी बन्धनों को उन्होंने तोड़ दिया था।"

"भन्ते नागसेन ! संसार के कितने बन्धन हैं ?"

"महाराज ! संसार के दस बन्धन है जिनमें पड़ कर जीव नहीं निकलता हैं; निकल कर फिर भी बँध जाता है।

"वे दस बन्धन कौनसे हैं ?"

"महाराज (१) माता बन्धन हैं, (२) पिता बन्धन है, (३) स्त्री बन्धन है, (४) पुत्र बन्धन है, (५) बन्धु-बान्धव बन्धन है, (६) मित्र बन्धन हैं, (७) धन बन्धन है, (८) लाभ-सत्कार बन्धन है, (९) प्रभुता बन्धन है, (१०) पाँच-कामगुण बन्धन[2] हैं, । महाराज ! यही दस संसार के बन्धन हैं जिनमें पड़ कर जीव नहीं निकलता; निकल कर फिर भी बँध जाता है। बोधिसत्व ने सभी दस बन्धनों

को काट दिया था, बिल्कुल तोड़ फाड़ कर हटा दिया था। महाराज! इसी से बोधिसत्व फिर नहीं लौट सकते थे।"

"भन्ते नागसेन! ज्ञान के पूरा पूरा नहीं पकने पर भी यदि बोधिसत्व के हृदय में देवता के वचन को सुन कर विराग उत्पन्न हो गया था जिससे वे घर छोड़ निकल गये थे, तो दुःखचर्या से उनका क्या मतलब था? उन्हें तो अपने ज्ञान पक जाने की प्रतीक्षा खूब खाते पीते करनी चाहिये थी!"

"महाराज संसार में ऐसे दस लोग हैं जो अपमानित होते है, निन्दित होते, नीच समझे जाते हैं, बुरे माने जाते हैं, अप्रतिष्ठत किये जाते हैं, सभी जगह दबा दिये जाते है, और जिनकी कोई भी परवाह नहीं करता।"

"कौनसे दस?"

"महाराज! (१) विधवा स्त्री, (२) कमजोर आदमी, (३) जिसके कोई बन्धु-बान्धव नहीं हैं, (४) पेटू आदमी, (५) छोटे कुल का आदमी, (६) बुरे लोगों के साथ रहने वाला, (७) गरीब आदमी, (८) तौर-तरीके न जानने वाला, (९) निकम्मा आदमी और (१०) नालायक आदमी। महाराज! यही दस लोग है जो अपमानित होते है, निन्दित होते हैं, नीच समझे जाते हैं, बुरे माने जाते हैं, अप्रतिष्ठित किये जाते हैं, सभी जगह दबा दिये जाते हैं, और जिनकी कोई भी परवाह नहीं करता। महाराज! इन दस बातों को याद कर बोधिसत्व नेऐसा विचारा—देवताओं और मनुष्यों में मैं कभी निकम्मा और नालायक समझ कर निन्दित न किया जाऊँ! अत: मुझे कर्मपरायण और कर्मशील होना चाहिये। मुझे कभी असावधान नहीं होना चाहिये।

"महाराज! इसो से बोधिसत्व ने अपने ज्ञान को पकाये हुये दुःखचर्या का अभ्यास किया था।"

"भन्ते नागसेन! बोधिसत्व ने दुःख—चर्या का अभ्यास करते हुये कहा था—इस कठोर दुःख—चर्या से मैं उस अलौकिक परम-ज्ञान को साक्षात् नहीं कर सकूंगा। बुद्धत्व पाने का क्या कोई दूसरा मार्ग होगा?" तो क्या उस समय मार्ग निश्चित करने में बोधिसत्व की अक्ल चकरा गई थी?"

"महाराज! चित्त को कमजोर बना देने वाली पच्चीस बातें हैं, जिनके कारण आस्रवों के क्षय करने में चित्त ठीक ठीक नहीं लगता।"

---

१ गाय के पैर पड़नें से जमीन पर बना गढ़ा

२ पाँचों इन्द्रिय के भोग।

"कौनसी पच्चीस बातें ?"

"महाराज ! (१) क्रोध, (२) डाह, (३) ढ़ींग, (४) धमण्ड, (५) इर्ष्या, (६) लोलुपता, (७) झूठी दिखावट, (८) शठता, (९) जिद्दीपन(, १०) झगडालूपन, (११–१२) अपने को सब से बड़ा समझना, (१३) मद, (१४) प्रमाद, (१५) स्त्यान, (१६) तन्द्रा, (१७) आलस्य, (१८) बुरी मित्रता, (१९) रूप, (२०) शब्द, (२१) गन्ध, (२२) स्पर्श (२३) भूख, (२४) प्यास, (२५) असंतोष। महाराज ! चित्त को कमजोर बना देने वली यह पच्चीस बातें हैं; जिसके कारण आस्त्रवों के क्षय करने में चित्त ठीक ठीक नहीं लगता। महाराज! उस समय इनमें से भूख और प्यास बोधिसत्व के शरीर को दबाये हुई थी। भूख और प्यास से शरीर इस प्रकार दबे रहने के कारण आस्त्रवों के क्षय करने में उनका चित्त ठीक ठीक नहीं लग रहा था। महाराज ! चार असंख्य एक लाख कल्पों में बोधिसत्व जन्म में चार आर्य-सत्यों को साक्षात् करने में प्रयत्नशील थे। तो क्या अन्तिम जन्म में आ कर जब उन्हें आर्य-सत्यों का साक्षात् होने वाला था; वे अपने मार्ग से विचलित हो जाते ? महाराज! बल्कि बोधिसत्व को यह इशारा मिल गया कि अवश्य कोई न कोई दूसरा ही मार्ग होगा।"

"महाराज ! पहले ही, जब बोधिसत्व केवल एक महीने के थे अपने पिता शाक्य शुद्धोदन के काम में फँसे रहने के समय जामुन वृक्ष की ठंडी छाया में सुन्दर पलंग पर पलथी मार कर बैठ, काम और अकुशल धर्मों से रहित हो, वितर्क और विचार के साथ वाला, विवेक से उत्पन्न होने वाला प्रतिसुख जिसमें होता है; उस प्रथम ध्यान को प्राप्त हो गये थे। उसी तरह, उन्होंने दूसरे, तीसरे और चौथे ध्यान को भी पा लिया था।"

"ठीक हैं भन्ते नागसेन ! ऐसी ही बात है, मैं मानता हूँ। अपने ज्ञान को पकाते हुये बोधिसत्व ने दुःखचर्या का अभ्यास किया था।"

७४. पाप और पुण्य में कौन बलवान् है और कौन कमजोर ?

"भन्ते नागसेन ! कौन अधिक बलवान् है, पाप या पुण्य ?"

"महाराज ! पुण्य ही अधिक बलवान् होता है; पाप वैसा नहीं होता।"

भन्ते नागसेन ! कितते लोग हैं जो हत्या कर डालते है, चोरी करते हैं, व्यभिचार करते हैं, झूठ बोलते हैं, सारे गाँव में लूट पाट करते हैं, रहजनी करते हैं, ठगी करते हैं, या छल करते हैं। उतने ही पाप के लिये उनका हाथ काट दिया जाता हैं, पैर काट दिया जाता हैं, नाक काट दी जाती है, कान और नाक दोनों काट

दिये जाते हैं, और उन्हें बिलङ्गथालिक[1] इत्यादि कठोर दण्ड दियें। जाते हैं। कितने लोग जिस रात को पाप करते हैं उसी रात को उसका फल भी भोग लेते हैं; कितने लोग जिस रात को पाप करते हैं उसके बिहान ही फल पाते हैं; कितने लोग जिस दिन पाप करते हैं उसी दिन उसका फल पा लेते हैं; कितने लोग आज पाप कर के दो-तीन दिनों के बाद उसका फल पाते हैं। वे सभी देखने ही देखते इसी जन्म में अपनी करनी का फल पाते हैं। भन्ते नागसेन ! किंतु क्या ऐसा भी कोई है जिसने परिष्कारों के साथ एक या दो, या तीन, या चार, या पाँच, या दश, या सौ, या हजार, या लाख भिक्षुओं को दान देकर अपने देखते ही देखते इसी जन्म में सम्पत्ति, यश या सुख पाया हो? अथवा, शील पालन करने या उपोसथ व्रत रखने से अपने देखते ही देखते इसी जन्म में सम्पत्ति-यश या सुख पाया हो ?"

"हाँ महाराज ! ऐसे चार पुरुष हैं जो दान दे, शील का पालन कर और, उपोसथ व्रत रख अपने देखते ही देखते इसी शरीर से देवलोक में भी प्रतिष्ठित हुये है।"

"भन्ते ! कौन कौन ?"

"महाराज ! (१) राजा मान्धाता, (२) राजा निमि (३) राजा साधीन और (४) गुत्तिल गन्धर्व ?"

"भन्ते! हम लोगों के कई हजार पीढ़ी आगे की यह बात है। न उन्हें आपने देखा है और न मैंने। भगवान् के होते इस युग की कोई ऐसी बात क्या कहा सकते हैं?"

"महाराज! इस युग में भी पुण्णक नाम का दास स्थविर सारिपुत्र को भोजन देने से उसी दिन सेठ हो गया था। वह आज तक भी पुण्यक सेठ के नाम से जाना जाता है।– रानी गोपालमाता अपने शिर के केशों को आठ कार्षापण (उस समय का पैसा) में बेच महाकात्यायन और उनके साथ साथियों को पिण्डपात दे कर उसी दिन उदयन ? (प्रद्योत) राजा की पटरानी हो गई थी।–सुप्रिया नाम की उपासिका किसी रोगी भिक्षु को अपनी जाँघ के माँस का पथ्य देकर दूसरे हो दिन भली चंगी हो गई थी; और उसका घाव भर गया था।– मल्लिका देवी भगवान् को बासी मठ्ठा देकर उसी दिन कोसल-राज की पटरानी हो गई थी।–सुमन नाम का माली आठ मुट्ठी फूल से भगवान् की पूजा करके उसी दिन महासम्पत्तिशाली हो गया था। महाराज ! ये सभी अपने देखते ही देखते इसी जन्म में भोग और यश को प्राप्त हुये थे।"

---

१. ऊपर आ चुका हैं, इसीलिये यहाँ उनके नाम नहीं दिये गये। देखो पृष्ठ २४१।

"भन्ते नागसेन ! बहुत खोज ढूंढ़ करने पर आपने इन छ: लोगों को दिखाया।"

"हाँ महाराज !"

"भन्ते नागसेन ! इससे तो यही पता चलता है कि पुण्य से पाप ही अधिक बलवान है, पाप से पुण्य नहीं। भन्ते नागसेन ! मैं तो केवल एक दिन दस, बीस, तीस, चालिस, पचास, सौ और हजार पुरुषों को भी अपने पाप के कारण शूली पर चढते देखा हूँ।"

"भन्ते नागसेन ! नन्द वंश के सेनापति को भद्रशाल नाम का एक पुत्र था। उसकी राजा चन्द्रगुप्त के साथ लड़ाई छिड़ गई थी। उस लड़ाई में दोनों सेनाओं की ओर से अस्सी कबन्धरूप थे। एक सीसकबन्ध के पुर जाने पर एक सीसकबन्ध उठ खड़ा होता था। ये सभी अपने पाप के कारण ही इस घोर दु:ख को झेल रहे थे। भन्ते नागसेन ! इसलिये मैं कहता हूँ कि पुण्य से पाप ही अधिक बलवान है, पाप से पुण्य नहीं।"

"भन्ते नागसेन ! बुद्ध-धर्म में सुना जाता है कि कोसल-राज ने बेजोड़ का दान दिया था।"

"हाँ महाराज ! सुना जाता है।"

'भन्ते नागसेन ! कोसल-राज ने उस बेजोड़ दान करने के बाद क्या देखते ही देखते इसी जन्म में कुछ भोग, यश या सुख पाया था ?"

नहीं महाराज !"

"भन्ते नागसेन ! यदि कोसल-राज को ऐसा अलौकिक दान करने से भी देखते ही देखते इसी जन्म में कुछ भोग यश या सुख नहीं मिला था, तो इससे यही पता चलता हैं कि पुण्य से पाप ही अधिक बलवान है, पाप से पुण्य नहीं।"

कुमुद भण्डिका और शाली

"महाराज ! छोटा होने के कारण पाप जल्द ही अपना फल दिखा देता है; बड़ा होने के कारण पुण्य का फल देर से मिलता है। महाराज ! उपमा देकर भी यह समझाया जा सकता है—महाराज ! अपरान्त देश कुमुद-भण्डिका नामक एक धान की जात है, जो एक ही महीने में काट कर घर में ले आया जाता है। शाली धान पाँच-छ: महीनों में पकता हैं। महाराज ! तो यहाँ कुमुदभण्डिका और शाली धान में क्या अन्तर है, क्या भेद है ?"

"भन्ते ! कुमुदभण्डिका छोटा होना और शाली धान का बढ़ा होना। इसी से एक बहुत जल्दी तैयार हो जाता है और दूसरा देरी से। भन्ते ! शाली चावल तो राज-भोग होता है, उसे राजा लोग खाते है; ,और कुमुदभण्ड़िका चावल को दासी औट नौकर खाते हैं।"

"महाराज ! इसी तरह, छोटा होने के कारण पाप जल्द ही अपना फल दिखा देता हैं; बड़ा होने के कारण पुण्य का फल देर से मिलता।"

"भन्ते नागसेन ! ठीक हैं ! जिसका फल जल्द मिल जाता हैं वही संसार में अधिक बलवान समझा जाता है। इसलियें पुण्य से पाप ही अधिक बलवान् है, पाप से पुण्य नहीं ।"

"भन्ते नागसेन ! जो सिपाही घमासान लड़ाई में घुस शत्रु को काँख से पकड़ जल्द ही अपने स्वामी के पास घसीट लाता है, वही वीर और बहादुर कहा जाता है।–जो वैद्य फुर्ती से नश्तर लगा रोगी को ठीक-ठाक कर देता है, वही वैद्य होशियार समझा जाता है।–जो मुनीम फुर्ती से हिसाब लगा खाता मिला देता है वही लायक समझा जाता है।–जो पहलवान् अपने जोड़े को फुर्ती से पटक कर चित्त कर देता है वही अच्छा समझा जाता है। भन्ते नागसेन! वैसे ही, पाप या पुण्य जो अपना फल जल्द दिखा देता हैं वही अधिक बलवान् है।"

महाराज! दोनों कर्मो का फल दूसरे जन्म में मिलेगा; किंतु पाप बुरा होने के कारण यहाँ भी बुरा नतोजा लाता है। महाराज ! पूर्व काल के राजाओं ने ही यह नियम बना दिया था, कि जो हत्या करेगा उसे दण्ड दिया जायगा, जो चोरी करेगा, जो व्यभिचार करेगा, जो झूठ बोलेगा, जो गाँव में लूट-पाट मचावेगा, जो रहजनी करेगा, जो ठगी करेगा और जो छल करेगा, उसे दण्ड दिया जायगा, उसे फाँसी दे दी जायगी, उसके अंग काट लिये जायेंगे, तथा उसे कोड़े लगाये जायेंगे। उसी के अनुसार वे देख-भाल कर दण्ड देते है। महाराज ! क्या ऐसा भी नियम किसी ने बनाया हैं कि जो दान करेगा, शील का पालन करेगा, या उपोसथ व्रत रक्खेगा, उसे इनाम और खिताब दिये जायेंगे। क्या कोई पुण्य करने वालों को पुरस्कार देता है, जैसे चोरों को दण्ड ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! यदि पुण्य करने वालों को पुरस्कार दिये जाने का नियम बना दिया जाय तो पुण्य भी (पाप के ऐसा) इसी जन्म में फल दिखा देने वाला हो जाय। महाराज! चूंकि पुण्य करने वालों को पुरस्कार दिये जाने के नियम नहीं; इसीलिये, पुण्य इसी जन्म में फल दिखा देने वाला नहीं होता। महाराज ! इसी कारण से पाप

इस जन्म में ही फल दिखा देता है। (किंतु पुण्य नहीं)। पुण्य दूसरे जन्म में बडा जबरदस्त फल दिखाता है।

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आप जैसे बुद्धिमान को छोड़ कोई दूसरा प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। भन्ते ! जिस प्रशन को मैंने लौकिक दृष्टि से पूछा था उसे आपने लोकोत्तर के विचार से समझाया।"

७५. मरे हुये लोगों के नाम पर दान देना

"भन्ते नागसेन ! कितने लोग दान देकर उसका पुण्य मरे हुये पुरखों को देते हैं। उससे क्या उनको कुछ फल मिलता है ?"

"महाराज! कितनों को मिलता है और कितनों को नहीं।"

"भन्ते ! किनको मिलता है और किनको नहीं ?"

महाराज ! जो निरय (नरक) में पड़ गये हैं उनको नहीं मिलता, जो स्वर्ग पहुँच गये हैं, उनको नहीं मिलता, पशु-पक्षी आदि नीची योनि में जिनका जन्म हो गया है उनको नहीं मिलता। प्रेतयोनि में आये तीन प्रकार के पुरखों को नहीं मिलता—(१) वन्तासिक (वमन को खाने वाले), (२) खुप्पिपासी (जो भूख और प्यास से बेचैन रहते है) और (३) निज्जामतण्हिक (प्यास से जलते हुये)। जो 'परदत्तोपजीवो' प्रेत है उन्हें अलबत्ता मिलता हैं। उन्हें भी याद रखने से ही मिलता हैं।"

"भन्ते नागसेन ! तब तो उनका दान निरर्थक होता हैं, जिसका कुछ फल ही नहीं। जिसके नाम से दान दिया जाता है उसे कोई पुण्य न मिलने से वह दान तो बेकार ही हुआ।"

"नहीं महाराज ! वह दान बिना किसी फल वाला और बेकार नहीं होता। देने वाले को ही उसका फल मिलता है।"

',भन्ते ! उसे कारण दे कर कृपया समझावें।"

लौटाया बायन

"महाराज ! कोई मछली, मांस, मद्य, भात और दूसरे खाने तैयार कर अपने सम्बन्धी कुल में ले जाय। यदि उसके सम्बन्धी उस बायन को स्वीकार न करें तो क्या वह सब कुछ बेकार बनकर नष्ट हो जायगा ?"

"नहीं भन्ते ! वह जिसका था उसी का रहेगा।"

"महाराज ! इसी तरह उसका फल देने वाले को ही मिलता है॥"

एक दरवाजे की कोठरी

"महाराज ! कोई आदमी किसी कोठरी में घुसे जिससे निकलने का कोई दूसरा दरवाजा सामने न हो, तो वह किस रास्ते से निकलेगा ?"

"भन्ते ! उसी रास्ते से जिस रास्ते से घुसा था ।"

"महाराज! इसी तरह, उसका फल देने वाले को ही मिलता है ।"

"भन्ते ! खैर, यही सही ! मैं मान लेता हूँ कि उसका फल देने वाले को ही मिलता हैं । इस बात को मैं और नहीं काटता ।"

"भन्ते ! यदि दिये हुये दान का पुण्य पुरखों तक पहुँच जाता है और वे इसका फल पा लेते है तब यदि कोई हत्यारा, खुनी नीच विचार से मनुष्यों को मार घोर पाप कर उस कर्म को पुरखों के नाम दे दे–'इसका फल पुरखों को मिले'–तो क्या ठीक उसका फल पुरखों को मिलेगा ?"

"नहीं महाराज !"

"भन्ते नागसेन ! इसका क्या कारण है कि पुण्य कर्मों के फल तो पुरखों तक पहुचा दिये जा सकते हैं किंतु पाप कर्मों के नहीं ?"

"महाराज ! यह प्रश्न पूछने लायक नहीं था । महाराज ! यह समझ कर कि कुछ न कुछ उत्तर मिलेगा ही आप बिना शिर पैर के प्रश्नों को न पूछें । इसके बाद शायद आप यह पूछने लगेंगे–आकाश निरालम्ब क्यों हैं ? गङ्गा उलटो धार क्यों नहीं बहती ? मनुष्य और पक्षी को दो ही पैर क्यों होते है ? मृग चौपाये क्यों हैं ?"

"भन्ते नागसेन ! मैं आपकी खिल्ली उड़ाने के लिये नहीं किंतु अपने संदेह को हटाने के लिये ही पूछ रहा हूँ । संसार में कितने लोग बड़े टेढ़ें और उलटी समझवाले होते हैं । 'अपते को वे क्यों न सुधार लें' इसी विचार से मैं पूछता हूँ ।"

नलके से पानी जाता है पत्थल नहीं

"महाराज ! पाप का फल उसे नहीं लग सकता जिसने न तो उसे ,किया हो और न उसके लिये अपनी राय दी हो । महाराज ! नलके से लो पानी को दूर दूर तक ले जाते हैं; क्या उसी तरह से वे घने पत्थर के पहाड़ को भी ले जा सकते है?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! उसी तरह, पुण्य कर्म के फल तो पुरखों को दिये जा सकते हैं किंतु पाप कर्म के नहीं ।"

तेल से दीपक जलाया जाता है पानी से नहीं

"महाराज ! तेल से दीपक जलाया ही जाता है, क्या पानी से भी कोई जला सकता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! उसी तरह, पुण्य कर्म के फल तो पुरखों को दिये जा सकते हैं किंतु पाप कर्म के नहीं ।"

"महाराज ! किसान तालाब से पानी लाकर धान को सींचते ही हैं, क्या समुद्र से लाकर भी सींच सकते हैं ?"

"नहीं भन्ते !

"महाराज ! उसी तरह, पुण्य कर्म के फल तो पुरखों को दिये जा सकते हैं किंतु पाप कर्म के नहीं ।"

"भन्ते नागसेन ! किंतु ऐसी बात क्यों है ? कृपया कारण देकर समझावें मैं अन्धा और बेसमझ नहीं हूँ । पुष्ट प्रमाण को सुनकर ही समझूंगा ।

"महाराज ! पाप लघु हैं; पुण्य महान है । लघु होने के कारण पाप करने वाले को ही फल दे सकता है । पुण्य महान होने के कारण देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार को ढक लेता है ।

"कृपया उपमा देकर समझावें ।"

"महाराज ! पृथ्वी पर एक बूंद पानी गिर जाय, तो क्या वह दस-बारह योजन तक फैल सकता है ?"

"नहीं भन्ते ! जहाँ पर एक बूंद पानी गिरेगा वह वहीं पर सूख जायगा ।"

"महाराज ! ऐसा क्यों होता है ?"

"भन्ते ! क्योंकि बूंद बहुत छोटी होती है ।"

"महाराज ! इसी तरह, पाप बहुत छोटा है । छोटा होने के कारण करने वाले को ही फल दे सकता हैं दूसरों में बाँटा नहीं जा सकता ।"

"महाराज ! कभी मन भर मुसलधार पानी बरसे, तो क्या वह सभी ओर फैल जायगा ?"

"अवश्य ! दस-बारह योजन तक के गढ़े, सर, सरित, शाखा, कन्द, प्रदर, दह, तालाब, कुयें, बावली, सभी लबालब भर जायेंगे ।

"महाराज ! ऐसा क्यों होता है ?"

"भन्ते ! क्योंकि मेघ बहुत महान है।"

"महाराज ! इसी तरह, पुण्य महान् है। महान् होने के कारण देवताओं और मनुष्यों में भी बाँटा जा सकता है।"

"भन्ते नागसेन ! पाप छोटा और पुण्य महान् क्यों है ?"

"महाराज ! जो कोई दान देता है, शील का पालन करता है, उपोसथ व्रत रखता है वह बड़ा ही आनन्दित, प्रसन्न और पुलकित होता है। उसे अधिकाधिक प्रीति होती है; मन प्रीति से भर कर और भी पुण्य की ओर लगता है।"

सोते वाला कुँवा

"महाराज ! खूब पानी वाल कोई कुँवा हो। उसके एक ओर से पानी आवे और दूसरी ओर वह निकले। निकलने पर भी अधिकाधिक पानी आता जाय, घटे नहीं। महाराज ! इसी तरह, पुण्य अधिकाधिक बढता ही जाता है। सौ वर्षों तक कोई पुण्य बाँटता रहे तो भी अधिकाधिक बढ़ता ही जायगा। वह जितनों को चाहे उन्हें भी पुण्य दे सकता है। महाराज ! यही कारण है कि दोनों में पुण्य इतना महान् है।

"महाराज ! पाप करने के बाद पछतावा होता है। पछतावा होने से मन गिर जाता है, पाप ही की ओर बार बार दौड़ता है, शान्ति नहीं मिलती है; शोक करता है, अनुताप करता है, भ्रष्ट होता है, नष्ट होता है और ऊपर नहीं उठ सकता। वहीं का वहीं बना रहता है।"

बालू की नदी के ऊपर थोड़ा पानी

"महाराज ! कोई सूखी हुई बालू की नदी बड़ी ऊँची नीची और टेढ़ी मेढ़ी हो। यदि उसके ऊपर थोड़ा पानी बरसे तो वहीं सूख कर खतम हो जायगा। महाराज ! इसी तरह, पाप करने वाले का चित्त गिर जाता है।"

"महाराज ! यही कारण है जिससे पाप बहुत लघु होता है।"

"ठीक है भन्ते नाससेन ! आपने जो समझाया मैं उसे मानता हूँ।"

७६. स्वप्न के विषय में

"भन्ते नागसेन ! सभी स्त्री-पुरुष स्वप्न देखते हैं—अच्छे भी और बुरे भी, पहले का देखा हुआ भी और पहले का नहीं देखा हुआ भी, पहले का किया हुआ भी और पहले का नहीं किया हुआ भी, शान्ति देने वाला भी और घबड़ा देने वाला भी,

दूर का भी और निकट का भी, और भी अनेक प्रकार के हजारों तरह के। यह स्वप्न हैं क्या चीज ? कौन इनको देखा करता है ?"

"महाराज ! स्वप्न चित्त के सामने आने वाला निमित्त[1] मात्र है। महाराज ! छः प्रकार के स्वप्न आते हैं–(१) वायु भर जाने से स्वप्न आता है, (२) पित्त के प्रकोप से स्वप्न आता है, (३) कफ बढ जाने से स्वप्न आता है, (४) देवताओं के प्रभाव में आकर कितने स्वप्न आते हैं, (५) बार बार किसी काम को करते रहने से स्वप्न आता है, (६) भविष्य में होने वाली बातों का भी कभी कभी स्वप्न आता है। महाराज ! इन छः में जो अन्तिम भविष्य में होने वाली बातों का स्वप्न आता हैं वही सच्चा होता है बाकी दूसरे झुठ।"

"भन्ते नागसेन ! भविष्य में होने वाली बातों का भला कैसे स्वप्न आता है ? क्या उसका चित्त बाहर जाकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की खबर ले आता है ? या भविष्य में होने वाली बातें स्वयं उसके चित्त में चली आती है या कोई दूसरा आकर उसे बता जाता है ?"

"महाराज ! न तो उसका चित्त बाहर जाकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की खबर ले आता है, और न कोई दूसरा आकर उसे बता जाता है। भविष्य में बातें स्वयं उसके चित्त में चली आती है।

दर्पण

"महाराज ! दर्पण स्वयं बाहर के बिंब को खोज कर अपने में नहीं ले आता और न कोई दूसरा दर्पण में बिंब डाल देता है। किंतु, बाहर की चीजों की छाया स्वयं जाकर दर्पण में प्रतिबिंब बनाती है। महाराज ! इसी तरह, न तो उसका चित्त बाहर जाकर भविष्य में होने वाली घटनाओं की खबर ले आता है, और न कोई दूसरा आकर उसे बता जाता है। भविष्य होने वाली बाते स्वयं ही जहाँ कहीं से आकर उसके चित्त में प्रतिबिम्बित हो जाती है।"

"भन्ते नागसेन ! जो चित्त स्वप्न देखता है, क्या वह जानता है कि इसका फल कैसा होगा–शान्ति-कर या भयप्रद ?"

"महाराज ! वह नहीं जानता कि इसका फल कैसा होगा–शान्ति-कर या भयप्रद। कुछ ऐसा वैसा स्वप्न देख कर वह दूसरों को बताता है। वे उसका अर्थ लगाते है।"

---

१ निमित्त–रायस ड़ेविड महोदय इसका अनुवाद 'Suggestion' करते हैं। यह आधुनिक मनोविज्ञान के बिल्कुल अनुकूल मालूम होता है।

"भन्ते नागसेन ! बहुत अच्छा, कृपया एक उदाहरण देकर समझावें तो सही।"

"महाराज ! मनुष्य के शरीर में तिल, फुनसी, या दाद हो जाता है—उसके लाभ के लिये या घाटे के लिये, नाम के लिये या बदनामी के लिये, तारीफ के लिये या शिकायत के लिये, सुख के लिये या दुःख के लिये (होता है) महाराज ! तो क्या दाद, फुंसी या तिलवा जान कर उठते हैं कि मैं ऐसा फल निकालूगा ?"

"नहीं भन्ते ! बल्कि ज्योतिषी लोग ही फुनसी उठने के स्थान के अनुसार देख भाल कर बताते हैं— इसका ऐसा फल होगा।"

"महाराज ! इसी तरह, जो चित्त स्वप्न देखता हैं वह नहीं जानता है कि इसका फल कैसा होगा—शान्तिकर या भयप्रद। कुछ ऐसा वैसा स्वप्न देख कर वह दूसरों को बताता है। वे उसका अर्थ लगाते हैं।"

"भन्ते नागसेन ! जो स्वप्न देखता है, वह सोते हुये देखता है या जागते हुये ?"

"महाराज ! जो स्वप्न देखता है वह न तो सोते हुये देखता है और न जागते हुये। किंतु गाढ़ नींद के हल्का हो जाने पर जो एक खुमारी की सी अवस्था होती है उसी में स्वप्न आते हैं। महाराज ! घोर नींद पड़ जाने पर चित्त विस्मृत (भवङ्ग गत) हो जाता है, विस्मृत चित्त काम नहीं करता, और तब उसे सुख-दुःख का भी पता नहीं होता। जब चित्त कुछ नहीं जानता है तो उसे स्वप्न भी नहीं आते। चित्त के काम करने ही पर स्वप्न आते हैं।"

"महाराज ! काले अंधेरे में स्वच्छ दर्पण पर भी परछाँही नहीं पड़ती। महाराज ! वैसे ही, गाढ़ नींद में चित्त के विस्मृत हो जाने पर शरीर बने रहने से चित्त काम नहीं करता; जब चित्त काम ही नहीं करता तो स्वप्न भी नहीं आते। महाराज ! जैसा दर्पण है वैसा शरीर को समझना चाहिये; जैसा अँधेरा है वैसा ही गाढ़ नींद को समझना चाहिये; जैसा प्रकाश है वैसा चित्त को समझना चाहिये।"

"महाराज ! खूब कुहरा छा जाने पर सूरज की चमक कुछ काम नहीं करती, सूरज की किरणें रहने पर भी दब जाती है, सूरज की किरणें दब जाने पर रोशनी ही नहीं होती। महाराज ! इसी तरह, गाढ़ी नींद में चित्त विस्मृत हो जाता है; चित्त विस्मृत हो जाने से काम नहीं करता; चित्त के काम नहीं करने से स्वप्न भी नहीं आते। महाराज ! जैसा सूरज है वैसा शरीर को समझना चाहिये; जैसा कहरा

है वैसा गाढ़ी नींद को समझना चाहिये; जैसी सूरज की किरणें वैसा हैं। चित्त को समझना चाहिये।"

"महाराज ! दो अवस्थाओं में शरीर के बने रहने पर भी चित्त रुक जाता है:- (१) गाढ़ी नींद में चित्त के विस्मृत हो जाने (भवङ्ग गत) शरीर के बने रहने पर भी चित्त बन्द हो जाता है। (२) निरोध अवस्था में शरीर के बने रहने पर भी चित्त बन्द हो जाता है।"

"महाराज ! जाग्रत अवथा में चित्त चञ्चल खुला हुआ, प्रकट और स्वच्छन्द होता है। इस अवस्था में कोई निमित्त नहीं आता।

"महाराज ! जैसे अपने को छिपा कर रखने की इच्छा करने वाला पुरुष किसी खुले स्थान में सबों के सामने चुपचाप बैठ दूसरे पुरुष से नजर बचा कर रहना चाहता है। महाराज ! इसी तरह, जागते हुये चित्त में दिव्य अर्थ नहीं आते। इसी लिये जागता पुरुष स्वप्न नहीं देखता।"

"महाराज ! जिस प्रकार बुरी जीविका वाले, दुराचारी, पापमित्र, शील-भ्रष्ट, कायर और उत्साहरहित भिक्षु के पास ज्ञानी लोगों के गुण नहीं आते उसी प्रकार जागते हुये के पास दिव्य अर्थ, नहीं आते। इसी लिये जागता हुआ पुरुष स्वप्न नहीं देखता।"

"भन्ते नागसेन ! क्या गाढ़ी नींद के आदि, मध्य और अन्त होते हैं ?"

"हाँ महाराज ! गाढ़ी नींद का आदि होता है, मध्य होता है, और अन्त भी होता है।"

"उसका आदि क्या है, मध्य क्या है, और अन्त क्या है ?"

"महाराज ! शरीर थका और टूटता हुआ सा मालूम होता है, कमजोरी मालूम होने लगती है, शरीर मन्द और ढीला पड़ जाता है- यहीं उसका आदि है। महाराज ! बन्दर की नींद की तरह आधा जागता है और आधा सोता है-यह उसका मध्य है। महाराज ! अपने को बिलकुल भूल जाता है, विस्मृत हो जाता है (भवङ्ग गत) -यह अन्त है। महाराज ! इसमें जो मध्य की अवस्था है उसी में स्वप्न आते हैं।"

"महाराज ! कोई संयम-शील, अपने को वश में रखने वाला, शान्त चित्त वाला, धर्मधीर तथा दृढ़विचारी लोगों के हल्ले गुल्ले से बहुत दूर जंगल में जा कर गहरी बातों का अनुसन्धान करे। वह वहाँ सो नहीं जावे, वह वहाँ एक मन से उसी गहरी समस्या को सुलझाने में लगा रहे। महाराज ! इसी तरह, सोने और जागने की बीच अवस्था में पड़ा बन्दर की नींद लेता हुआ पुरुष स्वप्न देखता है।

महाराज ! जो लोगों का हल्ला-गुल्ला है वैसे ही जाग्रत अवस्था को समझना चाहिये। जो एकान्त जंगल है वैसे ही बन्दर की नींद को समझना चाहिये। जो हल्ले-गुल्ले से हट, नींद को रोक, बीच की अवस्था में रह कर गहरी बात का मनन करता है, वैसी ही बन्दर की नींद वाली हालत में स्वप्न आते हैं।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! ऐसी ही बात है। मैं इसे मानता हूँ।"

७७. काल-मृत्यु और अकाल-मृत्यु

"भन्ते नागसेन ! जितने जीव मरते हैं सभी काल–मृत्यु से (जिन्दगी पुर जाने) ही मरते हैं या कुछ अकाल से (जिन्दगी पुरने के पहले ही) भी ?"

"महाराज ! कुछ काल–मृत्यु से भी और कुछ अकाल–मृत्यु से भी।"

"भन्ते नागसेन ! कौन काल–मृत्यु से मरते हैं और कौन अकाल–मृत्यु से ?"

फल पकने पर और पहले भी गिर जाते हैं

"महाराज ! क्या आपने देखा है कि आम के वृक्ष से, जामुन के वृक्ष से, या किसी दूसरे फल के वृक्ष से फल पक जाने पर भी गिरते हैं और पकने के पहले भी ?"

"हाँ भन्ते ! देखा है।"

"महाराज ! वृक्ष से जो फल गिरते हैं वे सभी काल ही से गिरते हैं या अकाल से भी ?"

"भन्ते ! जो फल पक और बढ़ कर गिरते हैं वे काल से गिरते हैं; किंतु जो कीड़ा खा जाने, लाठी चलाये जाने, आँधी, पानी या भीतर ही भीतर सड़ जाने से गिरते हैं, वे अकाल से गिरते हैं।"

"महाराज ! इसी तरह, जो पूरे बूढे होकर मरते हैं वे काल–मृत्यु से मरते हैं। और, उनकी अकाल–मृत्यु समझी जानी चाहिये जो अपने कर्म के कारण, बहुत चलने फिरने के कारण, या काम के अधिक भार रहने के कारण मरते हैं।"

"भन्ते ! जो कर्म के कारण, बहुत चलने फिरने के कारण, काम के अधिक भार होने के कारण, या पूरा बढ़े होने के कारण मरते हैं, सभी की तो काल–मृत्यु ही हुई। जो माता की कोख ही में मर जाता है उसका वही काल समझना चाहिये। इस तरह, उसकी भी काल–मृत्यु हुई। जो प्रसवगृह में ही मर जाता है उसका वही काल समझना चाहिये। इस तरह, उसकी भी काल–मृत्यु हुई। जो एक महीने का होते ही मर जाता है उसका वही काल समझना चाहिये। इस तरह, उसकी भी काल–मृत्यु हुई। जो सौ वर्ष का बूढ़ा होकर मरता है उसका वही काल समझना चाहिये। इस

तरह, उसकी भी काल-मृत्यु हुई। नागसेन भन्ते! इस तरह, तो अकाल-मृत्यु कभी होती ही नहीं। जो कोई मरते हैं सभी की काल-मृत्यु ही होती है।"

"महाराज! सात प्रकार के लोग आयु पूरी होने के पहले ही मर जाते हैं; उनकी अकाल-मृत्यु होती है।"

"कौनसे सात?"

सात अकाल-मृत्यु

"महाराज! (१) भूखा आदमी भोजन नहीं मिलने के कारण अपने पेट की आग से तप कर अकाल ही में मर जाता है, (२) प्यासा आदमी पानी नहीं मिलने के कारण हृदय के सूख जाने से अकाल ही में मर जाता है, (३) साँप का काटा आदमी अच्छे झाड़ने वाले के न मिलने से जहर चढ़ जाने के कारण अकाल ही में मर जाता है, (४) जहर दिया गया आदमी उचित दवा न मिलने के कारण अङ्ग प्रत्यङ्ग जल जल कर अकाल ही में मर जाता है, (५) आग में पड़ गया आदमी किसी से न बुझाये जाने के कारण अकाल ही में जल कर मरता है, (६) पानी में डूबा हुआ आदमी कोई बचाव न करने से घुट घुट कर अकाल ही में मर जाता है और (७) तीर लगा आदमी अच्छे वैद्य के न मिलने के कारण उसी घाव से अकाल ही में मर जाता है। महाराज! ये सात प्रकार के लोग आयु पूरी होने से पहले ही मर जाते हैं; इनकी अकाल-मृत्यु होती है। इन सभी को मैं एक ही कोटि में गिनता हूँ।"

मृत्यु के आठ कारण

"महाराज! जीव आठ प्रकार से मरते हैं। (१) वायु के उठने से, (२) पित्त के बिगड़ जाने से, (३) कफ के बढ़ जाने से, (४) सन्निपात हो जाने से, (५) मौसम के बिगड़ जाने से, (६) रहने सहने में गड़बड़ हो जाने से, (७) किसी भी बाहरी कारण से, और (८) कर्म फल के आने से। महाराज! इनमें जो कर्म-फल के आने से मृत्यु होती है वही अपने समय आने पर मरना है; वही काल-मृत्यु है। बाकी समय के पहले अकाल में मरना है। कहा भी गया है:-

"भूख से, प्यास से, साँप का काटे और विष से,
आग; पानी और तीर से अकाल में ही मृत्यु हो जाती है।
वायु और पित्त से, कफ से, सन्निपात से और मौसम के कारण,
गडबड़ी, बाहरी-कारण और कर्मफल से अकाल में ही मृत्यु हो जाती हैं॥"

"महाराज ! कितने लोग अपने पूर्वजन्म में किये गये भिन्न भिन्न पाप के फल से मर जाते है। महाराज ! जो इस जन्म में दूसरों को भूखा रख कर मार देता है वह लाखों वर्ष तक बूढ़ापे, जवानी, या लड़कपन में भूख से छटपटा छटपटा, तड़प तड़प, पेट की आग से भीतर ही भीतर कलेजे के सूख जाने के कारण जल जल कर मरता है। यह उसकी काल-मृत्यु ही है।"

काल-मृत्यु

"महाराज ! जो इस जन्म में किसी दूसरे को प्यासा रख कर मार देता है वह लाखों वर्ष तक प्यास से व्याकुल प्रेत हो दुबला, पतला और सूखे हृदय वाला हो अपने बुढ़ापे, जवानी या लड़कपन में प्यास से ही मरता है। महाराज ! यह उसकी काल-मृत्यु ही है।"

"महाराज ! जो इस जन्म में किसी दूसरे को साँप से कटवा कर मार देता है; वह लाखों बर्ष तक एक अजगर के मुँह से दूसरे अजगर के मुंह में, और एक काले साँप के मुंह में दूसरे काले साँप के मुंह पड़, उनसे काटा जा कर अपने बुढ़ापे, जवानी या लड़कपन में मरना हैं। महाराज ! यह उसकी काल-मृत्यु ही है।"

"महाराज ! जो इस जन्म में किसी दूसरे को जहर देकर मार डालता है वह लाखों वर्ष तक अपने बुढ़ापे, जवानी या लड़कपन में ऐसे विष से मरता है जिससे उसके अङ्ग प्रयङ्ग जलने लगते हैं, शरीर कट–कट कर गिरने लगता है और मुर्दे की सी बदबू आती है। महाराज ! यह उसकी काल-मृत्यु हो है।"

"महाराज! जो इस जन्म में किसी दूसरे को आग से जला कर मार देता है, वह लाखों वर्ष तक एक आग के पहाड़ से दूसरे आग-के-पहाड़ पर तथा एक यम-लोक से दूसरे यम-लोक में ले जा जाकर आगसे से शरीर के जला-भुना दिये जाने से मरता है। महाराज ! यह उसकी काल-मृत्यु ही है।"

"महाराज ! जो इस जन्म में किसी दूसरे को पानी में डूबा कर मार देता है वह लाखों वर्षतक दुबला पतला, मरीज और कमजोर तथा बड़ी बड़ी चिन्ताओं में पड़ा रहा पानी में ही डूब कर मरता है। महाराज ! यह उसकी काल-मृत्यु ही हैं।"

महाराज ! जो इस जन्म में किसी दूसरे को भाला या तीर चला कर मार देता है वह लाखों बर्ष तक काटा, मारा और पीटा जाकर भाले या तीर से ही बिध कर मरता है। महाराज ! यह उसकी काल-मृत्यु ही है।"

"भन्ते ! जो आप कहते हैं कि अकाल-मृत्यु होती है; उसे कृपया कारण दे कर समझावें।"

आग की ढेरी

"महाराज ! घास, पात, झाड़, लकड़ी इत्यादि के साथ जलती हुई आग की बड़ी ढेरी उन्हें जला कर समाप्त कर देने के बाद ही बुझती है। लोग कहते हैं कि वह आग बिना किसी विघ्नबाधा के अपने पूरे समय तक जलने के बाद बुझी। महाराज! इसी तरह, जो हजारों दिन तक जीवित रह, बूढ़ा होने और वायु के समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है, उसकी मृत्यु समय पाकर हुई कही जाती है।

"महाराज ! घास, पात, झाड़, लकड़ी इत्यादि के साथ जलती हुई कोई बड़ी आग की ढेरी हो। उसके जल कर समाप्त होने के पहले ही खूब पानी पड़ने लगे जिससे आग बुझकर ठंड़ी हो जाय। महाराज ! तो क्या आप कहेंगे कि वह आग अपने समय को पाकर ही बुझी ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! सो क्यों ? पहली आग पिछली आग के बराबर ही क्यों नहीं कही जाती ?"

"भन्ते ! बीच ही में मेघ के बरस जाने से वह आग बिना समय पाये बुझ गई।"

"महाराज ! इसी तरह, जिसकी अकाल-मृत्यु होती है वह या तो सहसा वायु बिगड़ जाने से, या पित्त के बिगड़ जाने से, या कफ बढ़ जाने से, या सन्निपात हो जाने से, या मौसम बिगड़ जाने से, या रहने सहने में कोई गड़बड़ हो जाने से, या भूख से, या प्यास से, या साँप के काटने से या जहर दे दिये जाने से, या आग में पड़ जाने से, या पानी में डूब जाने से, या तीर भाला लग जाने से, अकाल ही में मर जाता हैं। महाराज ! इसी तरह अकल-मृत्यु होती है।"

भारी मेघ

"महाराज ! यदि कोई भारी मेघ उठकर जमीन और गड्ढों को भरते हुये घनघोर वर्षा बरसे; तो लो लोग कहते हैं कि वह मेघ बिना किसी विध्नबाधा के खूब बरसा। महाराज ! इसी तरह, जो पूरा बूढ़ा होने और आयु के समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी बाधा या अकस्मिक दुर्घटना के मरता है, उसकी मृत्यु समय पाकर हुई कही जाती है।"

"महाराज ! आकाश में भारी मेघ उठे तो सही, किंतु तेज हवा के आ जाने से झकोरें खा तितर बितर हो जाय। महाराज ! तो क्या आप यह कहेंगे कि वह मेघ समय पाकर नष्ट हुआ ?"



"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! पहला मेघ पिछड़े मेघ के बराबर ही क्यों नहीं समझा जाता?"

"भन्ते ! अकस्मात् हवा के चल जाने से वह मेघ बिना समझ पाये ही उड़ गया।"

"महाराज ! इसी तरह, जिसकी अकाल-मृत्यु होती है वह या तो सहसा वायु बिगड जाने से, या पित्त के बिगड़ जाने से, या कफ बढ जाने से, या सन्निपात हो जाने से, या मौसम बिगड़ जाने से, या रहने सहने में कोई गडबड़ी हो जाने से, या किसी दुर्घटना सें, या भूख से, या प्यास से, या साँप के काटने से, या जहर दे दिये जाने से, या आग में पड़ जाने से, या पानी में डूब जाने से, या तीर भाला लग जाने से अकाल ही में मर जाता है। महाराज ! इसी तरह अकाल-मृत्यु होती है।"

साँप का विष

"महाराज! कोई खिसियाया हुआ जहरीला साँप किसी आदमी को काट दे। वह विष बिना किसी रुकावट के फैल जाय और उसे मार दे। तो लोग कहेंगे कि उस विष ने बिना किसी रुकावट के अपना काम कर डाला। महाराज ! इसी तरह, जो पूरा बूढ़ा होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है, उसकी मृत्यु समय पाकर हुई कही जाती है।"

"महाराज ! कोई खिसिआया हुआ जहरीला साँप किसी आदमी को काट तो दे; किंतु कोई सपेरा आकर उस विष को झाड दे। महाराज! तो क्या आप कहेंगे कि विष अपना काम कर के ही हटा ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! यह पिछला विष पहले विष के बराबर ही क्यों नहीं हुआ ?"

"भन्ते ! यह विष तो चढ़ने के पहले ही आये हुये सपेरे द्वारा झाड़ दिया गया।"

"महाराज ! इसी तरह, जिसकी अकाल–मृत्यु होती है वह या तो सहसा वायु बिगड़ जाने से, या पित्त बिगड़ जाने से, या कफ बढ़ जाने से, या सन्निपात हो जाने से, या मौसम बिगड़ जाने से, या रहने सहने में कोई गड़बड़ हो जाने से, या किसी दुर्घटना के घट जाने से, या भूख से, या प्यास से, या साँप के काटने से, या जहर दे दिये जाने से, या आग में पड़ जाने से, या पानी में डूब जाने से, या तीर भाला लग जाने से अकाल ही में मर जाता है। महाराज ! इसी तरह अकाल–मृत्यु होती है।"

तीर का निशाना

"महाराज ! कोई तीरन्दाज तीर चलावे। यदि वह तीर ठीक निशाने पर जाकर लगे तो लोग कहेंगे कि वह बिना किसी रुकावट या बाधा के ठीक अपने लक्ष्य तक पहुँच गया। महाराज ! इसी तरह, जो पूरा बूढ़ा होने और आयु के समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है, उसकी मृत्यु समय पाकर हुई कही जाती हैं।

"महाराज ! कोई तीरन्दाज तीर चलावे तो सही, किंतु बीच ही में कोई दूसरा उसे काट कर गिरा दे; तो क्या आप कहेंगे कि वह तीर बिना किसी रुकावट या बाधा के ठीक अपने लक्ष्य तक पहुँच गया ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! पिछला तीर पहले के बराबर ही क्यों नहीं समझा गया ?"

"भन्ते ! उसे तो किसी ने बीच ही में गिरा दिया।"

"महाराज ! इसी तरह, जिसकी अकाल-मृत्यु होती है वह या तो सहासा वायु बिगड़ जाने से, या पित्त बिगड़ जाने से, या कफ बढ़ जाने से, या सन्निपात हो जाने से, या मौसम बिगड़ जाने से, या रहने सहने में कोई गड़बड़ हो जाने से, या किसी दुर्घटना के घट जाने से, या भूख से, या प्यास से, या साँप के काटने से, या जहर दे दिये जाने से, या आग में पड़ जाने से, या पानी में डूब जाने से, या तीर भाला लग जाने से अकाल ही में मर जाता है। महाराज ! इसी तहर अकाल-मृत्यु होती है।"

थाली की आवाज

"महाराज ! कोई काँसे की थाली को पीटे। उससे आवाज निकल कर पूरी दूर तक जाय। तो लोग कहेंगे कि उसकी आवाज बिना किसी रुकावट के पूरी दूर तक गई। महाराज ! इसी तरह, जो पूरा बूढ़ा होने और आयु समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है, उसकी मृत्यु समय पाकर हुई कही जाती है।

"महाराज ! कोई काँसे की थाली को पीटे। किंतु, उसकी आवाज निकलते ही कोई आकर उसे (थाली को) पकड़ ले, जिससे वह तुरंत बन्द हो जाय। तो क्या आप कहेंगे कि उसकी आवाज बिना किसी रुकावट के पूरी दूर तक गई ?"

"नहीं भन्ते !

"महाराज ! सो क्यों ? पिछली आवाज पहली आवाज के बराबर ही क्यों नहीं कही जाती है ?"

"भन्ते ! बीच में किसी के आकर थाली पकड़ लेने से आवाज बन्द हो गई।"

"महाराज ! इसी तरह, जिसकी अकाल–मृत्यु होती है वह या तो सहसा वायु बिगड़ जाने से, या पित्त बिगड़ जाने से, या कफ बढ़ जाने से, या सन्निपात हो जाने से, या मौसिम बिगड़ जाने से, या कोई रहने सहने में गड़बड़ हो जाने से, या किसी दुर्घटना के घट जाने से, या भूख से, या प्यास से, या साँप के काटने से, या जहर दे दिये जाने से, या आग में पड़ जाने से, या पानी में डूब जाने से, या तीर–भाला लग जानें से अकाल ही में मर जाता है। महाराज ! इसी तरह अकाल–मृत्यु होती है।"

धान की फसल

"महाराज ! खेत में अच्छी तरह जमा हुआ धान समय पर पानी बरसने से फैल रक घने बालों से लद जाता है और कटनी के समय तक पूरा तैयार हो जाता है। तब लोग कहते हैं कि यह फसल बिना किसी विघ्नबाधा के अच्छी उतरी। महाराज ! इसी तरह, जो पूरा बूढ़ा होने और आयु के समाप्त हो जाने के बाद बिना किसी बाधा या आकस्मिक दुर्घटना के मरता है, उसकी मृत्यु समय पा कर हुई कही जाती है।

"महाराज ! यदि खेत में अच्छी तरह जमा हुआ धान बिना पानी के सूख कर मर जाय तो क्या आप कह सकेंगे कि फसल अच्छी उतरी ?"

"नहीं भन्ते !"

"महाराज ! सो क्यों ? पिछली फसल पहली के बराबर ही क्यों नहीं कही जाती !"

"भन्ते ! वह तो बीच ही में गर्मी से सूख गई।"

"महाराज ! इसी तरह, जिसकी अकाल–मृत्यु होती है वह सहसा या तो वायु बिगड़ जाने से, या पित्त बिगड़ जाने से, या कफ बढ़ जाने से, या सन्निपात हो जाने से, या मौसिम बिगड़ जाने से, या रहने सहने में कोई गड़बड़ हो जाने से, या किसी दुर्घटना के घट जाने से, या भूख से, या प्यास से, या साँप काटने से, या जहर दिये जाने से, या आग में पड़ जाने से, या पानी में डूब जाने से, या तीर–भाला लग लग जाने से अकला ही में मर जाता है।"

"महाराज ! क्या आप ने सुना है कि हरे भरे धान कीड़ों के लग जाने से बिलकुल नष्ट हो जाते हैं ?"

"हाँ भन्ते ! सुना भी है और देखा भी है।"

"महाराज ! तो क्या वह धान काल में मरे या अकाल में !"

"भन्ते ! अकाल में मरे। यदि उनमें कीड़े नहीं लगते तो कटनी तक अच्छे तैयार हो जाते।"

"महाराज ! इससे तो यही अर्थ निकलता है, कि बिना किसी विघ्नबाधा के आये फसल अच्छी उतरती है, और बीच में कुछ दुर्घटना के हो जाने पर नष्ट हो जाती है ?"

"हाँ भन्ते !"

"महाराज ! इसी तरह, जिसकी अकाल-मृत्यु होती है वह या तो सहसा वायु बिगड़ जाने से, या पित्त बिगड़ जाने से, या कफ बढ़ जाने से, या सन्निपात हो जाने से, या मौसम बिगड़ जाने से, या रहने सहने में कोई गड़बड़ हो जाने से, या किसी दुर्घटना के घट जाने से, या भूख से, या प्यास से, या साँप के काटने से, या जहर दिये जाने से, या आग में पड़ जाने से, या पानी में डूब जाने से, या तीर भाला लग जाने से अकाल ही में मर जाता है। महाराज ! इसी तरह अकाल-मृत्यु होती है।"

"महाराज ! क्या आप ने सुना है कि फसल तैयार हो जाने और बालों के बोझ से झुक जाने पर भी ओले की वर्षा उसे नष्ट कर देती है ?"

"हाँ भन्ते ! सुना भी है और देखा भी है।"

"महाराज ! तो क्या वह धान काल में मरे या अकाल में ?"

"भन्ते ! अकाल में मरे। यदि ओले की वर्षा नहीं होती तो कटनी तक फसल अच्छी तैयार हो जाती।"

"महाराज ! इससे तो यही अर्थ निकलता है, कि बिना किसी विध्नबाधा के आये फसल अच्छी उतरती है, और बीच में कुछ दुर्घटना हो जाने पर नष्ट हो जाती है ?"

"हाँ भन्ते !"

महाराज ! इसी तरह, जिसकी अकाल-मृत्यु होती है वह या तो सहसा वायु बिगड़ जाने से, या पित्त बिगड़ जाने से, या कफ बढ़ जाने से, या सन्निपात हो जाने से, या मौसिम बिगड़ जाने से, या रहने सहने में कोई गड़बड़ हो जाने से।, या पानी में डूब जाने से, या तीर-भाला लग जाने से अकाल ही में मर जाता है यदि ये बातें बीच में न हो जायँ तो समय पर कर ही मृत्यु होगी।"

"भन्ते नागसेन ! आश्चर्य है । अद्भूत है !! आपने कारणों को अच्छा दिखाया है । अकाल-मृत्यु होती है इसे साबित करने के लिये कितनी उपमायें दी । अकाल-मृत्यु होती है इसे साफ कर दिया, प्रगट कर दिया और पक्का कर दिया । भन्ते नागसेन ! बेसमझ और दुर्बुद्धि मनुष्य भी आप की एक ही उपमा से मान लेगा कि अकाल-मृत्यु होती है । बुद्धिमानों की तो बात ही क्या ? आपकी पहली ही उपमा को सुन कर मैं समझ गया था कि अकाल-मृत्यु होती है । तो भी, आपकी दूसरी दूसरी बातों को सुनने के लिये मैं उत्सुक था उसीसे नहीं रुका ।"

७८. चैत्य[1] की अलौकिकता

"भन्ते नागसेन ! सभी निर्वाण पाये हुये लोगों के चैत्य में अलौकिक बाते होती हैं या कुछ ही के चैत्य में ?"

"महाराज ! कितनों के चैत्य में होती हैं और कितनों के चैत्य में नहीं ।"

"भन्ते ! किनके चैत्य में होती हैं और किनके चैत्य में नहीं ।"

"महाराज ! तीन में से किसी एक के अधिष्ठान करने से निर्वाण पाये हुये साधु के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं ।"

"किन तीन में से एक के अधिष्ठान करने से ?"

(१) "महाराज ! कोई अर्हत् अपने जीते जी देवताओं और मनुष्यों पर अनुकम्पा करके यह अधिष्ठान कर देता है कि मेरे चैत्य में अलौकिक बाते होवें । उसके ऐसा अधिष्ठान करने से ठीक ही उसके चैत्य में अलौकिक बातें होती है । इस तरह, अर्हत् के अधिष्ठान करने से निर्वाण पाये साधु के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं ।

(२) "महाराज ! देवता लोग मनुष्यों पर अनुकम्पा करके निर्वाण पाये साधु के चैत्य में अलौकिक बातें दिखाते हैं, जिससे उन चमत्कारों को देख कर लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा बनी रहे; और उस तरह, मनुष्य श्रद्धालु हो अधिकाधिक पुण्य करें । इस तरह, देवताओं के अधिष्ठान से निर्वाण पाये साधु के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं ।

(३) महाराज ! कोई श्रद्धालु, भक्त, पण्डित, समझदार और बुद्धिमान् स्त्री या पुरुष के बच्चे भाव से गन्ध, माला, कपड़ा या किसी दूसरी चीज को चढ़ा कर 'ऐसा होवे' यह अधिष्ठान करने से ठीक में वैसा ही हो जाता है । इस तरह,

---

१. चैत्य=साधु सन्त के मर जाने पर उनकी भस्मों पर जो समाधि बना दी जाती है ।

मनुष्यों के अधिष्ठान करने से निर्वाण पाये साधु के चैत्य में अलौकिक बातें होती है।

"महाराज ! इन्हीं तीनों में से किसी एक के भी अधिष्ठान करने से निर्वाण पाये हुये साधु के चैत्य में अलौकिक बातें होती हैं। महाराज ! यदि उनका अधिष्ठान नहीं हो तो क्षीणास्रव, छः अभिज्ञाओं को पाने वाले तथा चित्त को पूरा वश में कर लेने वाले साधु के भी चैत्य में अलौकिक बातें नहीं होती। महाराज ! यदि कोई अलौकिक बात न हो तो भी उनके पवित्र जीवन को दृष्टि में रख कर उस चैत्य के पास जाना चाहिये और इस बात को गौरव के साथ मन में लाना चाहिये कि 'यह बुद्ध-पुत्र निर्वाण पा चुका है।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! ऐसी ही बात है। मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

७९. किसे ज्ञान होता है और किसे नहीं ?

"भन्ते नागसेन ! जो सच्ची राह पर चलते हैं क्या सभी को ज्ञान का साक्षात् हो जाता है, या किसी को नहीं भी होता है ?"

"महाराज ! किसी को होता है और किसी को नहीं।"

"भन्ते ! किसको होता है और किसको नहीं ?"

किनको ज्ञान का साक्षात् नहीं होता

"महाराज ! (१) पशु आदि नीच योनि में उत्पन्न हुये को अच्छी राह पर चलने से भी ज्ञान का साक्षात् नहीं होता। (२) प्रेत-योनि में उत्पन्न हुये को भी, (३) झूठे सिद्धान्त को मानने वालों को भी, (४) उलटे-सीधे दूसरों को ठगने वालों को भी, (५) माता के हत्यारे को भी, (६) पिता के हत्यारे को भी, (७) अर्हत् को भी, (८) संघ में फूट पैदा करने वाले को भी, (९) बुद्ध के शरीर से खून निकालने वाले को भी, (१०) चोरों से संघ में भर्ती होने वाले को भी, (११) झूठे मत के आचार्यों की बात में पड़ने वाले को भी, (१२) भिक्षुणी के साथ व्यभिचार करने वाले को भी, (१३) तेरह बड़े बड़े पापों में से किसी को भी कर के उनका प्रायश्चित नहीं कर लेने वाले को भी, (१४) हिजड़े को भी और (१५) उभतोव्यञ्जक (=स्त्री और पुरुष दोनों लिङ्ग वाले) को अच्छी राह पर चलने से ज्ञान का साक्षात् नहीं होता। (१६) सात वर्ष से नीचे बच्चे को भी ज्ञान का साक्षात् नहीं हो सकता। महाराज ! इन सोलह लोगों को सच्ची राह पर चलने से भी ज्ञान का साक्षात् नहीं होता।"

"भन्ते नागसेन ! ऊपर कहे गये पन्द्रह लोगों को ज्ञान का साक्षात् होवे या न होवे (उसके विषय में मैं नहीं कहता), किंतु इसका क्या कारण है कि सात वर्ष

से नीचे बच्चे को ज्ञान का साक्षात् नहीं हो सकता ? यहाँ संदेह खड़ा होता है।

बच्चे को तो राग नहीं होता, द्वेष नहीं होता, मोह नहीं होता, मान नहीं होता, झूठा सिद्धान्त नहीं होता, असंतोष नहीं होता, कामवितर्क नहीं होता। क्या यह लोक-सम्मत बात नहीं है ? बच्चा तो पापों से खाली रहता है, वह तो एक ही बार में चारों आर्य-सत्य की भीतरी बातों को पूरा समझ ले सकता है।"

"महाराज ! इसी से तो मैं कहता हूँ कि सात वर्ष से नीचे बच्चे को ज्ञान का साक्षात् नहीं हो सकता। महाराज ! यदि सात वर्ष से नीचे के बच्चे को राग करने के विषयों में राग होता, द्वेष करने की जगहों में द्वेष होता, मोह लेने वाले पदार्थ मोह लेते, मद उत्पन्न करने वाली चीजें मद उत्पन्न कर देतीं, झूठे सिद्धान्त का चकमा दे सकते, संतोष और असंतोष होता या पाप और पुण्य का ख्याल रहता तो उसे अलबत्ता ज्ञान का साक्षात् हो सकता था।"

"महाराज ! किंतु सात वर्ष से नीचे के बच्चे का चित्त अबल, दुर्बल, थोड़ा...मन्द और बेसमझ रहता है; और निर्गुण निर्वाण जो शब्दों में प्रगट किया ही नहीं जा सकता भारी और महान् है। महाराज ! तो वह अबल, दुर्बल, थोड़ा.......मन्द और बेसमझ चित्त वाला सात वर्ष से नीचे का बच्चा उस निर्गुण निर्वाण को नहीं समझ सकता जो भारी और महान है-जो शब्दों में प्रगट भी नहीं किया जा सकता।"

सुमेरु पर्वत को कोई उखाड़ नहीं सकता

"महाराज ! सुमेरु पर्वतराज बड़ा है, भारी है, विपुल है और महान् है। महाराज ! तो क्या उस सुमेरु पर्वत को कोई भी अपनी प्राकृतिक शक्ती से उखाड़ सकता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्यों नहीं ?"

"भन्ते ! क्योंकि वह आदमी इतनी कम शक्ति वाला है और सुमेरु पहाड़ इतना महान् है।"

"महाराज ! इसी तरह, सात वर्ष से नीचे के बच्चे का चित्त अबल, दुर्बल, थोड़ा,...मन्द, और बेसमझ होता है; और निर्गुण निर्वाण जो शब्दों में प्रकट किया ही नहीं जा सकता भारी और महान् है। महाराज ! तो वह अबल, दुर्बल, थोड़ा,...मन्द और बेसमझ चित्त वाला सात वर्ष से नीचे का बच्चा उस

निर्गुण निर्वाण को नहीं समझ सकता जो भारी और महान है—जो शब्दों में नहीं प्रगट किया जा सकता।"

महापृथ्वी

"महाराज! यह महापृथ्वी लम्बी, चौड़ी, फैली=विस्तृत, विशाल, विपुल और महान है। महाराज! क्या इस महापृथ्वी को पानी की छोटी बुन्द से सींच कर कर कीचड़ कीचड़ कर दिया सकता है?"

"नहीं भन्ते!"

"क्यों नहीं?"

"भन्ते! क्योंकि पानी का बूंद बहुत अल्प है और पृथ्वी इतनी बड़ी है।"

"महाराज! इसी तरह, सात वर्ष से नीचे के बच्चे का चित्त अबल, दुर्बल, थोड़ा...मन्द और बेसमझ होता है; और निर्गुण निर्वाण जो शब्दों में प्रकट ही नहीं किया जा सकता भारी और महान् है। महाराज! तो वह अबल, दुर्बल, थोड़ा ...मन्द, और बेसमझ चित्त वाला सात वर्ष से नीचे का बच्चा उस निर्गुण निर्वाण को नहीं समझ सकता जो कि भारी और महान् है—जो शब्दों में प्रकट भी नहीं किया जा सकता।"

आग की चिनगारी

"महाराज! कहीं थोड़ी सी छोटी टिमटिमाती आग हो। तो क्या उस थोड़ी सी छोटी टिमटिमाती आग से देवताओं और मनुष्यों के साथ यह सारा लोक प्रकाश से भर दिया जा सकता है?"

"नहीं भन्ते!"

"क्यों?"

"भन्ते! क्योंकि आग इतनी थोड़ी है और लोक इतना बड़ा है।"

"महाराज! इसी तरह, सात वर्ष से नीचे के बच्चे का चित्त अबल, दुर्बल, थोड़ा...मन्द और बेसमझ रहता है; और निर्गुण निर्वाण जो शब्दों में प्रकट किया ही नहीं जा सकता भारी और महान् है। महाराज! तो वह अबल, दुर्बल, थोड़ा... मन्द और बेसमझ चित्त वाला सात वर्ष से नीचे का बच्चा उस निर्गुण निर्वाण को नहीं समझ सकता जो भारी और महान् है—जो शब्दों में प्रकट भी नहीं किया जा सकता।"

सालक जाति का कीड़ा

"महाराज! जैसे सालक जाति का एक रोगी, पतला और बिलकुल छोटा कीड़ा हो। क्या वह कीड़ा अपने बिल के पास तीन स्थानों से मद चूते हुये, नौ हाथ

लम्बे, तीन हाथ चौड़े, दस हाथ मोटे, आठ हाथ ऊँचे किसी हस्तिराज को आया देख उसे निगल जाने के लिये बाहर आवेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्यों नहीं ?"

"भन्ते ! क्योंकि सालक कीड़ा इतना छोटा जीव है और हस्तिराज इतना महान् है।"

"महाराज ! इसी तरह, सात वर्ष से नीचे के बच्चे का चित्त अबल, दुर्बल, थोड़ा...मन्द, और बेसमझ रहता है; और निर्गुण निर्वाण जो शब्दों में प्रकट किया ही नहीं जा सकता भारी और महान् है। महाराज ! तो वह अबल, दुर्बल, थोड़ा...मन्द और बेसमझ चित्त वाला सात वर्ष से नीचे का बच्चा उस निर्गुण को नहीं समझ सकता जो भारी और महान् है-जो शब्दों में प्रकट भी नहीं किया जा सकता।"

"महाराज ! इसी लिये, सच्ची राह में चलते रहने पर भी सात वर्ष से नीचे बच्चे को ज्ञान का साक्षात् नहीं होता।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! मैं इसे समझ गया।"

८०. निर्वाण की अवस्था

"भन्ते नागसेन! निर्वाण में क्या सुख ही सुख है या कुछ दुःख भी लगा रहता है ?',

"महाराज ! निर्वाण में सुख है, दुःख का लेश भी नहीं रहता।"

"भन्ते नागसेन ! इस बात को मैं नहीं मान सकता कि निर्वाण में सुख ही सुख है दुःख का लेश भी नहीं रहता। भन्ते नागसेन ! मैं तो इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि निर्वाण में भी अवश्य कुछ भी कुछ दुःख लगा ही रहता है। निर्वाण में भी अवश्य कुछ न कुछ दुःख लगा रहता है। इसके लिये मेरे पास एक दलील है।"

"कौनसी दलील ?"

"भन्ते नागसेन ! जो निर्वाण की खोज करते हैं वे शरीर और मन दोनों से तप करते देखे जाते है। वे खड़े चक्रमण करते हैं, आसन लगाये बैठे रहते हैं, पड़े रहते हैं, भोजन में बहुत संयम रखते हैं, नींदको मार देते हैं, इन्द्रियों को दबा देते हैं तथा अपने धन, धान्य, प्रिय, बन्धु, बान्धव और मित्रों से नाता तोड़ लेते हैं। किंतु, जो सुख उठाने तथा ऐश आराम करने वाले लोग हैं वे पाँचों इन्द्रियों से संसार में मजा लूटते और मस्त रहते हैं, अनेक प्रकार के मन चाहे सौन्दर्य को आँखों से देख कर मौज करते हैं, अनेक प्रकार के मनचाहे गीत बाजे को कान से सुन कर

उसका स्वाद उठाते हैं, अनेक प्रकार के मन चाहे फूल, फल, पत्ते, छाल, जड़ या हीर के अत्तर या गन्ध को नाक से सूंघ कर प्रसन्न होते हैं, अनेक प्रकार के अच्छे से अच्छे मनचाहे खाने पीने के स्वाद से जीभ का मजा लेते हैं, अनेक प्रकार की मनचाही, चिकनी, बारीक कोमल और नाजुक वस्तुओं के स्पर्श का सुख लेते हैं, अनेक प्रकार के मनचाहे अच्छे बुरे या पाप पुण्य के ख्याल से मन मस्त रहते हैं।

"और इसके उलटे आप लोग आँख, कान, जीभ, शरीर और मन की चाहों को मार देते हैं, काट देते हैं, उखाड़ देते हैं, रोक देते हैं, और बन्द कर देते हैं। उससे शरीर को भी कष्ट होता है और मन को शारीरिक दुःख भी होता है और मानसिक भी।

मागन्दिय परिव्राजक ने भगवान् की निन्दा करते हुये कहा न था, "श्रमण गौतम लोगों की जान निकाल लेने वाले है।"[1] यही दलील है जिसके बल पर मैं कहता हूँ कि निर्वाण भी दुःख से सना है।"

"नहीं महाराज ! निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं है। निर्वाण सुख ही सुख है। महाराज! जो आप कहते है कि निर्वाण में दुःख है तो दुःख यथार्थतः निर्वाण में नहीं है। यह तो निर्वाण साक्षात् करने के पहले की बात हैं; यह तो निर्वाण की खोज करने की अवस्था है महाराज ! सचमुच में निर्वाण सुख ही सुख है; निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं है। इसका कारण कहता हूँ–

राजाओं को राज्य-सुख

"महाराज ! राजाओं को राज्य-सुख नाम की कोई चीज मिलती है ?"

"हाँ भन्ते! राजाओं को राज्य-सुख मिलता है।"

"महाराज ! राजाओं का वह राज्य-सुख क्या दुःख से सना होता है?"

"नहीं भन्ते!"

"महाराज ! जब कभी सीमा-प्रान्त के लोगों के बागी हो जाने पर उन्हें दबाने के लिये राजा अपने घर बार को छोड़ अफसर, मंत्री, सेना और सिपाही सभी के साथ मक्खी-मच्छर, हवा और गर्मी से दुःख झेलते हुये ऊँची और नीची जमीन पर धावा कर देते हैं, बड़ी लड़ाई छेड़ देते हैं, यहाँ तक कि अपनी जान को जोखिम में डाल देते है। सो क्यों?"

---

1. मज्झिम-निकाय–'मागन्दिय सुत्त–७५।

"भन्ते नागसेन ! यह राज्य-सुख नहीं है। राज्य-सुख पाने के लिये यह तो पहले की कोशिश हैं। भन्ते नागसेन ! बड़ी कठिनाई के बाद राजा राज्य पाता है और उसके सुख का भोग करता है। भन्ते नागसेन ! इस तरह, राज्य-सुख अपने दुःख से मिला नहीं है। राज्य-सुख दूसरी ही चीज है और दुःख दूसरी ही।"

"महाराज! वैसे ही, निर्वाण सुख है। निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं है। जो उस निर्वाण की खोज करते है उन्हें शरीर और मन का तप करना ही होता है। उन्हें खड़े रहना, चंक्रमण करना, आसन लगाये बैठे रहना, पड़े रहना, भोजन में बहुत संयम रखना, नींद मार देना, इन्द्रियों को दबा कर रखना तथा अपने धन, धान्य, प्रिय, बन्धुबान्धव और मित्रों–से नाता तोड़ लेना ही होता है। इतनी कठिनायों के बाद निर्वाण पाकर वह सुख ही सुख उठाते हैं। शत्रुओं का दमन करने के बाद ही राजा को राज्य–सुख मिलता है। वैसे ही निर्वाण दूसरी ही चीज है और दुःख दूसरी ही।"

"महाराज ! एक और कारण सुनें जिससे निर्वाण सुख ही सुख है, उसमें दुःख का लेश भी नहीं। दुःख दूसरी ही चीज है और निर्वाण दूसरी ही।"

कारीगरों को हुनर का आनन्द

"महाराज ! बड़े-बडे कारीगरों को क्या अपने हुनर का आनन्द आता हैं ?"

"हाँ भन्ते ! बड़े-बड़े कारीगरों को अपने हुनर का आनन्द आता है।"

"महाराज ! क्या वह सुख दुःख से सना होता है ?"

"नहीं भन्ते !"

महाराज ! तो क्या वे अपने गुरु की सेवा में इतना कष्ट उठाते है ? उन्हें प्रणाम क्यों करते है ? उठ कर स्वागत क्यों कहते ? पीने का पानी लाना, घर में झाड़ू लगाना, दातवन काट कर लाना, मुंह धोने के लिये पानी लाना इत्यादि सेवा क्यों करते है ? उनका झूठा क्यों खायें है ? मलना, नहाना और पैर रगड़ना क्यों करते हैं ? अपनी इच्छा को छोड दूसरे की इच्छा से क्यों सारे काम करते हैं ? कड़े बिस्तरे पर क्यों सोते हैं ? रुखा सूखा खा कर अपना गुजारा क्यों कर लेते हैं ?"

"भन्ते नागसेन ! हुनर का आनन्द यह नहीं है। हुनर सीखने के लिये ही ऐसा किया जाता है। भन्ते ! बड़ी कठिनाई से कारीगर हुनर को सीख कर उसका आनन्द लेता है। हुनर अपने दुःख से मिला नहीं है। हुनर दूसरी ही चीज है और दुःख दूसरी ही।"

"महाराज ! वैसे ही, निर्वाण सुख ही सुख है। निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं है। जो उस निर्बाण की खोज करते है उन्हें शरीर और मन का तप करना ही

होता है। उन्हें खड़े रहना, चङ्क्रमण करना, आसन लगाये बैठे रहना, पड़े रहना, भोजन में बहुत संयम रखना, नींद मार देना, इन्द्रियों को दबा कर रखना तथा अपने धन-धान्य, प्रिय, बन्धुबान्धव और मित्र से नाता तोड़ लेना ही होता है। इतनी कठिनायों के बाद निर्वाण पा कर सुख ही सुख उठाते है, जैसे कारीगर हुनर का आनन्द लेता है।

"महाराज ! इस तरह, निर्वाण सुख ही सुख है। निर्वाण में दुःख का लेश भी नहीं है। दुःख दूसरी चीज है और निर्वाण दूसरी ही।"

"ठीक है भन्ते ! अब मैं ठीक-ठीक समझ गया।"

८१. निर्वाण का ऊपरी रूप

"भन्ते नागसेन ! आप जो इतना 'निर्वाण' 'निर्वाण' कहते रहते है वह है क्या ? उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ क्या आप समझा सकते है कि निर्वाण के रूप, स्थान काल या डील-डौल कैसे है ?"

"महाराज ! निर्वाण में ऐसी कोई बात नहीं है। उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ निर्वाण के रूप, स्थान, काल या डील-डौल नहीं दिखाये जा सकते।"

"भन्ते नागसेन ! में यह नहीं मानता कि निर्वाण वर्तमान तो है किंतु उसके रुप, स्थान, काल या डील-डौल न उपमायें दिखा कर, न व्याख्या कर के, तर्क और कारण के साथ समझाये जा सकते हो। कृपा कर मुझे यह बात समझावें।"

महासमुद्र

"बहुत अच्छा महाराज ! इसे मैं समझाता हूँ—महासमुद्र नाम की कोई चीज है क्या ?"

"हाँ भन्ते ! है। भला महासमुद्र को कौन नहीं जानता !"

"महाराज ! यदि कोई आपसे पूछे—महाराज ! भला यह तो बतावें समुद्र में कितना पानी है ? उन जीवों की क्या गिनती है जो महासमुद्र में रहते हैं ? —तो आप उसको क्या जबाब देंगे ?"

"भन्ते नागसेन ! यदि कोई मुझसे यह पूछे तो मैं यही कहूँगा—ऐ आदमी ! तू मुझसे ऐसे प्रश्न को पूछ रहा है जो पूछा ही नहीं जा सकता। यह प्रश्न पूछने योग्य नहीं। इस प्रश्न को रहने देना चाहिये। भुशास्त्रवेत्ताओं ने इस पर विचार भी नहीं

किया है। महासमुद्र में कितना पानी है भला इसे कौन हिसाब लगा सकता है! भला यह कौन गिन सकता है कि उसमें कितने जीव रहते हैं !"

"महाराज ! समुद्र के वर्तमान रहने पर भी आप ऐसा जवाब क्यों देंगे ? आपको हिसाब लगा कर ठीक ठीक उसे बता देना चाहिये-महासमुद्र में इतना पानी हैं और इतने जीव रहते हैं।"

"भन्ते! यह असम्भव बात है। इस प्रश्न को उठाने का कोई मतलब ही नहीं।"

"महाराज ! जैसे समुद्र के वर्तमान रहने पर भी यह नहीं कहा जा सकता; कि उसमें कितना पानी है या कितने जीव रहते हैं, वैसे ही निर्वाण के होने पर भी उसके रूप, स्थान, काल या ड़ील-ड़ौल उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझायें जा सकते। महाराज ! चित्त को वश में रखने वाला कोई ऋद्धिमान पुरुष भले ही यह बता दे कि महासमुद्र में कितना पानी है या कितने जीव रहते हैं, किंतु वह भी निर्वाण के रूप, स्थान, काल, या ड़ील-ड़ौल को नहीं समझा सकता।"

"महाराज ! एक और कारण सुनें जिस से निर्वाण के होते पर भी उपमायें दिखा उसके रूप, स्थान, काल या ड़ील-ड़ौल नहीं समझायें जा सकते।"

'अरूपकायिक' नाम के देवता

"महाराज ! देवताओं में 'अरूपकायिक' नाम के देवता है या नहीं ?"

"हाँ भन्ते ! ऐसा सुना जाता है कि देवताओं में 'अरूपकायिक' नाम के देवता हैं।"

"महाराज ! क्या उस 'अरूपकायिक' देवताओं के रूप, स्थान, काल या ड़ील-डौल उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ समझाये जा सकते हैं ?"

"नहीं भन्ते ! नहीं समझायें जा सकते।"

"महाराज ! तब 'अरूपकायिक' देवता है ही नहीं।"

"भन्ते 'अरूपकायिक' देवता है तो अवश्य किंतु उनके रूप, स्थान, काल या ड़ील-ड़ौल उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझाये जा सकते।

"महाराज ! जैसे 'अरूपकायिक' देवताओं के रहने पर भी उनके रूप, स्थान, काल, या ड़ील-ड़ौल उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझायें जा सकते, वैसे ही निर्वाण के होने पर भी उसके रूप, स्थान, काल या

ड़ील-ड़ौल उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझायें जा सकते ।"

"भन्ते नागसेन ! खैर, मैं मान लेता हूँ–निर्वाण सुख ही सुख हैं; और उसके रूप, स्थान, काल, या ड़ील-ड़ौल उपमायें दिखा, व्याख्या कर, तर्क और कारण के साथ नहीं समझायें जा सकते । भन्ते ! क्या उपमा के सहारे निर्वाण के गुण की और किसी दुसरे ने कुछ इशारा भर भी किया है ?"

"महाराज ! निर्वाण का रूप तो है ही नहीं, किंतु उपमा के सहारे थोड़ा बहुत इसकी ओर इशारा किया जा सकता है कि वह कैसा है ।"

"अच्छा भन्ते ! निर्वाण कैसा है इसका कुछ तो इशारा मिल जायगा । जल्दी कहें, अपने मन्द, शीतल, एवं मधूर वचनरूपी मारुत से मेरे हृदय की उत्सुकतारूपी जलन को मिटा दें ।"

निर्वाण क्या है इसका इशारा

"भन्ते नागसेन ! कमल का एक गुण निर्वाण में मिलता है; पानी के दो गुण निर्वाग में मिलते हैं; दवाई के तीन गुण मिलते हैं; समुद्र के चार गुण मिलते हैं, भोजन के पाँच गुण मिलते है; आकाश के दस गुण मिलते हैं; मणि-रत्न के तीन गुण मिलते; लाल चन्दन के तीन गुण मिलते हैं; घी मठ्ठे के तीन गुण मिलते है और पहाड़ की चोटी के पाँच गुण मिलते हैं ।"

कमल का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि कमल का एक गुण निर्वाण में मिलता है वह कौनसा गुण है ?"

"महाराज ! जिस तरह कमल पानी से सर्वथा अलिप्त रहता है उसी तरह निर्वाण सभी क्लेशों से अलिप्त रहता है । महाराज ! कमल का वही एक गुण निर्वाण में मिलता है ।"

पानी के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि पानी के दो गुण निर्वाण में मिलते हैं वे कौनसे दो गुण हैं ।"

"महाराज ! (१) जैसे पानी शीतल होता है और गर्मी को दूर करता है वैसे ही निर्वाण भी शीतल है जो सभी क्लेशों की गर्मी बुझा देता है । महाराज ! यह पानी का पहला गुण है जो निर्वाण में पाया जाता हैं । (२) और फिर, जैसे पानी थके, माँदे, प्यासे और धूप से पीड़ित आदमी या जानवर को उनकी प्यास बुझा

कर शांत कर देता है, वैसे ही निर्वाण भी लोगों की कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा की प्यास को भी दूर करता है। महाराज ! यह पानी का दूसरा गुण है जो निर्वाण में पाया जाता है।"

दवा के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि दवा के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं वे तीन गुण कौनसे है ?"

"महाराज ! (१) जैसे विष से पीड़ित लोगों के लिए दवा ही एक बचने का रास्ता है वैसे ही क्लेशरूपी विष से पीड़ित लोंगो के लिए निर्वाण ही एक बचने रास्ता है। महाराज ! दवा का यह पहला गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (२) और, जैसे दवा सभी रोगों का अन्त कर देती है वैसे ही निर्वाण सभी दुःखों का अन्त कर देता है। महाराज ! दवा का यह दूसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (३) फिर भी, जैसे दवाई अमृत है वैसे ही निर्वाण भी अमृत है। महाराज ! दवा का यह तीसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। महाराज ! दवा के यही तीन गुण हैं जो निर्वाण में मिलते हैं।"

महासमुद्र के चार गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि महासमुद्र के चार गुण निर्वाण में मिलते हैं वे चार गुण कौनसे हैं ?"

"महाराज ! (१) जैसे महासमुद्र अपने में किसी मृत-शरीर को रहने नहीं देता वैसे ही निर्वाण में कोई भी क्लेश रहने नहीं पाते। महाराज ! महासमुद्र का यह पहला गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (२) और फिर, जैसे महासमुद्र महान् और अपरम्पार है, सारी नदियों के गिरने से भी नहीं भरता, वैसे ही निर्वाण भी महान् और अपरम्पार है, सभी जीवों के आने से भी नहीं भर सकता। महाराज ! महासमुद्र का यह दूसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (३) और फिर, जैसे महासमुद्र में बड़े बड़े जीव रहते है, वैसे ही निर्वाण में बड़े बड़े क्षीणास्त्रव, शुद्ध, बली और आत्मसंयमी अर्हत रहते है। महाराज ! महासमुद्र का यह तीसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता हैं। (४) और फिर, जैसे महासमुद्र मानो नाना प्रकार के अनन्त बड़े बड़े तरङ्गरूपी फुलों से फूला रहता है वैसे ही निर्वाण भी नाना प्रकार के अनन्त बड़े बड़े शुद्ध विद्या और विमुक्ति के फूलों से फूला रहता है। महाराज ! महासमुद्र का यह चौथा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। महाराज ! महासमुद्र के यही चार गुण निर्वाण में मिलते हैं।

भोजन के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि भोजन के पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं वे पाँच गुण कौनसे हैं ?"

"महाराज ! (१) जैसे भोजन सभी जीवों के प्राण की रक्षा करते है वैसे ही साक्षात् किया गया निर्वाण बूढ़े होने और मरते से रक्षा कर देता है । महाराज ! भोजन का यह पहला गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (२) और फिर, जैसे भोजन सभी जीवों के बल की वृद्धि करता है वैसे ही निर्वाण को साक्षात् करने से ऋद्धि-बल की वृद्धि होती है । महाराज ! भोजन का यह दूसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है । (३) और फिर, जैसे भोजन सभी जीवों के सौंदर्य को बनाये रखता है वैसे ही साक्षात् किया गया निर्वाण जीवों में सद्गुण के सौंदर्य को बनाये रखता है। महाराज ! भोजन का यह तीसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है । (४) और फिर, जैसे भोजन सभी जीवों के कष्ट को दूर कर देता है वैसे ही निर्वाण सभी जीवों के क्लेशरूपी कष्ट को दूर कर देता है । महाराज ! भोजन का यह चौथा गुण है जो निर्वाण में मिलता है । (५) और फिर, जैसे भोजन सभी जीवों की भूख और कमजोरी को हटा देता है वैसे ही निर्वाण जीवों के सारे दुःख, भूख और कमजोरी दूर कर देता है । महाराज ! भोजन का यह पाँचवा गुण है जो निर्वाण में मिलता है । महाराज ! भोजन के यही पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं ।"

आकाश के दश गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि आकाश के दश गुण निर्वाण में मिलते हैं वे दश गुण कौनसे हैं ?"

"महाराज ! जैसे आकाश (१) न पैदा होता है, (२) न पुराना होता है, (३) न मरता है, (४) न आवागमन करता है, (५) दुर्जेय है, (६) चोरों से नहीं चुराया जा सकता, (७) किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता, (८) स्वच्छन्द, (९) खुला और (१०) अनन्त है; वैसे ही निर्वाण भी न पैदा होता, न पुराना होता, न आवागमन करता, बड़ा दुर्जेय है, चोरों से नहीं चुराया जा सकता, किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता, स्वच्छन्द, खुला और अनन्त है । महाराज ! आकाश के यही दश गुण निर्वाण में मिलते हैं ।"

मणिरत्न के तीन गुण

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि मणिरत्न के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं वे कौनसे तीन गुण हैं ?"

"महाराज ! (१) जैसे मणिरत्न सारी इच्छाओं को पूरा कर देता है वैसे ही निर्वाण भी सारी इच्छाओं को पूरा कर देता है। महाराज ! मणिरत्न का यह पहला गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (२) और फिर, जैसे मणिरत्न बड़ा मनोहर होता है वैसे ही निर्वाण भी बड़ा मनोहर होता है। महाराज ! मणिरत्न का यह दूसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (३) और फिर, जैसे मणिरत्न प्रकाशमान् और बड़े काम का होता है वैसे ही निर्वाण भी बड़ा प्रकाशमान् और काम का होता है। महाराज ! मणिरत्न का यह तीसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। महाराज ! मणिरत्न के यही तीन गुण है जो निर्वाण में मिलते हैं।"

लाल चन्दन के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि लाल चन्दन के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं वे तीन गुण कौनसे हैं ?"

"महाराज ! (१) जैसे लाल चन्दन दुर्लभ होता है वैसे ही निर्वाण का पाना भी बड़ा कठिन है। महाराज ! लाल चन्दन का यह पहला गुण है जो निर्वाण में मिलता है (२) और फिर, जैसे लाल चन्दन की सुगन्धि अपनी निराली होती है वैसे ही निर्वाण की सुगन्धि भी अपनी निराली होती है। महाराज ! लाल चन्दन का यह दूसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (३) और फिर भी, जैसे लाल चन्दन सज्जनों से बड़ा प्रशंसित है वैसे ही निर्वाण भी सज्जनों द्वारा बड़ा प्रशंसित है। महाराज ! लाल चन्दन का यह तीसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता हैं। महाराज ! लाल चन्दन के यही तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं।"

मक्खन के मट्ठे के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! जो आप कहते है कि मक्खन के मट्ठे के तीन गुण निर्वाण में मिलते हैं वे तीन गुण कौनसे हैं ?"

"महाराज ! (१) जैसे मक्खन का मट्ठा देखने में बड़ा सुन्दर होता है वैसे ही निर्वाण भी सद्गुणों से सुन्दर होता हैं। महाराज ! मक्खन के मट्ठे का यह पहला गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (२) और फिर, जैसे मक्खन के मट्ठे की गन्ध बड़ी अच्छी होती है वैसे ही निर्वाण में बड़ी अच्छी शीलगन्ध होती है। महाराज ! मक्खन के मट्ठे का यह दूसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (३) और फिर, जैसे मक्खन के मट्ठे का स्वाद बड़ा अच्छा होता है वैसे ही निर्वाण का स्वाद भी बड़ा अच्छा होता है। महाराज ! मक्खन के मट्ठे का यह तीसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। महाराज ! मक्खन के मट्ठे के यही तीन गुण है जो निर्वाण में मिलते हैं।"

पहाड़ की चोटी के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि पहाड़ की चोटी के पाँच गुण निर्वाण में मिलते हैं वे पांच गुण कौनसे हैं ?"

"महाराज ! (१) जैसे पहाड़ की चोटी बहुत ऊँची होती है वैसे ही निर्वाण भी बड़ी ऊँची चीज है। महाराज! पहाड़ की चोटी का यह पहला गुण है जो निर्वाण में मिलता है (२) और फिर जैसे पहाड़ की चोटी अचल होती है वैसे ही निर्वाण भी अचल होता है। महाराज ! पहाड़ की चोटी का यह दूसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता हैं। (३) और फिर, जैसे पहाड़ की चोटी पर चढ़ना बड़ा कठिन है, वैसे ही निर्वाण का पाना बड़ा कठिन है। महाराज ! पहाड़ की चोटी का यह तीसरा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (४) और फिर, जैसे पहाड़ की चोटी पर कोई भी बीज नहीं जम सकता वैसे ही निर्वाण में कोई क्लेश नहीं उठ सकते। महाराज ! पहाड़ की चोटी का यह चौथा गुण है जो निर्वाण में मिलता है। (५) और फिर, जैसे पहाड़ की चोटी को न किसी से प्रेम होता है न किसी से द्वेष; वैसे ही निर्वाण में भी न प्रेम रहता है और न द्वेष। महाराज ! पहाड़ की चोटी का यह पाँचवां गुण है जो निर्वाण में मिलता है महाराज ! पहाड़ की चोटी के यही पाँच गुण है जो निर्वाण में मिलते हैं।"

८२. निर्वाण की अवधि

"भन्ते नागसेन ! आप लोग कहते है–'निर्वाण भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों काल से परे की चीज हैं। निर्वाण न उत्पन्न होता है, न नहीं उत्पन्न होता है, और न उत्पन्न हो सकता है।"

"भन्ते नागसेन ! तब, जो कोई सच्ची राह पर चल कर निर्वाण का साक्षात् करता है; वह क्या उत्पन्न हुये निर्वाण का साक्षात् करता है या निर्वाण को अपने ही उत्पन्न करके उसका साक्षात् करता है ?"

"महाराज ! जो कोई सच्ची राह पर चल कर निर्वाण का साक्षात् करता है वह न तो उत्पन्न हुये निर्वाण का साक्षात् करता है और न अपने नये सिरे से निर्वाण को उत्पन्न कर उसका साक्षात् करता है। महाराज ! इस पर भी निर्वाण यथार्थ में है जिसका कोई अच्छी राह पर चल कर साक्षात् करता है।"

"भन्ते नागसेन ! इस प्रश्न को और भी धुंधला बना कर उत्तर मत दें। इसे अच्छी तरह खोल कर साफ कर दें। बिना किसी संकोच के उत्साह के साथ, आपने जो कुछ सीखा है सभी को प्रकट कर दें। इस विषय में मैं बिलकुल मूढ हूँ, भटक गया हूँ, संदेह में पड़ गया हूँ ! भीतर ही भीतर चुभने वाले इस दोष को दूर दें"

"महाराज ! निर्वाण शान्त सुख और प्रणीत है। अच्छी राह पर चल बुद्ध-उपदेश के अनुसार संसार के सभी संस्कारों को (अनित्य, दुःख और अनात्म की आँख से) देखते हुये कोई प्रज्ञा से निर्वाण का साक्षात् करता है। महाराज ! जैसे शिष्य गुरु की शिक्षा को ले अपनी समझ से विद्या का साक्षात् कर लेता है, वैसे ही कोई भी अच्छी राह पर चल बुद्ध के उपदेश के अनुसार संसार के सभी संस्कारों को (अनित्य, दुःख और अनात्म की आँख से) देखते हुये प्रज्ञा से निर्वाण का साक्षात् करता है।"

"निर्वाण का दर्शन कैसे हो सकता हैं ?"

"विघ्नों से रहित होने से, निरुपद्रव होने से, अभय होने से, कुशल होने से, शान्त होने से, सुख होने से, प्रसन्न होने से नम्र होने से, शुद्ध होने से तथा शील पालन करने से, निर्वाण का दर्शन हो सकता है।"

आग से बाहर निकल आना

"महाराज ! जैसे कोई मनुष्य किसी बड़ी आग में पड़ जाने पर जैसे तैसे कूद फाँद कर बाहर निकल आता है और तब उसे बड़ा सुख मिलता है, वैसे ही कोई अच्छी राह पर चल, मन को ठीक ओर लगा तीन प्रकार की आग के संताप से छूट कर परमसुख निर्वाण का साक्षात् करता हैं।— महाराज ! जो यहाँ आग है उसे तीन प्रकार की आग (राग, द्वेष और मोह) समझना चाहिये। जो यहाँ आग में पड़ गया मनुष्य है उसे अच्छी राह पर चलने वाला समझना चाहिबे। जो आग के बाहर आ जाता है उसे निर्वाण पा लेना समझना चाहिये।"

गंदे गड्हे से निकल आना

"महाराज ! मरे हुये साँप, कुत्ते और मनुष्य से भरा कोई गढ़ा हो जिसकी गन्दगी से सख्त बदबू निकल रही हो। उन मुर्दों के बीच में दबा हुआ कोई जिन्दा आदमी हाथ पैर चला कर बड़ी कोशिश के बाद बाहर निकल आवे और तब उसे बड़ा सुख मिले। महाराज ! वैसे ही, कोई अच्छी राह पर चल, मन को ठीक ओर लगा क्लेशरूपी मुर्दों के ढ़ेर से बाहर आकर परम सुख निर्वाण का साक्षात् करता है। महाराज ! जो यहाँ मुर्दे हैं उन्हें पाँच कामवासनायें, और जो यहाँ मुर्दों के बीच में दबा जिन्दा आदमी है उसे अच्छी राह पर चलने वाला समझना चाहिये। जो यहाँ मुर्दों के गढ़े से बाहर आ जाना है उसे निर्वाण पा लेना समझना चाहिये।"

संकट के बाहर आना

"महाराज ! कोई पुरुष किसी संकट में पड़ कर बहुत डर गया हो, घबड़ा गया हो, काँप रहा हो, बदहवास हो गया हो, पागल हो गया हो। वह अपनी कोशिश

से संकट से बाहर निकल आवे जहाँ पूरी स्थिरता हो, भय का कोई अवकाश नहीं हो। वहाँ उसे बड़ा सुख मिले। महाराज! वैसे ही, कोई अच्छी राह पर चल मन को ठीक ओर लगा डर या भय से रहित परमसुख निर्वाण का साक्षात् करता है। महाराज ! जो यहाँ संकट का भय है उसे जन्म लेना, बूढा होना, बीमार पड़ना, मर जाना इत्यादि के कारण होने वाले संसार के इस अपार भय को समझना चाहिये। जो यहाँ भयभीत पुरुष है उसे अच्छी राह पर चलने वाला समझना चाहिये। जो यहाँ संकट से निकल कर स्थिरता और निर्भयता की जगह पर आना है उसे निर्वाण पा लेना समझना चाहिये।"

कीचड़ के बाहर आ जाना

"महाराज ! जैसे मैली और गंदी कीचड़ में पड़ा हुआ कोई आदमी जाँघ फाँद कर साफ जगह में चला आवे और सुख पावे, वैसे ही कोई अच्छी राह पर चल मन को ठीक ओर लगा क्लेशरूपी गंदगी से निकल परमसुख निर्वाण का साक्षात् करता है।–महाराज ! जो यहाँ कीचड़ है उसें संसार के लाभ, सत्कार और प्रशंसा समझना चाहिये। जो यहाँ कीचड़ में पड़ा मनुष्य है उसे अच्छी राह पर चलने वाला समझना चाहिये। जो यहाँ साफ जगह है उसें निर्वाण समझना चाहिये।"

"सची राह पर चल कर कोई कैसे निर्वाण का साक्षात् करता है ?"

"महाराज ! जो सच्ची राह पर चलता हैं वह संसार के सभी संस्कारों की प्रवृत्ति[1] को देखभाल कर उस पर विचार करता है। विचार करते हुये वहाँ पैदा होना देखता है, पुराना होना देखता है, रोग देखता है और मर जाना देखता है। वहाँ कुछ भी सुख या आराम नहीं देखता। शुरू से भी, बीच से भी और आखिर से भी किसी चीज को पकड़ कर रखने लायक नहीं पाता।"

संसार मानो लोहे का लाल गोला है

"महाराज ! जैसे कोई पुरुष दिनभर आग में गर्म किये, बाहर निकाल कर रखे, लहलहाते हुये जलते लोहे के गोले को चारों ओर से देखते हुये उसका कोई भी हिस्सा पकड़ने लायक नहीं समझता, वैसे ही महाराज ! जो संसार के सभी संस्कारों की प्रवृत्ति को देखभाल कर उसे पर विचार करता है वह वहाँ पैदा होना देखता है, पुराना होना देखता है, रोग देखता है और मर जाना देखता हैं। वहाँ कुछ भी सुख या आराम नहीं देखता। शुरू से भी, बीच में भी और आखिर से भी किसी चीज को पकड़ कर रखने लायक नहीं समझता। इससे उसका चित्त संसार की ओर

---

१. संस्कारों की प्रवृत्ति अनित्य, अनात्म और दुःख है।

से फिर जाता है। उसके शरीर में एक प्रकार की बेचैनी समा जाती है। वह जन्म में कोई सार या सहाय नहीं पाता। आवागमन के फेर से थक जाता है।

"महाराज ! कोई आदमी लपटें मार मार जलती हुई किसी आग की बड़ी ढेरी में पड़ जाय। वह वहाँ अपने को असहाय और अशरण पावे। महाराज ! इसी तरह, साँसारिक विषयों से उसका मन उचट जाता है। उसके शरीर में एक प्रकार की बेचैनी समा जाती है। वह जन्म में कोई सार या सहाय नहीं पाता। आवागमन के फेर से थक जाता है।

संसार भय ही भय है

वह सभी ओर केवल भय ही भय देखता है और उसके मन में यह बात आती है–"अरे ! यह सारा संसार जल रहा है !! धधक रहा है !!! दुख से भरा है, केवल परेशानी ही परेशानी है !! यदि कोई इस बखेड़े से छूटना चाहता है तो उसके लिये परम शान्त और प्रणीत निर्वाण ही एक बचाव है, जहाँ सारे संस्कार सदा के लिये रुक जाते हैं, सारी उपाधियाँ मिट जाती हैं, तृष्णा का नाम भी नहीं रह जाता, राग का अन्त हो जाता है और आवागमन का निरोध हो जाता है।" इस तरह, आवागमन से छूटने ही की ओर उसका चित्त लगता है, इधर ही श्रद्धा और विश्वास बढ़ते हैं। वह आनन्द से बोल उठता है–"अरे ! मुझे सहारा मिल गया।"

भटका राह पकड़ लेता है

"महाराज ! जैसे अनजान जगह के जंगल में भटका कोई राही ठीक रास्ता पाकर आनन्द से भर जाता है और बोल उठता है "अरे ! ठीक रास्ता मिल गया।" वैसे ही संसार के बखेड़ों में केवल भय ही भय देखने वाला आवागमन से छूटने ही की ओर चित्त लगाता है; उधर ही उसके श्रद्धा, विश्वास बढ़ते हैं। वह आनन्द से बोल उठता है–"अरे ! मुझे सहारा मिल गया" वह निर्वाण पाने का रास्ता ढूँढ़ता है, उसकी भावना करता है और उसी पर मनन कर के दृढ़ होता है। अपने सारे ख्याल को उसी ओर लगा देता है; अपनी सारी कोशिश को उसी ओर लगा देता है, अपनी सारी उमंगों को उसी ओर लगा देता है। उसीका बराबर ध्यान धरने से उसका चित्त सांसारिक विषयों से हट कर वैराग्य की ओर पूरा पूरा झुक जाता है। महाराज ! वैराग्य को पूरा कर सच्ची राह पर चलते हुये निर्वाण का साक्षात् करता है।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! मैं बिलकुल समझ गया।"

८३. निर्वाण किस ओर और कहाँ है ?

"भन्ते नागसेन ! क्या वह जगह पूरब दिशा की ओर है, या पश्चिम दिशा की ओर, या उत्तर दिशा की ओर, या दक्षिण दिशा की ओर, या ऊपर, या नीचे, या टेढ़े जहाँ कि निर्वाण छिपा है।"

"महाराज ! वह जगल न तो पूरब दिशा की ओर है, न पश्चिम दिशा की ओर न उत्तर दिशा की ओर, न दक्षिण दिशा की ओर, न ऊपर, न नीचे और न टेढ़े जहाँ कि निर्वाण छिपा है।"

"भन्ते यदि निर्वाण किसी जगह नहीं है तो वह हुआ ही नहीं। निर्वाण नाम की कोई चीज नहीं है। निर्वाण का साक्षात् करना बिलकुल झूठी बात है। मैं इसके लिये दलील दूंगा:-

"भन्ते नागसेन ! संसार में फसल उगाने के लिये खेत हैं; गन्ध निकालने के लिये फूल हैं; फूल उगाने से लिये फुलवाड़ी हैं; फल लगाने के लिये वृक्ष हैं; और रत्न निकालने के लिये खान हैं। जिस आदमी को जिस चीज की जरूरत होती है वह वहां वहाँ जाकर उसे पैदा कर सकता है- भन्ते नागसेन ! इसी तरह, यदि निर्वाण है तो उसके पैदा होने की कोई जगह होनी चाहिये। भन्ते ! यदि निर्वाण के पैदा होने की कोई जगह नहीं है तो मैं इससे यही समझूंगा कि निर्वाण नाम की कोई चीज है ही नहीं। निर्वाण का साक्षात् करना बिलकुल झूठी बात है।"

"महाराज ! निर्वाण के पाये जाने की कोई जगह नहीं है तो भी निर्वाण है। सच्ची राह पर चल मन कर को ठीक ओर लगा निर्वाण का साक्षात् किया जा सकता है।"

"महाराज ! आग है तो सही किंतु उसके ठहरने की कोई जगह नहीं है। काठ के दो टुकड़े घिस देने से ही आग निकल आती है, महाराज ! वैसे ही निर्वाण है तो सही किंतु उसके ठहरने की कोई जगह नहीं है। सच्ची राह पर चल मन को ठीक ओर लगा निर्वाण का साक्षात् किया जाता है।"

"महाराज ! (१) चक्ररत्न, (२) हस्तिरत्न (३) अश्वरत्न, (४) मणिरत्न, (५) स्त्रीरत्न, (६) गृहपतिरत्न और (७) परिणायकरत्न (चक्रवर्ती राजा के) ये सात रत्न होते हैं।'[1] किंतु इन रत्नों के पाये जाने की कोई खास जगह नहीं है। उनके व्रतों को पालन करने से ही राजा को ये रत्न प्राप्त होते है। महाराज ! वैसे ही, निर्वाण है तो सही किंतु उसके ठहरने की कोई जगह नहीं है। सच्ची राह पर चल कर मन को ठीक ओर लगा कर निर्वाण का साक्षात् हो सकता है।"

"भन्ते नागसेन ! खैर, निर्वाण के पाये जाने की जगह भले ही मत होवे ! क्या कोई ऐसा स्थान भी है जहाँ खड़े हो सच्ची राह के अनुसार चल कर निर्वाण का साक्षात् हो सकता है?"

---

१. देखो दीघनिकाय-चक्रवर्ती सूत्र।

"हाँ महाराज ! ऐसा स्थान है जहाँ खड़े हो कर। निर्वाण का साक्षात्कार हो सकता है।

"भन्ते ! वह कौनसा स्थान है जहाँ खड़े हो कर निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है ?"

"महाराज ! यह स्थान शील है। शील पर प्रतिष्ठित हो मन को वश में करते हुये चाहे कहीं भी रह कर मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है। शक या यवन के देशों में रहकर भी, चीन या विलायत में रह कर भी, अलसन्द में रह कर भी, निकुम्ब में रह कर भी, काशी में रहकर भी, कोसल में रह कर भी, काश्मीर में रह कर भी, गान्धार में रहकर भी, पहाड़ की चोटी पर रह कर भी ब्रह्मलोक में रह कर भी या कहीं रह कर भी शील पर प्रतिष्ठित हो मन को वश में करते हुये मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।

"महाराज ! जैसे आँख वाला आदमी शक या यवन के देशों में, चीन या विलायत में, अलसन्द में, निकुम्ब में, काशी में कोसल में, काश्मीर में, गन्धार में, पहाड़ की चोटी पर, ब्रह्मलोक में, या चाहे कहीं भी रहकर आकाश को देख सकता है, वैसे ही शील पर प्रतिष्ठित हो मन को वश में करते हुये चाहे कहीं भी रह कर मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।

"महाराज ! जैसे कहीं भी रहने से मनुष्य के लिये पूर्व दिशा रहती है, वैसे ही शील पर प्रतिष्ठित हो मन को वश में करते हुये चाहे कहीं भी रह कर मनुष्य निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है।"

"ठीक है भन्ते नागसेन ! आपने निर्वाण को बड़ा अच्छा समझाया। निर्वाण का साक्षात्कार कैसे होता है इसे बता दिया। शील के गुणों का आपने प्रदर्शन कर दिया। सच्ची राह को आपने दिखा दिया। धर्म के झंडे को फहरा दिया। आपने धर्म की आँख खोल दी। सच्चे दिल से लगने वालों की कोशिश कभी खाली नहीं जाती है। हे गणाचार्यप्रवर ! मैं समझ गया।"

आठवाँ वर्ग समाप्त

मेण्डक प्रश्न समाप्त

पांचवाँ परिच्छेद

५–अनुमान-प्रश्न

(क) बुद्ध का धर्म–नगर

तब राजा मिलिन्द जहाँ आयुष्यमान् नागसेन थे वहाँ गया और उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। उस समय और भी बातों को जानने की उत्सुकता उसके मन में हो रही थी। नागसेन की बातों को सुन उन्हें, समझ की इच्छा हो रही थी। ज्ञान के प्रकाश को देखने की चाह हो रही थी। अपने अज्ञान को दूर कर ज्ञान पाने के लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। सो वह बड़े धैर्य और उत्साह के साथ अपने मन को रोक शान्तभाव से आयुष्मान् नागसेन के पास गया और बोला।

"भन्ते नागसेन! आपने क्या बुद्ध को देखा है?"

"नहीं महाराज!"

"क्या आपके आचार्यों ने बुद्ध को देखा है?"

"नहीं महाराज!"

"भन्ते नागसेन! न आपने बुद्ध को देखा और न आपके आचार्यों ने, तो मालूम होता है कि बुद्ध हुये ही नहीं। बुद्ध के होने का कोई सबूत नहीं मिलता।"

"महाराज! क्या पहले के राजा हुये हैं जो आपके पुरखा थे?"

"हाँ भन्ते! इसमें क्या सन्देह! पहले के राजा अवश्य हो चुके हैं जो मेरे पुरखा थे।"

"महाराज! क्या आपने पहले के उन राजाओं को देखा है?"

"नहीं भन्ते!"

"महाराज! क्या आपके सलाह देनेवाले पुरोहित, सेनापति, हाकिम हुक्काम, या राज–मन्त्रियों ने उन पहले के राजाओं को देखा है?"

"नहीं भन्ते!"

"महाराज! यदि न तो आपने स्वयं और न आपके सलाह देनेवालों ने पहले के राजाओं को देखा है, तो क्या पता वे हुये हैं? उनके होने का कोई भी सबूत नहीं।"

"भन्ते नागसेन ! किंतु अभी भी वे चीजें देखी जाती हैं जिनको उन पहले के राजाओं ने इस्तेमाल किया था। उनके श्वेत-छात्र, राजमुकुट, जूते, चँवर, तलवार, कीमती पलङ्ग इत्यादि अभी तक मौजूद है जिससे हम लोग जान सकते हैं और विश्वास कर सकते हैं कि वे पहले के राजा अवश्य गुजरे हैं।"

"महाराज ! इसी तरह, हम लोग भगवान् बुद्ध के विषय में भी जान सकते हैं और विश्वास कर सकते हैं। इसका प्रमाण है जिसके बल पर हम लोग जान सकते हैं और विश्वास कर सकते है कि भगवान् अवश्य हुये हैं।"

"वह कौनसा प्रमाण है ?"

"महाराज ! वे चीजें अभी तक मौजूद हैं जिनको उन्होंने अपने काम में लाया था। उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध के द्वारा काम में लाई गई चीजें ये हैं-(१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक् प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पांच इन्द्रियाँ, (५) पाँच बल, (६) सात बोध्यङ्ग और (७) आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। इनको देख कर कोई भी जान सकता है और विश्वास कर सकता है कि भगवान् अवश्य हुये हैं। महाराज ! इस कारण से, इस हेतु से, इस दलील से और अनुमान से जान सकते हैं कि भगवान् हुये हैं-।

बहुत जनों को तार कर उपाधि के मिट जाने से वे निर्वाण को प्राप्त हो चुके। इस अनुमान से जान लेना चाहिये कि वे पुरुषोत्तम हुये हैं।"

"भन्ते नागसेन ! कृपया उपमा देकर समझा दें।"

शहर बसाने की उपमा

"महाराज ! नया शहर बसाने की इच्छा से इंजीनियर पहले कोई ऐसी जगह ढूंढ़ता है जो ऊबड़ खाभड़ न हो, कंकरीली या पथरीली न हो, जहाँ किसी उपद्रव (बाढ़, अगलग्गी, चोर या शत्रु के आक्रमण इत्यादि) का भय नहीं हो, जो और भी किसी दोष से बची हो और जो बड़ी रमणीय हो। इसके बाद ऊँची नीची जगह को बराबर करवाता है और ठूंठ झाड़ी को कटवा कर साफ कर देता है। तब, शहर का नक्सा तैयार करता है-सुन्दर, नाप जोख कर भाग भाग में बाँट चारों ओर खाई और हाता, मजबूत फाटक, चौकस अटारियां, किलाबन्दी बीच बीच में खुले उद्यान, चौराहे, दोराहे, चौक, साफ सुथरे और बराबर राजमार्ग, बीच बीच में दुकानों की कतारें, आराम बगीचे, तालाब, बावली, कुयें, देवस्थान, सुन्दर और सभी दोषों से रहित। उस शहर के पूरा पूरा बस जाने और चढ़ती बढ़ती हो जाने पर वह किसी दूसरे देश को चला जाय।

बाद में समय पा कर शहर बहुत बढ़ जाय, गुलजार हो जाय, धनाढ्य हो जाय, निर्भय, समृद्ध, शिव और विघ्नबाधा से रहित हो जाय। वहाँ किसी उपद्रव का भय नहीं रहे। आबादी बहुत बढ़ जाय। क्षत्रीय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, हथसवार, घोड़सवार, गाड़ी, छकड़े, पैदल चलने वाले, तीरन्दाज, तलवार चलाने वाले, साधु, फकीर, दान देने वाले, युद्धप्रिय उग्र राजपुत्र, बड़े बड़े शूर वीर, मृगछाला धारण करने वाले, योद्धा, नौकर चाकर, मजदूर, पहलवानों के गरोह, रसोइये, नाई, नहलाने-वाले, लोहार, माली, सोनार, सीसे का काम करने वाले, पीतल का काम करने वाले, और किसी दूसरी धातु का काम करने वाले, जौहरी, दूत, कुम्हार, नामक तैयार करने वाले, चमार, गाड़ी बनाने वाले, हाथी-दांत के कारीगर, रस्सी बाँटने वाले, कंघी कदाने वाले, सूत कातने वाले, सूप, डाली बनाने वाले, धनुष बनाने वाले, तात बनाने वाले, तीर बनाने वाले, चित्रकार, रंग बनाने वाले रंगरेज, जुलाहे, दर्जी, सोने के व्यापारी, बजाजा, गन्धी, घसियारे, लकड़हारे, मजदूर, फल का व्यापार करने वाले, जड़ी-बूटी बेचने वाले, भात बेचने वाले, पूआ बेचने वाले, मछुये, कसाई, भट्टीदार, नाटक करने वाले, नाच दिखाने वाले, नट, मदारी, भाट, पहलवान, मुर्दा जलाने का पेशा करने वाले, फूल बटारने वाले, वीणा बनाने वाले, निषाद, रण्डी, वेश्या, रास करने वाली, बजाख औरत, शक, चीन, यबन, विलायत, उज्जैन, भारुकच्छ, काशी, कोसल, सीमांत मगध, साकेत, (अयोध्या), सौराष्ट्र, पाठा अदुम्बर, मथुरा, अलसन्दा, काश्मीर और गान्धार के लोग उस शहर में आकर रहें। वे सभी शहर को उतना अच्छा बसा देखकर समझें—अरे! वह इंजीनियर बड़ा होशियार होगा जिसने इतना अच्छा नगर बसाया।"

"महाराज! वैसे ही, भगवान् बेजोड़ ····· अतुल्य, असदृश, अनन्त गुण वाले, अप्रमेय, अपरिचेय, ······सभी गुणों की हद तक पहुँचे, सर्वज्ञ, अनन्त तेज वाले, अनन्त वीर्य, अनन्त बली, बुद्धि-बल की चरम सीमा तक पहुँचे हुये हैं। उन्होंने मार को अपनी सारी सेना के साथ हरा, झुठे सिद्धांतों को छिन्न-भिन्न कर अविद्या को हटा, विद्या को उत्पन्न कर धर्म-नगर को बसाया है।"

भगवान् का धर्म-नगर

"महाराज! भगवान् के बसाये धर्म-नगर के चारों ओर शील का हाता बना है; ह्री (पाप कर्म करने से हिचक) की खाई खुदी है; 'ज्ञान' की उसके फाटक के ऊपर चौकसी है; वीर्य की अटारियां बनी है; श्रद्धा की नीव दी गई है; स्मृति का द्वारपाल खड़ा है; प्रज्ञा के बड़े-बड़े भवन बने हैं। धर्मोपदेश के सूत्र उसके उद्यान हैं, धर्म की चौक बसी है; विनय की कचहरी बनी हैं; स्मृतिप्रस्थान की सड़के बनी

हैं। महाराज ! स्मृतिप्रस्थान की उन सड़कों के अगल-बगल इनकी दूकानें लगी है- (१) फूल की, (२) गन्ध की, (३) फल की, (४) दवाईयों की, (५) जड़ी-बुटीयों की, (६) अमृत की, (७) रत्न की, (८) और सभी चीजों की।"

"१—भन्ते नागसेन ! यह फूल की दूकान क्या है ?"

फूल की दूकान

"महाराज ! सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् ने ध्यानभावना करने के योग्य इन विषयों को बताया है- अनित्य-संज्ञा, अनात्म-संज्ञा, अशुभ-संज्ञा, अदीनव-संज्ञा, प्रहार-संज्ञा, विराग संज्ञा, साँसारिक विषयों में रतन न होने की संज्ञा, सभी संस्कारों में अनित्य संज्ञा, आनापान स्मृति, *उद्धमात-संज्ञा, विनीलक-संज्ञा, विपुब्बक-संज्ञा, विच्छिद्दक-संज्ञा, विक्खायित-संज्ञा, विक्खित्तक-संज्ञा, हत-विक्खित्तक-संज्ञा, लोहितक-संज्ञा, पलबक-संज्ञा, अट्ठिक-संज्ञा, मैत्री-संज्ञा, करुणा-संज्ञा, मुदिता-संज्ञा, उपेक्षा-संज्ञा, मरणानु-स्मृति, कायगता-स्मृति। महाराज ! भगवान् ने ध्यानभावना करने योग्य इन्ही विषयों को बताया है।"

"जो कोई बुढे होने और मरने से छूटना चाहता है वह इन विषयों में से एक को अपने अभ्यास के लिये चुन लेता है। उस पर अभ्यास करके राग से मुक्त हो जाता है, द्वेष से मुक्त हो जाता है, मोह से मुक्त हो जाता है, अभिमान से मुक्त हो जाता है, झूठे सिद्धांतों से मुक्त हो जाता है। वह संसाररूपी सागर को तर जाता है; तृष्णा की धार को रोक देता है; तीन प्रकार के मल को धो डालता है; और सभी क्लेशों का नाश कर मलरहित, रागरहित, शुद्ध, साफ, आवागमन से मुक्त, बूढ़े होने से बचे हुये, सुख, शीतल और अभय, नगरों में श्रेष्ठ निर्वाण-नगर में प्रवेश करता है। अर्हत् हो अपने चित्त का अन्तर कर देता है। महाराज ! बुद्ध की यही फूल की दूकान है।"

"कर्मरूपी पैसा लेकर (धर्म की) दूकान में जाये;
अभ्यास के लिये एक योग्य विषय को खरीद
कर लावे और उससे मुक्त हो जाये ॥"

२"भन्ते नागसेन ! गन्ध की दूकान कौनसी है ?"

गन्ध की दूकान

"महाराज ! भगवान् ने पालन करने के लियें कुछ शील बताये हैं। भगवान् पुत्र (बौद्ध-भिक्षू) अपने शील की गन्ध से देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे लोक सुगन्धित कर देते हैं। उनके शील की गन्ध दिशाओं में भी, अनु-दिशाओं में भी, हवा के वेग के साथ भी और हवा के वेग से उलटी भी उड़-उड़ कर फैल जाती है।"

---

*मृत-शरीर की भिन्न-भिन्न अवस्थायें।

"वे शील कौनसे है ?"

"महाराज ! (१) [1]शरण-शील, (२) पञ्च-शील (३) अष्टाङ्ग-शील, (४) दशाङ्ग-शील, (५) प्रत्युपदेश में आने वाले प्रतिमोक्ष संवर शील। महाराज ! बुद्ध की यही गन्ध की दूकान है।"

"महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने स्वयं कहा है–

"फूल की गन्ध हवा से उलटी नहीं बहती।
न चन्दन, न तगर या मल्लिका-फूल ॥
सन्तों की गन्ध हवा से उलटी भी बहती है।
सत्पुरुष सभी दिशाओं में उड़ कर पहुंच जाते है ॥
"चन्दन, तगर या कमल और जूही
इनकी गन्ध से शील की गन्ध अलौकिक ही है।
महज मामूली यह गन्ध है जो तगर और चन्दन की है।"
शीलवानों की जो उत्तम गन्ध है वह देवताओं में भी बहती है[1] ॥"

३–"भन्ते नागसेन ! वह फल की दूकान कौनसी है ?"

फल की दूकान

"महाराज ! भगवान् ने इन फलों को बताया है:–स्त्रोत आपत्ति फल; सकृदागामीफल, अनागामी फल, अरहत् फल शून्यता फल (निर्वाण), समापत्ति, अनिमित्त फल, समापत्ति, अप्पणिहित फल-समापत्ति इनमें से जिस फल को कोई लेना चाहता है, अपने कर्म के पैसे से खरीद सकता हैं।"

बारामासी आम

"महाराज ! किसी आदमी को एक बारहमासी आम का वृक्ष हो। जब तक खरीददार नहीं आते तब तक वह फलों को नहीं झाड़ता। खरीददार के आने पर दाम लेकर उससे कहता हो–"सुनो ! यह बारहमासी वृक्ष है। इसमें से जैसे फल चाहते हो तोड़ लो--कैरी, बड़े कसिआये, कच्चे या पके। खरीददार भी अपने दिये दाम के हिसाब से यदि कैरियों को चाहता है तो कैरी लेता है, यदि बड़े फलों को चाहता है तो बड़े ही लेता है, यदि कसिआये फलों को चाहता है तो कसिआये ही लेता है, यदि कच्चे चाहता है तो कच्चे ही लेता और यदि पके चाहता है तो पके ही लेता है।

"महाराज ! इस तरह, जो जैसा फल चाहता है वह कर्म के दाम दे वैसा ही खरीदता है– चाहे स्त्रोता आपत्ति फल। महाराज ! बुद्ध की यही फल की दूकान है।

---

१ देखो धम्मपद, पुप्फ वग्ग।

कर्म रूपी पैसे दे लोग अमृत–फल (अर्हत्–पद) खरीदते है ।।
उससे वे सुखी होते है जो अमृत–फल खरीदते है ।

४–"भन्ते नागसेन ! उनकी दवाई की दूकान क्या है ?"

दवाई की दूकान

"महाराज ! भगवान् ने वह दवाई बताई है जिससे उन्होंने देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार को क्लेश के विषय से मुक्त कर दिया था।"

"वह दवाई कौनसी है ?"

"महाराज ! भगवान् ने जों इन चार आर्यसत्यों को बताया है–(१) दुःख आर्य सत्य, (२) दुःख समुदाय आर्य सत्य (३) दुःख निरोध आर्य सत्य, और (४) दुःख-निरोधगामी मार्ग आर्य सत्य।"

"जो मुमुक्षु इन चार आर्यसत्यों वाले बुद्ध–मार्ग को सुनता है वह जन्म लेने से छूट जाता है, बूढा होने से छूट जाता है, मरने से छुट जाता है, शोक, रोने–पीटने का दुख, चिंता और परेशानी से छूट जाता है। महाराज ! यही बुद्ध की दवाई की दूकान है।"

"विष को दूर करने वाली संसार में जितनी दवाईयां है ।
धर्मरूपी दवाई के समान कोई नहीं है भिक्षुओं ! इसे पाओ ।।"

५–"भन्ते नागसेन ! उनकी जड़ी–बूटी की दूकान कौनसी है !"

जडी-बूटी की दूकान

"महाराज ! भगवान् ने ये जड़ो–बूटीयाँ बताई हैं जिन से उन्होंने देवताओं और मनुष्यों की चिकित्सा की थी। चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियां, पांच बल, सात बोध्यङ्ग, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग–इन बूटियों से भगवान् जुलाब देकर मिथ्यादृष्टि (झूठे सिद्धांत), मिथ्या–संकल्प, मिथ्या–वचन, मिथ्या–कर्मान्त, मिथ्या–जीविका, मिथ्या–व्यायाम, मिथ्या-स्मृति और मिथ्या-समाधि को निकाल देते हैं। लोभ, द्वेष, मोह, अभिमान, आत्म–दृष्टि, विचिकित्सा, औद्धत्य, आलस्य, निर्लज्जता, अनवत्रता और सभी क्लेशों का वमन करा देते हैं।

"महाराज ! बुद्ध की जड़ी–बूटी की दूकान यही है।"

"संसार में जो नाना प्रकार की जड़ी-बूटियां है ।
धर्मरूपी बूटी के सामने कुछ भी नहीं हैं भिक्षुओं ! उसे पिओ ।।
धर्म की बूटी को पी कर अजर–अमर हो जाओ ।
भावना करते हुये परम ज्ञान का साक्षात् कर सभी उपधियों के मिट जाने पर निर्वाण पा लो ।।"

६–"भन्ते नागसेन ! उनकी अमृत की दूकान कौनसी है ?"

अमृत की दूकान

"महाराज ! भगवान् ने अमृत भी बतलाया है। उस अमृत से भगवान् ने देवाताओं और मनुष्यों से युक्त सारे संसार को भर दिया; जिससे सभी देवता और मनुष्यों के जन्म लेने, बूढ़ा होने, बीमार पडने, मर जाने, शोक, रोने-पीटने, दुःख चिन्ता और परेशानी से मुक्त हो गये।"

"वह अमृत कौनसा है ?"

"जो यह [1]कायगता स्मृति है। महाराज ! देआतिदेव भगवान् ने कहा भी है– भिक्षुओं ! जो कायगता स्मृति का अभ्यास करते हैं वे मानों अमृत ही पीते हैं।" महाराज ! बुद्ध की यही अमृत की दूकान है–

"रोगग्रस्त जनता को देख कर
उन्होंने अमृत की दूकान खोल दी हैं।
कर्म का दाम दे खरीद कर
भिक्षुओं ! उस अमृत को ले लो।"

७–"भन्ते नागसेन ! उनकी रत्न की दूकान कौनसी है ?"

रत्न की दूकान

"महाराज ! भगवान् ने रत्न को बताया है, जिससे सजधज कर उनके पुत्र (बौद्ध-भिक्षु) देवताओं और मनुष्यों के साथ सारे संसार को जगमगा देते हैं, चमका देते हैं, ऊपर नीचे और टेढे सभी जगह प्रज्वलित हो कर उजाला कर देते हैं।

"वे रत्न कौनसे हैं ?"

(१) शील रत्न, (२) समाधि रत्न, (३) प्रज्ञा रत्न, (४) बिमुक्ति रत्न, (५) विमुक्ति ज्ञान-दर्शन रत्न, (६) प्रतिसंविद् रत्न और (७) बोध्यंग रत्न।

(१) "भगवान् का शील-रत्न क्या है ?"

(१) शील-रत्न

(१) प्रतिमोक्ष संवर शील, (२) इन्द्रिय संवर शील, (३) आजीव-परिशुद्धि शील, (४) प्रत्यसन्निस्मृत शील, (५) लघु शील, (६) मध्यम शील, (७) महा शील, (८) मार्ग शील, (९) फल शील। महाराज ! जो लोग शील रत्न से विभूषित हैं उन्हें देख देवता, मनुष्य, मार, ब्रह्मा, श्रमण, ब्राह्मण सभी को आकांशा और अभिलाषा हो जाती है। महाराज ! भिक्षु शील-रत्न से सुसज्जित हो अपनी

---

१. देखो दीघनिकाय, महासतिपट्ठान सुत्त

शोभा से दिशाओं को भी, अनुदिशाओं को भी, ऊपर भी, नीचे भी और टेढ़े भी भर देता है। सबसे नीचे अवीचि नरक से लेकर सबसे ऊपर स्वर्ग लोक तक के भीतर में जितने दूसरे रत्न हैं सभी से यह शील-रत्न, बढ जाता, आगे हो जाता, सभी को मात कर देता है। महाराज ! भगवान् की रत्न की दुकान में इस प्रकार के शील रत्न हैं। महाराज ! यही भगवान् का शील-रत्न कहा जाता है।"

"इस प्रकार के शील बुद्ध की दूकान में मिलते हैं।
कर्म के दाम से खरीद कर रत्न को आप पहने।"

(२) "भगवान् का समाधि-रत्न क्या है ?"

(२) समाधि-रत्न

(१) सवितर्क सविचार समाधि, (२) अवितर्क विचार-मात्र समाधि (३) अवितर्क अविचार समाधि, (शून्यता समाधि), (४) अनिमित्त समाधि, (५) अप्रणिहित समाधि। महाराज ! समाधिरत्न से सुसज्जित भिक्षु के कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क, मान, औद्धत्य, आमदृष्टि, क्लेश, पाप, तथा जो नाना कुवितर्क हैं सभी समाधि के लगते ही विलीन हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं, उनमें कुछ भी बचे नहीं रह सकते।

"महाराज ! पानी पलास के पत्ते पर नहीं ठहर सकता, बह कर गिर जाता है। ऐसा क्यों होता है ? क्योंकि पलास का पत्ता इतना शुद्ध और चिकना है। महाराज ! इसी तरह, समाधि से सज्जित भिक्षु के कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क, मान, औद्धत्य, आत्मदृष्टि, विचिकित्सा, क्लेश, पाप तथा जो नाना कुवितर्क हैं, सभी समाधि पाते ही विलीन हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। सो क्यों ? क्योंकि समाधि इतनी शुद्ध है। महाराज ! इसी को भगवान् का समाधि-रत्न कहते हैं। महाराज ! इस प्रकार के समाधि-रत्न भगवान् के रत्न की दूकान में हैं।"

"जिसने अपने मुकुट में समाधि-रत्न को जड़ लिया है,
उसे कुवितर्क नहीं बता सकते।"
उसका चित्त कभी भी चञ्चल नहीं हो सकता, उसे आप पहन ले॥"

(३) "भगवान् का प्रज्ञा रत्न क्या है ?"

(३) प्रज्ञा-रत्न

"महाराज ! जिस प्रज्ञा से अच्छे भिक्षु "यह पुण्य है" ऐसा ठीक ठीक जान सकते हैं। "यह पाप है।" ऐसा ठीक-ठीक जान सकते है। "यह बुरा है, यह भला

हैं, यह करने योग्य है, यह नहीं करने योग्य है, यह हीन है, यह सुन्दर है, यह काला है, यह उजाला है, यह काला और उजाला दोनों है" ऐसा ठीक-ठाक जान सकते हैं। "यह दुःख है" ऐसा ठीक-ठाक जान सकता है। "यह समुदय है" ऐसा ठीक-ठाक जान सकता है। "यह दुख नियोधगामी मार्ग है" ऐसा ठीक-ठाक जान सकता है। महाराज ! इसी को बुद्ध का प्रज्ञा-रत्न कहते हैं।"

"जिसने प्रज्ञा-रत्न को अपने शिर में लगा लिया
वह आवागमन के फेर में बहुत नहीं रहता।
वह शीघ्र ही अमृत पद पा लेता है"
जन्म लेने में उसे आनन्द नहीं आता।

(४) "भगवान् का विमुक्ति रत्न क्या है

(४) विमुक्ति-रत्न

"महाराज ! विमुक्ति-रत्न अर्हत् पद को कहते हैं। अर्हन् हो कर भिक्षु विमुक्ति-रत्न से शोभित हो जाता है।

"महाराज ! जैसे कोई पुरुष मोती, माला, मणि, सोने और मूंगे के आभूषणों से आभूषित हो। अगर, तगर, तालिसक, लाल चन्दन इत्यादि के लेप से अपने गात्र को सुगन्धित बना ले। नाग, पुन्नाग, साल सलल, चम्पक, जूही, अतिमुक्तक, गुलाब, कमल, मालती, मल्लिका इत्यादि फूलों के हार से अपने को सजा लें। तो वह पुरुष दूसरे लोगों से कितना बढ़ चढ़ कर शोभा देगा, अच्छा लगेगा, चमकेगा और सुहावना लगेगा। महाराज ! इसी तरह, अर्हत पद पा कर क्षीणास्रव भिक्षु विमुक्ति-रत्न से सज दूसरे भिक्षुओं से बहुत बढ़ चढ़ कर शोभता है, चमकता है और सुहावना लगता है–वह क्यों ? क्योंकि सभी आभूषणों में यही सर्वोच्च आभूषण है–जो कि यह विमुक्ति-रत्न है। महाराज ! इसी को भगवान् का विमु -रत्न कहते हैं।"

"शिर में मणि को लगा लेने से घर के सभी लोग स्वामी ही की ओर देखने लगते हैं।

विमुक्ति-रत्न शिर में लगा लेने से देवता लोग भी उसी की ओर देखने लगते हैं।"

(५) "महाराज ! भगवान् का कौनसा विमुक्ति-ज्ञान दर्शन-रत्न है ?"

(५) विमुक्ति-ज्ञान दर्शन रत्न

"महाराज ! प्रत्यवेक्षण-ज्ञान ही भगवान् का विमुक्ति-ज्ञानदर्शन रत्न कहा जाता है, जिस ज्ञान से अच्छे भिक्षु मार्गफल निर्वाण को पाते हैं। सारे क्लेश के क्षीण हो जाने पर अपने कुछ भी बचे क्लेश का प्रत्यवेक्षण करते हैं।

"जिस ज्ञान से वे समझ लेते हैं कि उन्हें जो कुछ करना था सो पूरा कर लिया।"

"हे भिक्षुओं ! उस ज्ञान–रत्न को पाने के लिये उद्योग करो।"

(६) "भगवान् का प्रतिसंविद् रत्न कौनसा है ?"

(६) प्रतिसंविद रत्न

"महाराज ! चार प्रतिसंविद् है– (१) अर्थप्रतिसंविद्, (२) धर्मप्रतिसंविद् (३) निरुक्ति प्रतिसंविद और (४) प्रतिभान प्रतिसंविद्। महाराज ! इन्हीं चार प्रतिसंविद्–रत्न से सज्जित होकर भिक्षु जिस किसी सभा में–क्षत्रिय सभा, या ब्राह्मणा सभा, या वैश्य सभा, या भिक्षु सभा मैं जाता है, बिना किसी संकोच के निडर हो कर जाता है, गूंगा बन कर नहीं; डर कर नहीं जाता, घबड़ा कर नहीं जाता, चौकन्ना होकर नहीं जाता, और न कहीं जाने से उसके रोंगटे खड़े होते।"

कोई लड़ाका सिपाही

"महाराज ! जैसे कोई लड़ाका सिपाही पांचों आयुद्ध से सम्बद्ध हो भय-रहित मैदान में उतरता है। वह मन में खयाल करता है–यदि शत्रु दूर होंगे तो उन्हें तीर चला कर मारूंगा, यदि कुछ पास में होंगे तो भाला चला कर मारूंगा, यदि कुछ और पास में होंगे तो उन्हें बर्छी चला कर मारूंगा, यदि और भी निकट चले आयेंगे तो मैं उन्हें तलवार से दो टुकड़े कर दूंगा, यदि बिलकुल शरीर से सट जायेंगे तो गंडासा भोंक दूंगा।"

"महाराज ! इसी तरह, चार प्रतिसंविद् से सज्जित भिक्षु अभय हो किसी सभा में प्रवेश करता है। उसे अपने में पूरा विश्वास रहता है। वह समझता है–जो मुझे अर्थ–संविद् के विषय में पूछेगा उसको अर्थ से अर्थ कह कर उत्तर दे दूंगा, कारण से कारण समझा दूंगा, हेतु से हेतु को दिखा दूंगा, दलील से दलील को पेश करूँगा। उसके सारे संशय को दूर कर दूंगा। उसके भ्रम को मिटा दूंगा। प्रश्न का उत्तर देकर उसे संतुष्ट कर दूंगा।–जो कोई मुझे धर्म–प्रतिसंविद के विषय में प्रश्न पूछेगा उसको धर्म से धर्म कहूँगा, अमृत से अमृत कह दूंगा, अनिर्वचनीय से अनिर्वचनीय को समझा दूंगा, निर्वाण से निर्वाण कह दूंगा, शून्यता से शून्यता को कह दूंगा, अनिमित्त से अनिमित्त को कह दूंगा, अप्रणिहित अप्रणिहित को कह दूंगा, शान्त से शान्त को कह दूंगा उसके सारे संदेह को दूर कर दूंगा, सारी शंकाओं को मिटा दूंगा। उसके प्रश्नों का उत्तर दे कर उसे संतुष्ट कर दूंगा।–जो कोई मुझे निरुक्ति–प्रतिसंविद के विषय में पूछेगा उसको निरुक्ति से निरुक्ति, पद से पद, अनुपद से अनुपद, अक्षर से अक्षर, सन्धि से सन्धि, व्यञ्जन से व्यञ्जन, अनुव्यञ्जन से अनुव्यञ्जन, वर्ण से वर्ण, स्वर से

स्वर, प्रज्ञप्ति से प्रज्ञप्ति, व्यवहार से व्यवहार कह दूँगा। उसके सारे संदेह को दूर कर दूँगा, सारी शंकाओं को मिटा दूँगा। उसके प्रश्नों का उत्तर दे कर उसे संतुष्ट कर दूँगा। जो कोई मुझे प्रतिभान प्रतिसंविद के विषय में प्रश्न पूछेगा उसे प्रतिभान से प्रतिभान, उपमा से उपमा, लक्षण से लक्षण, रस से रस कह दूँगा। उसके सारे संदेह को दूर कर दूँगा, सारी शङ्काओं को मिटा दूँगा। उसके प्रश्नों का उत्तर दे कर उसे संतुष्ट कर दूँगा। महाराज ! इसी को भगवान् का प्रति-संविद् रत्न कहते है।"

"जो ज्ञान से प्रति-संविद् को पा लेता है वह देवताओं और मनुष्यों के साथ इस सारे संसार में निर्भय और अनुद्विग्न होकर रहता है।"

(७) "भगवान् के बोध्यङ्ग-रत्न कौनसे हैं ?"

(७) बोध्यङ्ग-रत्न

"महाराज ! बोध्यङ्ग सात हैं-(१) स्मृति सम्बोध्यङ्ग, (२) धर्म विचय सम्बोध्यङ्ग, (३) वीर्य सम्बोध्यङ्ग, (४) प्रीतिसम्बोध्यङ्ग (५) प्रश्रब्धिसबोध्यङ्ग, (६) समाधि सम्बोध्यङ्ग और (७) उपेक्षा सम्बोध्यङ्ग। महाराज ! इन सात सम्बोध्यङ्ग से सज कर भिक्षु सारे अँधेरे को दूर हटा कर लोक को अपनी चमक से चमका कर उजाला कर देता है। महाराज ! इसी को भगवान् का बोध्यङ्ग-रत्न कहते हैं।"

"जिसने अपने ललाट पर बोध्यङ्ग-रत्न लगा लिये हैं,
उसकी प्रतिष्ठा में देवता और मनुष्य सभी उठ खड़े होते हैं।
कर्म के दाम को देकर खरीद
आप उस रत्न को पहन लें॥"

(८) "बुद्ध की कौन आम दूकान है जहाँ सभी चीजें मिलती हैं ?"

(८) आम दूकान

"महाराज ! बुद्ध की आम दूकान है- (१) नव अङ्गों से युक्त बुद्ध के वचन, (२) शरीरधातु (भगवान् के भस्म) (३) बची हुई वे वस्तुएँ जिनका भगवान् स्वयं इस्तेमाल करते थे, (४) चैत्य, (५) संघरत्न। महाराज ! इस दूकान में जाति-सम्पत्ति है, भोग-सम्पत्ति हैं, आयु-सम्पत्ति है, आरोग्य-सम्पत्ति है, सौन्दर्य-सम्पत्ति है, प्रज्ञा-सम्पत्ति है, सांसारिक-सम्पत्ति है, दिव्य-सम्पत्ति है और निर्वाण-सम्पत्ति है। यहाँ जिसको जो भाता है, कर्म का दाम दे उस सम्पत्ति को खरीद सकता है। कितने शील का पालन कर के खरीदते हैं; किनने उपोसथ व्रत

रख कर खरीदते हैं; थोड़ा थोड़ा पुण्य करके भी उसी के अनुसार सम्पत्ति खरीदते है। महाराज ! जैसे अनाज वाले की दूकान में उलट फेर कर थोडे दाम से भी थोड़ा बहुत खरीदा जा सकता है, वैसी ही भगवान् को इस दूकान में थोड़े पुण्य से भी उसी के अनुसार सम्पत्ति खरीदी जा सकती है। महाराज ! यही बुद्ध की आम दूकान है जहाँ सभी चीजें मिलती हैं।"

"आयु, आरोग्य, स्वर्ग, उच्च कुल में जन्म लेना,

अनिर्वचनीय अमृत निर्वाण-सभी कुछ भगवान् की आम दुकान में मिलता है।"

"कर्म का थोड़ा या बहुत दाम दे कर वैसा ही लोग खरीदते हैं,

भिक्षुओं ! श्रद्धा के दाम से खरीद कर धनी हो जावो॥"

धर्म--नगर के नागरिक

"महाराज ! भगवान् के धर्म-नगर में ऐसे लोग बसते हैं-सूत्रों को जानने वाले, विनय को जानने वाले, अभिधर्म को जानने वाले, धर्म के उपदेशक, जातक-कथाओं को कहने वाले, दीर्घ-निकाय को याद करने वाले, मज्झिम-निकाय को याद करने वाले, संयुक्त-निकाय को याद करने वाले, अंगुत्तर-निकाय को याद करने वाले, खुद्दक-निकाय को पढ़ने वाले, शीलसम्पन्न, प्रज्ञासम्पन्न, बोध्यङ्ग-भावना में रत रहने वाले, विदर्शना वाले, अच्छे कर्मों में लगे रहने वाले, ध्यान साधने के लिये जंगल में रहने वाले, वृक्ष के नीचे आसन जमाने वाले, खुले स्थान में रहने वाले, पुआल की ढ़ेर पर रहने वाले, स्मशान में रहने वाले, (आर्य-)मार्ग पर आरूढ़ हो गये, चार फलों में से किसी का साक्षात्कार करने वाले, शैक्ष्य (निर्वाण पाने के लिये जिन्हें अभी सीखना बाकी है), श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्, तीन विद्याओं को जानने वाले, छः अभिज्ञाओं को धारण करने वाले, ऋद्धिमान् प्रज्ञा की चरम सीमा तक पहुँचे हुये तथा स्मृतिप्रस्थान, सम्यक्-प्रधान, ऋद्धिपाद, इन्द्रिय, बल, बोध्यङ्ग, मार्ग, ध्यान, विमोक्ष, रूप, अरूप, शान्त, सुख, समापत्ति में कुशल। वह धर्मनगर बाँस या सरकंड़े के झाड़ के समान अर्हतों से खचाखच भरा रहता था।"

"रागरहित, द्वेषरहित, मोहरहित, क्षीण-आस्रव, तृष्णा-रहित तथा उपादान को नाश कर देने वाले उस धर्म-नगर में रहते हैं। जंगल में रहने वाले, धुताङ्गधारी, ध्यान करने वाले, रूखे चीवर वाले, विवेक में रत, धीर लोग उस धर्म-नगर में रहते हैं।"

"आसन लगाये रहने वाले, केवल कभी-कभी सोने वाले, और
बराबर चंक्रमण कर ध्यान करने वाले।
गुदड़ी धारण करने वाले, ये सभी उस धर्म-नगर में बसते हैं।
तीन चीवर धारण करने वाले, शान्त, चमड़े के टुकड़े को रखने वाले।[1]
केवल एक बार भोजन कर के प्रसन्न रहने वाले, विज्ञ धर्म-नगर में रहते हैं॥"

"कम इच्छा वाले, ज्ञानी, धीर, अल्पाहारी, निर्लोभी।
जो कुछ मिले उसी से संतुष्ट रहने वाले-उस धर्मनगर में रहते हैं॥"
"ध्यान करने वाले, ध्यान में रत रहने वाले, धीर, शान्तचित्त और
समाधि लगाने वाले।
निर्वाण की इच्छा रखने वाले उस धर्म-नगर में रहते हैं।"
"सच्चे मार्ग पर आ जाने वाले, फल पा कर रहने वाले,
शैक्ष्य निर्वाण पद पा लेने वाले।
उत्तम पद में जो लगे हैं-वे धर्म-नगर में रहते हैं॥"
"मलरहित, जो श्रोतआपन्न हो चुके हैं और जो सकृदागामी हैं।
अनागामी और अर्हत् ये धर्म-नगर में बसते हैं॥"
"स्मृतिप्रस्थान में कुशल, बोध्यङ्ग की भावना में रत,
ज्ञानी, धर्मात्मा, धर्म-नगर में रहते हैं॥"
"ऋद्धिपाद में कुशल, समाधि और भावना में रत।
सम्यक्-प्रधान में लगे हुये, ये धर्म-नगर में रहते हैं॥"
"अभिज्ञा की चरम सीमा तक पहुँचे हुये, अपनी पैतृक कमाई में
आनन्द लूटने वाले।
आकाश में भ्रमण करने वाले धर्म-नगर में रहते हैं॥"
"नीचे नजर किये रहने वाले, कम बोलने वाले, इन्द्रियों को वश में
रखने वाले, संयमी,।
उत्तम धर्म में आ कर नम्र हो गये, धर्म-नगर में रहते हैं।"
"तीन विद्याओं और छः अभिज्ञाओं को धारण करने वाले और
ऋद्धि की हद तक पहुँचे,
प्रज्ञा की सीमा को पार कर जाने वाले धर्म-नगर में रहते हैं॥"

---

१. बौद्धभिक्षु ध्यान, या वन्दना करनें के लिये अपने पास चर्मखण्ड रखते हैं।

धर्म--नगर के पुरोहित

"महाराज ! जो भिक्षु अनन्त-ज्ञानी, सांसारिक वस्तुओं में नहीं फंसने वाले, अतुल्य गुण वाले, यश वाले, अतुल्य बल वाले, अतुल्य तेज वाले, धर्मचक्र को घुमाने वाले हैं और जो प्रज्ञा की सीमा तक पहुँचे हैं। महाराज ! इस प्रकार के भिक्षु भगवान के धर्म-नगर में धर्म-सेनापति कहे जाते हैं।"

"महाराज ! जो भिक्षु ऋद्धिमान् हैं, प्रतिसंविद् को ग्रहण कर लिया है, वैशारद्य को पा लिया है, आकाश में घूमते हैं, परास्त नहीं किये जा सकते, जिनके समान नहीं हैं, किसी दूसरे पर आलम्बित नहीं रहते, समुद्र और पहाड़ के साथ सारी पृथ्वी को कँपा दे सकते हैं, चाँद सूरज को भी छूट सकते हैं, अपना रूप बदल दे सकते हैं, दृढ़ संकल्प और ऊँचे उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं और जो ऋद्धि में पूर्ण हैं–वे भिक्षु धर्मनगर के पुरोहित कहे जाते हैं।"

धर्म--नगर के हाकिम

"महाराज ! जो भिक्षु धुताङ्ग का धारण करते है, अल्पेच्छ हैं, संतुष्ट रहते है, दूसरों से कुछ माँगने या स्वयं किसी चीज के पीछे भटकने को घृणित समझते हैं, बिना घर छोड़े पिण्डपात करते हैं, जैसे भौंरा फूलफूल पर बैठ कर ले लेता है, और उसके बाद एकान्त जंगल में घुस जाते हैं, अपने जीवन और शरीर की कोई भी परवाह नहीं करते, अर्हत पद को पा लिया है और जो धुताङ्ग पालन को ही सब से अच्छा मानते हैं--वे भिक्षु भगवान के धर्म--नगर के हाकिम कहे जाते हैं।"

धर्म--नगर के प्रकाश जलाने वाले

"महाराज ! जो भिक्षु परिशुद्ध, निर्मल, क्लेशरहित और सबसे अन्तिम दिव्य चक्षु को पा चुके हैं वे भगवान के धर्म नगर के प्रकाश करनें वाले कहे जाते हैं।"

धर्म--नगर के चौकीदार

"महाराज ! जो भिक्षु बड़े विद्वान हैं, आगम के पण्डित हैं, धर्म को पूरा पूरा जानते हैं, विनय को समझते हैं, मातृकाओं को याद रखते हैं, उनके उच्चारण में कुशल हैं नव अंगों वाले इस शासन को जानते हैं वे भगवान के धर्म-नगर के वे चौकीदार कहे जाते हैं।"

धर्म--नगर के रूपदक्ष

"महाराज ! जो भिक्षु विनय को जानते हैं, विनय की गूढ़ से गूढ़ बात तक पहुँचे हुये हैं, निदान पढ़न में कुशल हैं, विनय के सारे कर्म को अच्छी तरह कर

सकते हैं और विनय में जो कुछ भी जानने योग्य है सभी को जान लिया है; वे भगवान् के धर्म-नगर के रूपदक्ष कहे जाते हैं।"

धर्म--नगर के माली

"महाराज ! जो भिक्षु विमुक्ति के गजरे को अपने शिर में बांधे हैं उस उत्तम, अमूल्य और श्रेष्ठ अवस्था को पा चुके हैं तथा लोगों के प्रिय और आदरणीय हैं; वे भगवान् के धर्म-नगर के फूल बेचने वाले माली कहे जाते हैं।"

धर्म--नगर के फल बेचने वाले

'महाराज ! जो भिक्षु चार आर्यसत्यों के रहस्य में पैठ चुके हैं, सत्यज्ञान का साक्षात् कर चुके हैं, जिन्होंने बुद्ध धर्म को पूरा पूरा समझ लिया है, जो चारों श्रामण्य-फलों में संदेह से रहित हो गये हैं, उन फलों के सुख को पा चुके हैं तथा दूसरे सच्चे मार्ग पर आये हुओं के बीच भी फल को बाँटते हैं, वे भगवान् के धर्म-नगर के फल बेचने वाले फल वाले हैं।"

धर्म-नगर के गंधी

"महाराज ! जो भिक्षु शील की श्रेष्ठ सुगन्धि से लिप्त होकर अनेक प्रकार के सद्‌गुणों को धारण करते हैं तथा क्लेशरूपी मैली दुर्गन्धि को नाश कर देने वाले हैं; वे भगवान् के धर्म-नगर के गंध बेचने वाले गंधी कहे जाते हैं।"

धर्म-नगर के पियक्कड़ मतवाले

"महाराज ! जो भिक्षु धर्म को ही चाहने वाले हैं, मीठी बातें करने वाले हैं, अभिधर्म और विनय में बड़ा आनन्द लेते हैं, जग में रह या वृक्ष के नीचे आसन लगा या एकान्त कोठरी में बैठ केवल धर्म ही का मीठा रस पीते हैं, शरीर, मन और वचन से एक धर्म ही के रस में डूबे रहते हैं, धर्म में बडी भारी प्रतिभा रखते हैं, धर्म की खोज में सदा लगे रहते हैं, जहाँ कहीं सभी जगह अल्पेच्छता की प्रशंसा करते हैं, संतोष की बडाई करते हैं, विवेक की बड़ाई करते हैं, सांसारिक फंदों से दूर रहने का उपदेश देते हैं, अच्छे काम की कोशिश में सदा लगे रहने को कहते हैं, शील का उपदेश करते हैं; समाधि का उपदेश करते हैं, प्रज्ञा का उपदेश करते हैं, विमुक्ति का उपदेश करते हैं, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन का उपदेश करते हैं, जिसके पास लोग आकर विविध प्रकार के उपदेश ग्रहण करते हैं; वे भगवान् के धर्म-नगर के पियक्कड़ मतवाले हैं।"

धर्म-नगर के पहरेदार

"महाराज ! जो भिक्षु पहली रात से आखरी रात तक जागे ही जागे बिताते हैं, जो बैठे ही बैठे रहते है, जो खडे ही खडे रहते हैं, जो टहल टहल कर दिन-रात

ध्यान-भावना करते हैं, भावना करने में सदा लगे रहते हैं, अपने क्लेश को दूर करने में सदा प्रयत्नशील रहते है, वे भगवान् के धर्म-नगर के पहरेदार कहे जाते है।"

धर्म-नगर के वकील

"महाराज ! जो भिक्षु भगवान् के नव-अंगों-वाले धर्म को अर्थ से, व्यञ्जय से, तर्क, से, कारण से, हेतु से और उदाहरण से समझा कर बाचते हैं, वे भगवान् के धर्म-नगर के वकील कहे जाते है।"

धर्म-नगर के बडे बडे सेठ

"महाराज ! जो भिक्षु धर्मके रत्न से धनी है, पुरानी परम्परा के धन को रखते है, विद्या के धनाढ्य है और धर्म के निर्देश, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण और गूढ़ तत्व के ज्ञान से भरपूर हैं, वे भगवान् के धर्म-नगर के बड़े बड़े सेठ कहे जाते हैं।"

धर्म-नगर के बॅरिस्टर

"महाराज जो भिक्षु देशना के रहस्य तक पहुँच गये हैं, ध्यान के अभ्यास के लिये जो विषय बताये गये हैं, उनके विभाग और तात्पर्य को समझ आये हैं, सूक्ष्म शिक्षायें पा चुके हैं, वे भगवान् के धर्म-नगर के बडे विख्यात बॅरिस्टर कहे जाते हैं।"

"महाराज ! भगवान् का धर्म-नगर इतना अच्छा बसा हुआ है, इतना अच्छा नाप जोख कर तैयार किया गया है। उसमें ऐसो खूबी दिखाई गई है, सभी बाते पूरी की गई हैं, ऐसी अच्छी व्यवस्था बना दो गई है, वह इतना रक्षित बना लिया गया है कि शत्रु किसी तरफ से भी नहीं चढ़ सकते।

"महाराज ! इन सभी को देखकर यह जानना चाहिये कि भगवान् अवश्य हुये हैं।"

"जैसे अच्छी तरह विभाजित सुन्दर नगर को देख,
लोग उसके कारीगर की चतुराई का पता लगा लेते हैं ॥
वैसे ही, लोक-नाथ (बुद्ध) के इस श्रेष्ठ धर्म-पुर को देख
वे भगवान् कैसे थे लोग इसका पता लगा लेते हैं ॥"
"समुद्र के हिलोरों को देख लोग पता लगा लेते हैं, कि
जैसे हर शोक को दूर करने वाले अपराजेय बुद्ध को
तृष्णा को नष्ट कर देने वाले और भवसागर से पार लगा देने वाले को ॥

देवताओं और मनुष्यों में उनके हिलोरों को देख कर पता लगा लेना चाहिये,
जैसे ये धर्म के हिलोरे मार रहे हैं वैसे ही वे बड़े बुद्ध होंगे ।"
बडी ऊँची चोटी को देख कर लोग पता लगा लेते हैं,
इतनी ऊँची चोटी हिमालय की ही होगी ।।
वैसे ही धर्म की चोटी को देख जो (तृष्णा की आग से)
ठंडी और उपाधिरहित हो गई है,

भगवान् के इस ऊँचे, भव्य और महान्;
धर्म-पर्वत को देख कर पता लगा लेना चाहिये,
कि वे श्रेष्ठ महावीर बुद्ध कैसे होंगे ॥"
"जैसे गजराज के पैर को देख कर मनुष्य
पता लगा लेते हैं–यह हाथी बडा भारी होगा ।।
वैसे ही बुद्ध-गजराज के पैर को देख बुद्धिमान् लोग
पता लगा लेते हैं कि कैसे महान् वे होंगे ।।
जंगल के छोटे मोटे जानवरों को डरा देख लोग पता लगा लेते हैं,
कि सिंह की गरज को सुन कर हो ये जंगल के छोटे मोटे जानवर
ड़र गये हैं ।।

वैसे ही दूसरे मत वालों को ड़र कर भागते देख
पता लगा लिया जा सकता है कि धर्मराज (बुद्ध) ने गरजा होगा ॥"
पृथ्वी को पानी से पीली और हरे हरे पत्तों से शोभित देख
पता लगा लिया जाता है कि भारी वृष्टि हुई होगी ।।
वैसे ही संसार के लोगों को आमोद से युक्त देख,
पता लगा लेना चाहिये कि धर्म-मेघ (बुद्ध) बरसा होगा ।।"
पानी लगी हुई और कीचड़ से सनी हुई जमीन को देख
पता लगाया जाता है–अवश्य यहाँ से बडी पानी की धार बही होगी ।।
वैसे ही पापराज पापकङ्क-त्यागी जनों को देख
धर्मनदी, धर्मसमुद्र में बही होगी ।।"
संसार के देवताओं और मनुष्यों को धर्मामृत पाये हुये देख
पता लगा लेना चाहिये कि धर्म की बडी धार बही होगी ।।
उत्तम गन्ध की महक पाकर लोग पता लगा लेते हैं,
जैसी गन्ध बह रही है मालूम होता है फूल के फुलाये होंगे ।
वैसे ही यह शील की गन्ध देवताओं और मनुष्यों में बहती है,
इसी से समझ लेना चाहिये अलौकिक बुद्ध हुये होंगे ।।"

"महाराज ! इसी प्रकार के सैकडों और हजारों कारण तर्क तथा उपमा दिखा कर बुद्ध के बल का पता बताया जा सकता है। महाराज ! जैसे कोई चतुर माली अपने उस्ताद के बताने के अनुसार अपनी अक्ल लगा कर नाना प्रकार के फूलों से माला गूथ गूथ कर बड़ा सुन्दर साज सजा देता है, वैसे ही मानों मैं बुद्ध के मन्दिर में उनके अनन्त सद्गुणों के फूल की माला गूथ रहा हूँ–अपने आचार्यों के बतलाने के अनुसार भी और अपनी बुद्धि लगा कर भी। सो मैं हजारों उपमाओं से बुद्ध के बल को दिखा सकता हूँ। यदि आप सुनना चाहें।"

"भन्ते नागसेन ! शायद दूसरे लोग इस प्रकार के कारण और अनुमान को भी सुन कर बुद्ध के बल का पता न लगा सके, किंतु मुझे तो पूरा पूरा विश्वास हो गया, मैं शान्त हो गया। आपका उत्तर बड़ा ही विचित्र था।"

अनुमान-प्रश्न समाप्त

(ख) धुताँग की उपयोगिता के विषय में

राजा ने भिक्षुओं को घने जंगल में पैठकर धताङ्ग व्रत पालन करते देखा।
फिर उन गृहस्थों को देखा जो अनागामी–फल पर प्रतिष्ठित हो गये थे॥
उन दोनों को देख राजा के मन में बड़ा संशय उत्पन्न हुआ,
यदि गृहस्थ रह कर ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो धुताङ्ग निष्फल ठरहते हैं॥

अच्छा, तो मैं दूसरों के तर्क को खण्डन करने वाले, त्रिपिटक के पण्डित
उन श्रेष्ठ वक्ता से चल कर पूछूँ, वे अवश्य संदेह को दूर कर देंगे॥

तब राजा मिलिन्द जहाँ आयुष्मान नागसेन थे वहाँ गया और उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ उसने आयुष्मान नागसेन से कहा–"भन्ते नागसेन! क्या कोई गृहस्थ है जो अपने घर पर सभी कामों का भोग करते, स्त्री और बाल-बच्चों के साथ रहते, काशी के चन्दन को लगाते, माला, गन्ध और उबटन का प्रयोग करते, रुपये–पैसे के फेर में रहते और मणि-मोती-सोना के आभूषण को शिर में लगाते हुये ही परम शान्तपद निर्वाण का साक्षात् कर लिया हो ?"

"महाराज ! न एक सौ, न दो सो, न-तीन चार पाँच सौ, न एक हजार, न एक लाख, न सौ करोड, न हजार करोड़, न लाख करोड़, ऐसे गृहस्थ हो चुके है जिन्होंने निर्वाण का साक्षात् किया है। महाराज ! दस, बीस, सौ या हजार की गिनती को छोड़ दें-मैं किस तरह आपको समझाऊँ ?"

"हाँ, उसे आप ही समझावें।"

"महाराज! अच्छा तो मैं कहता हूँ। नव अंग वाले बुद्ध-वचन में जो पवित्र सदाचार, सच्चे मार्ग पर आना और धुताङ्ग के अच्छे अच्छे गुण हैं सभी की बातें इसके प्रकरण में आ जाती हैं।

"महाराज! नीचे, ऊपर, बराबर, गड्ढे, जल, थल सभी स्थानों में पानी बरस कर बहते बहते अन्त में समुद्र ही में आ कर गिरता हैं। महाराज! वैसे ही, इस प्रकरण के विस्तार करने में नव अङ्ग वाले बुद्ध-वचन में जो पवित्र सदाचार, सच्चे मार्ग पर आना और धुताङ्ग के अच्छे अच्छे गुण हैं सभी की बातें चली आती हैं। महाराज! मुझे अपनी बुद्धि से भी कुछ बातें दिखानी होंगी। इस प्रकार, यह बात अच्छी तरह समझाई गई, विचित्र, परिपूर्ण और प्रतिष्ठित हो जायगी।

"महाराज! जो कुशल लेखक हैं वे अपनी बुद्धि से उस लेख को अच्छा और पक्का उतार देते हैं। इस प्रकार वह लेख सुन्दर, पूरा और दोष-रहित निकला है। महाराज! वैसे ही, इस प्रकरण में मुझे अपनी बुद्धि से भी कुछ बातें दिखानी होंगी। और तब यह बात अच्छी तरह समझाई गई, विचित्र, परिपूर्ण और प्रतिष्ठित हो जायगी।

"महाराज! श्रावस्ती नगर में भगवान् के पाँच करोड़ आर्य श्रावक उपासक और उपासिकायें रहती थी। उनमें एक लाख सत्तावन हजार अनागामी फल पर प्रतिष्ठित हो चुके थे। वे सभी गृहस्थ ही थे, प्रव्रजित नहीं।

"फिर भी गण्डम्ब वृक्ष के नीचे यमक प्रातिहार्य (ऋद्धि) के दिखाये जाने पर बीस करोड़ (देवता और मनुष्य) प्राणियों को सत्य-ज्ञान हो गया था।

"फिर भी महाराहुलोवाद, महामंगल सूत्र, समचित-परियाय, पराभव सूत्र, पुरा भेद सूत्र, कलह–विवाद सूत्र, चूल व्यूह सूत्र, महाव्यूह सूत्र, तुवरक सूत्र और सारिपुत्र सूत्र के कहे जाने पर अनन्त देवताओं को धर्म-ज्ञान हो गया था।

"फिर भी, राजगृह नगर में भगवान् के तीन लाख पचास हजार उपासक और उपासिकायें आर्य श्रावक थीं।

"फिर भी वहाँ धनपाल नामक हाथी के दमन करने पर नब्बे करोड़ देवता; पथरीले चैत्य पर पारायन सूत्र कहने के बाद चौदह करोड़ देवता धर्म का साक्षात् कर लिये थे। इन्द्रसालगुहा में अस्सी करोड़ देवता; बनारस के ऋषिपत्तन मृगदाव में सर्व प्रथम देशना करने पर अट्ठारह करोड़ ब्रह्म और अनगिनत देवता; फिर तावतिंस भवन में पण्डुकम्बल शिला पर अभिधर्म्म देशना करने के

बाद अस्सी करोड़ देवता; और देव भवन से उतरने के समय सङ्कनगर के फाटक पर 'लोक विवरण प्रातिहार्य' (ऋद्धि से प्रसन्न हो कर तीस करोड़ मनुष्य और देवता को ज्ञान-चक्षु उत्पन्न हो गये थे।

"फिर भी, शाक्यों के कपिलवस्तु नगर के न्यग्रोधाराम में बुद्धवंश देशना करने और महासमय सूत्र देशना करने के बाद अनगिनत देवों को धर्म का ज्ञान लाभ हुआ था।

'फिर भी, सुमन नामक माली से मिल कर, गरह दिन्न से मिल कर आनन्द सेठ से मिल कर, जम्बुका जीवक से मिल कर, मडूण्क देवपुत्र से मिल कर, मट्ठकुण्डलि देवपुत्र से मिल कर, सुलसा नामक वेश्या से मिल कर, सिरोमा नामक वेश्या से मिलकर, जलाहे की लड़की से मिल कर, छोटी सुभद्रा से मिलकर, साकेत ब्राह्मण की अन्येष्ठि क्रिया देखने जो लोग आये थें उनसे मिल कर, सुनापरन्तक से मिल कर, शक्र से मिल कर, तिरोकुड्ड सूत्र के देशना करने पर और रतनसूत्र के देशना करने पर,–चौरासी-हजार प्राणियों को धर्मज्ञान करा दिया था।

"महाराज ! भगवान अपने जीते जी तीन मण्डलों में और सोलह महाजन-पदों में जहाँ-जहाँ गये वहाँ वहाँ अनेकों देवता और मनुष्य को निर्वाण पद तक पहुँचा दिया।

"महाराज ! ये सभी देवता गृहस्थ ही थे, प्रव्रजित नहीं। महाराज ! ये करोड़ और अनगिनत देवता सभी गृहस्थ के कामों को भोगते ही भोगते निर्वाण पा लिये थे।"

"भन्ते नागसेन ! यदि संसार के कामों को भोगने वाले घरवासी गृहस्थ भी शान्त परम निर्वाण का साक्षात् कर लेते हैं तो भिक्षु लोग धुताङ्ग-साधन करने के फेर में क्यों पड़े रहते है ? वैसा होने से धुताङ्ग क्या निरर्थक नहीं ठहरते ?"

"भन्ते ! नागसेन यदि बिना झार फूंक और दवाई के ही रोग दूर हो जाते हों तो उल्टी करा और जुलाब दे कर शरीर को कमजोर बनाने का क्या मतलब ? यदि मुक्का और घुस्सा चला कर ही शत्रु को परास्त कर दिया जा सकता है तो तलवार, भाला, तीर-धनुष, लाठी और गदा से क्या काम ? यदि गाँठ, टेढीमेढ़ी शाखायें, खोढ़र, काँटे और लता के सहारे ही गाछ पर चढ़ जाया जा सकता है तो बड़ी भारी निसेनी खोजते फिरने से क्या काम ? यदि कड़ी जमीन पर पड़ रहने से ही अच्छी नींद आ जाती है तो तोस-कतकिये के खोजने से क्या काम ? यदि किसी खतरेदार और बीहड़ राह को कोई अकेला पार कर जा सकता हो तो सजे-धजे हथियारबन्द किसी बड़े कारवाँ की इन्तजारी में बैठे रहने से क्या काम ? यदि बहती हुई नदी को कोई तैर कर ही पार कर जा सकता हो, तो नाव या पुल की

खोज में घूमने से क्या काम ? यदि कोई अपने पास के ही धन से आराम के साथ अपना भरण-पोषण कर सकता हो तो दूसरे की ताबेदारी में इधर उधर खुशामद करते फिरने से क्या काम ? यदि प्राकृतिक झरने से पानी मिल जाता हो तो तालाब, कुएँ और बावली खुदवाने से क्या काम ?– भन्ते नागसेन ! इसी तरह, यदि संसार के कामभोगी, घरवासी गृहस्थ भी शान्त परम निर्वाण का साक्षात् कर लेते है तो कड़े-कड़े धुताङ्ग के साधन करने से क्या काम ?''

''महाराज ! धुताङ्ग के यथार्थ में अट्ठाइस गुण हैं जिनके कारण वे सभी बुद्धों के द्वारा अच्छे कहे गये है।''

''कौनसे अट्ठाइस गुण ?''

धुतांग पालन करने के २८ गुण

''महाराज ! (१) धुताङ्ग पालन करने की जीविका शुद्ध होती है; (२) धुताङ्ग पालन करने का फल सुखद होता है, (३) धुताङ्ग पालन करने वाले में कोई भी बुराई नहीं रहती, (४) वह किसी दूसरे को कष्ट नहीं देता, (५) वह अभय रहता है, (६) धुताङ्ग पालन करने में किसी को सताया नहीं जाता, (७) धुताङ्ग का साधन धर्म की ओर ही बढ़ता है, (८) धुताङ्ग का पालन करने वाला नीचे नहीं गिर सकता, (९) धुताङ्ग का पालन करने वाला कभी धोखा नहीं देता, (१०) धुताङ्ग अपने पालन करने वाले की रक्षा करता है, (११) धुताङ्ग पालन करके मनुष्य जो चाहे उसी का लाभ कर सकता है, (१२) धुताङ्ग का पालन करने वाला सभी प्राणियों को अपने वश में कर सकता है, (१३) धुताङ्ग पालन करके मनुष्य आत्मसंयम करना सीख सकता है, (१४) धुताङ्ग का जीवन भिक्षु के बिलकुल अनुकूल है, (१५) धुताङ्ग का पालन करने वाला किसी के ऊपर बोझ देकर नहीं रहता है, (१६) धुताङ्ग का पालन करने वाला खुला और स्वच्छन्द रहता है, (१७) धुताङ्ग सांसारिक राग को काट देता है, (१८) द्वेष को दूर करता है, (१९) मोह को मिटा देता है, (२०) धुताङ्ग पालन करने वालों में अभिमान रहने नहीं पाता, (२१) धुताङ्ग पालन करने से बुरे विचार हट जाते है, (२२) शंकायें दूर हो जाती हैं, (२३) अकर्मण्यता नहीं रहने पाती, (२४) असंतोष नहीं रहता, (२५) सहने की शक्ती आती है, (२६) इसके पुण्य अतुल्य है, (२७) इसके पुण्य अनन्त है और (२८) धुताङ्ग सभी दुःखों का अन्त करके निर्वाण तक पहुँचा देता है। महाराज ! यही धुतांग के यथार्थ में अट्ठाईस गुण हैं जिनके कारण वे सभी बुद्धों के द्वारा अच्छे कहे गये हैं।

"महाराज ! जो धुतांग को ठीक से पालन करते हैं वे अठारह गुणों से युक्त हो जाते हैं ।"

धुताङ्ग पालन करने वाले में १८ गुण

"महाराज ! (१) उनका आचार पवित्र और शुद्ध होता है, (२) वे मार्ग को तै कर लेते हैं, (३) उनके शरीर और वचन वश में होते हैं, (४) उनका मन पवित्र रहता है, (५) उनका उत्साह बना रहता है, (६) वे निर्भय होते हैं, (७) उनकी आत्म-दृष्टि दूर हो जाती है, (८) उनमें हिंसा का भाव बिलकुल शान्त हुआ रहता है, (९) उनमें मैत्री-भावना सदा बनी रहती है, (१०) उनका आहार समझ-बुझ कर होता है, (११) वह सभी जीवों से प्रतिष्ठा पाता है, (१२) वह भोजन बड़े अंदाज से करता है, (१३) वह सदा जागरूक रहता है, (१४) वह बिना घर-दुआर का होता है, (१५) जहाँ अच्छा देखता है वहीं बिहार करता है, (१६) पाप से घृणा करता है, (१७) विवेक में आनन्द रहता (१८) बराबर सावधान रहता है। महाराज ! जो धुतांग को ठीक से पालन करते हैं वे इन्हीं अठारह गुणों से युक्त हो जाते हैं।"

"महाराज ! दश प्रकार के लोग धुतांग का पालन करने के योग्य होते हैं।"

"किन दश प्रकार के ?"

धुताङ्ग पालन करने के योग्य १० व्यक्ति

"(१) जो श्रद्धालु हैं, (२) पापकर्म करने में सकुचाते हैं, (३) धैर्यवान् होते हैं, (४) झूठी दिखावट नहीं रखते, (५) अपने उद्देश में लगे रहते हैं, (६) निर्लोभ होते हैं, (७) सीखने को तैयार रहते हैं, (८) दृढ़ संकल्प वाले होते हैं, (९) किसी बात से चिढ़ नहीं जाते, और (१०) जो मैत्री-भाव रखने वाले हैं। महाराज ! यही दश प्रकार के लोग धुतांग पालन करने के योग्य होते है।

"महाराज ! जो कामभोगी घरवासी गृहस्थ परक शान्त निर्वाण-पद पाते हैं उन्होंने अवश्य अपने पहले जन्मों में तेरह प्रकार के धुतांग का पालन किया होगा। वे अपने पहले जन्मों में आचार और मार्ग को शुद्ध करके आज यहाँ गृहस्थ रहते ही रहते परमार्थ निर्वाण-पद का साक्षात् कर लेते हैं।"

धनुर्धर की शिक्षा

"महाराज ! कोई चतुर धनुर्धर पहले अपने शिष्यों को अभ्यास करने के मैदान में सिखाता है-कितने प्रकार के धनुष होते हैं, धनुष कैसे चढ़ाया जाता है, कैसे पकाड़ा जाता है, मुठ्टी कैसे बाँधी जाती है, अंगुलिया कैसे नवाई जाती हैं,

पैर का पतरा कैसा होता है, तीर कैसे चढ़ाया जाता है, तीर चढ़ाकर कैसे खींचा जाता है, उसे कैसे थामना होता है, और कैसे निशाना मारना होता है। पहले घास के बने मनुष्य या पुआल, या मिट्टी, या पटरे के बने लक्ष्य पर ही निशाना लगाना सीखाता है, जब वे शिष्य सीख कर तैयार हो जाते हैं तब उन्हें राजा के सामने हाजिर करता है। राजा खुश हो उसे इनाम में अच्छे घोड़े, रथ, हाथी····धन धान्य, सोना, असरफी, दाई, नौकर, स्त्री और खेत बारी देता है। महाराज! इसी तरह, जो कामभोगी घरवासी गृहस्थ परम शान्त निर्वाण-पद पाते देखे जाते हैं, उन्होंने अवश्य अपने पहले जन्मों में तेरह प्रकार के धुताङ्ग का पालन किया होगा वे अपने पूर्व जन्मों में आचार और मार्ग को शुद्ध कर के आज यहाँ गृहस्थ रहते ही रहते परमार्थ निर्वाण-पद का साक्षात् कर लेते हैं।"

"महाराज! जिन्होंने अपने पूर्व-जन्म में धुताङ्ग का पालन नहीं किया है वे यहाँ केवल एक जन्म में अर्हत् नहीं बन जा सकते। महाराज! सच्ची लगन से, सच्ची राह पर चलने से, वैसे ही गुरु के मिलने से और वैसे ही मित्रों की संगति होने से निर्वाण मिलता है।"

वैद्य की शिक्षा

'महाराज! कोई वैद्य या जर्राह पहले किसी गुरु की खोज कर उसके पास जाता है। फिर उसे वेतन या अपनी सेवायें देकर सारी विद्या सीखता है—छुरी कैसे पकड़ी जाती है, कैसे चीरा जाता है, कैसे निशान लगाई जाती है, कैसे छुरी भोंकी जाती है, चुभे हुये को कैसे खींच लेना चाहिये, घाव को कैसे धोना चाहिये, उसे कैसे सुखाना चाहिये, उस पर कैसे मलहम लगाना चाहिये, रोगी को कैसे उल्टी करानी चाहिये, कैसे जुलाब देना चाहिय, कैसे रसायन खिलाना चाहिये। उसकी शागिर्दी में सभी बातें सीखने के बाद ही वह स्वतंत्र रूप से किसी रोगी का इलाज अपने हाथ में लेता है—महाराज! इसी तरह, जो कामभोगी घरवासी गृहस्थ परमशान्त निर्वाण-पद पाते देखे जाते हैं उन्होंने अवश्य अपने पहले जन्मों में तेरह प्रकार के धुताङ्ग का पालन किया होगा। वे अपने पूर्व-जन्म में आचार और मार्ग को शुद्ध करके आज यहाँ गृहस्थ रहते ही रहते परमार्थ निर्वाण-पद का साक्षात कर लेते हैं।

"महाराज! जो अपने को धुतगुणों से शुद्ध नहीं कर लिया है उन्हें धर्म में प्रवेश नहीं होता है। महाराज! जैसे बिना पानी पटाये बीज नहीं जम सकते वैसे ही बिना धुतगुणों से आत्मशुद्धि किये धर्म का दर्शन नहीं हो सकता महाराज! जैसे बिना पुण्य किये अच्छी गति नहीं होती वैसे ही बिना धुतगुणों से आत्मशुद्धि किये धर्म का दर्शन नहीं हो सकता।"

"महाराज ! धुताङ्ग मुमुक्षुवों के लिये महापृथ्वी के समान आधार है। धुताङ्ग मुमुक्षुवों के लिये पानी के समान क्लेशरूपी मल धोने के काम का है। क्लेश की झाड़ी को जला कर भस्म कर देने वाली आग की तरह है; क्लेशरूपी धूली को उड़ा देने वाली हवा के समान है; क्लेशरूपी रोग को दूर करने वाली दवा के समान है; क्लेशरूपी विष को नाश करने वाले अमृत के समान है; भिक्षु के उपयुक्त गुणों की फसल तैयार करने के लिये खेत के समान है; सभी फल देने वाली मणि के समान है; भवसागर को पार करने के लिये नाव के समान हैं; जरा-मरण से डरे हुये लोगों के लिये बचने की जगह के समान है; क्लेश से पीड़ित लोगों को बचाने वाली माता के समान है; पुण्य कमाने वालों के लिये सभी भिक्षु के गुणों को पैदा करने वाले पिता के समान है; भिक्षु के उपयुक्त गुणों को खोज कर ला देने वाले मित्र के समान है; क्लेश-मलों से लिप्त न होने वाले कमल के समान है; क्लेश की बदबू को दूर करने वाले अतर गुलाब की तरह है; आठ प्रकार की संसार की हवा से न हिलने वाले पर्वत-राज के समान है; बिल्कुल स्वच्छन्द और स्वतंत्र बना देने वाले आकाश के समान है; क्लेशमल को बहा कर ले जाने वाली नदी के समान है; क्लेश के जंगल और आवागमन की मरुभूमि से बाहर निकलने वाले मार्ग को बता देने वाला पथ-प्रदर्शक है; निर्वाण नगर तक पहुँचा देने वाले निर्भय और साथ देने वाले कारवाँ के समान है; संस्कारों के सच्चे स्वभाव को दिखा देने वाले साफ आइने के समान है; क्लेश की तलवार और लाठी के वार रोकने के लिये ढाल के समान है; तीन प्रकार के तापों को ठण्डा करने वाले चाँद के समान है; मोहरूपी अन्धकार को नाश करने वाले सूरज के समान है; श्रामण्य-गुण रूपी रत्नों के लिये महासागर के समान है और क्योंकि वह इतना अनन्त गम्भीर और महान् है।

"महाराज ! इस तरह, विशुद्ध निर्वाण चाहने वालों के लिये धुताङ्ग-व्रत बडा उपकार का होता है; सभी कष्ट और संताप को दूर कर देता है; असंतोष और भय को दूर कर देता है; भव (संसार में बने रहना) को मिटा देता है; मन के कचट दूर कर देता है; सारे मल को हटा देता है; शोक का विनाश करता है; दुःख दूर करता है; राग रहने नहीं देता, द्वेष रहने नहीं देता, मोह रहने नहीं देता; अभिमान को दूर करता है; आत्मदृष्टि के भ्रम को मिटा देता है; सभी पापों को काट देता है। धुतांग यश बढाता है, हित करता है, सुख देता है, आराम देता है, प्रीति पैदा करता हैं, कुशल-मंगल लाता हैं; और निर्दोष, अच्छे फल वाले, सद्‌गुणों की ढ़ेर, अनन्त और अगाध श्रेष्ठ गुणों को देता है।"

"महाराज ! जैसे मनुष्य लोग शरीर-धारण के लिये भोजन करते हैं। चंगा होने के लिये दवा का सेवन करते हैं, उपकार पाने के लिये मित्र का साथ धरते हैं, पार जाने के लिये नाव पर सवार होते हैं, सुगन्धि के लिये माला और अतर को

लगाते हैं, भय से हटने के लिये बचाव की जगह पर जाते हैं, आधार के लिये पृथ्वी पर खड़े होते हैं, हुनर सीखने के लिये उस्ताद करते हैं, नाम लूटने के लिये राजा की सेवा करते हैं, मुंहमाँगा वर पाने के लिये मणिरत्न के पास जाते हैं, वैसे ही अच्छे लोग भिक्षु जीवन को सार्थक बनाने के लिये धुताँग-व्रत का पालन करते हैं।

"महाराज! जैसे जल बीज जमाने के लिये, आग जलाने के लिये, भोजन शरीर में बल लाने के लिये, लता बाँधने के लिये, हथियार काटने के लिये, पानी प्यास बुझाने के लिये, खजाना ढाढस देने के लिये, नाव उस ओर ले जाने के लिये, दवा रोग का इलाज करने के लिये, सवारी आराम से रास्ता तै करने लिये, बचाव की जगह भय से बचाने के लिये, राजा रक्षा करने लिये, ढ़ाल, लाठी, ढेला, तीर, भाला की चोट को रोकने के लिये, गुरु पढ़ाने के लिये, माता पोसने के लिये, आइना मुंह देखने के लिये, गहना-जेवर शोभा के लिये, कपड़ा बदन ढकने के लिये, निसेनी छत पर चढने के लिये, तराजू तोलने के लिये, मन्त्र जप करने के लिये, हथियार दूसरे की धमकी से बचने के लिये, हवा गर्मी को दूर करने के लिये, हुनर रोजी कमाने के लिये खान रत्न पैदा करने के लिये, अलंकार के लिये, अज्ञा पालन करने के लिये और ऐश्वर्य दूसरों को वश में करने के लिये है—वैसे ही धृताँग व्रत श्रामण्यरूपी बीज को जमाने के लिये, क्लेशरूपी मल को जला देने के लिये, ऋद्धि—बल को पाने के लिये, स्मृति और संयम को बाँधने के लिये, भ्रम और शंका काटने के लिये, तृष्णा की प्यास बुझाने के लिये, ज्ञान का साक्षात्कार करने के लिये पक्का विश्वास का स्थान, चार गहरी धार को पार कर जाने लिये, क्लेशरूपी रोग को शान्त करने के लिये, निर्वाणसुख के लिये, जन्म-लेना, बूढा—होना बीमार पड़ जाना, मर जाना, शोक, रोना-पीटना, दुःख, बेचैनी और परेशानी के भय से बचने के लिये, श्रामण्य—गुणों की रक्षा करने के लिये, असंतोष और बुरे विचार को रोकने के लिये, श्रमण-जीवन की सभी बातों को सीखने के लिये, उनका पालन करने के लिये, समथ, बिदर्शना, मार्गफल और निर्वाण को देखने के लिये, सारे संसार में अच्छी सुन्दर शोभा करने के लिये, सभी नरक को ढ़क देने के लिये, श्रामण्य-फल के पहाड़ की चोटी पर चढने के लिये, टेढ़े नीच चित्त को तौलने के लिये, अच्छे धर्मों की चिन्ता में लगे रहने के लिये, क्लेशरूपी शत्रुओं को दूर हटाने के लिये, अविद्या के अंधकार को मिटाने के लिये, तीन प्रकार की आग के संताप को ठंडा करने के लिये, ऊँचे सूक्ष्म और शान्त समापत्ति को लाने के लिये, सभी श्रामण्य-गुणों की रक्षा करने के लिये, योगी-जनों के अलंकार के लिये, निर्दोष निपुण सूक्ष्म शान्ति-पद पाने के लिये, श्रामण्य भाव और आर्यधर्म को वश में करने के लिये है। महाराज! एक एक धुताँग इन सभी गुणों को पा लेने के लिये है। महाराज! इस तरह, धुताँग के गुण अतुल्य हैं, अनन्त हैं, बेजोड़ हैं......भारी, श्रेष्ठ और महान् हैं।"

पापी के धुतांग के बुरे फल

"महाराज ! जो पापेच्छ, अपनी इच्छाओं के आधीन बनावटी दिखावा रखने वाला, लोभी, पेट, संसार की चीजों के पाने के फेर में पड़ा रहने वाला, यश पाने के लिये व्याकुल रहने वाला, नाम मारने के फेर में रहने वाला, नालायक और बेढ़ंगा मनुष्य धुताँग-व्रत ले लेता है वह दुगना दण्ड पाता हैं और अपने जो पहले के अच्छे गुण रहते हैं उन्हें भी गवाँ देता हैं ।—यहीं पर लोग उसकी अप्रतिष्ठा करते हैं, खिल्ली उड़ाते हैं, निन्दा करते हैं, उसे रोक देते हैं, निकाल बाहर करते हैं,......चला देते हैं, भगा देते है, दुरदुरा देते हैं । दूसरे जन्म में भी सौ योजन तक फैले हुये अवीचि नरक की गर्म तपी आग की लपटों में पड़ लाखों और करोड़ों वर्षों तक ऊपर नीचे और टेढे, मेड़े फेन की तरह उठ कर पकता रहता है । जब वहाँ से छूटता है तो एक बड़े प्रेत के ऐसा—ऊपर से देखने में भिक्षु के समान, शरीर और अंगप्रत्यंग से काला और दुबला पतला, शिर फूला हुआ, सूजा हुआ और छेद छेद हो गया-उत्पन्न होकर भूख और प्यास से सदा व्याकुल रहता है । देखने में बह बड़ा कुरूप और डरवना होता है; उसके कान फटे होते हैं, उसकी आँखें मिट-मिटाती रहतो है; उसका सारा शरीर पीब से भर कर पक जाता है; कीड़े पड़ जाते हैं; हवा से धधकती हुई आग के समान उसका पेट जलता रहता है, तो भी उसका मुंह सुई की नोक के बराबर होता है जिससे उसकी प्यास कभी नहीं बुझ सकती । वह किसी बचाव के स्थान पर भाग कर नहीं जा सकता । उसको बचानेवाला कोई भी सहायक नहीं मिलता । करुणा-पूर्वक रोता है और कराहें लेता रहता हैं । इस तरह, वह संसार में रोते-पीटते भटका करता है ।

"महाराज ! यदि कोई निकम्मा, बेकार, बुरा, नालायक और नीच जाति का छोटा आदमी, राजगद्दी पर बैठ जाये तो वह दण्ड ही दण्ड भोगेंगा—उसका हाथ काट लिया जायगा; पैर, हाथ और पैर दोनों, नाक, नाक और कान दोनों, काट लिये जायेंगे; बिलंगथालिक; शङ्खमुण्डिका, राहुमुख, जोतिमालिका, हस्तप्रद्योतिका, एरकवर्तिका, चीरकवासिका, एणव्यक, बलिसमंसिक, कहापणक, खाण्पच्छिक, पलिघ-पलिवत्तिक, पलाल पीठ[1] इत्यादि राजदण्ड दिये जायेंगे; गर्म तेल भी उस पर छिड़का जायगा; कुत्तों से भी नचवा दिया जायगा; सूली पर भी चढ़ा दिया जायगा; तलवार से उसका सिर उड़ा दिया जायगा; और भी तरह तरह के दुःख भोगेगा । इसका क्या कारण है ? इसका कारण यही है कि वह इतना निकम्मा, बेकार, बुरा, नालायक और नीच जाति का छोटा-आदमी हो कर भी इतने बड़े और ऊँचे राज-पद पर चढ़ बैठा था । उसने सीमा का उल्लंघन कर दिया था ।"

"महाराज ! इसी तरह जो पापेच्छ, अपनी इच्छाओं के आधीन,

---

१ देखो पृष्ठ २४१

बनावटी दिखावा रखने वाला, लोभी, पेटू, संसार की चीजों के पाने के फेर में पड़ा रहने वाला, यश पाने के लिये व्याकुल रहने वाला, नाम मारने के फेर में पड़ा रहने वाला, अयोग्य, जो कुछ अच्छा फल पा नहीं सकता, अनुचित व्यवहार वाला, नालायक और बेढ़ंगा मनुष्य धुतांगव्रत ले लेता है। वह दुगना दण्ड पाता है और जो अपने पहले के कुछ अच्छे गुण रहते हैं उन्हें भी गँवा देता है। यहीं पर लोग उसकी अप्रतिष्ठा करते हैं, खिल्ली उड़ाते हैं, निन्दा करते हैं, उसे रोक देते हैं, निकाल बाहर करते हैं. . . .चला देते हैं, भागा देते है, दुरदुरा देते हैं। दूसरे जन्म में भी सौ योजन तक फैले हुये अवीचि नरक की गर्म तपी आग की लपटों में पड़ लाखों और करोड़ों वर्ष तक ऊपर नीचे और टेढ़ेमेढ़े फेन और बुलबुल्ले की तरह उठ उठ कर पकता रहता है। जब वहां से छूटता है तो एक बड़े प्रेत के ऐसा–ऊपर से देखने में भिक्षु के समान, शरीर और अंग प्रत्यंग से काला और दुबला पतला, शिर फूला हुआ, सूजा हुआ और छेद छेद हो गया––उत्पन्न हो कर भूख और प्यास से सदा व्याकुल रहता है। देखने में वह बड़ा कुरूप और डरावना होता है; उसके कान फटे होते हैं, उसकी आँखे मिटमिटाती रहती हैं, उसका सारा शरीर पक कर पीब से भर जाता है; कीड़े पड़ जाते हैं; हवा से धधकती आग के समान उसका पेट जलता रहता है, तो भी उसका मुंह सूई की नोक के बराबर होने के कारण उसकी प्यास कभी नहीं बुझ सकती। वह किसी बचाव के स्थान पर भाग कर नहीं जा सकता। उसका बचाने वाला कोई भी सहायक नहीं मिलता। करुणा-पूर्वक रोता और कराहें लेता रहता है। इस तरह वह संसार में रोते-पीटते भटका करता है।"

योग्य व्यक्ति के धुतांग के अच्छे फल

"महाराज! और, इसके उलटा जो पुरुष योग्य, भला, अच्छा, लायक, अच्छे ढ़ंगों वाला, अल्पेच्छ, संतुष्ट, एकान्त में समय बिताने वाला, सांसारिक भोगों में लिप्त नहीं होने वाला, उत्साह–युक्त, आत्मसंयमी, बदमाशी और ठगी से रहित, जो पेटू नहीं है, लाभ ही के फेर में न पड़ा रहने वाला, नाम के पीछे नहीं दौड़ने वाला, श्रद्धालु, सच्ची लगन से प्रव्रजित होने वाला, जरा–मरण से मुक्त होने की चाह रखने वाला, शासन में दृढ़ बने रहने के संकल्प से धुतांग व्रत का पालन करता है––वह दूगनी पूजा पाने का भागी होता है, देवताओं और मनुष्यों का प्रिय होता है, उनसे सम्मान और प्रतिष्ठा पाता है, नहाये धोये आदमी के लिये मल्लिका फूल के समान होता है, भूखे के लिये स्वादिष्ट भोजन के समान होता है, प्यासे के लिये निर्मल और सुगन्धित शीतल जल के समान होता है, विष से भीगे आदमी के लिये तेज दवा के ऐसा होता है, जल्दी जाने की इच्छा रखने वाले के लिये तेज घोड़े

वाले रथ के समान होता है, धन चाहने वाले के लिये मनमाँगा वर देने वाला मणिरत्न के समान है, अभिषेक पाने वाले के लिये निर्मल स्वेतछत्र के समान होता है, धर्म की इच्छा रखने वाले के लिये अनुत्तर अर्हत्-फल की प्राप्ति के समान है। उसे चारों स्मृतिप्रस्थान को भावनायें सिद्ध हो जाती हैं, चारों सम्यक्-प्रधान, चारों ऋद्धि-पाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग, सभी पूरे हो जाते हैं, समथ और विदर्शना भी प्राप्त हो जाती है, अध्ययन सफल हो जाता है। चार श्रामण्य फल, चार प्रतिसंविदायें, तीन विद्यायें, छः अभिज्ञायें और श्रमण के सभी धर्म उसके अपने हो जाते हैं। विमुक्ति के निर्मल स्वेत छत्र के नीचे मानो उसका अभिषेक हो जाता है।"

"महाराज ! ऊँचे कुल के क्षत्रिय के राज्याभिषेक हो जाने के बाद नगर और ग्राम की प्रजायें, सिपाही और चपरासी सभी उसकी सेवा में लगे रहते हैं। अड़तीस राजाओं की सभा, नट और नर्तक, मंगल कहने वाले, स्वस्ति-पाठ करने वाले, श्रमण, ब्राह्मण और तरह तरह के लोग, उसके पास हाजिर रहते हैं। पृथ्वी में जितने बन्दरगाह, रत्न की खानें, नगर और चुंगी उगाहने की जगहें हैं सभी का वह मालिक हो जाता है। परदेशी और अपराधी लोगों का एकमात्र भाग्यविधाता हो जाता है।"

"महाराज ! इसी तरह, जो पुरुष योग्य, भला, अच्छा, लायक अच्छे ढंगों वाला, अल्पेक्ष, संतुष्ट, एकान्त में समय बिताने वाला, संसार से दूर रहने वाला, उत्साह-युक्त, आत्मसंयमी, बदमाशी और ठगी से रहित, जो पेटू नहीं है, लाभ ही के फेर में न पड़ा रहने वाला, नाम के पीछे नहीं दौड़ने वाला, श्रद्धालु, सच्ची लगन से प्रव्रजित होने वाला, जरा-मरण से मुक्त होने की चाह रखने वाला, शासन में दृढ़ बने रहने के संकल्प से धुतांग-व्रत का पालन करता है वह दुगनी पूजा का भागी होता है, देवताओं और मनुष्यों का प्रिय होता है, उनसे सम्मान और प्रतिष्ठा पाता है, नहाये धोये आदमी के लिये मल्लिका फूल के समान होता है, भूखे के लिये स्वादिष्ट भोजन के समान होता है, प्यासे के लिये निर्मल और सुगन्धित शीतल जल के समान होता है, विष से भीगे आदमी के लिये तेज दवा के ऐसा होता है, जल्दी रास्ता तै करने की इच्छा करने वाले के लिये तेज घोड़े वाले रथ के समान होता है, धन चाहने के लिये मनमाँगा वर वाला मणि-रत्न के समान होता है, अभिषेक पाने वाले के लिये स्वेत छत्र के समान होता है, तथा धर्म की इच्छा रखने वाले के लिये अनुत्तर अर्हत् फल की प्राप्ति के समान होता है। उसे चारों स्मृतिप्रस्थान की भावनायें सिद्ध हो जाती हैं, चारों सम्यक् प्रधान, चारों ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच-बल, सात बोध्यांग, आर्य

अष्टांगिक मार्ग, सभी पूरे हो जाते हैं, समथ और विदर्शना भी प्राप्त हो जाती है, अध्ययन सफल हो जाता है। चार श्रामण्य-फल, चार प्रतिसंविदायें, तीन विद्यायें, छ: अभिज्ञायें और श्रमण के सभी धर्म उसके अपने हो जाते हैं। विमुक्ति के निर्मल, श्वेत छत्र के नीचे मानो उसका अभिषेक हो जाता है।"

"महाराज ! तेरह प्रकार के धुतांग हैं जिनसे शुद्ध हो कर भिक्षु निर्वाणरूपी महासमुद्र में अनेक प्रकार से धर्म के हिलोरे ले कर आनन्द मनाता है; रूप और अरूप आठ प्रकार की समाधियों को लाभ करता है; सभी ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं—सुनने की दिव्य शक्ति हो जाती है, दूसरों के चित्त की बातों को भी जान लेता है, पूर्व-जन्म की बातें याद हो जाती हैं, दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाते हैं और सभी आश्रव क्षीण हो जाते हैं।"

"वे तेरह धुतांग कौनसे हैं ?"

"(१) पाँसुकूलिक, (२) तेचीवरिक, (३) पिण्डपातिक, (४) सपदान चारिक, (५) एकासनिक, (६) पात्रपिण्डिक (७) पच्छाभक्तिक, (८) आरञ्जक, (९) रुक्खमूलिक, (१०) अब्भोकासिक, (११) सोसानिक, (१२) यथासन्थतिक, (१३) नेसज्जिक। महाराज ! इन तेरह-धुतांग-व्रतों का पालन करने से श्रमण के सभी फल मिल जाते हैं। शान्त सुख समापत्ति निर्वाण उसका अपना हो जाता है।"[1]

"महाराज ! जैसे भाड़े कमा कमा कर धनी बन गया कोई बन्दरगाह का जहाजी महासमुद्र में पैठ—बङ्ग, तक्कोल, चीन, सोवीर, सुराष्ट्र, अलसन्द, कोलपटन, या सुवर्णभूमि (बर्मा) कहीं भी चला जाता है, वैसे ही इन तेरह धुतांग व्रतों का पालन कर के श्रमण सभी फल पा लेता है और शान्त सुख समापत्ति निर्वाण उसका अपना हो जाता है।"

"महाराज ! जैसे खेतिहर पहले कंकड़, पत्थर और घासफूस जो खेत के कूड़े हैं, उन्हें दूर करता है, फिर जोत, बो, पटा, रखवाली कर, कटनी और दीनी कर बहुत धान इकट्ठा कर लेता है; और तब जितने निर्धन, दरिद्र और दुर्गत पुरुष हैं सभी उसके आधीन में आ जाते हैं—वैसे ही इन तेरह धुतांग व्रतों का पालन कर श्रमण सभी फल पा लेता है और शान्त सुख समापत्ति निर्वाण उसका अपना हो जाता है।"

"महाराज ! जैसे राजपरिवार का क्षत्रिय राज्याभिषेक पाने के बाद अपराधियों को वैसा भी दण्ड देने में समर्थ होता है, अपनी इच्छा के अनुसार दूसरों पर

१. देखो परिशिष्ट।

हुकूमत करता है और तब सारी पृथ्वी उसके आधीन में हो जाती है—वैसे ही, इन तेरह धुतांग व्रतों का पालन करके श्रमण सभी फल पा लेता है और शान्त सुख समापत्ति निर्वाण उसका अपना हो जाता है।"

स्थविर उपसेन का धुतांग पालन

"महाराज ! क्या आपको मालूम नहीं है कि वंगन्तपुत्र स्थविर उपसेन धुतांग व्रत से पवित्र हो श्रावस्ती के भिक्षुओं के समझौते की परवाह न कर भगवान् (पुरुषों को दमन करने वालों) के पास अपने भिक्षुओं के साथ पहुंच गया था, जो उस समय एकान्तवास कर रहे थे, और प्रणमा कर एक ओर बैठ गया था ? भगवान् उनके भिक्षुओं को वैसा शिक्षित देख बहुत प्रसन्न हुये थे और बड़े आनन्द के साथ इन सुन्दर शब्दों में कहा था—"उपसेन ! तुम्हारे भिक्षु बड़े शिक्षित मालूम पड़ते हैं, तुमने इन्हें कैसे तैयार किया है ?"

"देवातिदेव सर्वज्ञ भगवान के इस प्रश्न को सुन सच्ची बात बताते हुये उसने कहा था, "भन्ते ! जो कोई मेरे पास भिक्षु या मेरा शिष्य बनने आता है उसे मैं पहले कहता हूँ—"सुनो ! मैं जंगल में रहा करता हूँ, पिण्डपात कर के खाता हूँ, गुदड़ी चीवर धारण करता हूँ। यदि तुम भी मेरा साथ देने के लिये तैयार हो तो अलबत्ता शिष्य बन सकते हो।" इस पर यदि वह राजी खुशी से तैयार हो जाता है तो मैं उसे अपना शिष्य बना लेता हूँ। यदि वह इस पर तैयार नहीं होता तो मैं उसे विदा कर देता हूँ। भन्ते ! मैं उन्हे इसी तरह सिखाता हूँ"

"महाराज ! इस तरह इन तेरह धुतांग व्रतों का पालन कर के श्रमण सभी फल पा लेता है, और शान्त सुख समापत्ति निर्वाण उसका अपना हो जाता है।"

"महाराज ! कमल की जात बड़ी शुद्ध और ऊँची है। वह सुन्दर कोमल, लुभा लेने वाला, सुगन्धित, प्रिय, प्रार्थित, प्रशस्त, जाल और कीचड़ से न लगा हुआ, जिसके हर एक दल केसर से भरे रहते हैं, भ्रमरों से घिरा हुआ और शीतल सलिल में उत्पन्न होता है। महाराज ! इसी तरह, इस तेरह धुतांग व्रतों का पालन कर उन्हें साथ लेने से आर्य श्रावक तीस गुणों से युक्त होता है।"

"किन तीस गुणों से ?"

धुतांग पालन करने वाले के ३० गुण

"उसका चित्त कोमल, स्निग्ध और मैत्रीभाव से भरा होता है, उसके क्लेश बिलकुल नष्ट हो गये रहते हैं, उसका अभिमान और दर्प चला जाता है, दृढ़, सबल, प्रतिष्ठित और अचल उसकी श्रद्धा होती है, पूरी प्रीतियुक्त शान्तसुख समापत्ति

का लाभ करता है, शील की उत्तम गन्ध को फैलाने वाला होता है, देवताओं, मनुष्यों का प्रिय और मनाप होता है, क्षीणाश्रव और सन्तों से चाहा जाता हैं, देवताओं और मनुष्यों से प्रार्थना और वन्दना किया जाता है, बुद्धिमान् और पण्डित लोगों से भूरि भूरि प्रशंसा किया जाता है, संसार के या स्वर्ग के भोगों से अलिपत रहता है, थोड़ीसी भी बुराई से डरता है, निर्वाण पाने की इच्छा से लोग जिस मार्ग–फल की खोज करते हैं उसके धन से ही धनी होता है, सभी प्रत्ययों को पाने वाला होता है, बिना किसी घर-दुआर का होता है, जो ध्यान के अभ्यास के लिये सबसे बड़ी बात होती है, क्लेश की जटा से सुलझा रहता है, आवागमन से सर्वथा मुक्त रहता है, उस धर्म में पूरा प्रवेश हो जाता है, मुक्ति की ओर पूरा झुक जाता है, इसी जन्म में अचल और दृढ़ बचाव की जगह पा लेता है, मरने का डर बिलकुल चला जाता है, सभी आश्रव क्षीण हो जाते हैं, शान्त और सुख ध्यान का लाभ कर लेता है और श्रमण के सारे गुणों को पा लेता है, इन तीस गुणों से वह युक्त होता है।''

''महाराज ! स्थविर सारिपुत्र दश हजार लोकधातु में दशबल लोकगुरु (बुद्ध) को छोड़ अग्रपुरुष थे। अनन्त कल्पों से उन्होने बहुत पुण्य इकट्ठा कर लिया था। ऊँचे ब्राह्मण–कुल में उनका जन्म हुआ था। अपने बड़े धन और ऐश्वर्य को लात मार कर बुद्ध शासन में प्रव्रज्या ग्रहण की थी। प्रव्रजित हो उन्हीं तेरह धुतांग व्रतों का पालन कर के आत्मसंयम किया था, जिससे आज वे इतने बड़े और भगवान् बुद्ध के धर्म के चक्रप्रवर्तक माने जाते हैं। अङगुत्तर निकाय में देवातिदेव भगवान ने कहा भी है, ''भिक्षुओ ! सारिपुत्र को छोड़ मैं किसी दूसरे को ऐसा नहीं पाता हूं जो मेरे द्वारा चलाये गये धर्मचक्र को फिर भी चलावे। भिक्षुओं ! सारिपुत्र ही मेरे प्रवितित धर्मचक्र को ठीक से चला सकता है।''

''ठीक है भन्ते नागसेन ! नव अंगों वाले जो बुद्ध के वचन हैं, जो लोकोत्तर क्रिया है, संसार में अच्छी से अच्छी वस्तु पाने के योग्य हैं, सभी धुतांगव्रत पालन करने से प्राप्त हो सकते हैं।''

मेण्डक प्रश्न समाप्त

छठा परिच्छेद

उपमा-कथा-प्रश्न

पहला वर्ग

"भन्ते नागसेन ! किन गुणों को पाकर भिक्षु अर्हत्-पद का साक्षात्कार करता है?"

"महाराज ! अर्हत्द पाने के लिये भिक्षु में निम्न १०४ गुण[1] होने चाहिये, वे ऐसे-

१-गदहे का एक गुण
२-मुर्गी के पाँच गुण
३-गिलहरी का एक गुण
४-मादा चीता का एक गुण
५-नर चीते के दो गुण
६-कछुये के पाँच गुण
७-बाँस का एक गुण
८-धनुष का एक गुण
९-कौवे के दो गुण
१०-वानर के दो गुण
११-लौके का एक गुण
१२-कमल के तीन गुण
१३-बीज के दो गुण
१४-शाल वृक्ष का एक गुण
१५-नाव के तीन गुण
१६-लंगर के दो गुण
१७-पतवार का एक गुण
१८-कर्णधार के तीन गुण
१९-खेवैया का एक गुण
२०-समुद्र के पाँच गुण
२१-पृथ्वी के पाँच गुण
२२-पानी के पाँच गुण
२३-आग के पाँच गुण
२४-हवा के पाँच गुण
२५-पहाड़ के पाँच गुण
२६-आकाश के पाँच गुण
२७-चाँद के पाँच गुण
२८-सूरज के आठ गुण
२९-इन्द्र के तीन गुण
३०-चक्रवर्ती राजा के चार गुण
३१-दीमक का एक गुण
३२-बिल्ली के दो गुण
३३-चूहे का एक गुण
३४-बिच्छू का एक गुण
३५-नेवले का एक गुण
३६-बूढ़े सियार के दो गुण
३७-हरिण के तीन गुण
३८-बैल के चार गुण
३९-सूअर के दो गुण
४०-हाथी के पाँच गुण

---

१. इनको मातृका कहते हैं।

४१–सिंह के सात गुण
४२–चकवा के तीन गुण
४३–पेणाहिका पक्षी के दो गुण
४४–गृह-कपोत का एक गुण
४५–उल्लू के दो गुण
४६–सारस पक्षी का एक गुण
४७–बादुर के दो गुण
४८–जोंक का एक गुण
४९–साँप के तीन गुण
५०–अजगर का एक गुण
५१–मकड़े का एक गुण
५२–दुध पीवे बच्चे का एक गुण
५३–स्थल-कछुये का एक गुण
५४–जंगल के पाँच गुण
५५–वृक्ष के तीन गुण
५६–बरसने वाले बादल के पाँच गुण
५७–मणि के तीन गुण
५८–शिकारी के चार गुण
५९–मछुये के दो गुण
६०–बढ़ई के दो गुण
६१–पानी के घड़े का एक गुण
६२–लोहे के दो गुण
६३–छाते के तीन गुण
६४–धान के खेत के तीन गुण
६५–दवाई के दो गुण
६६–भोजन के तीन गुण
६७–तीरन्दाज के चार गुण
६८–राजा के चार गुण
६९–द्वारपाल के दो गुण
७०–चक्की का एक गुण
७१–दीपक के दो गुण
७२–मोर के दो गुण
७३–घोड़े के दो गुण
७४–मतवाले के दो गुण
७५–खम्भे के दो गुण
७६–तराजू का एक गुण
७७–तलवार के दो गुण
७८–मछली के दो गुण
७९–ऋण लेने वाले का एक गुण
८०–रोगी के दो गुण
८१–मुर्दे के दो गुण
८२–नदी के दो गुण
८३–भैंसे का एक गुण
८४–मार्ग के दो गुण
८५–कर उगाहने वाले का एक गुण
८६–चोर के तीन गुण
८७–बाजी पक्षी का एक गुण
८८–कुत्ते का एक गुण
८९–वैद्य के तीन गुण
९०–गर्भिणी स्त्री के दो गुण
९१–चमरी गाय का एक गुण
९२–कुकी पक्षी के दो गुण
९३–मादे कबूतर के तीन गुण
९४–काने के दो गुण
९५–गृहस्थ के तीन गुण
९६–मादे सियार का एक गूण
९७–कलछुल का एक गुण
९८–महाजन के तीन गुण
९९–परीक्षक का एक गुण
१००–कोचवान के दो गुण
१०१–गाँव के मुखिये के दो गुण
१०२–दर्जी का एक गुण
१०३–नाविक का एक गुण
१०४–भौंरे के दो गुण

(मातृका समाप्त)

१-गदहे का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! जो आप कहते हैं कि रेंकने वाले गदहे का एक गुण होना चाहिये वह कौनसा गुण है ?"

"१-महाराज ! जैसे गदहा जहाँ कहीं-चाहे कूड़े करकट पर, या चौक पर, या चौराहे पर, या गाँव के दरवाजे पर, या भूसे की ढेंर पर-लेटता है, वहाँ बेखबर सो नहीं जाता, वैसे ही योग साधने वाले योगी को कहीं भी-चाहे चटाई पर, या पत्ते की चटाई पर, या काठ की चौकी पर, या धर्ती पर,-पड़ कर बेखबर सो नहीं जाना चाहिये। महाराज ! गदहा का यह एक गुण उस भिक्षु में होना चाहिये।"

"महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी हैं-"भिक्षुओं ! मेरे श्रावक लकड़ी को सिरहाने रख तकिये का काम चला लेते हैं। वे अप्रमत्त और संयमशील हो अपने उत्साह में लगे रहते हैं।"

"महाराज ! धर्म सेनापति सारिपुत्र ने भी कहा है-

"आसन मारकर बैठे भिक्षु के ऊपर पानी बरस कर घुटने तक भी
क्यों न लग जाय !
उससे ध्यान में लीन हो गये भिक्षु को क्या परवाह[1]"

२-मुर्गे के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि मुर्गे के पाँच गुण होने चाहिये वे पाँच गुण कौनसे है ?"

"१-महाराज ! मुर्गा अपने ठीक समय पर सोता है। वैसे ही योग साधन करने वाले भिक्षु को ठीक समय पर चैत्य के चारों ओर झाड़ू देना चाहिये; ठीक समय पर जल और भोजन रख देना चाहिये; ठीक समय पर अपने शरीर-कृत्य करने चाहिये; ठीक समय पर नहा कर चैत्य की वन्दना करनी चाहिये; और ठीक समय पर वृद्धि भिक्षुओं से मिलजुल कर अपनी एकान्त कोठरी में ध्यान करने के लिये बैठ जाना चाहिये। मुर्गे का पहला गुण होना चाहिये।"

"२-महाराज ! मुर्गा अपने ठीक समय पर उठ जाता है। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को भी ठीक समय पर उठ जाना चाहिये; ठीक समय पर चैत्य के चारों ओर झाड़ू देना चाहिये; ठीक समय पर जल और भोजन रख देना चाहिये; ठीक समय पर शरीर के कृत्य करने चाहिये; ठीक समय पर चैत्य की वन्दना करने के लिये जाना चाहिये; और फिर भी अपनी एकान्त कोठरी में ध्यान करने के लिये बैठ जाना चाहिये। मुर्गे का यह दूसरा गुण होना चाहिये।"

---

[1]थेर गाथा ६८५

"३-महाराज ! मूर्गा जमीन को पैरों से खुरेद खुरेद कर दाना चुगता है। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को भी ख्याल कर और देखभाल कर कुछ खाना चाहिये- मैं इस भोजन को ग्रहण करता हूँ न मजा लेने के लियें, न अपने शरीर को सुन्दर बनाने के लिये किंतु केवल अपने शरीर को बनाये रखने के लिये, अपनी जिन्दगी बसर करने के लिये, पेट की आग को बुझाने के लिये और ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने के लिये। इस प्रकार मैं अपनी पुरानी वेदनाओं को दूर करता हुँ और नई पैदा होने का मौका नहीं देता हूँ। मेरी जिन्दगी निबह जायगी—निर्दोष और आराम से[1] ।--महाराज ! मुर्गे का यह तीसरा गुण होना चाहिये। देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है:--

"निर्जन जंगल में अपने पुत्र के माँस के ऐसा,
या गाड़ी के धुरे में लगी हुई चर्बी के ऐसा मान।
जीवन बनाये रखने के लिये योगी आहार ग्रहण करते हैं,
पेट की आग से पीड़ित होकर ।।"

"४--महाराज ! मुर्गे को आँख रहते भी रात के समय अंधा हो जाता है। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को अंधा नहीं होते अंधा बनकर रहना चाहिये-- जंगल में भी, गाँव में भी, भिक्षाटन करते समय भी मन को खींचने वाले रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श के प्रति अंधा, बहरा और गूँगा हो कर रहना नहीं चाहिये। किसी में मन लगाना नहीं चाहिये, किसी में स्वाद लेना नहीं चाहिये। महाराज ! महाकात्यायन स्थविर ने कहा भी है:--

"सांसारिक विषयों के सामने आने पर,
आँख रहते अंधा, कान रहते बहरा
जीभ रहते गूंगा और बलवान् रहते दुर्बल बन जाना चाहिये।
मानो जैसे कोई सोया हुआ या मरा हुआ हो[2] ।।"

"५-महाराज ! ढेला, छड़ी, लाठी या मुग्दर से खदेड़ दिये जाने पर भी मुर्गे अपने घर में जा कर नहीं घुस जाते। वैसे ही, योग साकन करने वाले भिक्षु को चीवर सीते समय, विहार मरम्मत कराते समय, अपने दूसरे व्रतों को पूरा करते समय, या उपदेश सुनते समय—सभी भी मानसिक तत्परता को नतीं छोड़ना चाहिये। महाराज ! योगी का का अपना घर तो मानसिक तत्परता है। यह मुर्गे का पाँचवां गुण होना चाहिये। महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है, "भिक्षुओं ! भिक्षुओं की अपनी बपौती जमीन यही चार स्मृतिप्रस्थान हैं।" महाराज ! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने भी कहा है—

---

१ प्रत्यवेक्षण साथा।
२ थेर गाथा ५०१

"हाथी सोता हुआ भी अपनी सूंड को दबने नहीं देता,
अपने अनुकूल भक्ष्य और अभक्ष्य का झट पता लगा लेता है ।।
उसी तरह, बुद्ध-पुत्रों को सदा सावधान रह,
बुद्ध के उपदेश को नहीं दबने देना चाहिये
जो मनन करने के लिये बड़ा उत्तम है ।।"

३. गिलहरी का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि गिलहरी का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है ?"

"१—महाराज ! किसी शत्रु के आने पर गिलहरी अपनी पूंछ को पटक पटक कर फुला लेता है और उसी से उसे भगा देता है । वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को क्लेशरूपी शत्रु के निकट आने पर स्मृतिप्रस्थान की लाठी पटक पटक कर उसे भगा देना चाहिये । महाराज ! गिलहरी का यही एक गुण होना चाहिये । महाराज ! स्थविर चुल्लपन्थक ने कहा भी है :—

"जब श्रमण के गुणों को नष्ट करने वाले
क्लेश शत्रु चढ़ाई कर दें ।
तो स्मृतिप्रस्थान की लाठी से उन्हें
मार मार कर भगा देना चाहिये ।।"

४. मादे चीते का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि मादे चीते का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण कौनसा है ?"

"१—महाराज ! मादा चीता एक ही बार गर्भ धारण करती है; दूसरी बार नर से पास नहीं जाती । वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को फिर भी जन्म लेना, गर्भ में आना, मर जाना, नष्ट होना, बूढ़ा होना और संसार को बुरी से बुरी दुर्गतियों के भय देख आवागमन से मुक्त हो जाने का संकल्प कर लेना चाहिये । महाराज ! सुतनिपात धनियगोपाल सूत्र में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है—

"साँड़ के समान रस्सी को तोड़,
हाथी के समान पूतिलता को नोच नाच,
मैं फिर भी गर्भ में नहीं आ सकता
मेघ ! यदि चाहो तो खूब बरसो ।।[1]

---

१. सुत्तनिपात १. २. १२

५. नर चीते के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि नर चीते के दो गुण होने चाहियें वे दो गुने कौनसे हैं ?"

"१-महाराज ! चीता जंगल की घासपात में, या घनी झाड़ो में, या पहाड़ में छिप जानवरों पर घात लगा कर उन्हें पकड़ लेता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को एकान्त में आसन लगा कर बैठना चाहिये-जंगल में वृक्ष के नीचे, पहाड़ पर, खोह में, कन्दरे में, श्मशान में, निर्जन वन में, खुली जगह में, पुआल की ढ़ेर के ऊपर, शान्त जगह में, जहाँ हल्लागुल्ला न हो, जहाँ तेज हवा न चलती हो, जहाँ मनुष्य आते जाते न हों और जहाँ आराम से समाधि लग जाती हो। महाराज ! योग साधने वाला योगी एकान्त स्थान में रह कर ही शीघ्रता से छः अभिज्ञाओं को वश में कर लेता है। महाराज ! चीते का यह पहला गुण होना चाहिये। महाराज ! धर्म संग्राहक स्थविरों ने कहा भी है-

"जैसे चीता छिप कर जानवरों को धर लेता है
वैसे ही योग साधने वाले ज्ञानी बुद्ध के पुत्र
जंगल में रहकर उतम फलों को प्राप्त करते हैं ॥"

"२-महाराज ! फिर भी, यदि चीते का शिकार बाईं ओर गिर जाय तो वह उसे नहीं खाता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बाँस क देने, या पत्ते के देने, या फूल के देने, या फल के देने, या स्नान करने देने, या मिट्टी के देने, या चूने के देने, या दतवन देने, या मुंह धोने के लिये पानी देने, या खुशामद करने के कारण या झूठ सच कह, या कुछ तावेदारी बजा, या दूत का काम कर, या वैद्य के काम कर, या लगाव बझाव कर, या अदल बदल कर, या कुछ दे ले कर, या झार फूँक कर, या ग्रहों का फल बता, या अंगों के लक्षण बता, या और किसी बुद्ध के द्वारा निन्दित मिथ्या जीविका से कमा कर भोजन नहीं करना चाहिये-जैसे बाईं ओर गिरे हुये शिकार को चीता नहीं खाता। महाराज ! चीते का यह दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है-

"यदि मुँह से माँग कर कुछ मीठी खीर खा लूँ,
तो उससे मेरी जीविका निन्दित समझी जायगी ॥
यदि मेरी अँतड़ियाँ भूख से निकल कर बाहर भी चली आवें,
तो भी मैं अपनी जीविका को नहीं तोड़ सकता,
प्राण भले ही निकल जायँ।"

६. कछुये के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि कछुये के पाँच गुण होने चाहिये वे पाँच गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! कछुआ पानी का जीव है, पानी ही में रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को सभी प्राणी और मनुष्यों की भलाई चाहते हुये वैर-भाव से रहित हो अनन्त और व्याप्त मैत्रीभाव से सारे संसार को पूरा कर विहार करना जाहिये। महाराज ! कछुये का यह पहला गुण है जो होना चाहिये।"

"२–कछुआ अपना सिर निकाले पानी में तैरता रहता है। यदि कोई उसकी ओर देखता है तो वह झट गहरे पानी में डुबकी लगा कर गायब हो जाता है–मुझे वे फिर भी देखने न पावें। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को क्लेशों के पास आने पर झट अपने ध्यान के तालाब में गहरा गोता लेना चाचिये–मुझे ये क्लेश फिर भी देखने न पावें। महाराज ! कछुये का यह दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३–महाराज ! फिर भी, कछुआ कभी कभी पानी से बाहर निकल कर अपनी देह सुखाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बैठे, खड़े, सोते या टहलते ध्यान को तोड़ अपने मन के क्लेशों को दबाने के उत्साह में सुखाना चाहिये। महाराज ! कछुये का यह तीसरा गुण होना चाहिये।"

"४–महाराज ! फिर भी कछुआ पृथ्वी को खन कर एकान्त में घर बनाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षू को लाभ, सत्कार तथा प्रशंसा से दूर हट शून्य एकान्त जंगल, पर्वत, कन्दरा, खोह निःशब्द निर्जन स्थान में वास करना चाहिये। महाराज ! कछुये का यह चौथा गुण होना चाहिये। महाराज ! वंगन्तपुत्र स्थविर उपसेन ने कहा भी है :–

"बनैले जानवरों के रहने वाले एकान्त निःशब्द
स्थान में भिक्षु समाधि लगाने के लिये रहे॥'[1]

"५–महाराज ! फिर भी, कछुआ बाहर चलते रहने पर जब किसी को देख लेता है या कोई खटका पाता है तो अपने सारे अंगों को अपने भीतर समेट कर अपनी रक्षा करने के लिये चुपचाप पड जाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले योगी को सभी ओर से रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श के प्रलोभन आने पर अपने छः इन्द्रियों के द्वार पर संयम का परदा डाल देना चाहियें और अपने श्रमण-धर्म की रक्षा करने के लिये मन को ध्यान में लगा सावधान हो जाना चाहिये। महाराज !

---

१. थेर गाथा ५७७।

कछुयें का यह पाँचवाँ गुण होना चाहिये। महाराज ! संयुक्त निकाय के कूर्मोपम सूत्र में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है:–

"जैसे कछुआ अपने अंगों को अपनी खोपड़ी में छिपा लेता है,
वैसे ही भिक्षु को भी अपने मन के वितर्कों को दबा देना चाहिये।
बिना किसी दूसरे पर बोझ हुये,
किसी को कष्ट न देते हुये
बिना किसी को कड़े शब्द कहे
अपने इस संसार से मुक्त हो जाना चाहिये ॥"

७. बाँस का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि बाँस का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है ?"

"१–महाराज ! हवा जिस ओर बहती है उसी ओर बाँस झुक जाता है, किसी दूसरी ओर नहीं जाता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को नव अंगों वाले बुद्ध के उपदेश के अनुसार ही वर्तना चाहिये प्रतिकूल नहीं। श्रमण के यही धर्म हैं। महाराज ! बाँस का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! स्थविर राहुल ने कहा भी है:–

"बुद्ध के नव अंगों वाले उपदेश के अनुसार सदा रह
निर्दोष कार्यों को करते हुयें,
सारे अपाय को मैं लाँघ गया ॥"

८. धनुष का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि धनुष का एक गुण होना चाहिये। वह एक गुण क्या है ?"

"१–महाराज ! अच्छी तरह नाप जोख कर छीला हुआ धनुष खींचने पर दोनों छोर से नव जाता है, डण्टे की तरह टाँट नहीं हो जाता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को स्थविर, नये, बिचली उमर के और बराबर उमर के भिक्षुओं के प्रति नम्र होकर रहना चाहिये, कड़ा होकर नहीं। महाराज ! धनुष का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! विधुरपुण्णक जातक में देवातिदेव भगवान् नें कहा भी हैं:–

"धीर पुरुष धनुष के ऐसा झुक जाय
बाँस के ऐसा मुलायमियत से नव जाय,
किसी के विरुद्ध खड़ा न हो
वही सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है ॥"

९. कौवे के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि कौवे के दो गुण होने चाहियें वे दो गुण कौनसे है ?"

"१–महाराज ! कौआ सदा चकित और सावधान रहता है। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को अपनी इन्द्रियों को वश में किये हुये, बड़ा संयत हो, सदा शंकित, चकित और सावधान रहना चाहिये। कभी गफलत नहीं करना चाहिये। महाराज ! कौवे का यह पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर भी, कुछ भोजन पाने पर कौआ अपनी जात बिरादरी को बुला कर ही खाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने सदाचारी गुरुभाइयों में बिना किसी भेदभाव के धर्म से पाये हुये भोजन को–यहाँ तक कि पात्र में लगे हुये को भी–बाँट कर खाना चाहिये। महाराज ! कौवे का यह दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा है:–

"तपस्वी के पाने योग्य जिस भोजन को
लोग मुझे भेंट करते है,
मैं उसे आपस में बाँट कर ही
अपने ग्रहण करता हूँ।"

१०. वानर के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि वानर के दो गुण होने चाहियें। वे दो गुण कौनसे है ?"

"१–महाराज ! एकान्त स्थान में शाखाओं से घने किसी भारी गाछ पर ही वानर वास करता है जहाँ किसी प्रकार का डर भय न हो। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बहुत देखभाल कर ऐसा गुरु करना चाहियें जो लज्जावान्, कोमल स्वभाव का, शीलवान्, पुण्यात्मा, पण्डित, धर्म का जानने वाला, प्रिय, गम्भीर, आदरणीय, वक्ता, किसी बात को समझाने में पटु, अच्छे उपदेश देने वाला, अच्छी सीख देने वाला सच्ची राह दिखाने वाला तथा धर्मोपदेश करके भावों को जगा के एक लगन पैदा कर सके। महाराज ! वानर का यह पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर भी, वानर वृक्षों पर ही चलता हैं, रहता है और बैठता हैं। यदि नींद आती है तो वहीं रात भी बिता देता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को जंगल ही में रहना चाहिये। जंगल ही में घूमना फिरना, रहना बैठना

और सोना चाहिये। वहीं[1] स्मृतिप्रस्थान का अभ्यास करना चाहिये। महाराज ! धर्म-सेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है:-

"ठहलते हुए भो, खड़े हो हुये भी
बैठते हुये भी और सोते हुये भी।
भिक्षु सुन्दर जंगल में ही रहे
बुद्धों ने इसी की प्रशंसा की है ॥"

पहला वर्ग समाप्त

------

११. लौके का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि लौके का एक गुण होना चाहिये वह गुण क्या है ?"

"१-महाराज ! लौके की लता घास पर, या लकड़ी पर, या किसी दूसरी लता पर अपनी फुनगियों की फेंक कर फैल जाती है। वैसे ही, योग साधने वाले भिक्षु को ध्यान का आलम्बन कर अर्हत्-पद पर पहुँच कर फैल जाना चाहिये। महाराज ! लौके का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! धर्मसेनापति सारिपुत्र स्थविर ने कहा भी है :-

"जैसे लौके की लता घास, लकड़ी या किसी दूसरी लता पर, चढ फुनगियों को बढ़ा बढ़ा कर फैल जाती है। वैसे ही, अर्हत्-पद इच्छा रखने वाले बुद्ध-पुत्र को ध्यान का आलम्बन कर अशैक्ष्य फल पर पहुँच जाना चाहिये ॥"

१२. कमल के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि कमल के तीन गुण होने चाहिये वे तीन गुण कौनसे है ?"

"१-महाराज ! कमल पानी में पैदा होता है और पानी में बढ़ता है, तो भी वह पानी से लिप्त नहीं होता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को किसी कुल

---

१. अशैक्ष्य-जिस अवस्था में कुछ सीखने के लिये बाकी नहीं रह जाता है। अर्थात् 'अर्हत् की अवस्था'।

से, गण से, लाभ से, यश से, सत्कार से, सम्मान से, या और भी किसी उपभोग के पदार्थ से लिप्त नहीं होना चाहिये। महाराज! कमल का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज! फिर भी, कमल पानी से ऊपर उठ कर आकाश में खड़ा रहता है। वैसे ही, योग साधने वाले भिक्षु को संसार छोड़ लोकोत्तर-धर्म में खड़ा रहना चाहिये। महाराज! कमल का यह दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३–महाराज! फिर भी, थोड़ी हवा चलने पर ही कमल का नाल हिलने लगता है। वैसे ही, योग साधने वाले भिक्षु को थोड़ेसे क्लेश से भी हट जाना चाहिये-उसमें बड़ा भय देखना चाहिये। महाराज! कमल का यह तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने कहा है–

"अणुमात्र दोष में भी भय देखने वाला बन शिक्षापदों को सीखता है।"[1]

१३–बीज के दो गुण

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते है कि बीज के दो गुण होने चाहिये, वे दो गुण कौनसे है?"

"१–महाराज! केवल थोड़े से बीज अच्छे खेत में बोये जाने और पानी बरसने पर बहुत फल देते है। वैसे ही, योग साधने वाले भिक्षु को भली-भाँति शील पालन करने से श्रमण के सभी फल मिल जाते है। इसलिये, उन्हें उचित रीति से शील का पालन करना चाहिये। महाराज! बीज का यह पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज! फिर भी, अच्छी तरह, शुद्ध किये गये खेत में बीज रोपे जाने से शीघ्र ही जम जाता है। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु का एकान्त में शुद्ध और संयत किया हुआ चित्त स्मृतिप्रस्थान के उत्तम खेत में रोपे जाने से शीघ्र ही जम जाता है। महाराज! बीज का यह दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! स्थविर अनुरुद्ध ने कहा है:–

"जैसे परिशुद्ध खेत में बीज रोपे जाने से
खुब फलता है और कृषक को संतुष्ट कर देता हैं।
वैसे ही एकान्त में शुद्ध किया गया योगी का चित्त।
स्मृति प्रस्थान के खेत में शीघ्र ही लग जाता हैं॥"

---

१ देखो मज्झिम निकाय ४१-३३; दीर्घनिकाय ३-४२।

१४—शाल-वृक्ष का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते कि शाल-वृक्ष का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है ?"

"महाराज ! शाल-वृक्ष पृथ्वी के नीचे सौ हाथ या उससे कुछ अधिक भी बढ़ता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को चारों श्रामण्य-फल, चार प्रतिसंविदायें, छः अभिज्ञायें और श्रमण के सभी धर्म-शून्यागर (एकान्त) ही में पूरे करने चाहिये। महाराज ! शाल-वृक्ष का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! स्थविर राहुल ने कहा भी हैः—

"शालकल्याणिका नामक पृथ्वी पर पैदा होने वाला वृक्ष
पृथ्वी के भीतर ही भीतर सौ हाथ बढ जाता है।
वह वृक्ष बढ़ते बढ़ते समय पा कर
एक दिन सौ हाथ बड़ा हो जाता है।
हे बुद्ध ! उसी शाल-वृक्ष के समान
शून्यागार में रह कर मैं धर्म में बढ़ गया ॥"

१५—नाव के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि नाव के तीन गुण होने चाहिये। वे तीन गुण कौनसे है ?"

"१—महाराज ! अनेक प्रकार की लकड़ियों को जोड़ कर नाव तैयार की जाती है जो बहुत लोगों को पार घाट लगा देती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को आचार, शील, व्रत, नियम इत्यादि अनेक धर्मों को मिला यह भवसागर पार कर जाना चाहिये। महाराज ! नाव का यह पहला गुण होना चाहिये।"

"२—महाराज ! फिर भी, नाव गरजते हुये तरङ्गों और बड़े बड़े भंवर के वेग को सहती है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को अनेक प्रकार के क्लेश, लाभ, सत्कार, यश, प्रसंशा, पूजा, वन्दना, दूसरे कुलों की निन्दा या प्रशंसा, सुख, दुःख, सम्मान, अपमान और भी अनेक प्रकार के दोषों की तरङ्गों के वेग को सह लेना चाहिये। महाराज ! नाव का यह दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३—महाराज ! फिर भी, नाव अथाह समुद्र में तैरती है जो अनन्त, अपार, गम्भीर, गहरा, जोरों से गरजता हुआ तथा तिमि तिमिङ्गिल, घड़ियाल और बड़ी बड़ी मछलियों से भरा है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को चार आर्य सत्यों में—जो तिबरा देने से बारह आकार के हो जाते हैं—मन लगाना चाहिये। महाराज !

नाव का यह तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! संयुक्त निकाय के 'सत्य-सूत्र' में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी हैं–

"भिक्षुओं! वितर्क करते हुये तुम्हें यही वितर्क करना चाहिये कि यह दुःख है, यह दुःख का कारण है, यह दुःख का निरोध है, और यह दुःख के निरोध करने का मार्ग है॥"[1]

१६–लङ्गर के दो गुण

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते है कि लंगर के दो गुण होने चाहिये। वे दो गुण कौनसे हैं?"

"१–महाराज! महासमुद्र की चञ्चल तरङ्गों के नीचे लंगर बैठ जाता है, नाव को खड़ी कर देता है, और इधर उधर जाने नहीं देता। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को राग, द्वेष, मोह के बड़ी बड़ी तरङ्गों में अपने चित्त का लङ्गर डाल अपने को स्थिर कर विचलित होने नहीं देना चाहिये। महाराज! लङ्गर का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज! फिर भी, लङ्गर उपलाता नहीं है किंतु सौ हाथ गहरे पानी में भी डूब कर बैठ जाता है और नाव को वहीं पर लगा देता है। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को लाभ, सत्कार, यश, प्रतिष्ठा, पूजा, वन्दना, आदर यहाँ तक कि स्वर्ग मिल जाने से भी उपला जाना नहीं चाहिये। महाराज! लङ्गर का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्म सेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है:–

"जैसे समुद्र में लङ्गर
उपलाता नहीं, किंतु बैठ जाता हैं,
वैसे ही, लाभ सत्कार से मत उपला जाओ
अपने को, गम्भीर और स्थिर रक्खो॥"

१७–पतवार का एक गुण

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते है कि पतवार का गुण होना चाहिये वह गुण क्या है?"

"१–महाराज! पतवार रस्सी, चमडे का बन्धन और लराक को धारण करता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को सदा सचेत और सावधान होना

---

१ संयुक्त ५५

चाहिये—बाहर जाते, लौटते, देखते भालते, समेटते पसारते, संघाटि पात्र और चीवर को धारण करते; खाते, पीते, चबाते चखते, पखाना पेशाब करते, जाते, खड़ा रहते, बैठते सोते, जागते, कहते, या चुप रहते। कभी गफलत नहीं करना चाहिये। महाराज ! पतवार का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! देवातिदेव भगवान ने कहा भी हैं :—"

"भिक्षुओं ! भिक्षु सचेत और सावधान हो कर ही विहार करे। यही मेरा उपदेश हैं।"[1]

१८. कर्णधार के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि कर्णधार के तीन गुण होने चाहिये। वे तीन गुण कौनसे हैं ?"

"१—महाराज ! कर्णधार रात दिन, हमेशा, लगातार अप्रमत्त हो तत्परता से नाव को रास्ते पर ले जाता है। वैसे ही, योग साधने वाले भिक्षु को रात दिन, हमेशा लगातार अप्रमत्त हो तत्परता से अपने चित्त को रास्ते पर ले चलना चाहिये। महाराज ! कर्णधार का यही पहला गुण होना चाहिये। महाराज ! धम्मपद में देवातिदेव भगवान ने कहा भी है :—"

"सदा अप्रमत्त रहो, अपने चित्त को वश में करो।
अपने को पाप से निकाल लो ॥
कीचड़ में पड़े बलवान् हाथी के जैसा ॥"[2]

"२—महाराज ! फिर भी, कर्णधार को यह बात मालूम रहती है कि कहाँ खतरा है और कहाँ नहीं। वैसे ही, योग साधने वाले भिक्षु को यह जानना चाहिये कि पाप क्या है और पुण्य क्या, सदोष क्या है और निर्दोष क्या, बुरा क्या है और भला क्या, तथा तृष्ण क्या है और शुक्ल क्या है। महाराज ! कर्णधार का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३—महाराज ! फिर भी, कर्णधार अपने कल पुर्जे को ताला लगा के रखता है-कोई कहीं छू छा न करे। वैसे ही, योग साधने वाले भिक्षु को अपने चित्त में संयम का ताला लगाये रखना चाहिये—कहीं कोई पाप, बुरा विचार न चला आवे। महाराज ! कर्णधार का यही तीसरा गुण होना चाहियें। महाराज ! संयुक्त निकाल में देवातिदेव भगवान नें कहा भी है, भिक्षुओं पाप—विचारों को मन में मत आने दो; जैसे, कामवितर्क, व्यापादवितर्क और विहिंसा वितर्क।"[1]

---

१. दीघनिकाय—१६ वाँ सूत्र
२. धम्मपद-गाथा संख्या ३२७

१९. केवट का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि केवट का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है ?"

"१—महाराज ! केवट ऐसा विचारता है, "मैं तलब ले इस नाव पर काम करता हूँ। इसी नाव की बदौलत से मुझे खाना, कपड़ा मिलता है। मुझे सुस्ती नहीं करनी चाहिये किन्तु मुस्तैदी से नाव का काम करना चाहिये।" वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को ऐसा ख्याल करना चाहिये, 'अरे ! मेरा शरीर तो चार महाभूतों से मिलकर बना है'—यही मनन करते हुये बराबर अप्रमत्त रहना चाहिये। चित्त को एकाग्र करना चाहिये। और, यह सोच कि मुझे जन्म लेने से छूटना है, कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। महाराज ! केवट का यही एक गुण होना चाहिये।" महाराज ! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है—

"अपने शरीर पर ही मनन करो,
　　　　बार बार जानो कि यह कैसा गन्दा है।
अपने शरीर की असलियत जान
　　　　दुःख का अन्त कर सकोगे ॥"

२०. समुद्र के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि समुद्र के पाँच गुण होने चाहिये वे पाँच गुण कौनसे हैं ?"

"१—महाराज ! समुद्र अपने में मरे मुर्दे को नहीं रहने देता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने में राग, द्वेष, मोह, अभिमान, आत्मदृष्टि, ढींग, ईर्ष्या, डाह, मात्सर्य, ठगी, कुटिलता, रुखड़ापन, दुराचार और क्लेश के मल नहीं रहने देना चाहिये। महाराज ! समुद्र का यही पहला गुण होना चाहिये।"

२—"महाराज ! फिर भी, समुद्र अपने में मोती, मणि, वैडूर्य, शंख, शिला, मूँगा, स्फटिक इत्यादि नाना प्रकार के रत्नों को धारण करता है—उन्हें छिपाये रखता है, बाहर फैला नहीं देता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने में मार्ग, फल, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, विदर्शना, अभिज्ञा इत्यादि विविध गुण-रत्नों को प्राप्त कर गुप्त रखना चाहिये, प्रगट होने नहीं देना चाहिये। महाराज ! समुद्र का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

---

१. संयुक्त ५५७

"३–महाराज! फिर भी, समुद्र बड़े बड़े जीवों के साथ रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अल्पेक्ष, संतुष्ट, स्थिरभाषी, पवित्र आचरणों वाला, लज्जावान्, कोमल स्वभाव वाला, गम्भीर, आदरणीय, वक्ता, बोलने में समर्थ, उत्साही, पाप की निन्दा करने वाला, दूसरे की सीख सुनने वाला, दूसरों को उपदेश देने वाला, बताने वाला, सच्ची राह दिखाने वाला और धर्म का उपदेश दे दूसरों में भाव पैदा कर लगन लगा देने वाला तथा उपकार करने वाला जो भिक्षु हो उसी के साथ रहना चाहिये। महाराज ! समुद्र का यही तीसरा गुण होना चाहिये।"

४–"महाराज ! फिर भी, समुद्र गंगा, जमुना, अचिरवती, सरभू, मही और अनेकानेक हजारों नदियों के गिरने और आकाश से पड़ने वाली जलधाराओं से भर कर भी अपनी सीमा को नहीं लांघता वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को लाभ, सत्कार, प्रशंसा, वन्दना, प्रतिष्ठा और पूजा या प्राणों के निकल जाने पर भी जानबूझ कर शिक्षापदों को नहीं तोड़ना चाहिये। महाराज ! समुद्र का यही चौथा गुण होना चाहिये। महाराज ! देवातिदेव भगवान ने कहा है–"जैसे समुद्र स्थिर स्वभाव का हो अपनी सीमा को नहीं लाँघता वैसे ही मेरे भिक्षु मुझ से कहे गये शिक्षापदों को प्राण निकल जाने पर भी नहीं तोड़ते।"

"५–महाराज ! फिर भी, समुद्र गंगा, जमुना, अचिरवती, सरभू, मही, और सभी नदियों के गिरने और आकाश से पड़ने वाली जलधाराओं से भी पूरा पूरा भर नहीं जाता है वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को कभी भी सीखने, धार्मिक चर्चा करने, दूसरों की शिक्षा सुनने, उसका मनन करने, उसकी परीक्षा करने, अभिधम्म, विनय और सूत्र की गम्भीर बातों का अध्ययन करने, विग्रह, वाक्य विन्यास, सन्धि, पदविभक्ति और नवअंगों वाले बुद्ध के वचन को सुनने से अघा जाना नहीं चाहिये। महाराज ! समुद्र का यही पाँचवां गुण होना चाहिये। महाराज ! सुतसोम जातक में देवातिदेव भगवान ने कहा भी है :–

"आग जैसे घास और लकड़ियों को जलाती हुई
नहीं अघाती; समुद्र नदियों से नहीं अघाता।
हे राजश्रेष्ठ ! वैसे ही, जो पण्डित लोग हैं
अच्छी बातों को सुनने से नहीं अघाते॥"

दूसरा वर्ग समाप्त

२१. पृथ्वी के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि पृथ्वी के पाँच गुण होने चाहिये। वे पाँच गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! पृथ्वी अच्छे या बुरे कपूर, अगर, तगर, चन्दन, कुंकुम, या पित, कफ, पीब, रुधिर, पसीना, चरबी, थूंक, नेटा, लस्सी, मूत, पखाना आदि पड़ने पर एक ही समान रहती है। वैसे ही, योग साधने वाले भिक्षु को इष्ट, अनिष्ट, लाभ, अलाभ, यश, अयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख, दुःख सभी में समान रहना चाहिये। महाराज ! पृथ्वी का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! पृथ्वी कोई साज या पहरावा नहीं रख, अपने प्राकृतिक स्वभाव में बनी रहती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को कोई ठाट बाट न कर अपने शील-स्वभाव में ही बना रहना चाहिये। महाराज ! पृथ्वी का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३–महाराज ! फिर भी, पृथ्वी लगातार बिना कहीं टूटे कटे धनी होकर फैली रहती हैं। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को बराबर अखण्ड, पुष्ट और घने शील का होना चाहिये, जिसमें कहीं भी कोई छेंद निकाल न सके। महाराज ! पृथ्वी का यही तीसरा गुण होना चाहिये।"

"४-महाराज ! फिर, पृथ्वी गाँव, कस्बा, शहर, जिला, गाछ, पहाड़, नदी, तालाब, बाबली और मृग, पक्षी, मनुष्य, नर, नारी, सभी को धारण करती हुई भी नहीं थकती। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को उपदेश करते हुये, सिखाते हुये, धर्म की बातें बताते हुये, सच्ची राह दिखाते हुये और दूसरों में भाव पैदा कर लगन लगा देते हुये कभी नहीं थकना चाहिये। महाराज ! पृथ्वी का यही चौथा गुण होना चाहिये।"

"५–महाराज ! फिर, पृथ्वी न तो किसी की चापलूसी करती हैं और न किसी से द्वेष। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को न किसी की चापलूसी करनी चाहिये और न किसी से द्वेष रखना चाहिये। उसका चित्त साम्य होना चाहिये। महाराज ! पृथ्वी का यहीं पाँचवाँ गुण होना चाहिये। महाराज ! अपने भिक्षुओं की बढाई करती हुई छोटी सुभद्रा ने कहा था –

> "कोई क्रुद्ध हो उनकी एक बाँह को बसुले से काट दे
> कोई प्रसन्न हो उनको एक बाँह में चन्दन लेप करे।
> तो भी, न तो वे इससे द्वेष करेंगे और न उससे प्रेम;
> उन भिक्षुओं का चित्त मानो पृथ्वी के सामान हैं॥"

२२. पानी के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि पानी के पाँच गुण होने चाहिये वे पाँच गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! किसी बर्तन में रक्खा गया पानी निश्चल, शान्त और शुद्ध होता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को [1]कुहन, [1]लपन [1]नेमित्तिक और [1]निप्पेसिकता से रहित हो स्थिर और शान्त स्वभाव का बन शुद्ध आचारण वाला रहना चाहिये। महाराज ! पानी का यही पहला गुण हैं।"

"२–महाराज ! फिर, पानी शीतल स्वभाव का होता हैं। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को सभी जीवों के प्रति क्षमाशील, मैत्रीभाव दयालु, हितैषी और कृपापूर्ण होना चाहिये। महाराज ! पानी का यही दूसरा गुण हैं।"

"३–महाराज ! फिर, पानी मैले को साफ कर देता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को गाँव में, जंगल में या और भी कहीं अपने उपाध्याय, आचार्य, या गुरुजन से कभी कुछ झगड़ा नहीं करना चाहिये। उनके प्रति कोई दोष नहीं करना चाहिये। महाराज ! पानी का यही तीसरा गुण है।"

"४–महाराज ! फिर, पानी को सभी लोग चाहते है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अल्पेच्छ, संतुष्ट, एकान्त, प्रिय और ध्यान करने का अभ्यासी बन सदा सभी लोगों का प्रिय हो कर रहना चाहिये। महाराज ! पानी का यही चौथा गुण है।"

"५–महाराज ! फिर, पानी किसी का अहित नहीं करता वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को दूसरे से झगडा, कलह, तकरार या बहसी नहीं करनी चाहिये। किसी को छोटा और तुच्छ नहीं समझना चाहिये। किसी के प्रति असंतोष या क्रोध नहीं करना चाहिये। शरीर, वचन और मन से कभी कोई पाप नहीं करना चाहिये। महाराज ! पानी का यही पाँचवाँ गुण है। महाराज ! कण्ह-जातक में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है–"

"सभी भूतों के ईश्वर है शक्र ! यदि मुझे वर देना चाहते हो, तो हे शक्र ! मन और कर्म से कोई किसी को कहीं भी दुःख न दे यही एक वरों में सबसे अच्छे वर को मैं मांगता हूँ ॥"

२३. आग के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि आग के पाँच गुण होनें चाहिये वे कौनसे पाँच गुण है ?"

---

१. देखो परिशिष्ट।

"१–महाराज ! आग घास, लकड़ी, ड़ाल और पत्ते को जला देती है वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को भीतर और बाहर के विषयों पर होने वाले इष्ट और अनिष्ट जितने क्लेश है सबों को ज्ञान की आग में जला देना चाहिये । ! महाराज ! आग का यही पहला गुण है ।"

"२–महाराज ! फिर, आग निर्दय और कठोर होती हैं । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को क्लेशों को दूर करने में कोई भी दया या करुणा नहीं दिखानी चाहिये । महाराज ! आग का यही दूसरा गुण है ।"

"३–महाराज ! फिर, आग ठण्ड़े को दूर करती हैं । वैसे, ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने उत्साह की आग से क्लेशों को दूर कर देना चाहिये । महाराज ! आग का यही तीसरा गुण है ।"

"४–फिर, आग न तो किसी की चापलूसी करती है और न किसी से द्वेष, किंतु सभी को समान रूप से गर्मी देती है । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को आग के ऐसा तेजस्वी हो कर रहना चाहियें–किसी की न तो चापलूसी करनो चाहिये और न किसी से द्वेष करना चाहिये । महाराज ! आग का यही चौथा गुण है ।"

"५–फिर, आग अँधेरे को दूर करती है और उजेला फैलाती है । वैसे ही, योगसाधन करनें वाले भिक्षु को अज्ञान दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाना चाहियें । महाराज ! आग का यही पाँचवाँ गुण है । महाराज ! अपने पुत्र राहुल को शिक्षा देते हुये देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है...

"राहुल ! तेज (=आग) के समान भावना का अभ्यास करो । तेज के समान भावना करने से अनुत्पन्न अकुशल उत्पन्न ही नहीं होते और उत्पन्न अकुशल चित्त में ठहरने नहीं पाते ।"

२४. हवा के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि हवा के पाँच गुण होने चाहिये वे कौनसे पाँच गुण है ?"

"१-महाराज हवा फूल फुलाये हुरे जंगल झाड़ से हो कर बहती है । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को विमुक्ति के फुल फुलाये हुये ध्यान के जंगल झाड़ में भ्रमण करना चाहिये । महाराज ! हवा का यह पहला गुण है ।"

"२–महाराज ! फिर, हवा पृथ्वी पर उगने वाले सभी वृक्षों को धुनती रहती है । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को जंगल में रह संसार की अनित्यता का

मनन करते हुये क्लेशों को धुन धुन कर झार देना चाहिये। महाराज ! हवा का यही दुसरा गुण है।"

"३—महाराज ! फिर, हवा आकाश में चलती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को लोकोत्तर धर्मों में ही लगा रहना चाहिये। महाराज ! हवा का यही तीसरा गुण है।"

"४—महाराज ! फिर, हवा अपने साथ गन्ध को उड़ा कर ले जाती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने शील की गन्ध उड़ानी चाहिये। महाराज ! हवा का यही चौथा गुण है।"

"५—महाराज ! फिर, हवा बिना किसी डेर-ड़ण्ड़े की होती है; कहीं एक जगह घर नहीं लगाती। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को घरबार छोड़ बिना किसी बन्धु बान्धव के स्वच्छन्द रहना चाहिये। महाराज ! हवा का यही पाँचवाँ गुण है। महाराज ! सुत्तनिपात में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है—

"साथी बढ़ाने से चिन्ता होती है,
गृहस्थी में राग उत्पन्न होता है।
न साथी बढ़ाये न घर में रहे
साधु लोग की यही चाल है ॥[1]

२५. पहाड के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि पहाड़ के पाँच गुण होने चाहिये वे पाँच गुण कौनसे हैं ?"

"१—महाराज पहाड़ अचल, अकम्प्य और स्थिर होता है। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को सम्मान, अपमान, सत्कार, दुत्कार, प्रतिष्ठा, अप्रतिष्ठा, यश, अपयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख, दुःख, इष्ट, अनिष्ट और सभी रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श के लुभानेवाले धर्मों से राग नहीं करना चाहिये; द्वेष पैदा करने वाले धर्मों में द्वेष नहीं करना चाहिये; मोह पैदा करने वाले धर्मों में मोह नहीं करना चाहिये। उनसे कभी भी विचलित नहीं होना चाहिये। पर्वत के ऐसा अचल और स्थिर होना चाहिये। महाराज ! पहाड़ का यही पहला गुण होना चाहिये। महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है—

"बिलकुल घना पहाड़ हवा से हिल-ड़ोल नहीं करता,
वैसे ही, निन्दा और प्रशंसा में पण्डित चञ्चल नहीं होते ॥"[2]

---

१. सुत्तनिपात १. १२ १

२. धम्मपद गाथा ८१

"–२ महाराज ! फिर, कठोर पहाड़ किसी से लगाव बझाव नहीं रखता-अपना अकेला पड़ा रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को कड़ा हो कर बहुत मिलना जुलना नहीं चाहिये–किसी से संसर्ग नहीं रखना चाहिये। महाराज ! पहाड़ का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है–

"गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों से बिना संसर्ग रखे अकेला चलने वाले अल्पेच्छ प्रव्रजित को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"[1]

"३–महाराज ! फिर, पहाड़ पर बीज जमने नहीं पाता। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को अपने मन में क्लेश जमने नहीं देना चाहिये। महाराज ! पहाड़ का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! स्थविर सुभूति ने कहा भी है–

"मेरे चित्त में जब राग उत्पन्न होता है,
स्वयं उसे देख कर अकेला ही दबा देता हूँ॥
यदि राग करने वाले धर्मों में तुम राग करते हो,
द्वेष करने वाले धर्मों में द्वेष।
और मोह लेने वाले धर्मों से मूढ़ हो जाते हो
तो इस वन से निकल जाओ॥
निर्मल विशुद्ध तपस्वियों की यह जगह है,
इस पवित्र स्थान को दूषित मत करो, इस वन से निकल जाओ।"

"४–महाराज ! फिर भी, पहाड़ की चोटी ऊपर उठी रहती है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को ज्ञान से ऊँचा उठा रहना चाहिये। महाराज ! पहाड़ का यही चौथा गुण होना चाहिये। महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है –

"जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से दूर कर देता है,

तब प्रज्ञा की अटारी पर चढ़, अपने शोक से रहित हो संसार को शोक में पड़े, पर्वत पर चढ़ा जैसे नीचे के लोगों को देखता है; वैसे ही वह विज्ञ अज्ञ लोगों को देखता है॥"[2]

---

१. सुत्तनिपातः ३.६. ३५
२. धम्मपद गाथा २८

"५–महाराज! फिर, पहाड़ न तो उठाया जा सकता है और न धसाया। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को दूसरों से न चढ़ जाना चाहिये और न गिर जाना। महाराज ! पहाड़ का यही पाँचवा गुण होना चाहिये। महाराज ! अपने श्रमणों की बड़ाई करती हुई छोटी सुभद्रा ने कहा है–

संसार लाभ से उठ जाता है और अलाभ से गिर जाता है,
किंतु मेरे श्रमण लाभ और अलाभ दोनों में समान रहते हैं ॥"

२६. आकाश के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि आकाश के पाँच गुण होने चाहिये वे पांच गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! आकाश किसी तरह पकड़ा नहीं जा सकता। वैसे ही योग-साधन करने वाले भिक्षु को क्लेशों से किसी तरह पकड़ाना नहीं चाहिये। महाराज ! आकाश का यही पहला गुण है।"

"२–महाराज ! फिर भी, आकाश में ऋषि, तपस्वी, देव और पक्षी विचरण करते हैं। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षुकों संस्कारों में अनित्य दुःख और अनात्म के भाव को मन में बनाये रखना चाहिये। महाराज ! आकाश का यही दूसरा गुण है।"

"३–महाराज ! खुला आकाश डरावना लगता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को संसार में बार बार पैदा होने से डरा रहना चाहिये–संसार की स्थिति में कोई स्वाद लेना नहीं चाहिये। महाराज ! आकाश का यही तीसरा गुण है।"

"४-महाराज ! फिर, आकाश अनन्त, अप्रमाण और अपरिमेय है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अनन्त शीलवान् और अपरिमित ज्ञानी होना चाहिये। महाराज ! आकाश का यही चौथा गुण है।"

"५-महाराज ! फिर, आकाश किसी के सहारे लटका नहीं होता, किसी से जुटा नहीं होता, किसी पर ठहरा नहीं रहता और न किसी से रुका होता है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को गृहस्थ कुल में, गण में, लाभ में, आवास में, किसी बाधा में प्रत्यय में या सभी क्लेशों में अलग्न, अनासक्त अप्रतिष्ठित, और अलिप्त हो कर रहना चाहिये। महाराज ! आकाश का यही पाँचवाँ गुण है।" महाराज ! अपने पुत्र राहुल को उपदेश देते हुये देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है:–

'राहुल ! जैसे आकाश कहीं भी प्रतिष्ठत नहीं होता वैसे ही तुम भी भावना करो। आकाश के समान भावना करने से आये गये, अच्छे बुरे स्पर्श चित्त में नहीं लगते।'[1]

१. मज्झिम निकाय ४२४

२७. चाँद के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि चाँद के पाँच गुण होने चाहिये वे पाँच गुण कौनसे है ?"

"१–महाराज ! शुक्ल पक्ष का चाँद धीरे धीरे बढता ही जाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को आचार, शील, गुण, व्रतपरायणता, धर्म-पुस्तकों के अध्ययन, ध्यान, स्मृतिप्रस्थान, इन्द्रिय, संयम, भोजन, में मत्रज्ञता, और जागरूकता में बढ़ते जाना चाहिये। महाराज ! चाँद का यही पहला गुण है।"

"२–महाराज ! फिर, चाँद बड़ा भारी अधिपति हैं। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपनी इच्छाओं का बली अधिपति होना चाहिये। महाराज ! चाँद का यही दूसरा गुण है।"

"३–महाराज ! फिर, चाँद रात में चलता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को एकान्त में अभ्यास करना चाहिये। महाराज ! चाँद का यही तीसरा गुण है।"

"४–महाराज ! चाँद विमान के झण्डे में अङ्कित रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को शील का झण्डा खड़ा कर देना चाहिये। महाराज ! चाँद का यही चौथा गुण है।"

"५–महाराज ! फिर भी, चाँद बिना किसी के प्रार्थना करने पर उगता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बिना किसी से प्रार्थना करने पर ही गृहस्थों के कुल में जाना चाहिये। महाराज ! चाँद का यही पाँचवाँ गुण है। महाराज ! **संयुक्तनिकाय** में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी हैं–

"भिक्षुओं ! चाँद के ऐसा गृहस्थों के घर जाओ। अनजान के ऐसा शरीर और मन से संकोच करते हुये जाओ और चले आओ।"

२८. सूरज के सात गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि सूरज के सात गुण होने चाहिये वे सात गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! सूरज पानी को सुखा देता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को सभी क्लेश सुखा देना चाहिये। महाराज ! सूरज का यही पहला गुण है।"

"२–महाराज ! फिर सूरज काली अँधियाली को दूर कर देता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को राग, द्वेष, मोह, मान, आत्म-दृष्टि, क्लेश और सभी

बुरे आचरण की अँधियाली को दूर कर देना चाहिये। महाराज ! सूरज का यही दूसरा गुण है।"

"३-महाराज! फिर भी, सूरज बराबर चलता रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को सदा मन को संयत करते रहना चाहिये। महाराज ! सूरज का यही तीसरा गुण है।"

"४-महाराज ! फिर भी, सूरज किरणों वाला है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को ध्यानभावना वाला होना चाहिये। महाराज ! सूरज का यही चौथा गुण है।"

"५-महाराज ! फिर भी, सुरज संसार के सभी प्राणियों को तपाता हुआ चलता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को आचार, शील, गुण, व्रतचर्या, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, इन्द्रियबल, बोध्यङ्ग, स्मृतिप्रस्थान, सम्यक् प्रधान और ऋद्धिपाद से देवताओं और मनुयों के साथ सारे संसार को तपाते रहना चाहिये। महाराज ! सूरज का यही पाँचवाँ गुण है।"

"६-महाराज ! फिर भी, सूरज सदा राहु से डरते हुये चलता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने कर्मों के बुरे फल, नरक और क्लेश की घनी झाडियों से भरे दुराचार और दुर्गति के बीहड़ जंगल में आत्मदृष्टि के बहकावे में पड़ बुरे रास्ते पर लोगों को चलते हुये देख कर अपने मन में संवेग उत्पन्न करना चाहिये और सदा डरते रहना चाहिये। महाराज ! सूरज का यही छठा गुण है।"

"७-महाराज फिर भी, सूरज (अपनी रोशनी में) अच्छे और बुरे को दिखा देता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को इन्द्रियबल, बोध्यङ्ग, स्मृतिप्रस्थान, सम्यक्, ऋद्धिपाद, लौकिक और लोकोत्तर धर्म सभी दिखा देना चाहिये। सूरज का यही सातवाँ गुण है। महाराज ! स्थविर वङ्गीश ने कहा भी है-

"जैसे सूरज उग कर प्राणियों को सभी चीजें दिखा देता है,
शुचि और अशुचि को भी, अच्छे और बुरे को भी।
वैसे ही, धर्म जानते वाला भिक्षु अविद्या से ढके हुये संसार को
सूर्योदय की तरह सभी राह दिखा देता है।"

२९. इन्द्र के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि इन्द्र के तीन गुण होने चाहिये वे तीन गुण कौनसे है ?"

"१–महाराज ! इन्द्र केवल सुख ही सुख भोगता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को परम एकान्त का सुख भोगना चाहिये। महाराज ! इन्द्र का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर, इन्द्र देवों को प्रसन्न कर अपने वश में रखता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को कुशल (पुण्य) धर्मों में अपने मन को शान्त, उत्साह-शील और तत्पर बनाये रखना चाहिये। उनको पालन करने में प्रसन्न रहना चाहिये। उत्साह के साथ उनमें डटा और लगा रहना चाहिये। महाराज ! इन्द्र का यही दूसरा गुण है।"

"३–महाराज ! फिर भी इन्द्र को कभी असंतोष नहीं होता। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को एकान्त स्थान से कभी ऊबना नहीं चाहिये। महाराज ! इन्द्र का यह तीसरा गुण है। महाराज ! स्थविर सुभूति ने कहा भी है:–

"हे भगवान् बुद्ध ! जब से मैं आप के शासन में प्रव्रजित हुआ हूँ,
मुझे ख्याल नहीं कि मेरे मन में कभी काम उत्पन्न हुआ हो॥"

३०. चक्रवर्ती राजा के चार गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि चक्रवर्ती राजा के चार गुण होने चाहिये वे कौनसे चार गुण हैं ?"

"१–महाराज ! चक्रवर्ती राजा चार संग्रहवस्तुओं से अपनी प्रजा को अपनी ओर किये रखता है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को चार प्रकार के लोगों को अपनी ओर करके प्रसन्न रखना चाहिये। महाराज ! चक्रवर्ती राजा का यही पहला गुण है।"

"महाराज ! फिर भी, चक्रवर्ती राजा के राज्य में चोर, लुटेरे नहीं उठने पाते। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को मन में काम, राग, व्यापाद और विहिंसा के बुरे विचारों को उठने नहीं देना चाहिये। महाराज ! चक्रवर्ती राजा का यही दूसरा गुण है। महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है–

"अपने बुरे विचारों को जो दबाने में लगा रहता है,
सावधान हो सांसारिक पदार्थों में दोष देखता है।
जिसे संसार सुन्दर समझता है उसे जो दूर करता है,
वही मार के बन्धनों को छिन्न भिन्न करने में समर्थ होता॥"[1]

---

१. धम्मपद गाथा ३५०।

"३-महाराज! फिर भी, चक्रवर्ती राजा दिन प्रतिदिन अच्छे बुरे की जाँच करते हुये समुद्र पर्यन्त महापृथ्वी पर चक्कर लगाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को दिन प्रतिदिन अपने मन, वचन और कर्म की जाँच करनी चाहिये—आज का दिन मैं तीनों प्रकार से निर्दोष कैसे बिताऊँ! महाराज! चक्रवर्ती राजा का यही तीसरा गुण है। महाराज! अङ्गुत्तर निकाय में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है :-

"मेरे दिन रात कैसे बीतते हैं यह बात प्रव्रजित को बराबर ख्याल रखना चाहिये।"

"४-महाराज! फिर भी, चक्रवर्ती राजा के यहाँ बाहर और भीतर बड़ी रखवाली बैठो रहती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बाहर और भीतर के क्लेशों से रक्षा करने के लिये स्मृति का पहरेदार बैठा देना चाहिये। महाराज! चक्रवर्ती राजा का यही चौथा गुण है। महाराज! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है -

"भिक्षुओं! आर्य श्रावक अकुशल (पाप) को दूर रखने के लिये स्मृति का पहरेदार बैठा देता है। कुशलका (पुण्य) की भावना करता है। सदोष को छोड़ देता है, निर्दोष को बनाये रखता है। अपने को शुद्ध और पवित्र बनाता है।"

तीसरा वर्ग समाप्त

---

३१. दीमक का एक गुण

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि दीमक का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है?"

"१-महाराज! दीमक अपने ऊपर से ढ़क नीचे छिप कर रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को शील और संयम से अपने मन को ढ़क भिक्षाटन करना चाहिये। महाराज! इस तरह, अपने मन को शील और संवर से ढ़क, भिक्षु सभी भय से बचा रहता है। महाराज! दीमक का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज! वङ्गन्तपुत्र स्थविर उपसेन ने कहा भी है—

"योगी अपने मन को शील और संवर से ढ़क,
संसार से लिप्त न हो, भय से छूट जाता॥"

३२. बिल्ली के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि बिल्ली के दो गुण होने चाहिये वे दो गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! बिल्ली, गुहा, या बिल, या घर में कहीं भी रह कर सदा चूहे ही की खोज में ताक लगती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को गाँव, जंगल, वृक्षभूल, या शून्यागार में कहीं भी जाकर बराबर लगातार 'कायगतासति' रूपी भोजन की खोज में रहना चाहिये। महाराज ! बिल्ली का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर, बिल्ली आस–पास में ही शिकार ढुंढती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने इन्हीं पाँच उत्पादन स्कन्धों के उदय होने और नष्ट हो जाने के स्वभाव का मनन करना चाहिये–(१) यह रूप है, यह रूप का नष्ट हो जाना है; (२) यह वेदना है, यह वेदना का उदय होना है, यह वेदना का नष्ट हो जाना हैं; (३) यह संज्ञा है, यह संज्ञा का उदय होना है, यह संज्ञा का नष्ट हो जाना हैं; (४) यह संस्कार है, यह संस्कार का उदय होना हैं, संस्कार का नष्ट हो जाना है; (५) यह विज्ञान है, यह विज्ञान का उदय होना है, और यह विज्ञान का नष्ट हो जाना है। महाराज ! बिल्ली का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! देवातिदेव भगवान ने कहा भी है –

"यहाँ से दूर जाने का दरकार नहीं,
आगे की बातों को सोचने से क्या फल ?
बर्तमान काल के ही व्यवहार में
देखो कि अपने शरीर में क्या है ॥"

३३. चूहे का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! ! आप जो कहते हैं कि चूहे का एक गुण होना चाहिये यह एक गुण क्या है ?"

"१–महाराज ! चूहा जो इधर-उधर दौड़ता है सो आहार की सूंघ लेने ही के लिये। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को जहाँ कहीं मन को वश में करके ही जाना चाहिये। महाराज ! चूहे का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! वङ्गन्तपुत्र स्थविर उपसेन ने कहा भी है:–

"धर्म को लक्ष्य बना कर ही ज्ञानी-जन विहार करता है,
शान्त चित्त से स्मृतिमान और उत्साहशील हो विहार करता है ॥"

३४. बिच्छू का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि बिच्छू का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है ?"

"१–महाराज ! बिच्छू की पूंछ ही उसका हथियार है, सो वह उसे उठाये चलता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाला भिक्षु अपने ज्ञानरूपी हथियार को उठाये चलता है। महाराज ! बिच्छू का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! वङ्गन्तपुत्र स्थविर उपसेन ने कहा भी है:–

"ज्ञान की तलवार को उठाये ज्ञानी जन विहार करता है,
सभी भय से छूट जाता है, उसे कोई परास्त नहीं कर सकता है ॥"

३५. नेवले का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि नेवले का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है ?"

"१–महाराज ! एक खास जड़ी-बूटी पर लोट लेने के बाद ही नेवला साँप को पकड़ने जाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को क्रोध, वैर, कलह, झगड़ा, विवाद और विरोध में सने हुये संसार के पास अपने मन को मैत्री की जड़ी-बूटी में लपेट कर ही जाना चाहिये। महाराज ! नेवले का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! धर्म सेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है:–

"इसलिये, अपने और दूसरे लोगों के प्रति भी
मैत्री-भावना करनी चाहिये।
मैत्री-चित्त से संसार को भर देना चाहिये,
यही बुद्धों का उपदेश है ॥"

३६. बूढे सियार के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि बूढ़े सियार के दो गुण होने चाहिये वे गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! बूढ़ा सियार जो भोजन पाता है बिना घृणा किये मन भर खा लेता है। जैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को जो भोजन मिले बिना उसमें दोष निकाले उतना खा लेना चाहिये जितने से शरीर बना रहे। महाराज ! बूढ़े सियार का यही पहला गुण होना चाहिये। महाराज ! स्थविर महाकाश्यप ने कहा भी है:–

"अपने आश्रम से निकल कर
भिक्षाटन के लिये मैं गाँव में गया,
भोजन करते हुये एक कोढ़िये के सामने
यथाक्रम भिक्षा के लिये खड़ा हो गया।
उसने अपने पके हाथ से
कुछ भात लाकर दिया।
किंतु उसके भात देते समय
उसकी अंगुली भी कट कर गिर गई॥
दीवाल के पास बैठ कर मैंने उस भिक्षा को खा लिया,
खाते समय, या बाद में, मुझे कुछ भी घृणा नहीं हुई॥"[1]

"१—महाराज ! फिर भी, बूढ़ा सियार भोजन पा कर यह नहीं देखता कि भोजन रूखा है या बड़ा स्वादिष्ट। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को भोजन पाकर यह नहीं देखना चाहिये कि यह रूखा है या बड़ा स्वादिष्ट-यह उसे सत्कार से दिया गया है या बिना सत्कार के। जैसा भी भोजन मिले उसे संतुष्ट हो कर खा लेना चाहिये। महाराज ! बूढ़े सियार का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! वङ्गन्तपुत्र स्थविर उपसेन ने कहा भी है:—

"रूखे-सूखे भोजन खा कर सन्तुष्ट रहना चाहिये
स्वादिष्ट की खोज नहीं करनी चाहिये।
जीभ के लालच में जो पडा रहता है
उसका मन ध्यान में नहीं लगता
जो कुछ मिले उसी में खुश रहने वाला
भिक्षु-व्रत को पूरा कर सकता है॥"[2]

३७. हरिण के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि हरिण के तीन गुण होने चाहिये वे तीन गुण कौनसे हैं ?"

"१—महाराज ! हरिण दिन भर जंगल में घूमता रहता है और रात में किसी खुली जगह पर सो जाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को दिन भर जंगल में विहार करना चाहिये। और रात में खुली जगह पर। महाराज ! हरिण का यही पहला गुण होना चाहिये। महाराज ! लोमहंसक परियाय में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है:—

१. थेर गाथा १०५४-१०५६
२. थेर गाथा ५८०

"हे सारिपुत्र ! जाड़े की उन ठंडी रातों में जब कड़ी शीत पड़ती थी मैं खुली जगह में रहता था, दिन होने पर जंगल झाड़ में चला जाता था। गर्मी के पिछले महीनों में दिन के समय खुली जगह में विहार करता था और रात होने पर जंगल में घुस जाता था "[1]

"२–महाराज ! फिर, हरिण भाला या तीर चलाये जाने पर देह सिकोड़ कर चौकड़ी मारते हुये भाग निकलता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को क्लेशों के आने से मन बचा कर हट जाना चाहिये –दूर हो जाना चाहिये। महाराज ! हरिण का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३–महाराज ! फिर, हरिण मनुष्यों को देखते ही भाग खड़ा होता है–वे मुझे देख न लें। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को झगड़ा, कलह और तकरार करने वाले और जमायत में रहने वाले दुःशील लोगों को देख कर हट जाना चाहिये–वे मुझे न देखें और मैं उन्हें न देखूँ। महाराज ! हरिण का यही तीसरा गुण होता चाहिये। महाराज ! धर्मसेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है–

"पापी, आलसी, उत्साह-हीन, मूर्ख, और दुराचारी कभी भी मेरे साथ देने न पावे ॥"[2]

३८. बैल के चार गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि बैल के चार गुण होने चाहिये वे चार गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! बैल अपना घर छोड़ कर कहीं भाग नहीं जाता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपना शरीर छोड़ देना नहीं चाहिये–क्योंकि यह अनित्य और नाशमान है। महाराज ! बैल का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! जब बैल एक बार गाड़ी में जुत जाता है तो सुख से या दुःख से उसे ढोता ही है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को एक बार ब्रह्मचर्य व्रत ले लेने पर चाहे जैसे हो सुख से या दुःख से उसे जीवन भर प्राणों के पन से निभाना ही चाहिये। महाराज ! बैल का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

---

१. मज्झिम निकाय के 'लोमहंस' परियाय सूत्र से। किन्तु, यह तो भगवान् के दुष्कर क्रिया के अभ्यास करने की बात है, जिसे भगवान् नें बुरा और अनार्थ बताया है। इस स्थान पर यह उद्धरण देना बिलकुल अयुक्त है।

२. थेर गाथा ९८७

"३–महाराज ! फिर, बैल सांस ले ले कर पानी पीता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को आचार्य और उपाध्याय के उपदेश मन लगा कर प्रेम से लेने चाहिये। महाराज ! बैल का यही तीसरा गुण होना चाहिये।"

"४–महाराज ! फिर बैल किसी के द्वारा जोतने से गाडी खींचता हैं। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को स्थविर, बिचले, नये भिक्षु और उपासकों के भी स्वागत और सत्कार को शिर झुका कर स्वीकार कर लेना चाहिये। महाराज ! बैल का यही चौथा गुण होना चाहिये। महाराज ! धर्म-सेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी हैं:–

"आज ही प्रव्रजित हुआ सात वर्ष का श्रामणेर, यदि वह भी मुझे कुछ सिखावे तो मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।।"

"बड़े प्रेम और आवभगत से
उसे देख उसका स्वागत करूँ,
बार बार अपने आचार्य के स्थान पर
उसे सत्कारपूर्वक बैठाऊँ ॥"

३९–सूअर के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि सूअर के दो गुण होने चाहिये। वे दो गुण कौनसे है ?"

"महाराज ! सूअर गर्मी के दिनों से गर्म पडने पर पानी में बैठ जाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को द्वेष से जल भुन कर चित्त के तपते रहने पर शीतल, अमृत और प्रणित मैत्री भावना करने में लग जाना चाहिये महाराज ! सूअर का यही पहला गुण है।"

"२–महाराज ! सूअर कादो कीचड में नाक घुसा घुसा कर गडहा बनाता है और उसी में पडा रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को मन को लीन कर ध्यान में मग्न रहना चाहिये। महाराज ! सूअर का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! स्थविर पिण्ड़ोल भारद्वाज ने कहा भी है:--

"शरीर के विनश्वर स्वभाव को देख,
ज्ञानी पुरुष उसका मनन करता है।
एकान्त में अकेला रह
ध्यान में डूबा रहता है ॥"

४०—हाथी के पाँच गुण

"भन्ने नागसेन ! आप जो कहते है कि हाथी के पाँच गुण होने चाहिये। वे पाँच गुण कौनसे है ?"

"१-महाराज ! हाथी चलते हुये पृथ्वी को मानो दलका देता हैं। वैसे ही योगसाधन करनेवाले भिक्षु को अपने शरीर पर मनन करते हुये सभी क्लेश को दलका देना चाहिये। महाराज ! हाथी का यही पहला गुण है।"

"२-महाराज ! फिर भी, हाथी शरीर को घुमाते हुये सीधा ही देखता है—इधर-उधर नहीं। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को घूम कर ही देखना चाहिये। अगल-बगल ऊपर-नीचे आँख नहीं चलाना चाहिये। केवल दो हाथ आगे तक देखना चाहिये। महाराज ! हाथी का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३-महाराज ![1] हाथी अपने वास करने के लिये कोई खास जगह निश्चित नहीं करता- जहाँ पाता है वहीं रहता और सोता है। वैसे ही योगसाधन करनें वाले भिक्षु को बेघर का होना चाहिये। बिना कोई अपना स्थान नियत किये भिक्षाटन के लिये बाहर निकल जाना चाहिये। जहाँ कोई अच्छा, सुन्दर, रम्य औंर अनुकूल स्थान, मंडप, वृक्षमूल, गुहा या पहाड का किनारा देखे वहीं कुछ समय के लिये टिक रहना चाहिये। महाराज ! हाथी का यही तीसरा गुण होना चाहिये।"

"४--महाराज ! फिर, हाथी कमल और भेंट के फूल खिले हुये निर्मल शीतल जल वाले सरोवर में बैठ कर आनन्द के साथ जलक्रीडा करता है। वैसे ही योग साधन करने वाले योगी को पवित्र और निर्मल धर्म-रूपी जल से भरे, विमुक्ति के फूल खिले हुये स्मृतिप्रस्थान के सरोवर में पैठ कर ज्ञान संस्कारों को धुनधान कर तोड़ लेना चाहिये। यहीं योगियो की योग क्रीडा हैं। महाराज ! हाथी का यही चौथा गुण होना चाहिये।"

"५-महाराज ! फिर भी, हाथी ख्याल करके ही पैर उठाता है और ख्याल करके पैर रखता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को ख्याल करके ही पैर उठाना और रखना चाहिये। जाने, लौटने, समेटने, पसारने सभी में ख्याल बनाये रखना चाहिये। महाराज ! हाथी का यही पाँचवा गुण होना चाहिये। महाराज ! संयुक्त निकाय में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी हैः--

शरीर का संयम करना अच्छा है।
वचन का संयम करना अच्छा है ॥

---

१ जंगली हाथी।

मन का संयम करना अच्छा है ।
सभी का संयम करना अच्छा है ।
सभी प्रकार से वही संयम-शील होता है,
जो प्रज्ञावान् हो अपने वश में रखता है ॥"

चौथा वर्ग समाप्त

४१–सिंह के सात गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि सिंह के सात गुण होने चाहिये वे सात गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! सिंह बिना किसी दाग या धब्बे का साफ सुथरा भूरा होता है । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को निर्मल, पवित्र और स्थिर चित्त का होना चाहिये । महाराज ! सिंह का यही पहला गुण होना चाहिये ।"

"२–महाराज ! फिर सिंह अपने चार पैरों पर ही बड़ी तेजी से दौड़ता है । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु के चार ऋद्धियों वाला होना चाहिये । महाराज ! सिंह का यही दूसरा गुण होना चाहिये ।"

"३–महाराज ! फिर, सिंह बड़े सुहावने केशर वाला होता है । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को सुन्दर शीलरूपी केशर का केशरी होना चाहिये । महाराज ! सिंह का यह तीसरा गुण होना चाहिये ।"

"४–महाराज ! फिर, सिंह अपने प्राणों के निकल जाने पर भी किसी के आगे नहीं झुकता । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लान प्रत्यय के प्राप्त होने पर भी किसी के सामने झुकना नहीं चाहिये । महाराज ! सिंह का यही चौथा गुण होना चाहिये ।"

"५–महाराज ! फिर सिंह जहाँ पंजा मारता है वही बराबर खा लेता है; अच्छा माँस कहाँ मिलेगा इसको चिन्ता नहीं करता । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बिना कोई घर छोड़े बराबर भिक्षा माँगते चला जाना चाहिये । कुलों को चुन चुन कर नहीं जाना चाहिये । मिली हुई

देखो दीघनिकाय, महासति पट्ठान सुत्त ।

१ धम्मपद गाथा ३६१

भिक्षा में जो कौर में आवे उसी को खाना चाहिये क्या स्वादिष्ट है इसकी खोज नहीं करनी चाहिये। शरीर-यात्रा करने भर ही खाना चाहिये, खुब ठूँस कर नहीं। महाराज ! सिंह का यही पाँचवा गुण होना चाहिये।"

"६–महाराज ! फिर, सिंह अपने शिकार में से कुछ बचा कर नहीं रखता जिसे एक बार खाता है उसके पास दुबारा नहीं जाता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को जोड़ना बटोरना नहीं चाहिये महाराज ! सिंह का यही छठा गुण होना चाहिये।"

"७–महाराज ! फिर, सिंह शिकार न मिलने पर भी त्रास नहीं करता, और मिलने पर भी छूट कर खूब खा नहीं लेता। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को भोजन न मिलने पर त्रास नहीं करना चाहिये; ओर मिलने पर बहुत हिसाब से भोजन के दोषों (आदीनव) का खयाल करते हुये शरीर धारण करने भर खा लेना चाहिये।"

"महाराज ! स्थविर महाकाश्यप की बढ़ाई करते हुये देवातिदेव स्वयं भगवान् ने कहा है –

"भिक्षु ! काश्यप जैसे तैसे पिण्डपात से संतुष्ट रहने वाला है। जैसे तैसे पिण्डपात से संतुष्ट रहने की प्रशंसा करता हैं। पिण्डपात करने में कोई दोष होने नहीं देता। कुछ भी भिक्षा नहीं मिलनें से त्रास नहीं करता ! मिलने पर बहुत हिसाब से आदीनवों का खयाल करते हुये शरीर धारण करने भर थोड़ा खा लेता है।"[1]

४२. चकवा के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि चकवा के तीन गुण होने चाहिये वे तीन गुण कौनसे है ?"

"१–महाराज ! चकवा जीवन भर अपने जोड़े को नहीं छोड़ता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को जीवन भर मनन करने के अभ्यास को नहीं छोड़ना चाहिये। महाराज ! चकवा का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर, चकवा सेवाल और पानी के दूसरे पौधों को खा कर संतुष्ट रहता है, उस संतोष से उसका बल और सौन्दर्य कभी नहीं कमता। वैसे ही, योगसाधन करमें वाले भिक्षु को जो कुछ मिले उसी से संतुष्ट रहना चाहिये। जो कुछ मिले उसी से संतुष्ट रहने वाला भिक्षु शील से, समाधि से, प्रज्ञा से, विमुक्ति से

---

[1] संयुक्त निकाय १६.१.३।

विमुक्ती ज्ञानदर्शन से, और सभी पुण्य के धर्मों से नहीं कमता है ।महाराज ! चकवा का यही दूसरा गुण होना चाहिये ।"

"३–महाराज ! फिर, चकवा किसी जीव को नहीं सताता । वैसे ही, योग–साधन करने वाले भिक्षु को किसी को मारना पीटना नहीं चाहिये । उसे लज्जावान्, दयालु और सभी प्राणियों के प्रति करुणाशील होना चाहिये । महाराज ! चकवा जातक में देवातिदेव भगबान् ने कहा भी है–

जो न वध करता है और करवाता है
न हराता है और न हरबाता है
सभी जीवों के प्रति अहिंसा रखता है
उसका किसी के साथ वैर नहीं रहता ।।"

४३. पेणाहिका पक्षी के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि पेणाहिका पक्षी के दो गुण होने चाहिये वे दो गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज पेणाहिका नाम की चिड़िया अपने पति की ईर्ष्या में अपने बच्चों तक को नहीं पोसती । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने मन में उत्पन्न हुये क्लेशों के प्रति ईर्ष्या रखनी चाहिये । स्मृतिप्रस्थान से संयम के बिल में उन्हें ड़ाल कर मन के दरवाजे पर कायगतापति की भावना करनी चाहिये । महाराज ! पेणाहिका पक्षी का यही पहला गुण होना चाहिये ।"

"२–महाराज ! फिर, पेणाहिका पक्षी दिन भर जंगल में चारा चर साँझ को अपनी रक्षा के लिये झुण्ड में आ कर मिल जाती है । वैसे ही, योगसाधन करने वाले योगी को अपने भीतर की गाँठ को सुलझाने के लिये अकेले एकान्त का सेवन करना चाहिये । यदि वहाँ मन नहीं लगे तो बदनामी से बचने के लिये संघ में आकार मिल जाना चाहिये–संघ की रक्षा में वसना चाहिये । महाराज ! पेणाहिका पक्षी का यही दूसरा गुण होना चाहिये । महाराज ! ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् के सामने कहा था–

"जंगल में दूर हट कर रहे
लोक–जंजाल से मुक्त हो कर रहे
यदि वहाँ मन नहीं लगे
तो वह स्मृतिमान् संघ की रक्षा में आ कर रहे ।"[1]

---

१. थेर गाथा १४२ ।

४४. कबूतर का एक गुण

'भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि कबुतर का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है ?"

"१-महाराज ! कबूतर दूसरे के घर में बसते हुये वहाँ की किसी चीज को देख ललचा नहीं जाता, किंतु उनके प्रति अनासक्त होकर रहता है। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को गृहस्थों के घर जा परिवार के पुरुष, स्त्री, कुर्सी, बेंच, कपड़े, अलंकार भोजन या और भी दूसरी भोग की सामग्रियों को देख कर ललचा जाना नहीं चाहिये—उसके प्रति अनासक्त और अन्यमनस्क हो कर रहना चाहिये। मैं भिक्षु हूँ इस बात का ध्यान हरदम बनाये रखना चाहिये। महाराज ! कबूतर का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! चुल्ल नारद जातक में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी हैं–

"गृहस्थ-कुलों में जा, खाने-पीने मिलने पर
अन्दाज से खाये पीये, सौन्दर्य की ओर मन न दौड़ाये ।।"

४५. उल्लू के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि उल्लू के दो गुण होने चाहिये वे दो गुण कौनसे हैं ?

"१-महाराज ! उल्लू और कौवे में स्वाभाविक शत्रुता है; सो उल्लू रात के समय कौओं के झुण्ड में जा कर बहुतों को मार गिराता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अज्ञान से शत्रुता ठान लेनी चाहिये। अकेला बैठ, अज्ञान को बिलकुल नष्ट कर देने का प्रयत्न करना चाहिये। महाराज ! उल्लू का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२-महाराज ! फिर भी, उल्लू एकान्त में कहीं छिप कर झपकियाँ लेता रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को एकान्त में ध्यान लगा कर मग्न रहना चाहिये। महाराज ! उल्लू का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! संयुक्त निकाय में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी हैं–

"भिक्षुओं ! भिक्षु एकान्त में ध्यान लगा कर मनन करता है–यह है दुःख, यह दुःख का हेतु है, यह दुःख का निरोध है, और यह दुःख के निरोध का मार्ग है।"

४६. सारस पक्षी का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते है कि सारस पक्षी का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है ?"

"१—महाराज ! सारस अपना शब्द कर के जतला देता हैं कि शुभ होना या अशुभ। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को धर्म-देशना करते हुए लोगों में यह प्रकट कर देना चाहिए कि नरक कितना भयाबह है और निर्वाण कितना क्षेमकर। महाराज ! सारस पक्षी का यही एक गुण होना चाहिए।"

"महाराज ! स्थविर पिण्डोल भारद्वाज ने कहा भी है:—
'नरक में भय और त्रास, निर्वाण में सुख ही सुख,
ये दोनों योगी को साफ साफ समझा देनी चाहिये ॥"

४७. बादुर के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि बादुर के दो गुण होने चाहिये वे दो गुण कौनसे है ?"

"१—महाराज ! बादुर घर के भीतर आ इधर उधर उड़ कर बिना कहीं ठहरे निकल जाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को भिक्षाटन के लिये गाँव में प्रवेश कर पिण्ड लेते हुये सीधे सीधे निकल जाना चाहिये—कहीं रुक रहना नहीं चाहिये। महाराज ! बादुर का यही पहला गुण होना चाहिये है।"

"२-महाराज ! फिर भी, बादुर दूसरों के घर में रहते हुये उनकी कोई हानि नहीं करता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को गृहस्थों के घर जा उन्हें बार बार याचना कर के तंग नहीं करना चाहिये, कोई फरमाइश नहीं करनी चाहिये, कोई बुरा हाव भाव नहीं दिखाना चाहिये, कुछ बकना झकना नहीं चाहिये, उनके साथ सुख दुःख दिखाना नहीं चाहिये, उनका कोई पछतावा भी नहीं करना चाहिये, और न उनके काम में कोई विघ्न देना चाहिये। किंतु, सदा उनकी वृद्धि की कामना करनी चाहिये। महाराज ! बादुर का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! दीघनिकाय के लक्खणसूत्र में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है :

"श्रद्धा से, शील से, विद्या से, बुद्धि से
त्याग से, अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे धर्मों से।
धन से, धान्य से, खेत से, मालअसबाब से
पुत्र से, स्त्री से, और मवेशी से ॥

जात बिरदरी से, मित्र से, बान्धवों से
बल से, सौन्दर्य से और सुख से।
लोग कैसे नहीं घटें!--वह यही चाहता है
सभी के लाभ और बढ़नी की शुभ इच्छा करता है ॥[1]"

४८. जोंक का एक गुण

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि जोंक का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है?"

"१-महाराज! जोंक जहाँ पकड़ता है वहीं अच्छी तरह खुन पीता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाला भिक्षु जिस विषय पर ध्यान लगाता है उस पर पूरा लग जाता है-उसके रूप, रंग, स्थान, फैलाव, घेराव, पहचान, चिन्ह सभी को जानता रहता है। इस तरह, ध्यान जमा कर वह विमुक्ति-रस को पीता है। महाराज! जोंक का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज! स्थविर अनुरुद्ध ने कहा भी है:-

"परिशुद्ध चित्त से ध्यान जमा कर
उस चित्त से विमुक्ति-रस पीना चाहिये"[2]

४९. साँप के तीन गुण

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं के साँप के तीन गुण होने चाहिये वे तीन गुण कौनसे हैं?"

"१-महाराज! साँप पेट के बल चलता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को प्रज्ञा के बल पर चलना चाहिये। महाराज! प्रज्ञा के बल पर चलने से उसे सत्य-ज्ञान प्राप्त होता है। वह भिक्षु के अनुकूल होने वाली चीजों को ग्रहण करता है--प्रतिकूल होने वाली चीजों को छोड़ देता है। महाराज! साँप का यही पहला गुण होना चाहिये है।"

"२-महाराज! फिर भी, साँप चलते हुये जड़ी-बूटी से बच कर चलता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को दुराचार से बच कर चलना चाहिये। महाराज! साँप का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३-महाराज! फिर भी, साँप मनुष्य को देखते ही डर कर घबड़ा जाता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बुरे विचारों में पड़ अपने को

१. दीघ निकाय ३१ वाँ सूत्र।
२. थेरी गाथा ५५; मज्झिम निकाय ११४

ब्रह्मचर्य-जीवन से ऊबता हुआ या डर कर घबड़ा जाना चाहिये-अरे ! आज के दिन मैं गफलत खा गया, इस हानि को पूरा नहीं किया जा सकता। महाराज ! साँप का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! भगवान् ने दो किन्नरों को भल्लाटिय जातक में कहा है:–

"हे शिकारी ! जो हम लोगों ने एक रात बिताई है,
अपनी अच्छा के विरुद्ध, एक दूसरे के ख्याल में,
उसी एक रात का पछतावा करते हुये
हम शोक करते हैं--वह रात फिर नहीं आवेगी।"

५०. अजगर का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि अजगर का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है ?"

"१--महाराज ! विशाल शरीर वाला बेचारा अजगर बहुत दिनों तक पेट भर आहार नहीं मिलने से भूखा पड़ा रहता है, तो भी थोड़ा बहुत खाकर जीता रहता है। वैसे ही, भिक्षाटन कर दूसरे के पिण्ड से पेट पालने वाले, अपने कुछ भी नहीं ले लेने वाले, भिक्षु को बराबर पेट भर आहार मिलना दुर्लभ है। अच्छे कुलपुत्र को तब चार कौर भोजन करके ही बकिये पेट को पानी से भर लेना चाहिये। महाराज ! अजगर का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! धर्म-सेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है:–

"गीला या सूखा कुछ भी खाते हुये
खूब कस कर नहीं खा लेना चाहिये।
खाली पेट, या थोड़ा ही खा कर
रहने वाला बन, भिक्षु प्रव्रजित होवे ॥
चार या पाँच कौर खाने के बाद
कुछ न मिले तो पानी पी ले।
आत्म-संयत भिक्षु के लिये
बस, वही काफी है[1] ॥"

पाँचवाँ वर्ग समाप्त

---

१. थेर गाथा ९८२–९८३

५१. मकडे का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि मकड़े का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है?"

"१–महाराज ! मकड़ा रास्ते में अपना जाल फैला कर बैठा रहता है। यदि कोई कीड़ा, मक्खी या पतंगा जाल में फँस जाता है तो वह उसे पकड़ कर खा जाता है, वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को छः द्वारों में स्मृतिप्रस्थान का जाल फैला कर बैठे रहना चाहिये–यदि उसमें कोई क्लेश बझ जाय तो झट उसे पकड़ कर वहीं मार देना चाहिये। महाराज ! मकड़े का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! स्थविर अनुरुद्ध ने कहा भी है:–

"छः द्वारों से चित्त को रोक रखना चाहिये,
श्रेष्ठ और उत्तम स्मृतिप्रस्थान के द्वारा।
यदि उसमें कोई क्लेश पड़ज ाय
तो ज्ञानी को उसे मार देना चाहिये।"

५२. दुधपीवा बच्चा का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि दुधपीवा बच्चा का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या है?"

"१–महाराज ! दुधपीवा बच्चे को बस केवल अपनी ही परवाह रहती है, दूध पीने के लिये रोता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बस केवल अच्छे उद्देश्य की ही परवाह होनी चाहिये। उपदेश देने में, धर्म की चर्चा करने में अपनी चालचलन में, एकान्त सेवन में, गुरुजनों के सहवास में, सत्संग करने में, सभी जगह ऊँचे धर्म-ज्ञान प्राप्त करने का ही एक उद्देश्य बनाये रखना चाहिये। महाराज ! दुधपीवा बच्चा का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! दीघनिकाय के परिनिर्वाण सूत्र में देवातिदेव भगवान ने कहा है–

"आनन्द ! सुनो, अच्छे उद्देश्य की चेष्टा करो, उसी में लग जाओ ! बिना गफलत किये, संयत हो, अपने आप को वश में किये ऊँचे और अच्छे उद्देश्य की धुन में लगा रहना चाहिये।"

५३. चित्रकधर कछुये का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि चित्रकधर कछुये का एक गुण होना चाहिये वह एक गुण क्या हैं?"

"१-महाराज ! चित्रकधर कछुआ जल में होने वाले भय के कारण जल से बाहर निकल कर घूमता है, उस से उसकी आयु काम नहीं होती। वैसेही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को प्रमाद (= गफलत) में भय देखना चाहिये, और अप्रमाद में बहुत गुण। उस तरह, वह अपने भिक्षु भाव में नहीं कमता। वह निर्वाण के पास चला जाता है। महाराज ! चित्रकधर कछुये का यही एक गुण होना चाहिये। महाराज ! धर्मपद में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है :-"

"अप्रमाद में लगा हुआ भिक्षु प्रमाद में भय देखे,
वह गिर नहीं सकता, निर्वाण के पास ही जाता हैं ॥[1]"

५४. जंगल के पांच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि जंगल के पाँच गुण होने चाहिये वे पाँच गुण कौनसे हैं ?"

"१-महाराज ! जंगल बदमाशों के छिपने की जगह है। वैसे ही, योग साधन करने वाले भिक्षु को दूसरों के अपराध या दोष को छिपा देना चाहिये, उसका भंड़ाफोड़ देना नहीं चाहिये। महाराज ! जंगल का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२-महाराज ! फिर, जंगल बहुत लोगों से खाली रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु का मन राग, द्वेष; मोह, मान, क्लेश और आत्मदृष्टि के जंजाल से खाली होना चाहिये। महाराज ! जंगल का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३-महाराज ! फिर, जंगल एकान्त स्थान होता है, लोगों के हल्लागुल्ला से रहित होता है। वैसे, ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को पाप, बुरे और नीच धर्मो से रहित होना चाहिये। महाराज ! जंगल का यही तीसरा गुण होना चाहिये।"

"४-महाराज ! फिर, जंगल शान्त और शुद्ध होता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षुको शान्त, शुद्ध, नम्र और अभिमान रहित होना चाहिये। महाराज ! जंगल का यही चौथा गुण होना चाहिये।"

"५-महाराज ! फिर, जंगल साधु, मुनि के रहने का स्थान है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को साधु, मुनि की संगति में रहना चाहिये। महाराज ! जंगल का यही पाँचवाँ गुण होना चाहिये। महाराज ! संयुक्त निकाय में देवातिदेव भगवान ने कहा भी है -

१. धम्मपद-अप्पमादवग्ग ३२

"एकान्त में रहने वाले सत्पुरुषों के साथ,
जो संयम-शील, और ध्यान करने वाले
उत्साही, और पण्डित हो,
सदा सहवास करे ।।"

५५–वृक्ष के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि वृक्ष के तीन गुण होने चाहिये वे तीन गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! गाछ में फूल और फल लगते है । वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने विमुक्ति के फूल और श्रामण्य के फल लगाने चाहिये। महाराज ! गाछ का यही पहला गुण होना चाहिये ।"

"२–महाराज ! फिर, गाछ अपने नीचे आकर बैंड़े हुये लोगों को छाया देता है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने पास आये हुये लोगों को सत्कार-पूर्वक उनकी काम की चीजों को देना और धर्म सुनाना चाहिये । महाराज ! गाछ का यही दूसरा गुण होना चाहिये ।"

"३–महाराज ! गाछ अपनी छाया देने में भेद-भाव नहीं रखता। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को सभी लोगों के प्रति बिना भेद-भाव के समान रूप से बरतना चाहिये । चोर, जल्लाद, शत्रु और अपने लोगों के प्रति समान रूप से मैत्री भावना करनी चाहिये। ये लोग वैर, हिंसा, क्रोध और पाप विचारों से छूट जायँ। महाराज ! गाछ का यही तीसरा गुण होना चाहिये । महाराज ! धर्म-सेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है:–

"अपनी हत्या करने पर तुले देवदत्त के प्रति,
चोर अंगुलिमाल के प्रति ।
धनपाल हाथी के प्रति, और पुत्र राहुल के प्रति,
सभी के प्रति मुनि समान थे ।।"

५६–बादल के पाँच गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि बादल के पाँच गुण होने चाहिये वे पाँच गुण कौनसे है ?"

"१–महाराज ! बादल बरस कर धुल गर्द को बैठा देता हैं । वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को अपने मन में उठे क्लेश दबा देने चाहिये । महाराज !

बादल का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर, बादल बरस कर जमीन की गर्मी को ठंडा कर देता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को मैत्री–भावना से देवताओं और मनुष्यों के साथ इस संसार को शीतल बनाये रखना चाहिये। महाराज ! बादल का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३–महाराज ! फिर, बादल बरस कर बीज को उगा देता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को लोगों में श्रद्धा का बीज बोकर उसमें तीन सम्पत्तियों को उगा देना चाहिये–दिव्यसम्पत्ति, मनुष्य–सम्पत्ति और परमार्थ निर्वाण-सम्पत्ति महाराज ! बादल का यही तीसरा गुण होना चाहिये।

"४–महाराज ! फिर, बादल अपने ठीक समय में उठ कर जमीन पर होने वाले घास, वृक्ष, लता, झाड, जड़ी-बूटी और वनस्पतियों की रक्षा करता है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को मनन करते हुये भिक्षुव्रत का पालन करना चाहिये। मनन करने के अभ्यास पर ही सभी पुण्य धर्म टिके रहते है। महाराज ! बादल का यही चौथा गुण होना चाहिये।"

"५–महाराज ! बादल बरसने पर पानी के धार चलने से नदी, तालाब, बावली, कन्दरा, गर्त, सरोवर, बिल और कूवें सभी लबालब भर जाते हैं। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को धर्म का मेघ बरसा कर जिज्ञासुओं के मन को पूरा कर देना चाहिये। महाराज ! बादल का यही पाँचवा गुण है। महाराज ! धर्म सेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है:–

> "सौ और हजार योजन दूर भी किसी जिज्ञासु जन को देख,
> उसी क्षण वहाँ जाकर महामुनि उसे धर्मोपदेश देते हैं।"

५७-मणि-रत्न के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि मणि-रत्न के तीन गुण होने चाहिये। वे तीन गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! मणि-रत्न बिल्कुल शुद्ध होता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बिलकुल शुद्ध जीविका का होना चाहिये। महाराज ! मणि-रत्न का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर, मणि-रत्न किसी दूसरे पदार्थ में नहीं मिलाया जा सकता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बुरे मित्रों में नहीं मिलना चाहिये। महाराज ! मणि-रत्न का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३– महाराज ! फिर, मणि-रत्न दूसरे बहुमूल्य रत्नों के साथ ही रक्खा जाता है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को उत्तम और श्रेष्ठ पुरुषों के साथ वास करना चाहिये–जिन्होंने सच्चे मार्ग को पकड़ लिया है, जो फल पर स्थिर हो गये हैं, जो शैक्ष्य हो चुके हैं, जो स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, या अर्हत् के पद पर पहुँच चुके हैं, जो तीनों विद्या, छः अभिज्ञा भाव इत्यादि रत्नों से युक्त हैं। महाराज ! मणि-रत्न का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने सुत्तनिपात में कहा है–

"सदा ख्याल बनाये रख,
शुद्ध पुरुषों को शुद्ध पुरुषों के साथ ही रहना चाहिये,
वे ज्ञानी के साथ रह कर
अपने दुःखों का अन्त कर देगें ॥[1]"

५८. व्याधा के चार गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि व्याधा के चार गुण होने चाहिये वे चार गुण कौनसे है ?"

"१–महाराज ! व्याधा जल्द थकता नहीं है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को थकना नहीं चाहिये। महाराज ! व्याधा का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर, व्याधा मृगों की ताक में अपने चित्त को लगा रखता है। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने ध्यान में ही चित्त लगाये रहना चाहिये। महाराज ! व्याधा का यही दूसरा गुण होना चाहिये।

"३–महाराज ! फिर, व्याधा अपने काम का उचित काल जानता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को एकान्त में आसन लगाने का उचित काल जानना चाहिये–यह आसन लगाने का काल है और यह आसन से उठ जाने का। महाराज ! व्याधा का यही तीसरा गुण होना चाहिये।"

"४–महाराज ! फिर, व्याधा मृग को देख कर खुश हो जाता है– इसे लूँगा वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को ध्यान करने के आलम्बन को देख कर भीतर ही भीतर प्रसन्न हो जाना चाहिये–इस पर अभ्यास कर के मैं आगे की अवस्था को प्राप्त करूँगा। महाराज ! व्याधा का यही चौथा गुण होना चाहिये। महाराज ! स्थविर मोघराज ने कहा भी है–

१ सुत्तनिपात गाथा २८२

"आलम्बन को पा कर ध्यान में रत करने वाला भिक्षु,

अत्यन्त प्रसन्न होता है, इसके ऊपर की अवस्था को प्राप्त करूँगा।"

५९--मछुये के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि मछुये के दो गुण होने चाहिये। वे दो गुण कौनसे है ?"

"१–महाराज ? मछुआ बंसी फेंक कर मछली बझा लेता है। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को ऊार के श्रामण्य-फल से अपने ज्ञान को बंसी से बझा लेने चाहिये। महाराज ! मछुये का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! मछुआ थोड़ा सा चारा फेंक कर बड़ी बड़ी मछलियाँ निकाल लेता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने सांसारिक उपभोग का त्याग कर देना चाहिये। इस अपने सांसारिक उपभोग का त्याग करके वह बड़े श्रामण्य-फल को पा लेता है। महराज ! मछुये का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! स्थविर राहुल ने कहा भी है–

"संसार के उपभोगों को छोड़,

वह चार फल और छः अभिज्ञा,

तथा निर्वाण को भी पा लेता है

जो अनिमित, अप्रणिहित और शून्य है॥"

६०. बढ़ई के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि बढ़ई के दो गुण होने चाहिये वे दो गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! बढ़ई काले धागे से निशान देकर वृक्ष को काटता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को बुद्ध के उपदेश की निशान दे, शील की जमीन पर खड़ा हो, श्रद्धा के हाथ से, प्रज्ञा के बंसुले को ले, क्लेश के वृक्ष को काट देना चाहिये। महाराज ! बढ़ई का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! बढ़ई वृक्ष के छाड़न को हटा कर हीर को ले लेता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को इन व्यर्थ के विवाद में नहीं पड़ना चाहिए कि–शाश्वतवाद ठीक है या उच्छेद वाद; क्या जो जीव है वही शरीर है, या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है; यह अच्छा है, वह अच्छा है; बिना किसी से बनाया गया है, यह हो नहीं सकता; मनुष्य कुछ नहीं कर सकता है; ब्रह्मचर्य व्रत का कोई मतलब नहीं है; जीव नष्ट हो जाता है, फिर नया जीवन उत्पन्न होता है; संस्कार नित्य

होते हैं; जो करता है वही भोगता है; करता दूसरा है और भोगता दूसरा; कर्म के विषय में और भी दूसरी गलत धारणायें हैं इत्यादि। ये और इसी प्रकार के दूसरे व्यर्थ के विवादों को हटा कर संस्कारों के अत्यन्त शून्य और निःसार स्वभाव को पकड़ लेना चाहिए। महाराज ! बढ़ई का यही [दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! सुत्तनिपात में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है:–

"भुस्सी को फटक कर निकाल दो,
कंकरों को चुन चुन कर बाहर कर दो।
अपने को साधु बताने वाले नकली साधु को,
और व्यर्थ के विवाद को दूर करो॥
पापी लोगों को और बुरे विचारों को हटा,
शुद्ध पुरुषों को स्मृतिमान् हो शुद्ध पुरुषों के साथ साथ ही रहना चाहिए॥"

छठा वर्ग समाप्त

------

६१. घडे का एक गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि घड़े का एक गुण होना चाहिए वह एक गुण क्या है ?"

"१–महाराज ! घड़ा भरे रहने पर शब्द नहीं करता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को श्रमण-भाव की अन्तिम सीमा तक पहुँच और धर्म का धुरन्धर विद्वान बन कर भी इतराना नहीं चाहिये-उससे अभिमान नहीं करना चाहिये, ड़ींगें नहीं मारनी चाहिये किंतु, सरल, शान्त और कम बोलने वाला होना चाहिये। महाराज ! घड़े का यही एक गुण है। महाराज ! सुत्तनिपात में देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है:–

"खाली ही बजता है,
पूरा चुप रहता है।
मूर्ख खाली घड़े के समान है,
पण्डित भरे हुये सरोवर के समान[1]॥"

---

१. सुत्तनिपात, गाथा ७२१

६२. कलहंस के दो गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि कलहंस के दो गुण होने चाहिये वे दो गुण कौनसे हैं ?"

"१—महाराज ! कलहंस सोने पर भी अपने शरीर को सम्भाले खड़ा रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को सदा तत्परता से मनन करते रहना चाहिये। महाराज ! कलहंस का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२—महाराज ! फिर भी, कलहंस एक बार जो पानी पी लेता है उसे नहीं उगलता। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को एक बार जो श्रद्धा हो गई उसे कभी नहीं जाने देना चाहिये—वे सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् बड़े महान् हैं, धर्म स्वाख्यात है, संघ अच्छे मार्ग पर आरूढ़ है; रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, संस्कार अनित्य है, विज्ञान अनित्य है—एसा ज्ञान जो एक बार उत्पन्न हो गया उसे फिर कभी छोड़ना नहीं चाहिये। महाराज ! कलहंस का यही दूसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है :—

"जो पुरुष ज्ञान का दर्शन कर के परिशुद्ध हो गया है
बुद्ध धर्म के अनुसार चल कर जो पहुंचा हुआ है
परम-पद का केवल एक बड़ा हिस्सा नहीं
बलिक उसे पूरा पूरा वह पा लेता है ॥"

६३. छत्र के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि छत्र के तीन गुण होने चाहिये वे तीन गुण कौनसे हैं।"

"१—महाराज ! छत्र माथे के ऊपर डोलता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को क्लेशों के ऊपर ही ऊपर रहना चाहिये। महाराज ! छत्र का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२—महाराज ! फिर, छत्र डण्डे से माथा के ऊपर थामा रहता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को उचित रूप से मनन करके के अभ्यास से अपने को थामे रहना चाहिये। महाराज ! छत्र का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३—महाराज ! फिर, छत्र हवा, गर्मी और पानी को रोकता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को भिन्न भिन्न श्रमण और ब्राह्मणों के अनेकानेक सिद्धान्त की हवा को, तीन प्रकार की आग (राग, द्वेष, मोह) के संताप को, और

क्लेश की वर्षा को रोक देना चाहिये। महाराज! छत्र का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! धर्म सेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है :—

"जैसे बिना छिद्र वाला, दृढ़ थामा हुआ, बड़ा छत्र
हवा, गर्मी और बर्सात को रोकता है,
वैसे ही, पवित्रात्मा बुद्ध-पुत्र शील के छत्र को धारण करता है
जो क्लेश की बर्सात को और तीन प्रकार की आग के संताप को
रोकता है।।"

६४. खेत के तीन गुण

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि खेत के तीन गुण होने चाहिये वे तीन गुण कौनसे हैं?"

"१—महाराज! खेत नहरों से पटाई जाती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने व्रतनियमों का पालन करते हुये मातृका के नहरों से युक्त होना चाहियें।"

"२—महाराज! फिर, खेत में क्यारियाँ बँधी रहती हैं; उन क्यारियों से पानी को रोक कर धान पुष्ट किया जाता है। वैसे, ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को शील और लज्जा की मर्यादा से बँधा होना चाहिये; उस बाँध में भिक्षु-भाव को रोक चार श्रामण्य-फलों को पुष्ट कर लेना चाहिये। महाराज! खेत का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३—महाराज! खेत धान के बालों से लद जाता है; उसे देख खेतिहर आनन्द से भर जाता है—थोड़ा बीज बोने से बहुत धान होता है, बहुत बोने से और भी बहुत। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को उत्साहपूर्वक अच्छे अच्छे गुणों को अपने में उत्पन्न कर लेना चाहिये। दायकों को प्रसन्न रखना चाहिये—थोड़ा दिया बहुत होता है, बहुत दिया और भी बहुत होगा। महाराज! खेत का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज! विनय पिटक के आचार्य स्थविर उपाली ने कहा भी है:—

"बहुत फल लगने वाले खेत के समान होना चाहिये।
यही सब से उत्तम खेत है, थोड़ा देने से बहुत फल देता है।।"

६५. दवा के दो गुण

"भन्ते नागसेन! आप जो कहते हैं कि दवा के दो गुण होने चाहिये वे दो गुण कौनसे हैं?"

"१–महाराज ! दवा में कीड़े नहीं पड़ने। वैसे ही योगसाधन करने वाले भिक्षु को मन में क्लेश नहीं पड़ने देना चाहिये। महाराज ! दवा का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर, दवा डँसे गये, छू दिये, देखे, खाये, पीये, निगले, या चाटे सभी तरह के जहर को दूर करती है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को राग, द्वेष, मोह, अभिमान और आत्मदृष्टि सभी के जहर को मार देना चाहिये। महाराज ! दवा का यही दूसरा गुण है। महाराज ! देवातिदेव भगवान् ने कहा भी है –

"जो योगी संस्कारों के स्वभाव को देखने की इच्छा रखता हो,
उसे क्लेश के विष को पहले मार देना चाहिये।"

६६. भोजन के तीन गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि भोजन के तीन गुण होने चाहिये वे तीन गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! भोजन सभी जीवों का आधार है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को सभी जीवों को निर्वाण के मार्ग पर चलने में आधार देना चाहिये। महाराज ! भोजन का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर, भोजन जीवों के बल की वृद्धि करता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को पुण्य की वृद्धि करनी चाहिये। महाराज ! भोजन का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३–महाराज ! फिर, भोजन को सभी लोग पसन्द करते हैं। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को सभी लोगों का प्रिय होना चाहिये। महाराज ! भोजन का यही तीसरा गुण होना चाहिये। महाराज ! स्थविर महामोग्लान ने कहा भी है –

"संयम से, नियम से,
शील से और व्रत–पालन से
योगी को सभी लोगों का
प्रिय बनकर रहना चाहिये॥"

६७. तीरन्दाज के चार गुण

"भन्ते नागसेन ! आप जो कहते हैं कि तीरन्दाज के चार गुण होने चाहिये वे चार गुण कौनसे हैं ?"

"१–महाराज ! तीरन्दाज तीर चलाने के लिये अपने पैरों को जमीन पर ठीक से जमाता है, घुटनों को सीधा करता है, तूणीर को कमर से आड़ दे कर स्थिर रखता है, सारे शरीर को रोक लेता है, एक हाथ से धनुष पकड़ता है और दूसरे से तीर चढ़ा लेता है, मुठ्ठी को कस कर दबाता है, अंगुलियों को सटा लेता है, गला खींच लेता है, मुँह बन्द कर लेता है, एक आँख लगा लेता है, निशाना सीधा करता है और इतमिनान करता है कि मार ही दूँगा। महाराज ! वैसे ही, योगसाधन करने वाला योगी शील की पृथ्वी पर वीर्य के पैरों को जमाता है, क्षमाशीलता और दया को सीधा करता है, संयम में चित्त को आड़ देता है, संयम नियमों से अपने को रोक रखता है, इच्छा और उत्कण्ठा को दबा देता है, मनन करने के अभ्यास से चित्त को लगा लेता है, उत्साह को खींच लेता है, छः दरवाजों को बन्द कर लेता है, ख्याल को जगा लेता है, और इतमिनान करता है कि ज्ञान के तीर से क्लेशों को बेध ही दूँगा। महाराज ! तीरन्दाज का यही पहला गुण होना चाहिये।"

"२–महाराज ! फिर, तीरन्दाज अपने पास एक आलक रखता है, जिससे टेढ़े कुबड़े तीर को सीधा कर लेता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने टेढ़े कुबड़े चित्त को सीधा करने के लिये स्मृति-प्रस्थान का आलक साथ में बराबर रखना चाहिये। महाराज ! तीरन्दाज का यही दूसरा गुण होना चाहिये।"

"३–महाराज ! तीरन्दाज लक्ष्य बना कर उसी पर अभ्यास करता है। वैसे ही, योगसाधन करने वाले भिक्षु को अपने शरीर पर मनन करने का अभ्यास करना चाहिये। महाराज ! शरीर पर मनन करने का अभ्यास कैसे करना चाहिये ?" "यह शरीर अनित्य है, दुःख है, अनात्म है, रोग का घर है, कष्ट है पीड़ाजनक है, पापी है, बाधा वाला है, अपना बनकर रहने वाला नहीं है, मर जाने वाला है, विघ्नों से भरा है, इसमें बड़े बड़े उपद्रव होते हैं, इस में भय ही भय है, मनहूस है, चञ्चल है, क्षणभंगुर है, अध्रुव है, असहाय है, अशरण है, निःसार है, शून्य है, दोषों वाला है, असार है, मारने वाला है, संस्कार हैं, उत्पन्न होने वाला है, बूढ़ा होने वाला है, बीमार पड़ने वाला है, मर जाने वाला है, शोक देने वाला है, परिदेव वाला है, केवल परेशानी देने वाला है, क्लेश देने वाला है,"–ऐसा ही मनन करना चाहिये। महाराज ! योगसाधन करने वाले भिक्षु को इसी तरह मनन करने का अभ्यास करना चाहिये। महाराज ! तीरन्दाज का यही तीसरा गुण होना चाहिये।"

"४–महाराज ! तीरन्दाज साँझ और सुबह अभ्यास करता है। वैसे ही, योग-साधन करने वाले भिक्षु को साँझ सुबह ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। महाराज !

तीरन्दाज का यही चौथा गुण होना चाहिये। महाराज ! धर्म–सेनापति स्थविर सारिपुत्र ने कहा भी है –"

"जैसे तीरन्दाज साँझ सुबह अभ्यास करता है,
अभ्यास को नहीं छोड़ने से वेतन और भत्ता पाता है॥
वैसे ही, बुद्धपुत्रों को अपने शरीर पर मनन करने का अभ्यास करना चाहिये।
शरीर पर मनन करने के अभ्यास को नहीं छोड़ कर अर्हत्-पद पाता है॥"

उपमा–कथा–प्रश्न समाप्त

राजा मिलिन्द के दो सौ बासठ प्रश्नों का यह ग्रन्थ जो आगे से चला आता है छः काण्ड़ों में समाप्त होता है जो बाइस वर्गों से सजे हैं। बेआलिस प्रश्न ऐसे हैं जो लुप्त हो गये हैं जो मिलते हैं और जो लुप्त हो गये हैं दोनों को मिला देने से तीन सौ चार प्रश्न होते हैं। सभी मिलिन्द–प्रश्न के नाम से पुकारे जाते हैं।

राजा और स्थविर के प्रश्नोत्तर समाप्त हो जाने पर चौरासी लाख योजन फैली हुई और समुद्र से घिरी हुई, यह पृथ्वी छः बार कांप उठी, बिजली चमक उठी, देवताओंने दिव्य पुष्प बरसाया, महाब्रह्मा साधुकार देने लगे, और महासमुद्र के पेट में बादल गरजने की सी गड़गड़ाहट आने लगी। इस कौतूहल को देख राजा मिलिन्द ने अपने परिवार के साथ स्थविर नागसेन को हाथ जोड़ और शिर टेक कर प्रणाम किया।

"राजा मिलिन्द का हृदय आनन्द से भर गया। सारा अभिमान चूर चूर हो गया। बुद्ध–धर्म कितना ऊँचा और सत्य है इसका पता लग गया। त्रिरत्न (बुद्ध-धर्म-संघ) के विषय में जितनी शंकायें थीं सभी मिट गईं। सारी उलझन सुलझ गई। पूरा विश्वास हो गया। स्थविर के गुण प्रव्रज्या और आचार विचार देख गद्गद् हो गया। हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो गई और बड़ी नम्रता चली आई। दाँत तोड़ लिये गये साँप की तरह राजा बोला, "साधु, साधु भन्ते नागसेन ! स्वयं बुद्ध से पूछे जानेलायक प्रश्नों का आपने उत्तर दे दिया। इस बुद्ध शासन में धर्म-सेनापति सारिपुत्र को छोड़ दूसरा कोई भी आपके ऐसा धर्म के विषय में किये जाने वालों प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता है। भन्ते नागसेन ! मेरे अपराधों को क्षमा कर दें। भन्ते नागसेन ! आज से ले कर जन्म भर के लिये मुझे अपना उपासक स्वीकार करें।"

तब, राजाने अपने सरदारों के साथ नागसेन की बड़ी प्रतिष्ठा की। 'मिलिन्द' नाम का वहाँ पर एक विहार बनवा दिया। उसे स्थविर नागसेन को भेंट कर, उसमें करोड़ क्षीणाश्रव भिक्षुओं को ठहरा उन्हें चार प्रत्ययों से सेवा करने लगा।

इस के बाद, स्थविर की प्रज्ञा से उस की श्रद्धा और भी बढ़ गई। अन्त में राज्य का भार अपने पुत्र को सौंप कर राजा मिलिन्द घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया और विदर्शना को बढ़ाते हुये अर्हद-पद पा लिया।

इस लिये कहा गया है –

"संसार में प्रज्ञा ही प्रशस्त हैं,
और धर्म में टिका देने वाला उपदेश;
प्रज्ञा से सारे संदेह हट जाते हैं,
उससे पण्डित शान्त-पद पाते हैं॥

जिसमें प्रज्ञा जम गई है
और स्मृति भी कम नहीं है
वही विशेष पूजा पाने के योग्य है,
वही श्रेष्ठ और अलौकिक है॥

इसलिये पण्डित की सेवा करनी चाहिये,
अपनी भलाई को दृष्टि में रख कर
मन्दिर और गिरजे की तरह मान
ज्ञानी की पूजा और सेवा करनी चाहिये॥"

मिलिन्द और स्थविर नागसेन के प्रश्नोत्तर समाप्त हो गये॥



परिशिष्ट १

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

बोधिनी

पहला परिच्छेद

ऊपरी कथा

1–3 सूत्र, विनय और अभिधम्म–बुद्ध–धर्म के मौलिक ग्रन्थ त्रिपिटक (=तिपिटक) के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थों में भगवान् बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है। भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश मागधी (=पाली) में दिये थे जो उस समय बोलचाल की भाषा थी, अतः ये ग्रन्थ उसी भाषा में लिखे गये हैं। त्रिपिटक का संग्रह कब और कैसे हुआ इसका विशद् वर्णन हमारे जेष्ठ गुरुभाई सांकृत्यायन जी ने अपनी 'बुद्धचर्या' नामक पुस्तक की भूमिका में कर दिया हैं।

'पिटक' शब्द का अर्थ हैं 'पिटारी; अतः 'त्रिपिटक' शब्द का अर्थ हुआ 'तीन पिटारी'। यह तीन पिटक हैं–(१) सुत्त (=सूत्र), (२) विनय, और (३) अभिधम्म (=अभिधर्म)। ऐसा अनुमान हैं कि यह तीन पिटक इसाइयों के 'बाइबल' से ग्यारह गुना अधिक होगा। भगवान ने भिन्न भिन्न स्थानों पर, भिन्न–भिन्न लोगों को, भिन्न-भिन्न परिस्थितीयों में जो उपदेश दिये थे उनका संग्रह सूत्र पिटक में किया गया हैं। विनय पिटक में भिक्षुओं के रहने–सहने के नियमों का संग्रह है–आचार्य के प्रति कर्तव्य, शिष्य के प्रति कर्तव्य, गुरुभाई के प्रति कर्तव्य, मठ में रहने के नियम इत्यादि। अभिधम्म पिटक के ग्रन्थ बडे गूढ और गम्भीर है। सूत्रों में जिस दर्शन को भगवान् ने सरल ढ़ँग से कहा हैं उसी को विश्लेषणात्मक रूप से पारिभाषिक शब्दों में यहाँ साफ किया गया है। उसका महत्त्व बड़ा है। बिना अभिधर्म पढ़े बुद्ध–धर्म का पक्का ज्ञान नहीं हो सकता है। इनमें चार धातुओं का वर्णन है–(१) चित्त, (२) चैतसिक (३) रूप, और (४) निर्वाण। चित्त (consciousness) के विश्लेषण बड़े अच्छे हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के साथ उसका अध्ययन बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। धम्म-संगनी पर अट्ठ सालिनी नामक भाष्य लिखते हुये आचार्य बुद्धघोष लिखते हैं कि "अभिधम्म (अभि+धर्म=धर्म के ऊपर) में कोई नई बात नहीं कही गई हैं जो सुत्तों में न आ गई हो।"

१. सूत्र पिटक में भगवान् के उपदेश के अलावे सारिपुत्र, आनन्द, मोग्गलान इत्यादि उनके प्रधान शिष्यों के भी उपदेश हैं। वह निम्न पाँच निकायों में विभक्त हैं –

१–दीर्घ-निकाय (=दीर्घ)	३४ सूत्र
२–मज्झिम-निकाय (=मध्यम)	१५२ सूत्र
३–संयुक्त-निकाय (=संयुक्त)	५६ संयुक्त
४–अंगुतर-निकाय (=अंगोत्तर)	११ निपात
५–खुद्दक-निकाय (=क्षुद्रक)	१५ ग्रंथ

खुद्दक-निकाय के १५ ग्रंथ ये हैं–

१–खुद्दक पाठ	९–थेरी-गाथा
२–धम्मपद	१०–जातक (५५० कथायें)
३–उदान	११–निद्देस (चुल्ल, महा)
४–इतिवुत्तक	१२–पटिसम्भिदा मग्ग
५-सुत्तनिपात	१३–अपदान
६–विमानवत्थु	१४–बुद्ध वंस
७–पेत वत्थु	१५–चरियापिटक
८–थेरगाथा	

२. विनय पिटक के भाग यह हैं–

१–विभंग	१. पाराजिक २. पाचित्तिय
२-खन्धक	१. महावग्ग २. चुल्लवग्ग
३–परिवार	

३. अभिधम्म पिटक के ग्रंथ–

१. धम्मसंगनी	५. कथावत्थु
२. विभंग	६. यमक
३. धातुकथा	७. पट्ठान
४. पुग्गलपञ्जत्ति	

अभिधम्म विनयोगाल्हा सुत्तजाल समत्तिता–इस पुस्तक में इन तीनों पिटकों की गम्भीर बातों को खोल कर समझाया गया है।"

४. भगवान काश्यप–गौतम बुद्ध के आगे भी अनेक बुद्ध हो गये हैं। जातक अट्ठकथा में उनके पूरे पूरे वर्णन आते हैं–उनके नाम, गोत्र, वर्ण, स्थान, माता पिता के नाम, अग्रश्रावकों के नाम इत्यादि। २८ बुद्धों के नाम यथाक्रम यों हैं––(१) तनहंकर, (२) मेधाङ्कर, (३) शरणाँकर, (४) दीपाँकर (५) कोंडन्य, (६) मंगल, (७) सुमन, (८) रेवत, (९) शोभित, (१०) अनोमदस्सी, (११) पदुम, (१२) नारद, (१३) पदुमुत्तर, (१४) सुमेध, (१५) सुजात, (१६) पियदस्सी, (१७) अथ्यदस्सी (१८) धम्मदस्सी, (१९) सिद्धार्थ, (२०) तिस्स, (२१) फुस्स, (२२) विपस्सी, (२३) सिखी, (२४) वेश्म, (२५) ककुसन्ध, (२६) कोना गमन, (२७) कस्सप और (२८) गोतम। गौतम बुद्ध के बाद जो बुद्ध होंगे उनका नाम "मैत्रेय बुद्ध" है। सभी बुद्धों ने एक ही सत्य (=चार आर्य सत्य और आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग) को घोषित किया है।

एक बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद से दूसरे बुद्ध के होने तक की अवधि को 'बुद्धन्तर' कहते हैं।

पूर्व योग की यह कथा कस्सप बुद्ध (२७ वें) के शासन-काल की हैं।

५. भिक्षु और श्रामणेर–प्रव्रजित हो, कषाय वस्त्र धारण कर लेने पर वह श्रामणेर कहा जाता है। इस समय वह बौद्ध–साहित्य का अध्ययन करता है। उसे अपने गुरु की सेवा करते हुये दश शीलों का व्रत लेना होता है–

(१) पाणानिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि–जीवहिंसा से मैं विरत रहूँगा, मैं इसका व्रत लेता हूँ।

(२) अदिन्नादाना –चोरी करने से मैं विरत रहूँगा।

(३) अब्रह्मचरिया –ब्रह्मचर्य-व्रत को भंग न होने देने का व्रत लेता हूँ।

(४) मुसावादा –झूठ बोलने से मैं विरत रहूँगा।

(५) सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना–नशा के सेवन से बिरत रहूँगा।

(६) विकाल भोजना –दोपहर के बाद भोजन करने से विरत रहूँगा।

(७) नच्चगीतवादितविसूकदस्सना – नाचने, गाने, बजाने और अश्लील हाव-भाव के देखने से विरत रहूँगा।

(८) मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसणट्ठाना –माला, गन्ध तथा उबटन के प्रयोग से अपने शरीर को सुन्दर बनाने की चेष्टा से विरत रहूँगा।

(९) उच्चासयनमहासयना –ऊँचे और ठाट बाट की शय्या पर सोने से विरत रहूँगा।

(१०) जातरूपरजतपटि्ठग्गहणा-सोने चाँदी के रखने से विरत रहुँगा।

जब श्रामणेर बीस साल के ऊपर का हो जाता है और धर्म को कुछ समझ लेता है तो उसका उपसम्पदा–संस्कार किया जाता है। इस उपसम्पदा संस्कार के बाद वह भिक्षु कहा जाता है।

संघ के बैठने पर उपसम्पदा का प्रार्थी श्रामणेर वहाँ उपस्थित होता है। पहले संघ के बीच उसकी परीक्षा होती है कि यथार्थ में उसने धर्म का अध्ययन किया है या नहीं। पास होने पर उसे संघ में लिया जाता है और वह अपने को भिक्षु कह सकता है। यही उपसम्पदा संस्कार कहा जाता है। विशेष विवरण के लिये 'विनय पिटक' देखिये।

६. बुद्धान्तर–देखो 4

७. महापरिनिर्वाण:–बुद्ध का शरीर-त्याग। बुद्ध अपने शरीर-त्याग के बाद आवागमन से मुक्त हो जाते हैं। जीवन-प्रवाह सदा के लिये बन्द हो जाता है, उपादान का बिलकुल अन्त हो जाता है।

८. जम्बूद्वीप:–भारतवर्ष का प्राचीतम नाम जम्बूद्वीप है। अभी तक लंका में लोग भारतवर्ष को 'दमदिव' के नाम से पुकारते हैं, जो 'जम्बूद्वीप' का अपभ्रंश है।

९. तीर्थङ्करः–उस समय भिन्न-भिन्न मतों को चलाने वाले अनेक आचार्य उठ खडे हुये थे, जिनका मत एक दूसरे से बिलकुल विपरीत था। ये आचार्य अपने लोंचे की बड़ी बड़ी मण्डली के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे। इन्हीं का नाम तीर्थङ्कर था। इस पुस्तक में पूरण कस्सप, मक्कली गोसाल इत्यादि छः तीर्थङ्करों के नाम आते हैं जिनसे राजा मिलिन्द की भेंट हुई थी।

'दीघ निकाय' के 'श्रामण्यफल–सूत्र' में भी इन छ: तीर्थङ्करों के नाम आते हैं जिनसे राजा अज्ञातशत्रू ने जा कर प्रश्न पूछे थे। मालूम होता है कि इनकी अपनी अपनी गद्दियाँ इन्हीं नामों से चलती होगी, जैसे भारतवर्ष में 'शङ्कराचार्य' की गद्दी अभी तक बती है किंतु इन गद्दियों का कब आरम्भ हुआ और कब अन्त इसका पता नहीं। हो सकता है कि ये तीर्थङ्कर भगवान् बुद्ध के पहले से भी चले आते हों।

१०. लोकायत वितण्डवादी:–इनके मत के अनुसार स्वर्ग या नरक कुछ नहीं था। ये पूर्णत: जड़वादी थे। ये संसार को ही सब कुछ मानते थे। इनके अनुसार प्रत्यक्ष-प्रमाण ही एक प्रमाण था।

११. पूरण काश्यप इत्यादि:–देखो ८।२ इन तीर्थङ्करों के विषय में अधिक जानने के लिये देखो 'दीघनिकाय' का समाञ्ञफल-सुत्त'।

मक्खलिगोसाल:–उसका नाम 'गोसाल' इसलिये पड़ा क्योंकि उसका जन्म किसी गोशाला में हुआ था। आजकल भी 'घोसाल' परिवार के लोग पाये जाते हैं–हो सकता है कि वे इसी तीर्थङ्कर के शिष्य रहे हों।

१२. अवीचि नरक:–पाताल की ओर है, जहाँ सौ योजन के घेरे में कड़ी आग धधक रही है। देखो चुल्लवग्ग ७-४-८; अंगुत्तर निकाय ३-५६; जातक १-७१-९६

१३. पुक्कुस:–कोई छोटी जात रही होगी जिसका अभी ठीक-ठीक पता नहीं चलता। शायद इस जात की स्त्रियाँ परसौती घर में डगरिन का काम करती थीं।

१४. अर्हत्–जीवनमुक्त।

१५. (क) तावतिंस-भवन:–छः कामावचर देव-भवन ये हैं– (१) चातुर्मुहाराजिक देवभवन। इस देवभवन में चार महाराजा रहते हैं– धृतराष्ट्र, विरूपढ़, विरूपाक्ष, और वैश्रवण।

(२) तावतिंस देवभवन–इस देवभवन का अधिपति देवेन्द्र शक्र हैं। चातुर्मुहाराजिक देवभवन भी देवेन्द्र शक्र के आधीन है।

(३) याम देवभवन।

(४) तुषितभवन:–इस देवभवन में बोधिसत्व रहते है। यहाँ से च्युत हो बोधिसत्व संसार में उत्पन्न होते हैं और बुद्धत्व की प्राप्ति कर परिनिर्वाण पा लेते हैं। मालूम होता है कि महायान धर्म का 'सुखवती लोक' यही है। भविष्य में होने वाले 'बुद्ध मैत्रेय' आजकल इसी देवभवन में विराजमान हैं–ऐसा विश्वास चला आता है।

(५) निर्वाणरति देवभवन–इस देवभवन के जीव सदा अपनी इच्छा से अपने भिन्न-भिन्न रूप बदलते रहते हैं–इसी में इन्हें आनन्द आता है।

(६) परिनिर्मित वसवर्ति देवलोक–इसी देवलोक में 'मार' का आधिपत्य है।

१६. केतुमति नाम का विमान–देवभवन के देवों के रहने के लिये अपने अपने प्रासाद बने रहते हैं उन्हीं को विमान कहते हैं। उन विमानों के नाम अपने अपने अलग होते हैं।

१७. मारिस–देवभवन में एक दूसरे को इसी शब्द से सम्बोधन करते हैं।

१८. आयुष्मान् रोहण को दण्ड कर्म:– यहाँ देखने योग्य बात यह है कि संघ के ऊपर आपत्ति आने से भिक्षु को एकान्त में जा कर समाधि लगा लेने की छुट्टी नहीं है। संघ और शासन का काम सर्वोपरि मान गया है। यहाँ तक कि अपराध करने के कारण आयुष्मान् रोहण को दण्ड भुगतना पड़ा।

१९. **प्रतिसन्धि**–कोख में चला आना। पुनर्जन्म मानने वालों के लिये यह एक बड़े महत्व का प्रश्न है कि प्राणी एक शरीर छोड़कर दूसरी योनि के गर्भ में कैसे चला जाता है। दूसरे दर्शन शास्त्रों में इस मुख्य प्रश्न को स्वयं सिद्ध मान कर इसे समझाने का कुछ विशेष प्रयत्न नहीं किया गया है। बौद्ध-धर्म में यह अत्यन्त स्पष्ट रूप से समझाया गया है।

२०. **स्थविर**–भिक्षु होने के दस साल बाद स्थविर, और बीस साल बाद महास्थविर होता है। इसी का पाली में 'थेरो' और 'महाथेरो' रूपान्तर हो गया है।

२१. **चुप रह कर**–किसी निमन्त्रण की स्वीकृति बौद्ध भिक्षु चुप रह कर ही प्रगट करते हैं। अस्वीकार करने की इच्छा होती है तो वैसा कह देते हैं।

२२. **महापुरुषलक्षण शस्त्र**–महापुरुष के ३२ लक्षण कहे जाते है। उनके पहचानने की कोई विद्या रही होगी। 'दीघनिकाय' के 'लक्षण सूत्र' में उन ३२ लक्षणों का पूरा पूरा वर्णन आता है। भगवान् बुद्ध में ये सभी लक्षण मौजूद थे।

२३. **उचित समय नहीं है**–भिक्षाटन करते समय भिक्षु को किसी के साथ बहुत बात-चीत करना निषिद्ध है।

भिक्षु अपना पात्र लिये गृहस्थ के दरवाजे के सामने खड़ा हो जाता है। दृष्टि नीचे किये, बिना कुछ शब्द निकाले शान्त भाव से खड़ा रहता है। घर का कोई आदमी भिक्षा ला कर पात्रमें रख देता है और झुक कर प्रणाम करता है, भिक्षु आशीर्वाद दे कर आगे बढ़ जाता है। जब पात्र पूरा हो जाता है तो भिक्षु वापस अपने स्थान पर लौट जाता है। इसे पिण्डपात कहते हैं।

२४. **माँ-बाप की अनुमलि ले**–बिना माँ-बाप से अनुमति पाये कोई बौद्ध-भिक्षु नहीं हो सकता। देखो विनय पिटक ······।

२५. **उपसम्पदा**–देखो [5]

२६. **उपाध्याय**–प्रव्रज्या देने वाले गुरु को उपाध्याय कहते हैं। पाली में इसी का रूपान्नर 'उपज्झावो' है।

उस गुरु को जो पढ़ाता लिखाता है उसे 'आचार्य' (=आचरिओ) कहते है। किसी के उपाध्याय और आचार्य अलग-अलग भी हो सकते है और एक भी।

२७. **चारिका**–रमत। भिक्षाटन करते, लोगों को धर्मोपदेश करते, धीरे-धीरे आगे बढ़ते जाना। भगवान् बुद्ध बडी बडी भिक्षु-मण्डलो के साथ एक स्थान से दुसरे स्थान तक चारिका करते हुये जाया करते थे।

२८. **वर्षावास का अधिष्ठान**–वर्षाऋतु के तीन महीनों में भिक्षु चारिका नहीं करते। वे किसी गाँव, कस्बे या शहर में एक जगह टिक जाते हैं। गृहस्थ लोग भिक्षु के रहने–सहने का सारा प्रबन्ध कर देते है। गृहस्थ खास तौर से भिक्षु को निमन्त्रण दे कर ठहराता है, और उनकी सेवा करता है। गृहस्थों को अपने भिक्षुओं से धर्म जानने का यह बड़ा अवकाश होता है।

पहले भिक्षु लोग वर्षा ऋतु में घुमा करते थ। कितने किचड़ में गिर जाते थे। घासों में रहने वाले कीडों को धाँगते हुये जाते थे। इसे देख कर गृहस्थ चिढ़ जाते थे और उनकी निन्दा करते थे। इसीलिये, भगवान् ने 'वर्षावास' का नियम बना दिया। देखो विनय पिटक ....।

'वर्षावास' के लिये स्थान निश्चित हो जाने पर भिक्षु यों अधिष्ठान करता है–इमं तेमासं इमस्मि आरामे वस्यं उपेमि, इमं तेमासं इमस्मि आरामे वस्सं उपेमि, इमं तेमासं इमस्मि आरामे वस्सं उपेमि।

२९. **महाउपासिका**–बौद्ध-धर्म को मानने वाले गृहस्थ पुरुष 'उपासक' और स्त्रियाँ 'उपासिका' कहलाती है। उपासक बुद्ध, धर्म और संघ की शरण स्वीकार करता है तथा पाँच शीलों के पालन करने का व्रत लेता है:–

१–जीव-हिंसा करने से विरत रहूँगा, इसका व्रत लेला हूँ।
२–चोरी करने से विरत रहुँगा, इसका व्रत लेता हूँ।
३–व्यभिचार करने से विरत रहूँगा, इसका व्रत लेता हूँ।
४–झुठ बोलने से विरत रहूँगा, इसका व्रत लेता हूँ।
५–मादक पदार्थ के सेवन से विरत रहूँगा, इसका व्रत लेता हूँ।

उपासक और उपासिका का कर्तव्य है कि भिक्षु की आवश्यकताओं को पूरा किया करे और उनसे धर्म सुने।

किसी भिक्षु के उपासक तो बहुत होते हैं। किंतु वह जो विशेष रुप से सेवा करता हो और धर्म सुनता तथा पालता हो वह महाउपासक कहलाता है। इसी तरह महाउपासिका भी।

३०. **तेमासा**–वर्षावास के तीन महीने।

३१. **दानानुमोदन**–गृहस्थ के घर भोजन कर चुकने पर भिक्षु दानानुमोदन करता है। दानानुमोदन करने में भिक्षु गृहस्थ को आशीर्वाद देता है और कुछ धर्मोपदेश करता है। यह परिपाटी आज भी लंका, बर्मा इत्यादि बौद्ध देशों में प्रचलित है। उपस्थित भिक्षुओं में जो सबसे ज्येष्ठ रहता है वही प्राय: दानानमोदन किया करता है।

३२. जैसे ग्वाला गौवों को इत्यादि–इसी भाव को बतलाने वाली एक गाथा 'धम्मपद' में आती है––

> बहुंपि चे संहितं भासमानो,
> न तक्कर होति नरो पमत्तो ।
> गोपो 'व' गावो गणयं परेसं
> न भागवा सामञ्जस्स होति ।।१.१९।।

अर्थ–चाहे कितने भी धर्मग्रन्थों को पढ़ ले किंतु प्रमादी बन जो पुरुष उसके अनुसार करने वाला नहीं होता, वह दूसरों की गायों को गिनने वाले ग्वाले की भाँति श्रमणपन का भागी नहीं होता ।

३३. प्रतिसंविदायें–प्रतिसंविदायें चार हैं, (१) अर्थ (२) धर्म, (३) निरुक्ति और (४) प्रतिभान । देखो पटिसम्भिदामग्ग ।

३४. परिवेण–जहाँ भिक्षु लोग रह कर धर्म-ग्रंथों का पठन-पाठन करते हैं । उसे परिवेण कहते है । लंका, बर्मा इत्यादि बौद्ध देशों में बडे बड़े परिवेण हैं जहाँ आज भी सैकड़ों की संख्या में भिक्षु रहते और विद्या प्राप्त करते हैं ।

उनका नाम परिवेण शायद इस लिये पड़ा होगा कि वे बीच में आँगन छोड़ कर चारों ओर से (परि+वेण) घिरे रहते होंगे । ऐसे भग्नावशेष सारनाथ और अन्य बौद्ध-केन्द्रों की खुदाई से मालूम होते हैं ।

३६. भदन्त–बौद्ध भिक्षु के आदर सूचक सम्बोधन 'भन्ते' या 'भदन्त' हैं ।

३६. ऋषिपतन मृगदाव–वर्तमान सारनाथ । बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद पंचवर्गीय भिक्षुओं को धर्म का उपदेश भगवान् ने यहीं दिया था । तब से यह स्थान बड़ा पवित्र माना जाता है । महाराज अशोक का बनाया विशाल चैत्य अभी तक वहाँ वर्तमान है । मृगों को यहाँ अभय दिया गया था–इसी से इसका नाम 'मृगदाव' पड़ा ।

३७. धर्मचक्र–पंचवर्गीय भिक्षुओं को जो भगवान् ने अपना सर्वप्रथम धर्मोपदेश दिया था उसका नाम 'धर्मचक्र-प्रवर्त्तन सूत्र' है । देखो विनयपिटक ।

३८. धुताङ्ग–देखो परिशिष्ट..... ।

३९. बुद्ध-धर्म के नव रत्न– (१) सुत्त, (२) गेय्य, (१) वैयाकरण, (४) गाथा, (५) उदान, (६) इतिवृत्तक, (७) जातक, (८) अभिधर्म, (९) वेदल्ल ।

● ● ●

दूसरा परिच्छेद

लक्षण-प्रश्न (पृष्ठ ४७)

१. "व्यवहार करने के लिए संज्ञायें भर ही हैं, क्योंकि यथार्थ में ऐसा कोई एक पुरुष नहीं है ।" इनकी व्यवहारिक स्थिती है, परमार्थिक नहीं ।"

जैसे, यों तो लोग व्यवहार के लिये कहा करते हैं, 'सूरज उगता है, सूरज डूबता है,' किंतु यथार्थ में ऐसी बात नहीं है क्योंकि सूरज तो अपने ही स्थान पर स्थित रहता है । पृथ्वी के घूमने से ऐसा मालूम होता है कि सूरज उगता और डूबता है । अतः व्यवहार के लिए ऐसा कहने पर भी असलियत कुछ दूसरी ही है ।

वैसे ही, 'नागसेन या सूरसेन के नाम से जो किसी पुरुषविशेष की तादात्म्य अभिज्ञा होती है वह आविद्यिक है । परमार्थतः इस अनित्य प्रवाहशील संसार में तादात्म्य अभिज्ञ हो ही नहीं सकती । संसार के सभी पदार्थ सांघातिक और अनित्य हैं । अतः, 'एक' और 'तादात्म्य नित्य' परमार्थतः मिथ्या, केवल व्यवहार के लिये है ।

यथार्थ में कोई एक पुरुष नहीं है-क्योंकि हम प्रवाहशीलता से क्षण क्षण परवर्तित हो रहे हैं । एक पुरुष सम्भव नहीं ।

२. चीवर, पिण्डपात, शयनासन और ग्लानप्रत्ययः- ये भिक्षु के चार प्रत्यय कहलाते हैं । भिक्षु को इन्हीं चार प्रत्ययों की आवश्यकता होती है ।

भिक्षु का काषाय-वस्त्र जो कई टुकड़ों को साथ जोड़ कर तैयार किया जाता है चीवर कहलाता है । विनय के अनुसार भिक्षु को तीन चीवर धारण करने का विधान है । (१) अन्तर्वासक=नीचे का कपड़ा-जो लुंगी के ऐसा लपेट लिया जाता है । घुट्टी से चार अंगुल ऊपर तक यह लटकता रहता है । (२) उत्तरासंग-पांच हाथ लम्बा चार हाथ चौड़ा होता है । इसे शरीर के ऊपर चादर के ऐसा लपेट लिया जाता है । (३) संघाटी-इसकी लम्बाई चौड़ाई भी उत्तरासंघ के जैसी होती है, किंतु यह दुहरी सिली होती है । यह कंधे पर तह लगा के रक्खी जाती है । ठंढ लगने या कुछ और काम पड़ने पर इसका उपयोग किया जाता है ।

पिण्डपात-भिक्षान्न । भिक्षाटन से प्राप्त अन्न, निमन्त्रण दे कर परोसा गया भोजन सभी पिण्डपात के अन्तर्गत हैं ।

शयनासन–वासस्थान। विहार, मठ, या जंगल में लगाई गई झोपड़ी।

ग्लान प्रत्यय–दवा बीरो। साधारणतः भिक्षु लोग 'पूतिमुत्त भेसज्ज' (हर्रे और गोमुत्र से तैयार की गई गोलियाँ) का ही व्यवहार करते हैं, किंतु आवश्यकता पड़ने पर किसी भी चिकित्सा को स्वीकार कर सकते हैं। विकाल में (दोपहर के बाद) भिक्षु जो चाय, शर्बत या फल-रस को पीते हैं उसे भी ग्लान प्रत्यय कहा जाता है। इसी का सिंहल में अपभ्रंश 'गिलम्पस्' हो गया है।

३. पाँच अन्तराय लाने वाले कर्म (पञ्चानन्तरिय कम्मानि)–पाँच कर्म यह हैं :–(१) माता को जान से मार देना, (२) पिता को जान से मार देना, (३) अर्हत् को जान से मार देना, (४) बुद्ध के शरीर से लहू बहा देना और (५) संघ में फूट पैदा करना। ये पाँच पाप-कर्म आन्तरायिक कहे जाते हैं, जिसके करने से मनुष्य उस जन्म में कदापि क्षीणाश्रव हो कर मुक्त नहीं हो सकता।"

४. सब्रह्मचारी–एक शासन में जितने प्रव्रजित श्रमण हैं सभी एक दूसरे के सब्रह्मचारी कहे जाते हैं। गुरुभाई

५. ये नख, दाँत, चमड़ा इत्यादि–यही बत्तीस शरीर की गन्दगियाँ हैं जिन पर भिक्षु बराबर मनन करता है। इसे 'द्वतिसाकार' कहते हैं, और पाली में इसका पाठ यों है–

"अत्थि इमस्मिं काये केसा, लोमा, नखा, दन्ता, तचो, मंसं, नहारु, अट्ठी, अट्ठीमिज्जा, वक्कं, हृदयं, यमकं, किलोमकं, पिहकं, पप्फासं अन्तं, अन्तगुणं, उदरियं, करीसं, पित्तं, सेम्हं, पुब्बो, लोहित, सेदो मेदो, अस्सु, वसा, खेलो, सिङ्घानिका, लसिका, मुत्तं, मत्थके मत्थलुङ्गन्ति।"

६. इन्द्रिय–इन्द्रिय पाँच हैं। (१) श्रद्धा, (२) वीर्य, (३) स्मृति, (४) समाधि और (५) प्रज्ञा।

७. बल–बल पाँच हैं। (१) श्रद्धा-बल, (२) वीर्य-बल, (३) स्मृति-बल, (४) समाधि–बल और (५) प्रज्ञा-बल।

८. बोध्यंग–बोध्यङ्ग सात हैं। (१) स्मृति-सम्बोध्यङ्ग, (२) धर्मविचय–सम्बोध्यङ्ग, (३) वीर्य-सम्बोध्यङ्ग, (४) प्रीति-सम्बोध्यङ्ग, (५) प्रश्रब्धि–सम्बोध्यङ्ग, (६) समाधि–सम्बोध्यङ्ग, और (७) उपेक्षा सम्बोध्यङ्ग।

९. मार्ग–आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग। (१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक्-संकल्प, (३) सम्यक्-वाक्, (४) सम्यक्-कर्मान्त, (५) सम्यक्-आजीव, (६) सम्यक्-व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक्-समाधि।

१०. **स्मृति प्रस्थान**–स्मृति प्रस्थान चार हैं। (१) काया में कायानुपश्यी, (२) वेदना में वेदनानुपश्यी, (३) चित्त में चित्तानुपश्यी और (३) धर्म में धर्मानुपश्यी।"

११. **सम्यक्-प्रधान**-सम्यक्-प्रधान चार हैं। (१) अनुत्पन्न अकुल (पाप) को उत्त्नप न हो देने के लिये रुचि पैदा करना, कोशिश करना और चित्त का निग्रह करना; (२) उत्पन्न हो गये अकुशल (पाप) के बिनाश के लिये (३) अनुत्पन्न कुशल (पुण्य) धर्मो की उत्पत्ति के लिये और (४) उत्पन्न कुशल-धर्मो की स्थिति और वृद्धि के लिये भावना-पूर्ण कर रुचि उत्पन्न करना।

१२. **ऋद्धि-पाद**–ऋद्धि-पाद चार हैं। (१) छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार-युक्त; (२) वीर्य-समाधि-प्रस्थान-संस्कार युक्त; (३) चित्त-समाधि और (४) विमर्ष-समाधि।

१३. **ध्यान**–ध्यान चार हैं। (१) प्रथम-ध्यान, (२), द्वितीय-ध्याम, (३) तृतीय-ध्यान और (४) चतुर्थ-ध्यान। देखो दीघनिकाय का 'ब्रह्मजाल सूत्र'।

१४. **विमोक्ष**–विमोक्ष आठ हैं। (१) रूपी (रूपवाला) रूपों को देखते है; (२) अध्यात्म अरूपसंज्ञी बाहर रूपों को देखते हैं; (३) शुभ ही अभिमुक्त होते हैं; (४) सर्वथा रूप-संज्ञा को अतिक्रमण कर प्रतिहिंसा के ख्याल के लुप्त होने से नाना-पन के ख्याल को मन में न करने से 'आकाश-अनन्त हैं इस आकाश-आनन्त्यायतन को प्राप्त हो विहरते हैं; (५) सर्वथा आकाश-आनन्त्यायतन को अतिक्रमण कर विज्ञान-अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतन को प्राप्त हो विहरते हैं; (६) सर्वथा विज्ञान आनन्त्यातन को अतिक्रमण कर कुछ नहीं है; इस आकिंचन्य-आयतन को प्राप्त हो विहरते हैं; (७) सर्वथा आकिंचन्यायतन को अतिक्रमण कर नैवसंज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन (=जिस समाधि का आभास न चेतना ही कहा जा सकता है न अचेतना ही) को प्राप्त हो विहरते हैं; (८) सर्वथा नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को अतिक्रमण कर प्रज्ञा-वेदित-निरोध को प्राप्त हो विहरते हैं।

१५. **समापत्ति**–समापत्ति आठ हैं।

(१) प्रथम-ध्यान (२) द्वितीय-ध्यान (३) तृतीय-ध्यान (४) चतुर्थ-ध्यान	रूपावचर
(५) आकाश-आनन्त्यायतन (६) विज्ञान-आनन्त्यायतन (७) आकिंचन्य-आयतन (८) नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन	अरूपावचर

१६. स्रोतापत्ति–धारा में आ जाना। निर्वाण के मार्ग पर आरूढ़ हो जाना जहाँ से गिरने की कोई सम्भावना नहीं रहती हैं।

योगसाधन करने वाला भिक्षु जब (१) सत्कायदृष्टि, (२) विचिकित्सा और (३) शीलव्रतपरामर्श इन तीन बन्धनों को तोड देता है तब स्रोतापन्न कहा जाता है। अधिक से अधिक सात बार तक जन्म ले वह निर्वाण पा लेता है।

१७. सकृदागामी–एक बार आने वाला। स्रोतापन्न भिक्षु उत्साह कर के (१) कामराग (इन्द्रियलिप्सा) और प्रतिघ (ill will) इन दो बन्धनों पर भी विजय पा कर सकृदागामी पद पर आरूढ़ हो जाता है। यदि वह इस जन्म में अर्हत् नहीं हो जाता तो अधिक से अधिक एक बार और जन्म लेता है।

१८. अनागामी–फिर न जन्म लेने वाला। ऊपर के दो बन्धनों (कामराग और प्रतिघ) को बिलकुल काट कर योगावचर भिक्षु अनागामी हो जाता है। इसके बाद वह न तो संसार और न दिव्य लोक में जन्म लेता है क्योंकि उसके सभी कामराग शान्त हो गये हैं। शरीर–पात के बाद वह शुद्धावास में रहता है।

१९. अर्हत–अन्त में भिक्षु जो बकिये बन्धन हैं–(१) रूपराग, (२) अरूपराग, (३) मान,(४)औद्धत्य और(५)अविद्या उन्हें भी काट कर गिरा देता और अर्हत् हो जाता हैं। सभी क्लेश दूर हो जाते हैं। सभी आश्रव क्षीण हो जाते हैं। जो करना था सो कर लिया गया। सारे दुःख–स्कन्ध का अन्त हो गया। उपादान (संसार में बने रहने की आशा) मिट गया। निर्वाण का मार्ग तै हो गया। तृष्णा के क्षीण हो जाने से संसार से बिलकुल अलिप्त रह वह परम शान्ति का अनुभव करता है। शरीर–पात के बाद आवागमन सदा के लिये बन्द हो जाता है–जीवनस्रोत सदा के के लिये सूख जाता है–दुःख का अन्त हो जाता है।

चौथा परिच्छेद

1. सम्यक् सम्बुद्ध के दश बल। पृष्ठ–१३४

१. बुद्ध स्थान को स्थान के तौर पर, और अस्थान को अस्थान के तौर पर यथार्थतः जानते हैं।

२. बुद्ध अतीत, वर्तमान और भविष्यत् के लिये कर्मों के विपाक को स्थान और हेतुपूर्वक ठीक से जानते हैं।

३. बुद्ध सर्वत्रगामिनी प्रतिपद (= मार्ग, ज्ञान) को ठीक से जानते हैं।

४. बुद्ध अनेक धातु (= ब्रह्माण्ड) नाना धातु वाले लोकों को ठीक से जानते हैं।

५. बुद्ध नाना अधिमुक्ति ((स्वभाव) वाले सत्वों (= प्राणियों) को ठीक से जानते हैं।

६. बुद्ध दूसरे सत्वों की इन्द्रियों के परत्व-अपरत्व (= प्रबलता, दुर्बलता] को ठीक से जानते हैं।

७. बुद्ध,[1] ध्यान,[1] विमोक्ष,[1] समाधि[1], समापत्ति के संक्लेश (= मल), व्यवदान (= निर्मल करण) और उत्थान को ठीक से जानते हैं।

८. बुद्ध अपने पूर्व जन्मों की बात को याद करते हैं।

९. बुद्ध अमानुष विशुद्ध दिव्य-चक्षु से प्राणियों को उत्पन्न होते मरते स्वर्ग लोक को प्राप्त हुये देखते हैं।

१०. बुद्ध आस्रवों के क्षय से आश्रव-रहित चित्त की विमुक्ति (= मुक्ति) प्रज्ञा की विमुक्ति को साक्षात् कर लेते हैं।

२. सम्यक् सम्बुद्ध के चार वैशारद्य

मज्झिम निकाय 'महासीहनाद सुत्त' से –

"सारिपुत्र ! यह चार तथागत (बुद्ध) के वैशारद्य हैं, जिन वैशारद्यों को प्राप्त कर तथागत परिषद में सिंहनाद करते हैं। कौनसे चार ?–(१) 'अपने को 'सम्यक्-सम्बुद्ध' कहने वाले मैंने इन धर्मों को नहीं बोध किया है, सो उनके विषय में

---

१. देखो बोधिनी दूसरा परि. १३–१५

कोई श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या लोक में कोई दूसरा धर्मानुसार पूछ न बैठे-मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता ! सारिपुत्र ! ऐसे किसी कारण को न देखने में क्षेम को प्राप्त हो, अभय को प्राप्त हो, वैशारद्य को प्राप्त हो विहरता हूँ (२) अपने को 'क्षीणाश्रव' (अर्हत्) कहने वाले मेरे आस्रव (= चित्तमल) क्षीण नहीं हुये, सो उनके विषय में कोई श्रमण धर्मानुसार पूछ न बैठे – मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता। (३) जो अन्तराय धर्म कहे गये हैं उन्हें सेवन करने से यह अन्तराय (= विघ्न) नहीं कर सकते। यहाँ उनके विषय में कोई श्रमण धर्मानुसार न पूछ बैठें,-ऐसा कोई कारण नहीं देखता। (४) जिस मतलब के लिये धर्म-उपदेश किया, वह ऐसा करने वाले को भली प्रकार दुःखक्षय की ओर नहीं ले जाता-इसके विषय में कोई श्रमण धर्मानुसार न पूछ बैठे'-ऐसा कोई कारण सारिपुत्र ! नहीं देखता। सारिपुत्र ! ऐसे किसी कारण को न देखते मैं क्षेम को प्राप्त हो, अभय को प्राप्त हो, वैशारद्य को प्राप्त हो विहरता हूँ।"

३. अठ्टारह बुद्ध-धर्म

१. अतीत काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान।

२. अनागत काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान।

३. वर्तमान काल की बातों में बुद्ध का अप्रतिहत ज्ञान।

४. बुद्ध के सभी काय-कर्म ज्ञान-पूर्वक और जान बूझ कर होते हैं।

५. बुद्ध के सभी वचन-कर्म।

६. बुद्ध के सभी-मनः-कर्म।

७. छन्द की कभी हानि नहीं होती।

८. धर्म-देशना करने में कभी कोई हानि नहीं होती।

९. वीर्य में कभी कोई हानि नहीं होती।

१०. समाधि में।

११. प्रज्ञा में।

१२. विमुक्ति में।

१३. दवा

१४. रवा

१५. अप्फुत

१६. वेदयितत्तं

१७. अब्यावहमनो

१८. अप्परिसङ्खान उपेक्खा

४. भगवानों की सर्वज्ञता आवजन प्रतिबद्ध है।

भगवान् हर घड़ी संसार की सभी बातें जानते नहीं रहते थे। उनकी सर्वज्ञता इसीमें थी कि जब जिसे जानना चाहते उस पर ध्यान देते ही उसे जान लेते थे। इसी को 'आवर्जन-प्रतिबद्ध' सर्वज्ञता कहते हैं।

५-६. समान संवास का और समान सीमा में रहनेवाला–

भिक्षु अपने गाँव, कस्बा या महल्ला में[1] सीमा नियत कर के रहते हैं। उस नियत सीमा में रहने वाले सभी भिक्षु उपोसथ-कर्म के लिये एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं। वे भिक्षु समान संवास के और समान सीमा में रहने वाले कहे जाते हैं।

७. [2]प्रकृतात्म भिक्षु–जिसने कोई भारी आपत्ति (कसूर) नहीं की हो।

८. तीन विद्यायें-मज्झिम निकाय 'बोधि-राजकुमार सूत्र' से–

१. तब इस प्रकार चित्त के परिशुद्ध = पारिअवदात अंगण रहित = उपदेश रहित, मृदु हुये, लायक, स्थिर = अचलता प्राप्त-समाधि-प्राप्त हो जाने पर, पूर्व जन्मों की स्मृति के ज्ञान के लिये चित्त को मैंने झुकाया। फिर मैं पूर्वकृत अनेक पूर्व-निवासों (=)जन्मों को स्मरण करने लगा-जैसे, एक जन्म भी दो जन्म भी...। आकार सहित, उद्देश सहित पूर्वकृत अनेक पूर्व-निवासों को स्मरण करने लगा। इस प्रकार प्रमाद-रहित, तत्पर हो आतम-संयमयुक्त विरहते हुये, मुझे रात के पहिले याम में यह प्रथम विद्या प्राप्त हुई, अविद्या दूर हो गई, विद्या आ गई; तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ।

२. सो इस प्रकार चित्त के परिशुद्ध समाहित होने पर, प्राणियों के जन्म-मरण के ज्ञान के लिये मैंने चित्त को झुकाया। सो मनुष्य के नेत्रों से परे की विशुद्ध दिव्य चक्षु से, मैं अच्छे, बुरे, सुवर्ण, दुर्वर्ण सुगत, दुर्गत, मरते, उत्पन्न होते प्राणियों को देखने लगा। सो...कर्मानुसार जन्म को प्राप्त प्राणियों को जानने लगा। रात के बिचले याम में यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई। अविद्या गई, विद्या आई, तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ।

३: सो इस प्रकार चित्त के आस्रवों (चित्त-मल) के क्षय के ज्ञान के लिये मैंने चित्त को झुकाया-सो 'यह दुःख है' इसे यथार्थ से ज्ञान लिया; 'यह दुःख समुदय है' इसे यथार्थ से जान लिया; 'यह दुःख निरोध है' इसे यथार्थ से जान लिया; 'यह दुःख निरोध-गामिनी-प्रपिपद है इसे यथार्थ से जान लिया। 'यह आश्रव है' इन्हें यथार्थ से जान लिया; 'यह आस्रव समुदय है' इसे यथार्थ से जान लिया;

१. उपोसथ-कर्म–देखो विनय पिटक।

२. प्रकृतात्म भिक्षु–देखो विनय पिटक।

'यह आस्रव-निरोध है' इसे यथार्थ से जान लिया; 'यह आस्रव-निरोध-गामिनी-प्रतिपद है' इसे यथार्थ से जान लिया। सो इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते, मेरा चित कामाश्रवों से मुक्त हो गया, भवास्रवों से मुक्त हो गया, अविद्यास्रव से भी मुक्त हो गया। छूट (विमुक्त) जाने पर 'छूट गया' ऐसा ज्ञान हुआ। 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँ कुछ करना, बाकी नही है' इसे जाना। राजकुमार! रात के पिछले याम में यह तृतीय विद्या प्राप्त हुई; अविद्या गई, विद्या आई; तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ।"

६. छः अभिज्ञायें (दिव्य शक्तियाँ =)—मज्झिम निकाय 'महासच्छगोत्त' सूत्र से

"१, यदि तू चाहेगा कि-'अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करूँ-एक हो कर बहुत हो जाऊ, बहुत हो कर एक हो जाऊँ, आविर्भाव, तिरोभाव (= अन्तर्धान हो जाना), तिर कुड्य (भित्ति के आरपार चला जाना), तिर:प्राकार (प्राकार के आरपार चला जाना), तिर:पर्वत आकाश में जमीन पर के ऐसा घुमुँ-फिरूँ, पृथ्वी में डुबकियाँ लगाऊँ जैसे जल में, जल के तल पर वैसे ही जाऊँ जैसे पृथ्वी के तल पर आसन मारे हुगे पक्षियों की तरह आकाश में उड़ू, तइने महाप्रतापी = महर्धिक चन्द्र सूर्य को भी हाथ से छुऊँ = मीजूँ; ब्रह्मलोक पर्यंन्त (अपनी) काया से वश में रक्खूँ—तो साक्षात् कर लेगा।

२, यदि चाहेगा कि— 'विशुद्ध अमानुष दिव्य श्रोत धातु (काम) से दूर-नजदीक के दिव्य-मानुष दोनों प्रकार के शब्दों को सुनूँ—तो साक्षात् कर लेगा।

३. यदि तू चाहेगा कि—'दूसरे प्राणियों के चित्त को अपने चित्त द्वारा जानूँ—सराग चित्त होने पर सराग चित्त है यह जानूं; वीतराग चित्त होने पर वीतराग-है यह जानूं: सद्वेष; बीत-द्वेष; समोह; वीत-मोह; विक्षिप्त-चित्त; संक्षिप्त (एकाग्र) चित्त; विशाल चित्त; छोटा चित्त, स-उत्तर चित्त; अनुत्तर चित्त; समाहित चित्त; असमाहित चित्त; विमुक्ति चित्त होने पर विमुक्त चिक्त हैं यह जानूँ; और अविमुक्त चित्त होने पर अविमुक्त चित्त है यह जानू तो साक्षात् कर लेगा।

४. यदि तू चाहेगा कि—'अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों को अनुस्मरण करूँ-जैसे कि एक जन्म को भी, दो जन्म को भी, इस प्रकार आकार और उद्देश्य सहित अनेक प्रकार के पूर्व निवासों को स्मरण करूँ—तो साक्षात् कर लेगा।

५. यदि तू चाहेगा कि 'मैं अमानुष दिव्यचक्षु से अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुवर्ण प्राणियों को मरते उत्पन्न होते देखूँ, कर्मानुसार गति को प्राप्त होते प्राणियों को पहचानूँ-यह आप प्राणधारी, स्वर्ग लोक को प्राप्त हुये हैं, इस प्रकार अमानुष विशुद्ध

दिव्य-चक्षु से कर्मानुसार गति को प्राप्त होते प्राणियों को पहचानूँ-तो साक्षात् कर लेगा।

६. यदि तू चाहेगा कि-'मैं आस्रवों के क्षय होने से आस्रव-रहित चित्त-विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्ति को इस जन्म में स्वयं जानकर साक्षात्कार कर प्राप्त कर विहरूँ-तो साक्षात् कर लेगा।''

१०. परित्राण-बौद्ध देशों में उपासक भिक्षुओं को बुला कर परित्राण-देशना करवाते हैं। वेदी के ऐसा एक ऊँचा स्थान बना, उसपर फूल, पत्ते और पताकों से सज-धज कर एक मण्डप तयार करते हैं। मण्डप के बीच कपड़े से ढ़का हुआ एक पानी का कलश रख दिया जाता है। सामने भगवान् बुद्ध की मूर्ति या तस्वीर फूल और मालाओं को चढा एक ऊँचे स्थान पर रखते हैं। धूप-गन्ध भी चारों ओर जला दी जाती है।

नियत समय पर भिक्षुओं को बड़े सम्मान के साथ ले आते है। भिक्षु मण्डप में जाकर कलशे के इर्द-गिर्द गोलाकार में बैठ जाते हैं। उपासक-उपासिकायें वेदी के चारों ओर नीचे बैठ जाती हैं।

तब, कोई प्रधान उपासक पान का ढोला और सुपारी ले प्रधान भिक्षु को जाकर देता है, घुटने टेक कर तीन बार प्रणाम करता है, और परित्राण देशना करने की याचना करता है। इसके बाद, कलशे के कनखे में तिबराया हुआ एक लम्बा धागा बाँध दिया जाता हैं। धागा मण्डप में चारों ओर भिक्षुओं के सामने से गुजरता है जिसे सभी भिक्षु अपने दहिने हाथ से पकड़ लेते हैं। धागे को मण्डप से निकाल कर उपासक- उपासिकाओं के बीच भी चारों ओर घुमा दिया जाता है-जिसे सभी पकड़ लेते है। इस तरह, मानो सभी एक सूत्र में सम्मिलित हो जाते हैं।

परित्राण देशना का पाठ आरम्भ होता है। भिक्षु एक स्वर से कुछ सूत्र और गाथाओं का उच्चारण करते है, जिन में बुद्ध, धर्म, संघ, शील, समाधि, प्रज्ञा इत्यादि के गुण और गौरव कहे जाते हैं। रतन सूत्र, मंगल सूत्र इत्यादि इस समय के खास सूत्र होते हैं। जब पाठ समाप्त हो जाता है तो भिक्षु उपासकों को आशीर्वाद और स्वस्तिकार देते हैं-इस सत्य वचन से तुम्हारा स्वस्ति हो, मंगल होते "एतेन सच्चवज्जेन हो तु जयमङ्गलं; एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु"-मानो सूत्रों में कहे गये सत्य की दुहाई दे देकर आशीर्वाद दिया जाता है। फिर, कलशे का मुंह खोल दिया जाता है। उसके पानी को आशीर्वचन पढ़ पढ़ कर पल्लव से भिक्षु लोगों पर छिड़कता है। ठाकुर बाड़ी के चरणोदक के ऐसा कितने उसे कुछ पीकर माथा पर थोप लेते हैं। धागे को समेट लिया जाता है-भिक्षु उसे उपासकों की दहिनी कलाई रक्षा-बन्धन बान्धता है यह मन्त्र पढ़ता है-

"सब्बीतियो विवज्जन्तु, सब्बरोगो बिनस्सतु
मा ते भवतु अन्तरायो, सुखी दीघायुको भव ।।"

अर्थात्–'तुम्हारे सभी विघ्न छिन्न-भिन्न हो जायँ, सभी रोग नष्ट हो जायँ, तुम्हें किसी प्रकार की बाधा मत होवे, सुखी और दीर्घायु होवो ।'

बौद्ध-देशो में लोग इसे वैसे ही मानते हैं जैसे हमारे यहाँ सत्यनारायण-व्रत मनाया जाता है–या जैसे मुसलमानों के घर मौलूद शरीफ । बड़ी भक्ति, श्रद्धा और तैयारी के साथ । किसी के बिमार पड़ने पर लोग परित्राण देशना करवाते है–और समझते हैं कि उससे लाभ होता है ।

भगवान् ने इसके लिये कहाँ आदेश किया है मुझे स्मरण नहीं । हाँ, एक कथा याद आती है-किसी भिक्षु को साँप ने काट खाया था, जिससे उसकी मृत्यु हो गई थी । दूसरे भिक्षुओं ने भगवान् को जाकर इसकी सूचना दी । इस पर भगवान् बुद्ध बोले,–अवश्य उस भिक्षु को मैत्री-बल नहीं होगा । भिक्षुओं ! जो मैत्री-भावना का अभ्यासी होता है वह साँप के काटने से कभी नहीं मर सकता । अत: चार प्रकार के सर्पों से मैत्री-भावना करने के परित्राण का मैं आदेश देता हूँ । वे चार प्रकार के सर्प हैं- (१) विरूपक्ख, (२) एरापथ, (३) छब्यापुत्त, और (४) कण्हागोतमक । भगवान् ने कहा था:-

"अनुजानामि भिक्खवे ! इमानि चत्तारि अहिराजकुलानि मेत्तेन चित्तेन फरितु, अत्तगुत्तिया, अत्तरक्खाय, अत्तपरित्ताय (अपने परित्राण के लिये) ।"

भारतवर्ष का बच्चा बच्चा जानता है कि ऋषि-मुनि अपने मैत्री-बल से जंगल के हिंसक जन्तुओं को भी पालतू बना देते थे । यही बात भगवान् ने कही है । सर्पो से मैत्री करने के लिए कुछ गाथायें हैं जिन्हें भिक्षु प्रतिदिन पाठ करता है ।

किंतु, इस 'परित्राण' से बिमारियों को भी चंगा किया जा सकता है ऐसा त्रिपिटक में भगवान् ने कहीं भी नहीं कहा है । धीरे-धीरे ऐसा विश्वास और ऐसी चाल चल पड़ी होगी, जिसके विषय में राजा मिलिन्द ने प्रश्न किया है ।

११. एक समय भगवान् चातुमा के आमल वन में विहरते थे ।

उस समय भगवान् के दर्शनार्थ सारिपुत्र, मोग्गलान आदि पाँच सौ भिक्षु चतुमासा में आये हुये थे । उस समय वह आगंतुक भिक्षु उस स्थान के निवासी भिक्षुओं के साथ कुशल प्रश्न पूछते, शयनासन बतलाते, पात्र–चीवर सम्हालते ऊँचे शब्द=महाशब्द करने लगे । तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा–

"आनन्द ! यह कौन ऊंचे शब्द-महाशब्द करने वाले हैं, मानो केवट मछली मार रहे हों ?"

"भन्ते ! यह सारिपुत्र, मोग्गलान आदि पाँच सौ भिक्षु . महाशब्द कर रहे हैं।"

"तो आनन्द ! मेरे वचन से उन भिक्षुओं को कह-बुद्ध आयुष्यमानो को बुला रहे हैं।"

"अच्छा भन्ते !–कह भगवान् को उत्तर दे, आयुष्मान् आनन्द ने जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ जा कर उनसे कहा–

"बुद्ध आयुष्यमानों को बुला रहे हैं।"

"अच्छा आवुस ! कह आयुष्यमान् आनन्द को उत्तर दे वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठ उन भिक्षुओं से भगवान् ने कहा–"भिक्षुओ ! क्यों तुम ऊँचे शब्द-महाशब्द कर रहे थे, मानो केवट मछली मार रहे हों ?"

"भन्ते ! यह सारिपुत्र, मौद्गल्यान आदि हम पाँच सौ भिक्षु; पात्र चीवर सम्हालते महशब्द कर रहे थे।"

"जाओ भिक्षुओं। तुम्हें निकल जाने (पणामना) के लिये मैं कहता हूँ; मेरे साथ तुम न रहना।"

"अच्छा भन्ते !" कह, वह भिक्षु भगवान् को उत्तर दे, आसन से उठ, भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर शयनासन सँभाल, पात्र चीवर ले चले गये।

उस समय चातुमा के शाक्य किसी काम से संस्थागार (प्रजातंत्र भवन) में जमा थे। चातुमा के शाक्यों ने दूर से उन भिक्षुओं को जाते देखा। देख कर जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ जा कर उन भिक्षुओं से कहा–

"हन्त ! आप आयुष्मान् कहाँ जा रहे हैं ?"

"आवुसो ! भगवान् ने भिक्षु-संघ को निकल जाने के लिये कहा।"

"तो आयुष्मानो ! मुहूर्त भर आप सब यहीं ठहरें; शायद हम भगवान् को प्रसन्न कर सकें।"

"अच्छा, आवुसो !" कह उन भिक्षुओं ने चातुमा के शाक्यों को उत्तर दिया। तब, चातुमा वाले शाक्य जहाँ भगवान् थे वहाँ जा कर भगवान् को

अभिवादन कर एक ओर बैठ भगवान् से यह बोले–

"भन्ते ! भगवान् भिक्षु संघ को अभिनन्दन (स्वीकार) करें। "भन्ते ! जैसे भगवान् ने पहले भिक्षु-संघ को अनुगृहीत किया था, वैसे ही अब भी अनुगृहीत करें। भन्ते ! इस भिक्षु-संघ में नये अचिर-प्रव्रजित, इस धर्म में अभी हाल के आये भिक्षु हैं, भगवान् का दर्शन न मिलने पर उनके मन में विकार = अन्यथात्व होगा। जैसे भन्ते ! छोटे अंकुर तरुण–बीजों को जल न मिलने पर विकार = अन्यथात्व होता है, इसी प्रकार भगवान् का दर्शन न मिलने पर उनको विकार = अन्यथात्व होगा। जैसे, भन्ते ! माता को न देखने पर छोटे बछड़े को विकार = अन्यथात्व होता है, इसी प्रकार भन्ते ! भगवान् भिक्षु-संघ को अभिनन्दन कर अनुगृहीत करें।"

तब, सहम्पति ब्रह्मा भगवान् के चित्त के वितर्क को जान कर, जैसे बलवान् पुरुष (अप्रयास) समेटी बाँह को फैला दे, फैलाई बाँह को समेट ले, ऐसे ही ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सामने प्रगट हुआ। तब सहम्पति ब्रह्मा ने उत्तरासंग को एक (दाहिने) कंधे पर कर, भगवान् की ओर अंजली जोड़ भगवान् से यह कहा–

"भन्ते ! भगवान् भिक्षु-संघ का अभिनन्दन करें। छोटे अंकुर का, छोटे बछड़े को अनुगृहीत करें।"

चातुमा वाले शाक्य और सहम्पति ब्रह्मा बीज और बछड़े की उपमा से भगवान् को प्रसन्न करने में सफल हुये। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया–

"उठो आवुसो ! पात्र चीवर उठाओ ! चातुमा वाले शाक्यों और सहम्पति ब्रह्मा ने बीज और बछड़े की उपमा से भगवान् को प्रसन्न कर मना लिया है।"

मज्झिमनिकाय, चातुम-सुत्तन्त से।

१२. छः असाधारण ज्ञान

१. इन्द्रिय परोपरियत्त ञाणं
२. आसयानुसय ञाणं
३. यमकपातिहार ञाणं
४. महा करुणा समापत्ति ञाणं
५. सब्बञ्ञुत ञाणं
६. अनावरण ञाणं

१३. बुद्ध में ३७ बातें

नाम	संख्या
(१) स्मृति प्रस्थान	४
(२) सम्यक प्रधान	४
(३) ऋद्धि-पाद	४
(४) मानसिक इन्द्रियाँ	५
(५) बल	५
(६) बोध्यङ्ग	७
(७) आर्य मार्ग	८
	३७

१४. महाप्रजापति गौतमी—कुमार सिद्धार्थ के जन्म के एक सप्ताह बाद ही उनकी माता महामाया देवी की मृत्यु हो गई थी। अतः उनकी मौसी महाप्रजापति गौतमी ने ही उन्हें पाल पोस कर बड़ा किया था।

पहले स्त्रियों को भिक्षु-भाव लेने का अधिकार नहीं था। महाप्रजापति गौतमी को भिक्षुणी बनने का बड़ा उत्साह था। उसने इसके लिये भगवान् से कई बार याचनाएँ की थीं, किंतु भगवान् ने स्वीकार नहीं किया। अन्त में, महाप्रजापति गौतमी के बहुत ही आग्रह करने पर भगवान् ने अनेक कड़ी कड़ी शर्तों के साथ स्त्रियों को भी दीक्षा लेने की अनुमति दे दी थी। महाप्रजापति गौतमी सर्वप्रथम भिक्षुणी हुई। विशेष देखो "विनय पिटक" पृष्ठ ५१९-५२०

पाँचवाँ परिच्छेद

अनुमान-प्रश्न

धर्म-नगर

१. पृष्ठ–४०८ : अ नि त्य-संज्ञाः–संसार की सभी चीजें अनित्य हैं ऐसा मनन करना।

अ ना त्म-संज्ञाः–शरीर के भीतर कोई कूटस्थ आत्मा नहीं है; केवल पाँच स्कन्धों के (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) के आधार पर ही 'मैं' 'तू' ऐसी संज्ञा होती है। इस बात का मनन करना।

अ शु भ-संज्ञाः–संसार में लुभा लेने वाली जो सुन्दर सुन्दर (= शुभ) चीजें देखने में आती हैं, यथार्थ में वे सुन्दर नहीं हैं बल्कि नाना प्रकार की गन्दगियों और बुराइयों से भरी पड़ी हैं। बाहरी चटक मटक देख कर उनकी ओर आसक्त होना ठीक नहीं है। ऐसा मनन करना।

आ दी न व- संज्ञाः–आदी नव (= दोष) का मनन करना। सांसारिक भोगों के कितने दोष हैं! अनेक दोषों के कारण मनुष्य क्या क्या नहीं कर डालता है! पिता पुत्र, और भाई भाई तक भी एक दूसरे के शत्रु हो जाते हैं। किंतु अन्त में संसार किसी का नहीं होता। मर कर खाली हाथ ही जाना होता है। इस तरह सांसारिक पदार्थों में देखना और उसका मनन करना।

प्र हा ण - संज्ञा :–संसार में जितने पदार्थ का लाभ होता है सभी की एक न एक दिन हानि अवश्य होती है। संयोग के बाद वियोग होना निश्चित है। अतः यहाँ लाभालाभ से अलिप्त हो कर रहना चाहिये। इसका मनन करना।

वि रा ग-संज्ञाः–वैराग्य का चिन्तन

नि रो ध-संज्ञाः-जितने संस्कार उठते हैं सभी कभी न कभी लीन हो ही जाते हैं।

आ ना पा न स तिः–आस्वास प्रस्वास पर ध्यान करना। देखो दीघनिकाय–'महासतिपट्ठान सूत्र'।

उ द्धु मा त, विनील इत्यादिः–मृत शरीर के नष्ट होने की ये भिन्न भिन्न अवस्थायें हैं।

मैत्री-संज्ञा:–सभी के प्रति मित्र-भाव का चिन्तन।

करुणा-संज्ञा:–संसार के सभी जीवों के प्रति करुणाभाव का मनन करना।

मुदित-संज्ञा:–संतोष का चिन्तन।

उपेक्षा-संज्ञा:–संसार के प्रति उपेक्षा = अनासक्त-भाव का मनन करना

मरणानुस्मृति–हम मरेंगे, संसार मरेगा इसका मनन करना।

कायगतास्मृति–अपने शरीर की ३२ गंदगियों पर मनन करना। "अत्थिइमस्मि सरीरे केसा, लोमा नखा दन्ता तचो मंसं नहारु अट्ठी इत्यादि।" देखो मज्झिमनिकाय–'कायगता–सति–सुत्तन्त' ११९।

२. शरण-शील:–शरण–शील तीन हैं (१) बुद्धं सरणं गच्छामि; (२) धम्मं सरणं गच्छामि; और (३) संघं सरणं गच्छामि।

पञ्च-शील:–

(१) पाणातिपाता वेरमणी सिक्खपादं समादियामि–जीव हिंसा से विरत रहूँगा, ऐसा व्रत लेता हूँ।

(२) अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि–जो वस्तु मुझे नहीं दी गई है उसे ले लेने (= चोरी) से मैं विरत रहूँगा ऐसा व्रत लेता हूँ।

(३) कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि–कामों में मिथ्याचार करने से विरत रहूँगा, ऐसा व्रत लेता हूँ।

(४) मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि–झूठ बोलने से विरत रहूँगा, ऐसा व्रत लेता हूँ।

(५) सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि–मादक द्रव्यों के सेवन करने से विरत रहूँगा, ऐसा व्रत लेता हूँ।

अष्टाङ्ग–शील

पहले पाँच तो ऊपर ही के रहते हैं; केवल तीसरा "कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि" के बदले में "अब्रह्मचरिया वेरमणी सिक्खापदं समादियामि" हो जाता है।

बकिये तीन–

६. विकालभोजना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि–बेवक्त भोजन करने से विरत रहूँगा, ऐसा व्रत लेता हूँ।

७. नच्चगीतवादितविसूकदस्सनमालागन्धविलेपनधारण मंडनविभूसणट्ना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि--नृत्य, गीत, बाजा, अश्लील हाव भाव, माला, गन्ध, उबटन के प्रयोग से अपने शरीर को सजने-धजने से विरत रहूँगा, ऐसा व्रत लेता हूँ।

८. उच्चासयनमहासयना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि-ऊँचे और बड़े ठाट-बाट की शय्या पर नहीं सोऊँगा, ऐसा व्रत लेता हूँ।

इन आठ शीलों को अष्टाङ्गिक शील कहते हैं। उपासक किसी विशेष दिन (= प्रति उपोसथ या रविवार जैसे सुभिता होता है) इस अष्टाङ्गशील का धारण करता है। उस दिन वह स्वच्छ कपड़े पहन किसी बौद्ध विहार में जाता है, और घुटने टेक कर भिक्षु से आठ शील देने की याचना यों करता है-

"ओकास अहं, भन्ते! तिसरणेन सह अट्ठङ्ग उपोसथ सीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

दुतियम्पि ओकास, अहं भन्ते।

ततियम्पि ओकास,अहं भन्ते तिसरणेन सह अट्ठङ्ग उपोसथसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहंकत्वा सीलं देथ मे भन्ते।"

अर्थ:-स्वामी जी! मैं तीन शरणों के साथ आठ उपोसथ शील की याचना करता हूँ। अनुग्रह करके मुझे उनशीलों को दें।

दूसरी बार भी।

तीसरी बार भी।

उसके बाद भिक्षु एक एक शील को कह कर रुकता जाता है और उपासक उसे दुहराता जाता है। उस दिन को वह उपासक विहार में ही रह शीलों का पालन करते पवित्र विचारों के चिन्तन में व्यतीत करता है। कितने उपासक जन्म भर इन आठ शीलों का पालन करते हैं।

(४) दशाङ्ग शील:-यह दश शील प्रव्रजितों के हैं। प्रव्रज्या के समय यह दश शील गुरु अपने शिष्य को देता है:-

देखो बोधिनी १ परि. । -५

(५ प्राति मोक्ष-संवर शील:-यह भिक्षुओं (उपसम्पन्न) के लिये हैं। इनकी संख्या २२७ है। देखो विनय पिटक-'प्रातिमोक्ष'।

परिशिष्ट २

नाम-अनुक्रमणी

● ● ●

परिशिष्ट ३

शब्द–अनुक्रमणी

परिशिष्ट ४

उपमा-सूची

● ● ●